निबन्ध-निकेत

(इण्टरमीडियेट, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, एडवांस, प्रभाकर आदि-आदि परीक्षाओं के विद्यार्थियों के लेखन-कला सम्बन्धी ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए विभिन्न विषयों पर उपयोगी निबन्धों की पुस्तक)

लेखक

डा० मोतीलाल गुप्त एम. ए., पी-एच. डी.

महाराजाज कॉलेज, जयपुर

तथा

छोटेलाल भारद्वाज एम. ए.

(गोल्ड मेडलिस्ट)

प्रकाशक

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

जयपुर जोधपुर

१९५७

मूल्य ३॥)

प्रकाशकः—
दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर

मुद्रकः—
महावीर प्रेस, किनारी बाजार,
आगरा

विषय-सूची

भूमिका

निबंध क्या है ?

निबंध की परिभाषा अति कठिन है, और जिन विद्वानों ने भी इस विषय को परिभाषा द्वारा सीमित करने की चेष्टा की है उनका प्रयत्न अपने दृष्टिकोणमात्र को ही स्पष्ट करना रहा है। यह वाक्य केवल इसी एक बात से सिद्ध हो जाता है कि निबंध-सीमा निर्धारण के ही संबंध में लोगों के अनेक मत रहे हैं। कुछ लोग तो निबंध 'अस्तव्यस्त विचारों के प्रकाशन' मात्र को ही कहते हैं, इसके विपरीत कुछ अन्य लोग उसे सुव्यवस्थित गठित तथा पूर्वापर के संबंध से युक्त स्वतःपूर्ण लेख बताते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार उसका आकार दो-तीन पृष्ठों से अधिक नहीं होना चाहिए और कुछ लोग तो निबंध के अंतर्गत सैकड़ों पृष्ठों की रचना करते हैं, और इस प्रकार उसकी पूर्णता का आभास देते हैं। किन्हीं व्यक्तियों के द्वारा निबंध के अंतर्गत चलते, फिरते सीमित क्षेत्र वाले विषयों का समावेश होता है और कोई महान् दार्शनिक एवं अन्य गंभीर विषयों को निबंध के अंतर्गत लेते हैं। एक प्रकार से तो निबंध के सुविस्तृत क्षेत्र में सभी प्रकार के विषय आ जाते हैं, जैसे—विज्ञान, गणित, ज्योतिष, राजनीति, समाज, साहित्य, व्यंग्य, प्रसाद गुण-संबंधित, विवेचनात्मक, कथात्मक, घटनात्मक, व्याख्यात्मक आदि। विषय, स्पष्टीकरण-प्रणाली आदि के विचार से अनेक प्रकार के लेख हो सकते हैं, आजदिन इनका प्रचलन बहुत बढ़ चला है।

पुराने निबंधकार अपने निबंधों में विषय और वर्णन के चमत्कार की ओर अधिक ध्यान देते थे, आज के निबंधकार विषय प्रतिपादन की उपयुक्तता की ओर अग्रसर हैं। एक प्रकार से तो आज निबंध किसी भी विषय का सर्वोत्कृष्ट स्पष्टीकरण तथा व्याख्या है, और उसके द्वारा विषय-प्रतिपादन संबंधी बहुत कुछ कार्य होता है।

यदि आज के दृष्टिकोण से निबंध की परिभाषा करने की चेष्टा करें तो पहले हमें उसके अंगों पर दृष्टिपात करना चाहिए। हम देखते हैं कि सर्व प्रथम निबंध का कोई एक निश्चित वर्णित विषय होता है जिसमें शीर्षक के रूप में वस्तु विषय का निर्देश होता है। दूसरे, निबंध में उस वस्तु विषय का प्रतिपादन एक ऐसी प्रणाली के द्वारा किया जावेगा जिससे हम उसके रहस्य को, उसके अंतर्गत अर्थ को अथवा उसमें निहित विषय को अच्छी प्रकार समझ सकें और इस प्रकार उस विषय के प्रतिपादन का व्यवस्थित रूप सामने आ सके। जहाँ तक भाषा का संबंध है, भाषा विषय के अनुकूल होनी चाहिए। यदि विषय गंभीर है तो भाषा उसके अनुरूप हो और यदि कोई साधारण नित्य-प्रति का विषय है तो भाषा उसका अनुकरण कर साधारण कोटि की होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी निबंध में वस्तु-विषय, प्रतिपादन-प्रणाली, भाषा आदि आवश्यक अङ्ग होते हैं। अतएव निबंध वह साधन है जिसके द्वारा प्रस्तावित विषय को उपयुक्त प्रणाली में भाषा के द्वारा प्रकाशित किया जाय।

निबंध के प्रकार—

विषय और शैली के अनुसार निबंध के कई एक प्रकार होते हैं और उनके विषय में हमें थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

विषय की दृष्टि से निबंध तीन प्रकार के हो सकते हैं।

(१) वर्णनात्मक (Descriptive)
(१) कथात्मक (Narrative)
(३) विचारात्मक (Reflective) अथवा व्याख्यात्मक

यद्यपि हम इस बात को किसी भी दशा में नहीं कह सकते कि कोई निबंध नितान्त एक ही प्रकार का है, किन्तु जिस विषय में जिस तत्त्व का आधिक्य होता है उसी श्रेणी में उसे माना जा सकता है। उदाहरण के लिए 'ताजमहल' पर लिखे किसी एक निबंध को लीजिए। इस निबंध में हम जहाँ 'ताजमहल' की बाह्य आकृति, बनाव, सौन्दर्य, कब्रें, मीनार, बगीचे आदि का वर्णन करते हैं वहीं सम्राट् और साम्राज्ञी के प्रेम और

प्रणय की कथा का भी वर्णन करते हैं, उस घटना का भी अंकन करते हैं जब मुमताज महल ने अपने प्रिय पति से सर्वदा के लिए विदा ली, उसके उपरान्त बादशाह ने जो कुछ किया उसकी कथा भी प्रस्तुत की जाती है, साथ ही दूसरी (शाहजहाँ) कब्र का वर्णन करते समय उस समय की राजनैतिक अवस्था, औरंगजेब के स्वार्थ आदि को भी बताया जाता है। परन्तु इस निबन्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग वह होगा जिसमें प्रेम की, मनुष्य में अमरत्व की भावना, सांसारिक प्रणय आदि की व्याख्या करते हुए व्यक्तिगत विचार प्रकट किए जाते हैं। इस प्रकार "ताजमहल" नामक निबन्ध में वर्णन, कथा तथा व्याख्या तीनों ही अंग सन्निहित हैं, और एक प्रकार से हम किसी भी निबन्ध को केवल एक ही प्रकार का बनाने का दावा भी नहीं कर सकते। कोई भी विषय वर्णन-शैली से भी बहुत प्रभावित होता है। निबन्ध के वर्गीकरण में निबन्धकार की रुचि भी महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। फिर भी जिस निबंध में जिस बात की अधिकता होती है उसी के अनुसार उसका नामकरण होता है।

वर्णनात्मक—

निबन्धों में वस्तु विशेष का वर्णन सजीव रूप से किया जाता है। वर्णन के द्वारा ही उनके दर्शन कराने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के निबन्धों में प्रकृति, नगर, प्रासाद, उपवन, त्यौहार, मेले, वैज्ञानिक अन्वेषण विशेष आदि का वर्णन होता है। वर्णन के सजीव और संक्षिप्त होने की आवश्यकता है। हमारा उद्देश्य वस्तु या दृश्य विशेष का वास्तविक अंकन होना चाहिए। वर्णन संक्षिप्त तो हो ही किन्तु विशेष अंगों पर निश्चित प्रकाश डाला जाय। मान लीजिये हम एक नगर का वर्णन कर रहे हैं, हमें उस नगर की स्थिति को बताते हुए उसके प्राचीन महत्त्व एवं इतिहास पर दृष्टि डालनी है और देखना है कि उसका प्रस्तुत धार्मिक अथवा राजनैतिक या व्यावसायिक महत्त्व किस कारण से हो सका है। उस नगर की प्राचीनता का कुछ वर्णन करने के उपरान्त आधुनिक नगर पर दृष्टिपात करना है जिसके अन्तर्गत जनसंख्या, जलवायु, जनसाधारण, संस्थाएँ, शिक्षाकेन्द्र, आवागमन के साधन, अन्य प्रान्तों से सम्पर्क आदि को देखना

है। अन्त में उसके संबंध में अपनी धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए उसकी उन्नति के लिए आवश्यक साधनों का उल्लेख करना है।

कथात्मक—लेखों में बीती हुई घटनाओं, कथाओं, युद्ध, सम्मेलनों, जीवनियों, पौराणिक वृत्तान्तों आदि के वर्णन होते हैं। इस प्रकार के निबन्धों में हमें क्रमबद्धता की ओर अधिक ध्यान देना पड़ता है। वैसे तो इतिहासकार भी यही कार्य करता है किन्तु उसका क्षेत्र विस्तृत है, वह महत्त्वपूर्ण प्रकरणों तथा उनके प्रभावों पर ही ध्यान देता है किन्तु निबंध-कार किसी एक सूक्ष्म वृत्तान्त को ही ले लेता है और उसका क्रमबद्ध, व्यवस्थित तथा विस्तृत वर्णन उपस्थित करता है। कथात्मक निबंध में तारतम्य का यथाविधि श्रृङ्खलाबद्ध होना परम आवश्यक है और इसी प्रणाली के द्वारा पाठक की आनन्द वृद्धि की जा सकती है। यह आवश्यक नहीं कि कथात्मक निबन्ध ऐतिहासिक ही हों—वे कल्पनाप्रसूत भी हो सकते हैं। हमें तो एक व्यक्तित्व की सृष्टि करनी होती है। ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे निबन्धों में विचार एवं घटना-श्रृङ्खला न टूटने पाये तथा आदि से अन्त तक रोचकता रहे। इसी विभाग के अन्तर्गत आत्म-कथात्मक निबन्ध भी आ जाते हैं। इन निबन्धों को प्रथम पुरुष में वर्णन करना पड़ता है। 'घिसे पैसे की आत्मकहानी', 'एक बूँद की आत्मकथा' ऐसे ही निबन्ध हैं। जीवनी, ऐतिहासिक घटनाएँ तथा आत्म कहानियाँ सभी कथात्मक निबन्धों में ही सम्मिलित हैं।

विचारात्मक—निबन्धों में विचार अथवा बुद्धितत्व का आधिक्य रहता है। इनमें प्रायः आकार विहीन समस्याएँ आती हैं। तर्क, व्याख्या, मनोविज्ञान आदि सभी का समावेश होता है। अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञा-निकता और विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इस बात का ध्यान सर्वदा रखना चाहिए कि मूलतत्व का विवेचन सर्वदा होता रहे। इन निबन्धों में व्यवस्थित जानकारी की आवश्यकता है। विचारधारा कुछ गुम्फित और गूढ़ हो जाती है। विषय सूक्ष्म और विचारप्रपूर्ण होते हैं। ये विषय मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक अथवा दार्शनिक आदि हो सकते हैं। कथात्मक एवं आलोचनात्मक निबन्ध भी इसी श्रेणी में आते हैं। राज-

नैतिक निबन्ध भी इसीमें है। इस प्रकार निबन्ध का यह विभाग अति विस्तृत है। आलोचना, कला, मनोवेग, सामाजिक समस्याएँ, राजनैतिक प्रगतियाँ, जीवन के उपकरण आदि अनेक समस्याएँ और प्रश्न विचारात्मक निबन्धों में आते हैं। विचारात्मक निबन्धों में विषय का निरूपण बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। यह आवश्यक है कि इस प्रकार के निबन्धों में वस्तु विषय की ऐसी विशद और स्पष्ट विवेचना की जाये कि पढ़ने वाला अथवा सुनने वाला विचारों को हृदयंगम कर सके। यह अवश्य है कि स्वभावतः ही भाषा कुछ कठिन और गूढ़ हो जाती है किन्तु यदि हम प्रभावोत्पादकता का गुण नहीं ला सके तो हमारा प्रयास सफल नहीं कहा जा सकता। अतएव हमें इन सभी बातों पर विचार करना चाहिए।

शैली की दृष्टि से भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक निबन्ध पर लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप होती है। अतएव निबन्ध में शैली का विचार अत्यन्त आवश्यक है। हम देखते हैं कि सभी निबन्धकार एक-सी शैली में ही एक ही विषय का प्रतिपादन नहीं करते—अलग-अलग विषयों की तो बात ही क्या है। उदाहरण के लिए 'बिहारी सतसई' पर की गई विभिन्न आलोचनाओं को लें—भाव प्रधान, विचार प्रधान, व्यंग्य प्रधान, व्याख्या प्रधान अनेक प्रकार की टीकाएँ हमें मिलेंगी। यदि एक टीकाकार भावुकता में बह जाता है तो दूसरा प्रत्येक बात पर विचार करता है। कोई व्यंग्यों के सहारे अपने विचारों को स्पष्ट करता है तो कोई विषय की गम्भीर व्याख्या करता है। इसी प्रकार भाषा की दृष्टि से भी शैलियाँ अनेक प्रकार की होती हैं—कुछ निबन्धकार सरल भाषा का प्रयोग करते हैं, कुछ कठिन भाषा का, किन्हीं के वाक्य अधिक मुहावरेदार होते हैं तो कोई शुद्ध संस्कृत भाषा को अपनाते हैं, किन्हीं की भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों की सुन्दर पुट होती है, कोई आलंकारिक प्रणाली को प्रयुक्त करते हैं और कोई तो संकेतात्मकता की ओर जाते हैं। अभिप्राय यह है कि शैलियों के अनेक प्रकार हैं। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह दिया कि प्रत्येक व्यक्ति की शैली अलग

ही होती है। शैली से ही हम किसी विद्वान् के व्यक्तित्व का पता लगा सकते हैं।

शैली का वर्गीकरण भाषा, विचार और भाव की दृष्टि से हो सकता है। भाषा की दृष्टि से—

(१) शुद्ध संस्कृत शैली, (२) मिश्रित शैली, (३) सरल-भाषा-शैली, (४) गुम्फित शैली, (५) अलंकार प्रधान, (६) उक्ति प्रधान, (७) मुहावरे प्रधान, (८) संकेत प्रधान आदि शैलियाँ हो सकती हैं।

कुछ लोग भाषा के विचार से निम्न चार प्रकार पाते हैं:—

(१) व्यास शैली, (२) समास शैली, (३) विक्षेप शैली, तथा (४) प्रलाप शैली। प्रत्येक शैली के नाम से ही उसकी विशेषता स्पष्ट है। विचारों का ध्यान रखते हुए शैली के निम्न रूप लक्षित होते हैं—

(१) सरल शैली, (२) विचार गुम्फन, (३) विश्लेषणात्मक, (४) विद्वत्तापूर्ण–पांडित्य प्रदर्शन, (५) क्रमबद्ध, (६) अस्तव्यस्त, (७) विचार विहीना, (८) व्यक्तित्व प्रधान।

ये शैलियां विचारों के स्पष्टीकरण के प्रकार हैं, और व्यक्ति विशेष अपने विचारों को विभिन्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं। कोई सरलतापूर्वक अपनी बात कह देते हैं तो किसी में उलझाव होता है, किसी के विचार क्रम विशेष से होते हैं, किन्हीं के बिखरे हुए। कोई-कोई तो विचारों द्वारा अपने व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार विचारों का ध्यान रखते हुए हम शैली के अनेक रूप देखते हैं।

कुछ निबन्धकार अपनी शैली में भावों को प्रधानता देते हैं, और कुछ तो भावुक ही बन जाते हैं। हास्य, व्यंग्य, चापल्य आदि अनेक प्रकार की भाव प्रधानता शैली में देखी जा सकती है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि कोई निबंधकार हमारे अन्दर वीरभाव का संचार कर देते हैं, तो कोई शान्तरस के सागर में निमज्जित करते हैं, कोई हमारे हृदय में अपूर्व करुणा का संचार करते हैं तो किन्हीं के द्वारा जीवन का रंगीला रूप

चित्रित होता है। एक ही विषय को निबंधकार का व्यक्तित्व विभिन्न भावों में परिवर्तित कर सकता है :—

(१) हास्य प्रधान, (२) व्यंग्यात्मक, (३) भाव चापल्य युक्त, (४) उत्साहक वर्द्धक, (५) शान्तिप्रदायक, (६) करुणोत्पादक। आदि शैलियाँ हो सकती हैं। इनमें भाव की प्रधानता होती है और विचार गौण रूप में हो जाते हैं। हृदय पक्ष की प्रबलता और बुद्धितत्व की कमी लक्षित होती है। कुछ लोग कोरी भावुकता को अच्छा नहीं बताते। उनके विचार से स्थायी साहित्य में विचार की ही प्रधानता होनी चाहिए। भावुकता का क्षेत्र तो भाषण आदि हो सकते हैं, निबन्ध के द्वारा तो हम किसी विषय का सूक्ष्म, बुद्धि संगत विश्लेषण करते हैं। फिर भी भावात्मक निबन्धों का अपना स्वतन्त्र स्थान है और जीवन की परिस्थितियों में उसे भुलाया नहीं जा सकता।

निबंध में शैली—ऊपर के वर्णन से स्पष्ट होगया होगा कि निबन्ध में शैली का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक निबन्ध लेखक को अपनी शैली बनानी चाहिए। अँग्रेजी की एक उक्ति के अनुसार शैली ही व्यक्ति है (Stylo is the man) और शैली के द्वारा उसका व्यक्तित्व सर्वदा स्पष्ट होता आया है। वैसे तो शैली के अन्तर्गत हम बाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूपों को ले सकते हैं, किन्तु पहले शैली के बाह्य रूप पर थोड़ा विचार करलें। निबन्ध के बड़े विभाग पैराग्राफ़ होते हैं जो वाक्यों से बनते हैं। वाक्यों का निर्माण शब्दों द्वारा होता है। अतएव निबन्ध का सबसे छोटा अंग शब्द है और लेखक को सबसे प्रथम उपयुक्त शब्द-चयन पर ध्यान देना चाहिए। इसके उपरान्त वाक्य-विन्यास पर और तत्पश्चात् पैराग्राफ तथा अन्य बातों पर।

शब्द—शब्द की तीन शक्तियां मानी गई हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। तीनों शक्तियों का यथास्थान प्रयोग हो। अभिधा से मुख्य अर्थ, लक्षणा से सम्बन्धित अन्य अर्थ तथा व्यञ्जना से एक नवीन ही अर्थ का ग्रहण होता है। उत्तम रचना-शैली में व्यञ्जना का अधिक प्रयोग किया जाता है। शब्दों के तीन गुण भी होते हैं और इनका प्रयोग परिस्थिति के अनु-

सार किया जाता है। ये तीन गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद होते हैं। रसों की दृष्टि से इनका ज्ञान आवश्यक है। शृङ्गार के लिये माधुर्य, वीर के लिए ओज तथा सभी के लिए प्रसाद गुण का प्रयोग होता है। इसी प्रकार शब्दों की तीन वृत्तियाँ भी हैं यथा उपनागरिका, परुषा, कोमला। गुण और वृत्तियों के विचार से ही तीन रीतियाँ हैं—वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली। इन सभी का पारस्परिक सम्बन्ध होता है। एक बात तो स्पष्ट है कि शब्द-चयन एक महत्त्वपूर्ण आवश्यक कार्य है और इस ओर लेखक को उचित ध्यान देना चाहिए।

(१) शब्दों के चुनाव में अर्थ, सजीवता, रोचकता आदि का ध्यान रखा जाय।

(२) हमारे शब्द निबन्ध के धारा प्रवाह में बाधक न हों।

(३) विषय के अनुसार शब्दों का चुनाव हो।

(४) पर्यायवाची अनेक शब्दों में से प्रचलित तथा उपयुक्त शब्द चुना जाय।

(५) गढ़े हुए कठिन शब्दों के प्रयोग से बचा जाय।

(६) ऐसा कोई भी शब्द प्रयुक्त न हो जिसके अर्थ में सन्देह हो। या तो उस शब्द को बचा जाना चाहिए, अथवा पर्यायवाची वह शब्द लेना चाहिए जो लेखक को स्पष्ट हो।

(७) यथा संभव शब्दों की अधिक पुनरावृत्ति न हो।

(८) शब्द बाहुल्य पर ध्यान न हो अर्थ प्रदर्शन पर दृष्टि रखी जाय।

(९) चमत्कारपूर्ण शब्द लेख के प्रभाव को बढ़ा देते हैं।

(१०) कर्ण कटु, अश्लील, ग्राम्य शब्दों से बचा जाय।

(११) शब्दों के चयन में प्रान्तीयता न हो, सर्वत्र प्रयुक्त शब्दों को ही लिया जाय।

(१२) शब्दों के चुनाव में ध्वनि तथा अर्थ चमत्कार पर सर्वदा ध्यान रखा जाय।

वाक्यः—वाक्य-प्रयोग में सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। वाक्य योजना सुगठित और व्यवस्थित होनी चाहिए। अर्थ जानने के लिए वाक्यों पर

ही निर्भर रहना पड़ता है। विचार-शृंखला वाक्यों के द्वारा ही स्पष्ट होती है—पृथक शब्द अर्थ ग्रहण कराने में समर्थ नहीं होते, उन्हें वाक्यों के रूप में हमारे सामने आना चाहिए; फिर चाहे वाक्य एक शब्द का क्यों न हो। वाक्य के तीन भेद होते हैं - साधारण, संयुक्त तथा मिश्रित। साधारण वाक्य में एक ही वाक्य होता है; मिश्रित वाक्य में मुख्य वाक्यांश एक ही होता है किन्तु कई उपवाक्य हो सकते हैं; संयुक्त वाक्य में मुख्य वाक्यांश एक से अधिक होते हैं। वाक्यों की दृष्टि से कुछ लोग साधारण वाक्यों का प्रयोग ही श्रेयस्कर समझते हैं, जान बूझकर उन्हें संयुक्त अथवा मिश्रित नहीं बनाते। इसके विपरीत हम यह भी देखते हैं कि कुछ लेखक अपने विचार को अधिक गुम्फित और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए संयुक्त तथा मिश्रित वाक्यों का प्रयोग करते हैं। वाक्य-योजना में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(१) वाक्यों की बनावट विषय के अनुसार हो।

(२) एक वाक्य में एक ही विचार प्रगट किया जाय।

(३) अर्थ की स्पष्टता पर सर्वदा ध्यान दिया जाय।

(४) वाक्यों में क्रमबद्धता हो, बिखरे वाक्यों में विचार भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।

(५) वाक्यों में इस बात की शक्ति हो कि वर्णित विचार चित्र रूप में सामने उपस्थित हो जाय।

(६) वाक्य रचना में व्याकरण के नियमों का भी ध्यान रखना आवश्यक है—लिंग, वचन क्रिया के अतिरिक्त वाक्य में शब्दों का उचित स्थान भी ध्यान में रखना चाहिए। शब्दों के स्थान से अर्थ में अनेक अन्तर आ जाते हैं।

(७) विरामों का प्रयोग उचित रीति से हो—अर्थ स्पष्टीकरण में विराम चिह्न अत्यन्त सहायक होते हैं।

(८) यथासंभव वाक्यों में धारा प्रवाह होना चाहिए—साथ में उनमें एक आकर्षण भी हो कि हमें हृदयंगम होते जाँय।

(९) पुनरुक्ति से बचना चाहिए।

(१०) वाक्यों को जान बूझकर जटिल न बनाया जाय। यदि शुद्ध स्वाभाविक रूप में ही रहने दिया जाय तो उत्तम है।

अन्य—किसी भी निबन्ध को समुचित पैराग्राफ या परिच्छेदों-अनुच्छेदों में विभाजित करना चाहिए। प्राय: ऐसा करते है कि रूप-रेखा प्रस्तुत करने के उपरान्त प्रत्येक पोइण्ट (संकेत) को एक अनुच्छेद के रूप में बढ़ा कर लिखते हैं। ऐसा करने से शृंखला विछिन्न नहीं होने पाती और समुचित अनुपात भी बना रहता है। पैराग्राफ के अतिरिक्त निबन्ध में अन्य अनेक बातें भी होती हैं जो शैली से ही संबंधित हैं, जैसे—

(१) अनेक उद्धरण जो गद्य या पद्य के हो सकते हैं। इन्हें " " के बीच बिना किसी परिवर्तन के लिखा जाय और जहाँ तक संभव हो उसके लेखक का—कवि का नाम उद्धृत किया जाय।

(२) विदेशी भाषाओं से भी उद्धरण दिए जा सकते हैं किन्तु उनकी उपयुक्तता पर विचार कर लेना चाहिए। अन्य भाषाओं के उद्धरण यदि अत्यन्त आवश्यक हों तभी लिए जावें और उनकी मात्रा सीमित ही हो।

(३) प्रस्तावना और उपसंहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रस्तावना आकर्षण और नवीनता युक्त हो तथा उपसंहार निबन्ध विशेष का सफल एवं विचारपूर्ण अन्त हो। कहीं-कहीं उपसंहार को किसी समस्या के रूप में ही छोड़ दिया जाता है।

(४) शैली में ओज, प्रसाद तथा माधुर्य का उचित स्थलों पर समावेश हो।

(५) भाषा में स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता होना शैली का विशेष गुण है। विचार और भाव स्वच्छ एवं स्पष्ट होने चाहियें और उनका प्रभाव पाठक के हृदय पर पड़ना चाहिए।

(६) निबन्ध का अनावश्यक विस्तार उपयुक्त नहीं होता, विषय और क्षेत्र के अनुसार ही विस्तार होना चाहिए।

(७) यदि व्यक्तित्व की स्पष्टत: छाप हो तो आकर्षण में वृद्धि हो जाती है, और पाठक को अपना विश्वास पात्र बनाकर तो लेखक उसे अपना ही बना लेता है।

निबंध कैसे लिखें ?

निबन्ध में एक विशेषता होती है कि हमें उसका नामकरण नहीं करना पड़ता। किसी कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास आदि के लिए तो हमें उपयुक्त नाम की खोज करनी पड़ती है, परन्तु निबन्ध में हमें शीर्षक स्वतः ही प्राप्त हो जाता है और नाम के साथ ही हमारे मस्तिष्क के सामने एक रूप-रेखा नाचने लगती है। हमें अपने विषय का क्षेत्र भी विदित हो जाता है तथा हम यह भी जान लेते हैं कि यह निबन्ध वर्णन, कथा अथवा विचार प्रधान है। किस प्रकार इस विषय का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। शैली का भी बहुत कुछ निश्चय हो जाता है। एक प्रकार से जब किसी विषय को प्राप्त कर अथवा जैसा परीक्षा में होता है चुनकर लेखक अपना कार्य आरंभ करता है तो बहुत कुछ सामग्री उसके मस्तिष्क में आकर एकत्रित हो जाती है।

किन्तु केवल नाम मात्र से यह कार्य पूरा नहीं होता, वह तो एक धुँधला-सा चित्र हमारे सम्मुख ला देता है और हमें इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है कि उस धुँधले चित्र को अधिक स्पष्ट करें। इस कार्य को करने के लिए हम निहत्थे नहीं होते, हमारे पास कुछ साधन होते हैं; जैसे—(१) पुस्तकें (२) अनुभव (३) ज्ञान और (४) कल्पना। परीक्षा को छोड़ कर अन्य अवसरों पर हमें विषय सम्बन्धी पुस्तकें देखने का अवसर प्राप्त होता है, वहाँ से हम आवश्यक बातें ले सकते हैं। हमारा अनुभव भी बहुत काम करता है—संसार में हम बहुत कुछ देखते और सुनते हैं तथा अनुभव भी प्राप्त करते हैं, यह सब हमारे निबन्ध के लिए सामग्री प्रदान करता है। हमारा ज्ञान दो प्रकार का हो सकता है—पुस्तकों द्वारा प्राप्त संचित ज्ञान तथा सत्संग द्वारा उपार्जित ज्ञान। विषय-चिन्तन के समय हमारा यह ज्ञान हमारी सहायता करता है और हमें बहुत कुछ सामग्री प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त हमारी कल्पना है जो किसी विषय को प्राप्त कर अपनी ऊँची उड़ान द्वारा हमें अपने विस्तृत क्षेत्र का दर्शन कराती हुई हमारे सामने आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करती है। इन

उपकरणों द्वारा हम चिन्तन में लग जाते हैं और प्रस्तुत विषय पर विचार करते हैं।

विचार का कार्य कुछ मिनटों होना चाहिए, किन्तु जैसे-जैसे हम विचार करें हमें अपने विचार नोट करते जाना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे—(१) जो विचार हमारे मस्तिष्क में आए हैं वे विस्मृत न हो सकेंगे, साथ ही यदि विचार लिखित रूप में हमारे सामने उपस्थित होंगे तो हमारे चिन्तन में हमें सहायता मिलेगी। जो भी विचार जिस क्रम में आवें हमें लिखते जाना चाहिए। विचारों को विस्तृत रूप में लिखने की आवश्यकता नहीं केवल पोइएट के रूप में ही लिखते जांय और तब तक लिखते जांय जब तक हमारी विचार-धारा धीमी न पड़ने लगे। जब विचार-धारा रुक जाय अथवा उसका स्रोत बहुत ही क्षीण हो जाय तो हमें भी रुक जाना चाहिए।

अब हमारे सामने विषय के अङ्ग-प्रत्यङ्ग-सम्बन्धित एक अस्त-व्यस्त-विश्लेषण है। इसे क्रमबद्ध करना है। हमें देखना है कि हमारे निबन्ध में गति हो, प्रवाह हो, तारतम्य हो और पूर्वापर का सुगठित सम्बन्ध हो। उस विश्लेषण को हम दूसरी बार फिर देखते हैं। पोइएट्स को यथास्थान लगाते हैं, कौन-कौन बातें किस क्रम से आवें इस पर विचार करते हैं। अब हमारे सामने सुव्यवस्थित रूप-रेखा है। हम निश्चय कर चुके कि हमारा निबन्ध किस प्रकार लिखा जायगा, कौन बातें किस क्रम में आवेंगी।

निबन्ध के तीन प्रमुख अंग हुआ करते हैं :—(१) प्रस्तावना, (२) प्रसार तथा (३) उपसंहार। इसी क्रम से हमने अपनी रूपरेखा प्रस्तुत की थी। तैयारी का काम समाप्त हो गया, सारी सामग्री एकत्रित हो गई और हमने उसे यथा स्थान रख भी लिया, अब तो निबन्ध-प्रासाद का वास्तविक निर्माण होना है।

निबन्ध को आरम्भ करने की प्रणाली विशेष महत्त्व रखती है। एक कुशल कलाकार अपने निबन्ध का आरम्भ ही इतना सुन्दर करता है कि पाठक उस ओर बरबस खिंच जाता है। बहुत से परीक्षक निबन्ध की

प्रस्तावना को देखकर ही मूल्यांकन कर लेते हैं। प्रस्तावना की अनेक प्रणालियाँ हैं—कोई उद्धरण, कविता-पंक्ति, कोई लोकोक्ति, विषय की परिभाषा, कोई एक प्रश्न, कोई दृश्य अथवा कोई अन्य विशेष चमत्कार। प्रस्तावना लम्बी होने की आवश्यकता नहीं। एक प्रोफेसर सा० का कहना है कि यदि प्रस्तावना में वे ही सब गुण हों जो किसी सिनेमा के ट्रेलर में होते हैं तो हमारी प्रस्तावना बहुत सुन्दर होगी। ट्रेलर के द्वारा विषय की अस्पष्ट छाया, उसके आकर्षण स्थान, उसका क्षेत्र आदि सुन्दर ढंग में प्रदर्शित होते हैं—यदि यही काम प्रस्तावना कर सकी तो निबन्ध अच्छा बनेगा।

लेख का प्रसार करते समय रूप-रेखा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। न तो शृङ्खला टूटने पाये और न कोई महत्त्वपूर्ण विचार रह ही जाय। लेखक को अपने ज्ञान और अनुभव को प्रकाशित करने का यही अवसर है, किन्तु संयम की परम आवश्यकता है। विचारों का स्पष्टीकरण सशक्त होना चाहिए जिससे विश्लेषण प्रभावपूर्ण हो और लेखक पाठक के सम्मुख न केवल अपना दृष्टि विन्दु ही रखे वरन उसको अपने विचारों की उपयुक्तता एवं औचित्य से प्रभावित कर दे। उचित अनुच्छेदों द्वारा प्रसार का रूप विकृत होने से रोकना चाहिए। भाव, विचार, कल्पना तथा शैली सभी पर ध्यान देना चाहिए और विषय के अनुरूप ही इनका उचित पुट मिलाना चाहिये।

उपसंहार भी लेखक की योग्यता का परिचायक है। जिस प्रकार प्रस्तावना में सावधानी की आवश्यकता है उसी प्रकार उपसंहार भी चतुराई से लिखना चाहिए। उपसंहार के समय लेखक अपनी सम्मति प्रकट कर सकता है अथवा लेख का सारांश दे सकता है। किसी समस्या विशेष को सुधारने का परामर्श भी दे सकता है और भविष्य का चित्र भी उपस्थित कर सकता है। उपसंहार को पढ़ लेने के पश्चात् पाठक को कुछ शान्ति मिलनी चाहिए कि हाँ, मैंने कोई बात सीखी, समझी या अनुभव की। लेख के इस भाग में सम्मति दी जा सकती है किन्तु उपदेश देने की प्रणाली अब अच्छी नहीं समझी जाती। धार्मिक निबन्धों में यह

प्रवृत्ति भले ही स्वीकार कर ली जाय, किन्तु अन्य निबन्ध तो व्याख्यात्मक और संकेतात्मक होने चाहियें।

निबन्ध के इस तृतीय अङ्ग के साथ लिखने का कार्य समाप्त हो जाता है। अब हमें अत्यन्त सतर्क होकर एक बार सम्पूर्ण निबन्ध को पढ़ डालना है। पढ़ने के साथ अशुद्धियों को ठीक करने का कार्य होना चाहिए। विशेषतः विराम-चिह्न, व्याकरण और शब्दों की अशुद्धियाँ, छूटे हुए शब्द, अधूरे अक्षर और मात्राएँ ठीक कर देने चाहिये। इस थोड़ी-सी सावधानी से परीक्षार्थी को तो बहुत ही लाभ होता है, क्योंकि वह इन सभी बातों को जानता है और आवृत्ति न करने से व्यर्थ ही परीक्षक के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता और कम अङ्क मिलते हैं। अतः निबन्ध को दोहराना अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है।

निबन्ध लिखते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना उपयोगी सिद्ध होगा—

(१) निबन्ध निश्चित समय में ही समाप्त हो। यदि अधिक समय लग गया तो और प्रश्न रह जावेंगे और परीक्षार्थी को हानि उठानी पड़ेगी—अन्य व्यक्तियों को भी समय का उचित विभाजन करना चाहिए। प्रस्तावित समय में ही निबन्ध लेखन की सम्पूर्ण क्रिया होनी चाहिए। मान लीजिए हमारे पास एक घन्टे का समय है और लगभग ६००–८०० शब्द का निबन्ध लिखना है। विचार कर रूपरेखा बनाने के लिए ८ मिनट, रूपरेखा व्यवस्थित करने के लिए ३ मिनट तथा पुनरावृत्ति के लिए ४ मिनिट का समय ठीक होगा बाकी ४५ मिनट में निबन्ध लिखें—यदि निबन्ध पाँच पृष्ठ का होना है तो एक पृष्ठ में ८, ९ मिनट से अधिक समय न लगना चाहिए।

(२) किसी निबन्ध को पढ़ने पर उसमें अस्तव्यस्तता दृष्टिगोचर न हो, सम्पूर्ण निबन्ध में एक ही श्रृङ्खला हो और तारतम्य कहीं भी टूटने न पावे। इस कार्य को करने के लिए चिन्तन और अभ्यास दोनों की आवश्यकता है। सर्वदा अपने ध्येय पर ध्यान रखकर आगे बढ़ा जाय।

(३) भाषा में शैथिल्य न हो। शब्दों का चयन, वाक्यों की बनावट,

अनुच्छेदों में विभाजन, अलंकार प्रयोग, सभी मँजे हुए, स्वच्छता के साथ हों। गति (Flow) तो अत्यन्त आवश्यक है। वाक्यों में उतार-चढ़ाव तो हो, क्योंकि ऐसा न होने से शिथिलता-सी प्रतीत होगी, किन्तु ऊबड़-खाबड़पन न होना चाहिए।

(४) ग्रामीण शब्द, प्रान्तीयता, अश्लीलत्व, कर्णकटु शब्द, पांडित्य-प्रदर्शन, मिथ्या-प्रलाप आदि से बचना चाहिए।

(५) व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ सह्य नहीं होतीं और न शब्द-अशुद्धि क्षम्य है अतः इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(६) मुहावरे, लोकोक्तियाँ, साधारण अलंकार, कल्पना, व्यंग्य, हास्य आदि का यथास्थान प्रयोग करना चाहिए। हमारे निबन्ध में न तो उथलापन हो, और न मन को उबा देने वाली शिथिलता ही हो।

(७) रूपरेखा निबन्ध के साथ भी दी जा सकती है किन्तु उसे भली-भाँति सजाकर देना चाहिए। संकेतों को वैज्ञानिक प्रणाली से सुसज्जित कर प्रस्तुत करना ही ठीक होता है। उसे देखते ही सम्पूर्ण वस्तु विषय का ढाँचा हमारे सामने उपस्थित हो जाना चाहिए। कुछ लोग संक्षिप्त रूप-रेखा के साथ विस्तृत रूपरेखा भी बना लेते हैं—यह प्रणाली भी उत्तम है क्योंकि विस्तृत रूपरेखा बनाने के उपरान्त हमारा काम बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। किन्हीं विषयों को याद करने के लिए तो यह सर्वोत्तम प्रणाली है। परीक्षा के लिए लिखे निबन्धों के साथ संक्षिप्त रूपरेखा देना ही पर्याप्त होता है।

(८) वास्तव में निबन्ध-लेखन एक कला है और इसे जितना अधिक कलात्मक बनाया जाय उतना ही लाभ है, किन्तु अभ्यास और अनुभव की आवश्यकता है। अपने निबन्धों को हम कलात्मक कृतियाँ बनाने की ओर अग्रसर हों।

हिन्दी में निबंध का विकास—हिन्दी-निबन्ध का विकास हिंदी-गद्य के विकास से सम्बन्धित है। आधुनिक हिन्दी-गद्य का उत्थान तीन कालों में हुआ। भारतेन्दु-युग ही आधुनिक हिंदी-गद्य का प्रारम्भिक काल है। इस युग से पहले भी गद्य था, किन्तु उसे हम आधुनिक गद्य नहीं कह

सकते। आधुनिक खड़ी बोली-गद्य का आरम्भ तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में ही हुआ। इस उत्थान में नवीन शिक्षा-प्रणाली, मुद्रण यन्त्र का आविष्कार, अन्य भाषाओं का पठन-पाठन आदि बातें सहायक हुईं। हिंदी गद्य का नवीन उत्साह और स्फूर्ति के साथ प्रारम्भ हुआ। इस गद्य का परिमार्जन द्विवेदी-काल में हुआ जब व्याकरण, वाक्य विन्यास, शब्द-प्रयोग सभी के दोषों का परिहार किया गया। वर्तमान युग ने उस गद्य को प्रौढ़ता प्रदान की है। भाषा में पूर्णता आई और उसकी इतनी शक्ति हुई कि अनेक विषयों का प्रतिपादन कर सके। हिंदी-गद्य का विकासक्रम ही निबन्ध के विकास को भी स्पष्ट कर देता है और इसीलिए हम हिन्दी-निबन्ध के काल को तीन युगों में विभाजित करते हैं—

(१) प्रारम्भिक अथवा भारतेन्दु-युग। (२) माध्यमिक अथवा द्विवेदी-युग। (३) आधुनिक युग।

भारतेन्दु-युग—में निबन्धों का लिखना आरम्भ हुआ। छोटे-छोटे लेख लिखे जाते थे और वे प्रायः सामयिक पत्रों में प्रकाशित होते थे। व्याकरण की अशुद्धियाँ, वाक्य विन्यास के दोष और रूपहीनता पग-पग पर लक्षित होते हैं। भाषा में शिथिलता और छिछलापन देख पड़ता है। परन्तु पत्र-पत्रिकाओं में भारतेन्दु-काल के लेख खूब प्रकाशित होते थे। इस काल के निबन्धकार प्रायः अखबारनवीस थे। भाषा का रूप अनिश्चित था, और ठोस विषयों की ओर तो ध्यान गया ही नहीं था। किन्तु हमें यह मानना पड़ेगा कि उस काल के लेखकों ने अपना कार्य अत्यन्त उत्साह और लगन के साथ किया और हिंदी-साहित्य में एक क्रान्ति सी उत्पन्न करदी। इतिहास की दृष्टि से इस काल के निबन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस काल के अग्रगण्य लेखक और निबन्धकार स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं जिनके द्वारा शिष्ट और नागरिक ढंग के लेख प्रकाशित हुए। इस काल का लेखक मंडल विशिष्ट शैली प्रयुक्त करता था जिसमें विनोद की मात्रा अधिक होती थी। पं० बालकृष्ण भट्ट ने आँख, कान, नाक आदि विनोदपूर्ण विषय लिए और मिश्रित भाषा द्वारा अपने विचार प्रकट किए। पं० प्रतापनारायण मिश्र के शीर्षक

ही विनोदपूर्ण होते थे। व्यंग्य और हास्य काफी होता था। पण्डित बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने आलोचना का आरम्भ किया। विचार की दृष्टि से पं० अम्बिकाप्रसाद व्यास का नाम उल्लेखनीय है।

द्विवेदी-युग में भाषा का परिमार्जन हुआ। खोज-खोजकर दोष निकाले गए और अशुद्ध प्रणाली प्रयुक्त करने वालों की भर्त्सना की गई। भाषा का स्वरूप निखर चला, व्याकरण की अशुद्धियाँ दूर हुईं और रूप में स्थायित्व आया। गम्भीर लेखों की ओर भी झुकाव हुआ। आलोचनात्मक निबंधों को भी आगे बढ़ाया गया। भाषा निबंध लेखन के उपयुक्त बन गई और उसकी गति वेगवती हो गई।

प्रमुख लेखक स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ही थे। इनके निबन्ध कई श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं, जैसे—आलोचनात्मक, व्यंग्यात्मक और व्याख्यात्मक, और प्रत्येक में एक नवीन ही शैली दृष्टिगोचर होती है। इनके अतिरिक्त और भी निबन्धकार हुए। भावुकता में पण्डित माधवप्रसाद मिश्र, विचारप्राधान्य में गोविन्दप्रसाद मिश्र तथा विनोद में बालमुकुन्द गुप्त उल्लेखनीय हैं। बाबू गोपालराम गहमरी, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और मुंशी प्रेमचन्द भी इसी समय के लेखक हैं। इनके निबन्धों में न केवल परिमार्जित भाषा ही है वरन् विचार और भावों में भी सुव्यवस्था है और अपेक्षाकृत गंभीरता की ओर झुकाव है।

वर्तमान काल निबन्ध का पूर्ण विकसित काल है। भाषा का रूप तो बहुत पहले ही स्थिर हो चुका था और उसे वह शक्ति भी प्राप्त होगई कि अनेक विषयों का प्रतिपादन कर सके—उसका शब्द भण्डार भी इतना बढ़ गया कि गम्भीर एवं वैज्ञानिक विषय भी उसके अन्तर्गत आ सकें। विभिन्न शैलियों का विकास इसी काल में हुआ और उसका स्पष्ट रूप दिखाई पड़ा। निबन्ध के विकास में अँग्रेजी साहित्य और विचार-धारा का बहुत हाथ रहा है। इस काल में मौलिक एवं अनूदित दोनों प्रकार का कार्य हुआ। कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों ही दृष्टियों से बहुत उन्नति हुई। असंख्य विषयों पर लिखा गया और निबन्ध साहित्य में सर्वतोमुखी उन्नति हुई। साहित्य और विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य हुआ है।

सरदार पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्ध, पं० पद्मसिंह की सजीव फड़कती हुई कृतियाँ, पं० रामचन्द्र एवं बा० श्यामसुन्दरदास का आलोचनात्मक निबन्ध-साहित्य, प्रसाद जी की गर्भित शैली, वियोगीहरि के भावात्मक, सरस निबन्ध, कलात्मकता से पूर्ण बा० गुलाब राय के गम्भीर निबन्ध, डा० धीरेन्द्र वर्मा के वैज्ञानिक, चुस्त निबन्ध, एवं इनके अतिरिक्त साहित्य के पारखी पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० बड़थ्वाल, पं० नन्ददुलारे, बा० राय कृष्णदास, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, डा० नगेन्द्र, नलिनीमोहन सान्याल, डा० रामरतन भटनागर, डा० रामनिवास, प्रभाकर माचवे, रामनाथ 'सुमन' आदि अनेक सुप्रतिष्ठित निबंधकार हैं जिनके द्वारा साहित्य के विभिन्न अङ्गों का विकसित रूप सामने आया है।

हिन्दी में प्रचलित आधुनिक शैलियाँ—साधारण रूप से हिन्दी निबन्ध को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—

१. भावात्मक—इन निबन्धों में भावुकता की प्रधानता रहती है—मुहावरे, सरसता, काव्यात्मकता, विनोद इन निबन्धों की विशेषताएँ हैं। इस श्रेणी में प्रथम काल से भारतेन्दु, पं० बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र लिए जा सकते हैं। ये निबन्धकार विचारों की ओर इतना ध्यान नहीं देते थे, हृदय पक्ष की ओर अधिक ध्यान रहता था। द्विवेदी युग के माधव प्रसाद मिश्र, गोपालराम गहमरी तथा पं० गुलेरी इस श्रेणी में आते हैं। इनकी शैली में भी विनोद की मात्रा है और प्रौढ़ ओजस्विनी भाषा में ओज एवं माधुर्य का संचार है। वर्तमान युग के अध्यापक पूर्णसिंह, पं० पद्मसिंह शर्मा तथा वियोगी हरि की शैली भी भाव-प्रधान है। पूर्णसिंह जी की शैली में तर्क और गम्भीरता भी हैं किन्तु हृदय पक्ष का प्राबल्य है। पद्मसिंह शर्मा ने अपनी भाषा में अनेक भाषा और साहित्य की पुट दी है और तुलनात्मक प्रणाली को प्रचलित किया। अनेक स्थानों पर बाहवाही-सी होती दिखाई देती है। वियोगी हरि की सरसता तो काव्य की प्रेमधारा से प्लावित होती हुई हृदय को स्पर्श करती है। इनके

अतिरिक्त अन्य निबन्धकार राय कृष्णदास, महादेवी वर्मा तथा अन्य कवि निबन्धकार हैं।

२. विचारात्मक—प्रत्येक साहित्य में इस श्रेणी के निबन्धकारों की संख्या अधिक होती है, क्योंकि विचारात्मक निबन्धों में साहित्य, विज्ञान आदि के सम्पूर्ण विषय आ जाते हैं। हम देखते हैं कि हिन्दी निबन्ध के प्रथम दो कालों में विचारात्मक निबन्धों की न्यूनता थी। प्रथम काल में पं० अम्बिकादत्त व्यास तथा द्वितीय काल में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम ही उल्लेखनीय हैं। किन्तु आधुनिकाल के निबन्धकारों में अधिकांश विचार प्रधान ही हैं। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, गुलाबराय, डा० धीरेन्द्र, डा० रामरतन, पण्डित हजारी प्रसाद, पण्डित शान्तिप्रिय, डा० नगेन्द्र, पण्डित नन्ददुलारे, जैनेन्द्र कुमार, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, नलिनी मोहन सान्याल सभी विचार प्रधान लेखक हैं। इनके द्वारा साहित्य के विभिन्न अङ्गों पर, विशेष रूप में आलोचना पर, निबन्ध लिखे गये हैं।

विज्ञान, इतिहास, ज्योतिष, खगोल, वाणिज्य, कला, अर्थशास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, स्वास्थ्य, आदि विषय भी विचारात्मक प्रणाली के अन्तर्गत ही लिए जावेंगे, क्योंकि उनमें बुद्धितत्व का प्राधान्य होता है। खोज सम्बन्धी सभी लेख इसी कोटि के हैं। सच तो यह है कि निबन्ध-साहित्य की यह श्रेणी उसकी मेरुदण्ड है और इसी के द्वारा उसका विस्तृत क्षेत्र में विस्तार होता है।

३. वर्णनात्मक—निबन्धों का सम्बन्ध लेखक के व्यक्तिगत अनुभव से होता है। वह या तो इनका अनुभव प्राप्त किए होता है अथवा कल्पना द्वारा उसे प्रस्तुत करता है। हिन्दी में वर्णनात्मक निबन्ध भावात्मक निबन्धों से पीछे आए। ठाकुर जगमोहन सिंह ने सर्वप्रथम प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया, और इनके उपरान्त बालमुकुन्द गुप्त ने भी हास्य, व्यंग्यमय वर्णन लिखे। दो-चार और भी लेखक हुए किन्तु इस ओर अधिक ध्यान नहीं गया। प्रथम तो यह निबन्ध का प्रारम्भिक रूप है और दूसरे इस

और जिनकी भी रुचि हुई वे भाव अथवा विचारों में बह गए शुद्ध वर्णन नहीं दे सके।

४. विवरणात्मक अथवा कथात्मक निबन्धों में महाराज कुमार रघुवीर सिंह तथा बाबू रामचन्द्र वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। रघुवीर सिंह जी के लेख ऐतिहासिक सामग्री का अच्छा विश्लेषण करते हैं और वर्मा जी के लेख भी अनेक विषयों से सम्बन्धित थे।

५. व्याख्यानात्मक—इस कोटि में पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का नाम लिया जा सकता है। यह शैली व्याख्यानदाता की-सी होती है और निबन्ध में व्याख्यान का-सा आनन्द आता है।

इस प्रकार हमने देखा कि जहाँ भावात्मक निबन्धों में हृदय पक्ष का आधिक्य होता है वहाँ विचारात्मक निबन्धों में संयत भाषा तथा गूढ़ विचारों की धारा प्रवाहित होती है। वर्णनात्मक निबन्ध लेखक के व्यक्तिगत अनुभव के प्रदर्शक होते हैं और विवरणात्मक निबन्धों में अतीत की घटनाएँ चित्रित होती हैं। व्याख्यानात्मक शैली तर्क और ओज से भरी हुई उक्ति-वैचित्र्य सहित होती है।

शैली के और भी अनेक रूप हो सकते हैं जिनके रूप-निर्धारण में किसी एक तत्व का बाहुल्य होता है। इसी प्रकार विचारात्मक जैसी शैली को अनेक उप भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे—आलोचनात्मक, कलात्मक, वैज्ञानिक, व्याख्यात्मक आदि।

निबंध की आधुनिक प्रवृत्तियाँ—(१) विषयों का क्षेत्र दिन प्रतिदिन विस्तृत होता जा रहा है, और प्रत्येक क्षेत्र में निबन्धों की मात्रा भी बढ़ रही है।

(२) भाषा का रूप तो व्यवस्थित होकर निश्चित हो ही गया है, किन्तु उसका शब्द-भण्डार निरन्तर भर रहा है। अनेक नवीन विषयों, जैसे राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र, कानून आदि के आजाने से नवीन शब्द-समुदाय बड़े ही वेग से प्रवेश पा रहा है और प्रचलित होने का प्रयास कर रहा है।

(३) भाषा में शब्दों की व्यवस्था निश्चित होती जा रही है, विदेशी शब्दों का या तो बहिष्कार हो रहा है अथवा उनका परिष्कार कर उन्हें हिन्दी का ही शब्द बनाया जा रहा है।

(४) निबन्ध का क्षेत्र विद्यार्थी एवं पत्रकारों का अतिक्रमण कर विस्तृत होता जा रहा है। अनेक संस्थाएँ, सरकारी विभाग तथा व्यक्ति-विशेष इनके परिवर्द्धन में प्रयत्नशील हैं। अनेक संस्थाओं द्वारा तो पुरस्कार घोषित किए जाते हैं।

(५) निबन्धों की संख्या एवं परिमाण में भी वृद्धि हो रही है। पहले डाक्टरेट की उपाधि पाने के लिए अँग्रेजी में निबन्ध लिखने पड़ते थे, किन्तु अब हिन्दी में ही यह काम हो रहा है और उधर इस उपाधि को प्राप्त करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। अतएव बृहत्काय शुद्ध साहित्यिक, गम्भीर एवं उच्च कोटि के निबन्ध उपलब्ध हो रहे हैं।

(६) सरकारी विभागों द्वारा इसका रूप बराबर विकास पा रहा है। प्रकाशन विभाग इस ओर प्रयत्नशील है और अनेक विषयों पर निबन्धों का आयोजन होता है।

(७) भावात्मक निबन्धों में कुछ कमी है, विचारात्मक का आधिक्य है और संक्षेप की ओर भी लोगों का ध्यान है यद्यपि भाषा की सरलता विस्तृत-सी हो चली है।

(८) निबन्ध-साहित्य निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर है।

प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह—अनेक निबन्ध-संग्रहों के होते हुए हमने यह संग्रह लिखा। इस संग्रह की विशेषता विषयों का चुनाव तथा शैली की नवीनता है। छात्रोपयोगी बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किया गया है। यह संग्रह न केवल निबन्ध-लेखन से ही सीमित है वरन् अनेक विषयों पर संक्षिप्त सामग्री भी उपलब्ध हो सकेगी। और परीक्षाओं में पूछे गए निबंधों का भी समावेश किया गया है। इस निबन्ध-संग्रह का वर्गीकरण विषय के अनुसार है, परन्तु हमने ध्यान रखा है कि प्रत्येक वर्ग के निबन्ध एक विशेष क्रम से हों। निबन्ध के विषयों की कठिनाई क्रम से बढ़ती है, यह

हमारा अनुमान है सम्भव है, इसमें मतभेद हो। इसी प्रकार विभिन्न वर्गों को भी उनकी बोधगम्यता के अनुसार लिया गया है। इन निबन्धों में हमने दो बातें विशेष रूप से बढ़ाई हैं—विस्तृत रूपरेखा तथा पाद टिप्पणियाँ। कुछ निबन्धों की केवल विस्तृत रूपरेखाएँ ही दी गई हैं। इस प्रकार की रूपरेखाओं के देने का अभिप्राय विषय को याद कराने की दृष्टि से है। विद्यार्थियों के लिए तो ये बने बनाये नोट्स हैं जिन्हें परीक्षा के समय सफलतापूर्वक देखा जा सकता है। पादटिप्पणियों की आवश्यकता हमें अनेक स्थानों पर हुई—अँग्रेजी के शब्द देने भी उपयुक्त प्रतीत हुए। इन सबके साथ हमारी अपनी त्रुटियाँ तो हैं ही, अनेक स्थानों पर दृष्टिकोण में अन्तर लक्षित हो सकता है। अनेक निबन्धों में भी अंतर हो सकेगा। इसका कारण है हमारे पृथक् व्यक्तित्व। इस संग्रह के निर्माण में हमें अनेक निबन्ध तथा साहित्य-पुस्तकों से मूल्यवान् सहायता मिली, जिसके लिए हम उनके लेखकों तथा प्रकाशकों के आभारी हैं।

विज्ञान, कला तथा स्वास्थ्य संबंधी निबन्ध

१ सरल-जीवन : आवश्यकता और महत्त्व

संक्षिप्त रूपरेखा

१—अनुक्रम । २—सरल जीवन, व्याख्या । ३—आडम्बर का जन्म और विकास । ४—सामन्तशाही श्रम का अपमान, आडम्बर का चरम । ५—महत्त्व, कर्मण्यता और आडम्बर हीनतायें । ६—शोषण का नाश और सरल जीवन । ७—सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की सरलता । ८—मानव की विवशता सरल जीवन की ओर ले जा रही है । ९—मानवता की पुकार—

"Simple living and high thinking" अर्थात् 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' मानव-जीवन की उन्नति का मूलमंत्र है । वास्तव में जीवन की सार्थकता तड़क-भड़क और शान-शौकत में नहीं है, जितनी ऊँचे कार्य करने में है । ईसा से लेकर कृष्ण, बुद्ध और गांधी की भूमि जीवन के उच्चादर्शों की भूमि थी । इन सभी के जीवन में हमें एक ऐसी सादगी के दर्शन होते हैं, जो महापुरुषों की सर्वप्रथम विशेषता है ।

सरल जीवन क्या है ? यह अवश्य एक विवादास्पद* प्रश्न है । एक करोड़पति के लिए मोटरकार और बंगला भी सरल जीवन हो सकता है जबकि एक साधारण क्लर्क अथवा मजदूर के लिए अच्छा खाना पहनना भी मँहगा जीवन हो सकता है । तो फिर सरलता के लिए यह तो मानना ही पड़ेगा कि परिस्थिति के अनुसार उसका मापदण्ड हो सकता है । किन्तु ऐसा मानकर चलने पर 'सरल जीवन' शब्दों की उचित ध्वनि नहीं निकल

* विवादों से उलझा हुआ ।

पायेगी। वास्तव में सरल जीवन का अर्थ होता है आडम्बर-हीनता तथा अनावश्यक भोग का अभाव। जैसा गांधी जी कहते थे कि 'मेरे देश के एक व्यक्ति के हिस्से में जितना कपड़ा आता है, जितना भोजन आता है उससे अधिक उपभोग करने का अधिकार मुझे नहीं है' ठीक इसी सिद्धान्त को यदि विश्व पर कोई लागू करदे तो निश्चित रूप से अनेक मानवों पर बज्र सा गिर पड़ेगा।

मानव-सभ्यता के आदिकाल में जीवन अत्यन्त प्राकृतिक और सरल था। उस समय के आडम्बर से ऊबकर किसी गांधी को नहीं कहना पड़ा था कि 'गांवों को वापस चलो।'† इससे हम यह निश्चित कर सकते हैं कि प्राकृतिकता के जितना निकट है कोई जीवन, उतना ही वह सरल है। सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ जीवन में आडम्बर बढ़े, आवश्यकताएँ बढ़ीं, निरर्थकताएँ$ बढ़ीं। जब संसार में शोषण का प्रारम्भ हुआ, शक्ति और सत्ता का दुरुपयोग प्रारम्भ हुआ, तब जीवन की सरलता भी स्वाभावतः ही मानव से दूर हो चली। कुछ शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति दूसरों के श्रम का उपयोग करने लगे, और इसके साथ ही उनमें शासन की गंध और कृत्रिम आतंक जमाने की प्रवृत्ति भी जोर पकड़ने लगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन में आडम्बर और शानशौकत का जन्म ही शोषण के साथ-साथ हुआ है। सामन्तशाही के यौवन-काल में यह शोषण और आडम्बर दोनों अपने चरम पर पहुंच गये। और उसका एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि काम करना अपमान-जनक बात समझा जाने लगा। जो जितना शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करता था, उतना ही उसको नीच दृष्टि से देखा जाने लगा। निठल्ले बैठे रहने वाले, दिन भर शिकार में जीवन बिताने वाले बुद्धि-हीन सामंत-गण अपने को जन्मजात श्रेष्ठ मानव-जाति के जीव समझने लगे। इस प्रकार सरल जीवन और कार्य के प्रति मानव-समाज में घृणा का भाव फैलने लगा। राजाओं, महाराजाओं, सम्राटों और सामन्तों की शानशौकत चरम पर पहुंच गई। उस सभ्यता

† "Back to Villages"—Gandhi.

$ Uselessnesses

का वैभव-विलास यहाँ तक बढ़ गया था कि जब एक ओर लाखों मानव भूखे मरते रहते थे, राज और सम्राट् सोने चाँदी के महलों में निवास करते थे, निश्चिन्त, पूर्ण ऐश्वर्य और विलास में डूबे हुए। इस आडम्बर का जीता जागता स्वरूप आज भी आप किसी भी सामंत, जागीरदार, महाराजा या राजप्रमुखों के महल में देख सकते हैं।

राज सत्ता की इस प्रवृत्ति का प्रभाव जनसाधारण पर भी पड़ा। वहाँ भी काम करना और सादा जीवन व्यतीत कर घृणित और हेय÷ दृष्टि से देखा जाने लगा। जो जितना कर सकता था उसने उतना आडम्बर अपने जीवन के चारों ओर जुटाने में दिनरात एक कर दिया। तृष्णा का साम्राज्य फैला। आवश्यकता का छोर तो कभी होता नहीं, बस अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए निर्बलों का भयानक शोषण समाज के प्रत्येक अंग में किया जाने लगा। पूँजीवादी युग शानशौकत और आडम्बर में सामन्तशाही से आगे तो नहीं बढ़ा, किन्तु शोषण उसमें और भी अधिक भीषण होगया।

जीवन के इस विकास-क्रम के काल में कभी-कभी बीच-बीच में अनेक कवि, दार्शनिक, और महात्मा ऐसे भी हुए जिन्होंने इस आडम्बर की प्रवृत्ति और श्रम के प्रति घृणा के विरोध में अपना स्वर उठाया। किन्तु इतने जोर का तूफान था मानव-स्वार्थों के समुद्र में, कि उनकी ललकार को लहरों के गर्जन में कोई नहीं सुन सका। ईसा, बुद्ध, सुकरात, कबीर और गांधी इन्हीं में से थे। प्रायः सभी धर्म, सभी उपदेश इस लोक को नश्वर बताकर इस आडम्बर के तिरस्कार की भावना लेकर चले थे, किन्तु कोई भी इसकी बाढ़ रोकने में समर्थ नहीं हुआ। हम यह मान सकते हैं कि आडम्बर की इस रुचि ने मानव-जाति की कला-प्रियता को संवृद्ध किया, कला और विज्ञान की अभूत-पूर्व उन्नति भी उसने की और इसलिए उसका सभ्यता के विकास में अपना एक महत्त्व भी है। किन्तु साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जहाँ आडम्बर अथवा सभ्यता का विकास शोषण को जन्म देता है, वहीं वह अमानवीय हो जाता है। और फिर

÷ त्याज्य।

जो सभ्यता श्रम का अपमान करके भी उसी श्रम पर जीवित रहना चाहती है, वह उस पागल लकड़हारे से अधिक बुद्धिमती नहीं है, जो उसी डाल को काटने में लगा है, जिस पर स्वयं बैठा है।

वास्तव में, सरल जीवन का महत्व इसलिए नहीं है कि वह मानव को चिन्ताओं से मुक्त रखता है। उसका अर्थ भी केवल यही नहीं है कि सभ्यता के उपकरणों + का तिरस्कार किया जाय। ऐसा कोई कर भी नहीं सकता। मशीन के घोर विरोधी गांधी जी भी घड़ी और चरखे का (जो मशीन का आदि रूप है) प्रयोग करते थे। और इस प्रयोग के लिए कोई उत्तर उनके पास नहीं था। सरल जीवन सभ्यता के तिरस्कार का नाम है, ऐसा कम से कम मैं नहीं मानता। मैं सरल जीवन का जो अर्थ लेता हूँ वह है कर्मण्यता और आडम्बर-हीनता। यदि मुझे एक घंटे के समय में ५० मील की सफर करना है, तो मैं मोटर कार के उपयोग को कभी तिरस्कृत नहीं करूँगा, किन्तु केवल इसलिए मोटरकार रक्खूं कि मैं बहुत बड़ा धनी हूँ, और चार कदम भी पैदल जाना मेरे लिए अपमान की बात है, इसे मैं आडम्बर और अकर्मण्यता कहता हूँ। जब ये भाव मानव-मस्तिष्क में रहते हैं तो वह शोषण की प्रथा का अवश्य शिकार होता है। अतः यदि श्रम का आदर और आवश्यकता के अनुकूल सभ्यता के उपकरणों का उपभोग मेरा समाज करने लगे, तो मैं अपने समाज को सरल जीवी समाज कहूँगा। उस समय मुझे विश्वास है, कोई शक्ति मेरे समाज में शोषण की प्रथा का प्रचलन नहीं कर सकती।

इस विवेचन से हमने यह देखा कि जहाँ मानवीयता और युगानुकूलता की दृष्टि से सरल जीवन का महत्त्व है, वहाँ जीवन की वर्तमान जटिलता और समाज-परिवर्तन की समस्या की दृष्टि से उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता भी है।

सरल जीवन कैसे व्यतीत हो? क्या सामूहिक रूप से उसके लिये आयोजना किसी सामाजिक अथवा राजनीतिक दल के पास है, अथवा केवल व्यक्तिगत आदर्श और प्रयोग से ही उसे प्रारम्भ करना चाहिये? यह एक

\+ सामग्रियों।

ऐसा प्रश्न है, जिस पर विचार किये बिना हमारा मंतव्य पूरा नहीं हो सकता। यों तो "प्रत्येक व्यक्ति से उसकी शक्ति के अनुसार और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार"* यह स्थिति आज के समाज की आदर्श स्थिति बनती जा रही है, किन्तु यह तो वृक्ष की पुष्पावस्था है, उसके पहले उसके आरोपण, पल्लवन और प्रफुल्लन की अवस्थाएँ आती हैं। उनमें हमें समाज की इस ओर प्रगति के लिये किस प्रकार की आयोजनाएँ करना हैं, इस पर विचार करना बड़े विस्तृत विवेचन का विषय हो जायगा। अतः हम सामूहिक अथवा सामाजिक रूप से सरल जीवन की बात को न लेकर केवल व्यक्तिगत सरल जीवन पर कुछ और विचार करलें।

कुछ ही दिनों की बात है। मेरे एक मित्र के घर बड़े जोर से विवाद चल रहा था। विषय था 'वेशभूषा की समस्या'। मेरे मित्र, उनकी पत्नी, उनका एक नवयुवक भाई तथा एक अन्य नवयुवक विद्यार्थी जो सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं और मैं स्वयं इस विवाद में भाग ले रहे थे। मेरे मित्र के उस नवयुवक विद्यार्थी का कथन था कि "छोटे से लेकर बड़े से बड़े भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षित व्यक्ति और किसी भी जिम्मेदार नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करे।" आवेश में नवयुवक मित्र इतने आगे बढ़े कि कहने लगे, "मैं कहता हूँ कि भारत के किसी भी व्यक्ति को अपनी राष्ट्रीय पोशाक, खादी के कपड़े को छोड़कर कभी-कभी भी सूट आदि नहीं पहनना चाहिये।" गम्भीरता से कुछ जागते हुए मेरे मित्र ने उनकी बात का समर्थन किया। इस पर मेरे मित्र की पत्नी एकदम ताव खाकर बोलीं, 'वाह, यह तो बड़ी अजीब बात है। जो व्यक्ति व्यय कर सकता है, उसे अवश्य अपने रहन सहन को उच्च-स्तरीय रखना चाहिए। समाज में रहन सहन का तो प्रभाव पड़ता ही है। और सामाजिक कार्यकर्ताओं की आप बातें करते हैं, साधारण लोगों को जाने दीजिये, स्वयं पं० जवाहरलाल नेहरू जब विदेश यात्रा करते हैं, तो

---

* From every body according to his capacity and to every body according to his need.

कोट पतलून और टाई में रहते हैं।" मैं चुपचाप बैठा सुन रहा था, सोच रहा था कि व्यक्तिगत आडम्बर का कितना महत्त्व है कि आदर्श पुरुषों द्वारा उसे जरा सा आसरा मिल जाने पर लोग उसे एक दम ढाल बना लेते हैं। इतने में हमारे नवयुवक साथी ने ठीक यही बात कही। वे बोले, "ओफ, आपने क्या जवाहरलाल की बात कही? प्रथम तो अब हमें चाहिये कि उन्हें आदर्श न मानें। दूसरे उन्होंने सरल जीवन कभी भी अपने जीवन में व्यतीत नहीं किया! वे तो स्वयं उस शोषण-व्यवस्था के उपभोग कर्ताओं में से रहे हैं, जो लाखों के भूखों मरते हुए भी स्वयं शान से रह सकते हैं।"

मेरे नवयुवक विद्यार्थी मित्र मुझे सोलह आने समाजवादी दिखाई दिये। ख़ैर, धीरे-धीरे बहस समाप्त हो गई।

मैंने इस घटना का जिक्र इसलिए किया है कि व्यक्तिगत सरल जीवन का समाज पर कितना जीता जागता प्रभाव पड़ता है, इसका एक नमूना आपके सामने रखदूँ। और ठीक भी है, पं० जवाहरलाल जैसे महान व्यक्ति के जीवन में जो सद्गुण होंगे उन्हें तो कुछ ही लोग ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे। किन्तु यदि दुर्भाग्य से ऐसे महान व्यक्तित्व में आडम्बर अथवा अन्य ऐसा ही कोई दुर्गुण उपस्थित हो, तो निश्चित रूप से लोग उसे अपने उन्हीं दुर्गुणों को छिपाने के लिए ढाल बना लेते हैं। इसीलिए तो गांधीजी जिन आदर्शों को उपदिष्ट करते थे, उन्हे व्यावहारिक रूप में अपने जीवन में उतार भी लाते थे।

अब हम अपने युग की कुछ ऐसी परिस्थितियों की भी एक झांकी लेलें, जो हमें भविष्य में सरल जीवन व्यतीत करने पर विवश करतीं जायेंगी। प्रायः सभी अर्थ शास्त्रियों का मत है कि विश्व में उत्पादन (अन्न और अन्य वस्तुओं का) बहुत बढ़ गया है, किन्तु उसके साथ युद्धों के बाहुल्य तथा जनसंख्या की आशातीत वृद्धि से व्यय भी बहुत अधिक बढ़ गया है। और आगे चल कर मनुष्य को अपनी उपभोग-सामग्री में बहुत अधिक कमी करना पड़ेगी, अन्यथा उसका गुजारा नहीं चल सकता। आज भी आप देखिये; वस्तुओं के मूल्य चौगुने हो गये हैं, किन्तु चोर बाजारियों† को

---

† Black marketeers.

छोड़कर आय में इसी अनुपात से वृद्धि किसी की में नहीं हुई। फलतः निम्न और मध्यम वर्ग को अपनी अनेक आवश्यकताओं को घटाना पड़ा है। इस प्रकार परिस्थितियां मनुष्य को सरल जीवन की ओर जाने पर विवश कर रही हैं। अभी जब कपड़े का अकाल पड़ा है, तो कई घरों में सूत काता जाने लगा। ये सब लक्षण बता रहे हैं कि प्रकृति कभी मनुष्य को उच्छृं-खल नहीं होने देती। उसके सतत गतिशील चक्र में ऐसी परिस्थितियाँ आती रहती हैं कि मानव को मानवता की पुकार सुनाने के लिए कुछ न कुछ कारण मिल जावें। मानवता की पुकार उठती भी है। यदि उसे मानव सुन लेता है, तो वह समाज में क्रान्ति कर डालता है, यदि अनसुनी कर देता है तो कुछ दिन के लिए जीवन पुनः रूढ़ि-बद्ध हो जाता है। आज मानवता की पुकार है कि मानव अपने आडम्बरों को शोषणों को मिटावे, सरल जीवन व्यतीत करे, श्रम उसका आराध्य हो। क्या मानव ने इस पुकार को सुन लिया है ?

विस्तृत रूपरेखा

१—अनुक्रमः—

(i) Simple living and High thinking. (ii) सरल जीवन महापुरुषों की प्रथम विशेषता।

२—सरल जीवन-व्याख्या—

(i) आडम्बर हीनता, अनावश्यक उपभोग का अभाव। (ii) कर्मण्यता। (iii) गांधी का त्याग।

३—आडम्बर का जन्म और विकास—

(१) सभ्यता के आदिकाल में प्राकृतिकता और सरलता (२) शोषण का जन्म, सत्ता का दुरुपयोग, आडम्बर का प्रारम्भ। (३) श्रम का अपमान।

४—सामन्तशाही श्रम का अपमान, आडम्बर का चरम—

(१) सामन्तशाही का यौवन-काल। (२) श्रम का अपमान।

(३) एक ओर भूखे कंकाल, दूसरी ओर सोने के पलंग। (४) जनता पर भी इस वृत्ति का प्रभाव।

५—महत्त्वः कर्मण्यता और आडम्बर हीनता में—

(१) उपकरणों का उचित उपभोग। (२) श्रमका आदर समाज की सर्व प्रथम मानवीयता। (३) युग की वर्तमान जटिलता और समाज परिवर्तन।

६—शोषण का नाश और सरल जीवन—

(१) समानता का नन्दनवनः मुक्ति की पुष्पावस्था। (२) व्यक्तियों और दलों की योजनाएँ।

७—सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की सरलता—

(i) एक प्रसंग। (ii) प्रमुख व्यक्तियों के दुर्गुणों का प्रभाव।

(iii) गांधी की व्यावहारिकता।

८—युग की विवशता—

(i) सरल जीवन की ओर। (ii) उत्पादन और व्यय का संघर्ष।

(iii) निम्न और मध्यमवर्ग अत्यन्त विवश।

९—मानवता की पुकार—

(i) प्रकृति का नियम। (ii) आडम्बर शोषण का नाश करो, श्रम की पूजा करो।

२ चित्रपट

संक्षिप्त रूपरेखा

१—आरम्भ। २—देश में प्रचार। ३—प्रभाव। ४—शैक्षणिक महत्त्व* उन्नति की संभावना। ५—वर्तमान अवस्था। ६—अनेक कठिनाइयाँ। ७—उद्योगशील होने की आवश्यकता। ८—वाञ्छनीय रूप।

* Educative Value।

निबन्ध—विद्यार्थी वर्ग के लिए चित्रपट एक विशेष आकर्षण रखता है। यों तो सभी वर्गों और समुदायों में चित्रपट की बातें होती हैं किन्तु विद्यार्थी समुदाय इस ओर अधिक प्रवृत्ति रखता है। सायंकाल भ्रमण करते समय, अध्यापक के कक्षा न लेने के समय, यात्रा में, प्रवास† में, बड़े शहरों में, छुट्टियों में जब भी समय मिल जाय 'बातचीत का रुख' इधर ही आजाता है और बहुत सी आधिकारिक प्रणाली में बातें होने लगती हैं जैसे सिनेमा जीवन से उनका घनिष्ठतम सम्बन्ध हो, सम्भवतः सिनेमा निर्माता उन्हीं से परामर्श कर चित्र निर्माण करते हों अथवा अभिनेता और अभिनेत्री उन्हीं की रुचि के अनुरूप अपना व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करते हों। चित्रपट की जीवन आवश्यकताओं में सम्मिलित होगया प्रतीत होता है और जीवन तथा समाज के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है। व्यवसाय एवं उद्योग की दृष्टि से भी यह एक उल्लेखनीय विषय है और सरकारी कोष की पूर्ति में भी अच्छा भाग लेता है।

चित्रपट, कम से कम भारत में तो, एक दम नवीन अन्वेषण नहीं। हमने यहाँ के छाया चित्रों की बात पढ़ी है। छाया चित्र की आकृतियाँ धुँधली होती थीं, उनमें वह आकर्षण और सजीवता नहीं होती थी किन्तु छायाचित्र विद्यमान अवश्य थे कभी-कभी नाटकों के बीच छायाचित्रों का प्रदर्शन होता था। कालान्तर में छाया चित्र विलुप्त हो गए और उनका नवीन रूप आधुनिक चित्रपट के रूप में प्रारम्भ हुआ। पहले चित्र सवाक्× नहीं होते थे, केवल चित्र मात्र होते थे किन्तु उनमें गतिशीलता मनुष्यवत् होती थी कुछ समय पश्चात् चित्रों में शब्द भी जोड़ दिया गया और घोड़े की टापें, हथौड़े का शब्द आदि सुनाई देने लगे, शीघ्र ही वाणी का भी योग होगया और जनता के सम्मुख सवाक्चित्र÷ यथेष्ट मात्रा में प्रदर्शित किए जाने लगे।

देश में जिस वेग से चित्रपट का प्रचार हुआ है वह उसकी सर्व प्रियता का स्पष्ट प्रमाण है। कहा जाता है कि इस उद्योग में भारतवर्ष का नम्बर

---

† बाहर, × With Voice, ÷ Talkie।

अमरीका के पश्चात् ही आता है और देखने वालों की संख्या तो दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सिनेमा-गृह भी बढ़ते जा रहे हैं और निर्माण कार्य यथेष्ट वेग से चल रहा है। इस सब का कारण है। भारतवर्ष में मनोविनोद के साधनों की कमी प्रतीत होती है साथ ही शिक्षा की न्यूनता के कारण रुचि वैचित्र्य भी अपेक्षा कृत कम है—रुचि कार्यों + की भी बहुत कमी है और चित्रपट ही सीधा सादा मनोविनोद का साधन दिखाई देता है। दिन भर का थका मांदा मजदूर समझता है कि चित्रपट उसका मनोविनोद कर सकेगा। यह प्रश्न विचारणीय है कि किस सीमा तक उसका मनोविनोद होता है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से उसे कितना लाभ होता है, उसके चरित्र तथा उसकी भावनाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है और उसकी आर्थिक स्थिति में कितना अन्तर आता है। साथ ही चित्रपट में एक विशेष आकर्षण प्रतीत होता है क्योंकि वे लोग भी जिन्हें मनोविनोद के अन्य साधन उपलब्ध हैं तथा कुछ रुचिकार्य भी हैं इस ओर आकर्षित होते हैं। उदाहरण के लिये आधुनिक विद्यार्थी को ही लीजिये। शिक्षालय तथा शिक्षा प्रसाधनों में उसे बेकारी बातें प्राप्त हो सकती हैं जो उसकी रुचि के अनुकूल हैं किन्तु वह चित्रपट के लोभ का संवरण नहीं कर सकता, किसी भी प्रकार अपने इस कार्यक्रम का निर्वाह करने में वह प्रयत्नशील रहता है दरवाजा फलांग कर वार्डन से असत्य भाषण कर, सम्बन्धियों की बीमारी का बहाना बताकर और वार्डन के सामने उपस्थित होकर दण्ड पाने की कल्पना करता हुआ भी वह सिनेमागृह की ओर अग्रसर हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे चुम्बक से खिंचा हुआ चला जा रहा हो। विद्यार्थी ही क्यों उनके अध्यापक भी इस ओर यथेष्ट उत्साह रखते हैं—मैं ऐसे अनेक कालेज शिक्षकों को जानता हूँ जो कक्षा में किसी प्रकार समय निकाल कर इस मनोरंजक विषय को छेड़ देते हैं। मैं एक ऐसे महानुभाव को भी जानता हूँ जो केवल चित्र देखने के हेतु ही पास के बड़े नगरों में जाते हैं और एक नहीं दो और तीन चित्र तक देखते हैं। मेरे अनुमान से तो यह एक प्रकार का पागलपन है एक नशा है और न जाने किस प्रकार

+ Hobbies।

वे इसे मनोविनोद का साधन समझते हैं। ऐसे व्यक्ति कम ही हैं, किन्तु यदि यही लगन किसी अन्य सुरुचि पूर्ण कार्य में हो तो कितना कल्याण हो सकता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि देश में चित्रपट का अत्यधिक प्रचार है और सभी वर्ग के व्यक्ति इस ओर आकर्षण का अनुभव करते हैं।

इतने सर्व प्रिय मनोरंजन का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ना निश्चित ही है। उसके कुछ विकृत$ रूपों का हमें स्पष्ट आभास मिल रहा है। शिक्षित स्त्री तथा पुरुषों की विचार धारा, वेशभूषा, सामाजिक जीवन आदि इससे प्रभावित हो रहे हैं। आज नये फैशनों का आविष्कारक सिनेमागृह ही है जहाँ अभिनेता तथा अभिनेत्रियों द्वारा प्रदर्शित वस्त्र एवं आभूषणों की ओर जनता कि अभिरुचि बढ़ती है और अनेक वस्तुओं का प्रचार चल पड़ता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ इस ओर अधिक अग्रसर हैं। सामाजिक चित्रों का वातावरण मध्यम वर्ग की विचार धारा को भी प्रभावित कर रहा है, अनेक नवीन सामाजिक समस्याएँ उठ रही हैं, विवाह के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण बन रहा है, जीवन साथी का काल्पनिक रूप नित्य प्रति परिवर्तित हो रहा है। कल्पना के इस क्षेत्र में विचरण करने वाले नवयुवक और नवयुवती न जाने किधर बहे चले जा रहे हैं। पारिवारिक जीवन में नवीन समस्याओं का आगमन हो रहा है, किन्तु हल मिलते प्रतीत नहीं होते। पश्चिमीयता का प्रसार करने में चित्रपटों ने भी बहुत योग दिया है। चि पट हमारे जीवन के प्रत्येक अंग का स्पर्श करते हैं अतएव सभी ओर उनका प्रभाव देखा जा सकता है। व्यक्तियों में कुछ स्वातन्त्र्य भावना, वाक् चातुर्य, कार्य कौशल और कष्ट क्षमता आदि गुणों के प्रसार में भी सिनेमा ने योग दिया है, किन्तु किस सीमा तक यह एक विचारणीय विषय है। प्रायः तो हम उसके दुर्गुणों से ही प्रभावित हुए हैं जो समाज में असाधारण क्रान्ति का कारण बन गये हैं। इसका कारण चित्रों का निर्माण तथा साधारण अभिरुचि है जिनमें परिवर्तन कर उसे उन्नतिशील बनाना सभी सम्बन्धित* व्यक्तियों का कर्तव्य है।

$ बुरे, बिगड़े हुए, * Concerned।

वास्तव में देखा जाय तो चित्रपट का शैक्षणिक महत्त्व अत्यधिक है। जो साधन इतना प्रचारित हो जिसका जीवन से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो उसका शैक्षणिक महत्त्व निर्विवाद है। किसी भी भाव को हृदयंगम§ कराने के लिये उसका स्पष्टीकरण आवश्यक होता है : शिक्षा सिद्धान्तों में भी चित्र प्रदर्शन का महत्त्व स्वीकार किया गया है। चित्रों के साथ जब वाणी हो, उपयुक्त क्रिया-कलाप हो, जीवन से नितान्त सामञ्जस्य† हो तब उसके इस महत्त्व को कौन कम कर सकता है। चित्रपटों द्वारा हमारी संस्कृति के स्वर्णिम पृष्ठों से हमारा परिचय कराया जाता है, अतीत के भव्य चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं, सामाजिक कुरीतियों और अव्यवस्था का चित्रण किया जाता है, धार्मिक भावनाएँ जाग्रत की जाती हैं, देश-दर्शन का सुन्दर अवसर दिया जाता है, महान पुरुषों की जीवनी का साक्षात्कार कराया जाता है, देश की समस्याओं से देशवासियों को अवगत कराया जाता है, विश्व के विस्तृत प्रांगण में हमारा पदार्पण होता है, विज्ञान और कला की उन्नति से हमें योजित किया जाता है, कर्तव्य-पथ पर सचेष्ट किया जाता है। इससे अधिक हमें और क्या चाहिये? कितना अच्छा होता यदि वस्तु स्थिति का सच्चा चित्र इतना ही भव्य होता वास्तविकता इतनी उज्ज्वल नहीं है—उसमें कल्मषता* की बड़ी गहरी छापें हैं और इसी कारण चित्रपट का शैक्षणिक मूल्य इतना गिरा हुआ है। बहुत से व्यक्ति तो इस बात को मानते भी नहीं कि इनसे किसी प्रकार के शिक्षण की आशा की जाय। अधिक से अधिक इनके द्वारा निम्नकोटि का मनोरंजन हो सकता है।

वर्तमान कालीन चित्र अपने सम्मुख शैक्षणिक उद्देश्य नहीं रखते—वह केवल व्यवसायिक दृष्टि से ही निर्मित× तथा प्रदर्शित+ किये जाते हैं और ऐसी अवस्था में उनसे शैक्षणिक आशा रखना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। मनोरंजन के रूप में ही जो कुछ शैक्षणिक कार्य हो जाता है वह हो जाता है। यहाँ तक कि धार्मिक चित्रों में भी प्रधानता मनोरंजन

§ हृदय में बिठाना, † मिलान सम्बन्ध, * कालौंच, × Produced + Exhibited.

को ही दी जाती है और अनेक पकार से उनकी पवित्र पृष्ठ भूमि को कलुषित कर दिया जाता है। भारतीय चित्रों की शृंगार रस प्रियता एक विशेषता है। सामाजिक चित्रों में तो यह भावना शत प्रतिशत कार्य करती ही है, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक चित्रों में भी इस भावना को सर्वोपरि रक्खा जाता है। इस अभिरुचि का इतना दुष्परिणाम हुआ है कि अब लोग चित्रपटों की मनोरंजकता में भी अभाव का अनुभव करने लगे हैं। प्रेम-समस्याओं के अनेक रूपों का उद्घाटन देखते-देखते कुछ दर्शक भी ऊबने लगे हैं और अनेक चित्रों में प्रेम के रूप सम्बन्धी उनकी कल्पना ठीक उतरती है। यह प्रेम-प्रियता चित्रपटों का एक मात्र विषय बन गई है और अनेक दुष्परिणामों के साथ-साथ अब कुछ उपरामता† लाने लगी है किन्तु किया क्या जाय? साधारण अभिरुचि तो अभी परिष्कृत हो ही नहीं पाई है। सरकार ने इस साधन का अच्छा उपयोग करना आरम्भ कर दिया है। अनेक शिक्षा प्रद छोटे चित्रों का सृजन किया जा रहा है, भारतीय उद्योग धन्धों से अवगत कराया जा रहा है, प्राचीन सभ्यता के कुछ उज्ज्वल पृष्ठों का दिग्दर्शन भी होता है, समाचारों को चित्रित किया जा रहा है और अपनी योजनाओं का भी प्रचार किया जा रहा है। सरकार द्वारा किया गया यह कार्य वास्तव में उन्नति का द्योतक तथा उसकी शिक्षा एवं सुधार प्रियता का परिचायक है।

चित्रपटों के द्वारा बहुत कुछ उन्नति की सम्भावना है किन्तु मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं, और कुछ तो ऐसी हैं जो अत्यन्त गुरुतर प्रतीत होती हैं। हमारे देश में वास्तविक शिक्षा का बहुत कुछ अभाव है, जनरुचि* को परिष्कृत करने की परमावश्यकता है। जो व्यक्ति रुपया लगाते हैं उनके द्रव्य को सुरक्षित रखने का भी प्रश्न है और साथ ही इस उद्योग को आर्थिक दृष्टि से ठीक रखना है। यदि सरकार द्वारा निर्माण एवं प्रदर्शन में प्रतिबन्ध भी लगाये जांय तो काम चलता प्रतीत नहीं होता। कौन निर्माता अपने द्रव्य के साथ खिलवाड़ करना चाहेगा, कौन प्रदर्शक अपनी टिकिट वाली खिड़की को सूना रखना चाहेगा? जैसा जनता चाहती है

† उदासीनता, * General taste।

उसी के अनुरूप चित्रों का निर्माण किया जाता है, जिन कार्यों और बातों से जनता मनोविनोद का अनुभव करती है उसी प्रकार का अभिनय सम्मुख रखा जायगा। आदर्शवादिता का प्रश्न केवल सैद्धान्तिक रूप में ही रह जायगा। सरकार तो प्रायः मनोविनोद कर† आदि आय के आंकड़ों का ही ध्यान रखती है अतएव जब तक शान्ति सुरक्षा में बाधा न पड़े तब तक किसी प्रकार का प्रतिबन्ध क्यों लगाये। कलात्मकता का प्रश्न तो बहुत आगे का है और इसका मिश्रण इस उद्योग के साथ तभी हो सकेगा जब जनरुचि यथेष्ट रूप में परिमार्जित हो जावेगी।

फिर भी हमें उद्योगशील होने की आवश्यकता है—यह ऐसा तो उद्योग है नहीं जो कि थोड़े समय में समाप्त हो सके, जनता की इस ओर रुचि है और इस उद्योग को हमें रखना आवश्यक है अतएव जनरुचि में सुधार की ओर अग्रसर होना चाहिये। शिक्षा प्रचार ही एक मात्र ऐसा साधन है जो इस ओर बहुत कुछ कार्य करता है, और सरकार तथा जनता दोनों का ध्यान इस ओर आकर्षित होना चाहिये जिससे इस साधन द्वारा हम अधिक से अधिक लाभ उठा सकें और इसके शैक्षणिक महत्व को चरितार्थ कर सकें। चित्रपट के प्रति कर्तव्य बुद्धि का ध्यान भी होना चाहिये और हम इसका एक ऐसा रूप बनाने में समर्थ हो सकें जो हमारी वास्तविक उन्नति में सहायक हो तथा सच्चे रूप में सुरुचिपूर्ण मनोविनोद कर सके जो कलात्मकता के साथ उपादेयता* का सुन्दर सम्मिश्रण हो।

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रस्तावना—आरम्भ। i देश में आकर्षण का विषय। ii प्रत्येक वर्ग एवं समुदाय का इस ओर ध्यान। iii महत्वपूर्ण उद्योग—जनता तथा सरकार दोनों की दृष्टि से। बहुत से व्यक्तियों की जीविका का साधन तथा सरकार की आय का बड़ा भाग। iv भारत के छायापट—बहुत प्राचीन काल में। v आधुनिक विद्युत द्वारा प्रदर्शित चित्र, वाक् सहित चित्र।

---

† Entertainment Tax, * उपयोगिता।

२—प्रचार—i वेग का प्रचार—उद्योग की वृद्धि, चित्रों का निर्माण, सिनेमा गृहों की स्थापना। ii जनता के मनो विनोद का सर्व प्रमुख साधन। iii रुचिकार्यों में कमी होने के कारण जनता को वार्ता व आकर्षण का विषय। iv विद्यार्थी, अध्यापक, शिक्षित, अशिक्षित, मध्यम तथा उच्च वर्ग सभी के लिए। v देश में प्रचार।

३—प्रभाव—i जीवन के सभी अंगों से सम्बन्धित। ii विकृत रूपों से प्रभावित। iii विचारधारा, वेशभूषा तथा सामाजिक जीवन पर प्रभाव। iv देश में अनेक पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं की वृद्धि। v नवीन दृष्टिकोण, कल्पना का क्षेत्र। vi स्वातन्त्र्य भावना, वाक्चातुर्य, कष्टसत्ता आदि।

४—शैक्षणिक महत्त्व—i शैक्षणिक महत्त्व अत्यधिक है। ii प्रचार का सर्वोत्तम सुलभ साधन। iii जनरुचि का परिष्कार। iv सामाजिक भावनाएँ, धार्मिक अभिरुचि, देशदर्शन, महान जीवन, देश विदेश की समस्याएँ, विज्ञान कला के क्षेत्र, कर्तव्य शीलता। v वास्तविकता अधिक उज्ज्वल नहीं। इसके द्वारा हम इसका अंशमात्र भी लाभ नहीं उठा रहे हैं।

५—वर्तमान व्यवस्था—i उद्देश्य शैक्षणिक नहीं व्यापारिक है—निर्माता आदि द्रव्य चाहते हैं। ii शिक्षा की कमी के कारण जनरुचि परिष्कृत नहीं। iii प्रेम चित्रों का प्रदर्शन। iv निम्नकोटि का मनोरंजन। v कला विहीनता। vi धार्मिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं का विकृत रूप। vii सरकार द्वारा उपयोग—समाचार, उद्योगधन्धे, देश दर्शन, प्रचार आदि।

५—कठिनाइयाँ—i लोगों का दृष्टिकोण। ii शिक्षा का अभाव। iii सरकार की उदासीनता। iv जीविका का प्रश्न।

७—कर्तव्य—i उद्योगशील होने की आवश्यकता है। ii जनरुचि परिमार्जित होती है। iii शिक्षा का प्रसार तथा प्रचार होना चाहिए। iv शैक्षणिक महत्त्व को चरितार्थ करें। v कलात्मक तथा उपादेयता

दोनों दृष्टियों से उद्योग करें। vi देश तथा भाषा के कार्य को आगे बढ़ावें। vii सच्चा मनो-विनोद प्राप्त करें

३ झूँठ बोलने की कला

संक्षिप्त रूपरेखा

(१) एक विचित्र विषय, विषय की वास्तविकता। (२) कुछ उदाहरण—कवि, लेखक, तार्किक, वकील, धार्मिक व्यक्ति। (३) विषय का स्पष्टीकरण—कला का अर्थ झूँठ का विवेचन। (४) उपयोगिता। (५) आधुनिक प्रवृत्ति।

निबन्ध—'झूँठ बोलने की कला,' एक विचित्र सा विषय प्रतीत होता है किन्तु जब हम इस विषय की वास्तविकता पर दृष्टि डालते हैं तो हमें इस उक्ति के समर्थन में पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो जाती है। किसी भी क्षेत्र में आप देखें इस कला के कलाकार एवं पारखी सर्वत्र उपलब्ध होंगे। एक प्रकार से तो आज के युग में कला की कलात्मकता ही इस कला के द्वारा सार्थक हो रही है। आज का युग ही क्यों—एक प्रकार से तो जब से कला का जन्म हुआ तभी से यह कला प्रमुख रूप में विराजमान रही। वैदिक काल में अनेक देवताओं का आवाहन* किया गया, प्रकृति देवताओं से व्याप्त देखी गई अनेक प्रकार की विचित्रताएँ बताई गईं किन्तु क्या वे लोग इस बात के लिए पूर्णतः निश्चित थे कि जो कुछ उन्होंने बताया वह सब ठीक था। इस बात को वे अच्छी तरह जानते भी थे किन्तु अपनी बातों का वर्णन इतने आकर्षक रूप में किया है कि हमें सारी बातें बड़ी भली मालूम होती हैं। तब से अब तक बराबर इस कला में अभिवृद्धि$ होती रही।

यह विषय इतना उपेक्षणीय† नहीं कि इसे हम यों ही छोड़ दें। यद्यपि इसमें 'झूँठ' जैसी वस्तु सम्मिलित है किन्तु है वह कला के रूप में अतएव हमें उसके वास्तविक रूप को देखना है।

---

* प्रार्थना द्वारा बुलाना, $ बढ़ोतरी, † उपेक्षा के योग्य।

कुछ उदाहरण देखिए। कवि की कल्पना-प्रसूत× कविता झूँठ के अतिरिक्त और क्या कही जा सकती है। यह बात किस प्रकार ठीक हो सकती है कि मुख को चन्द्रमा माना जाय अथवा वेणी को काली नागिन समझा जाय। यदि ऐसी ही बात होती तो स्त्रियों से आकृष्ट होना तो दूर, काटे जाने के भय से लोग उनके पास जाने से भी डरते। चरण-कमल द्वारा चलने की क्रिया किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। स्त्री के अंग-प्रत्यंग में जो अनेक वस्तुओं की स्थापना कवियों ने की है उसके झूठ होने में क्या किसी को कभी सन्देह हो सकता है। साहित्य में काव्य के अन्तर्गत जितने भी अलंकार हैं, उनमें क्या किसी प्रकार का सत्य है। सत्य को ढकने के लिए अलंकारों की योजना की गई है। कवि के संसार को झूठ के अतिरिक्त और क्या कहें—वह कारण के बिना कार्य करके दिखा देता है, स्वर्ग की वस्तुओं को इस पृथ्वीतल पर ला देता है, स्त्रियों के अंगों में अनेक पशु पक्षियों की स्थापना कर देता है। कहीं फूल और कहीं कांटे बिछा देता है। यह सब व्यापार, क्रियाकलाप है क्या? सत्य की अवहेलना और झूठ का प्रतिपादन।

कवि को छोड़ अन्य किसी साधारण लेखक को लीजिये। इतनी कहावतें और मुहावरे बन गए हैं; ये हैं क्या? चाहे इनका उद्‌गम स्थान अथवा रूप कुछ भी रहा हो, किन्तु आज जिस रूप और परिस्थिति में ये विद्यमान हैं वे इनकी अवास्तविकता÷ सिद्ध कर रहे हैं और स्पष्टतः घोषित कर रहे हैं कि ये 'झूठ बोलने की कला' के अमर नमूने हैं। 'पाँव तले की जमीन निकल जाना', 'चोर-चोर मौसेरे भाई', 'होश उड़ना', 'पहाड़ खोदकर चुहिया निकालना' ये हैं क्या बातें? केवल आपका परिहास*। यदि पाँव तले की जमीन निकल गई तो व्यक्ति की स्थिति किस वस्तु पर रही? क्या कोई सिद्ध कर सकता है कि चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं? यदि होश उड़ गए तो आदमी का अस्तित्व किस प्रकार बचा। देखा है कभी किसी को पहाड़ खोदते और उसे खोदकर चुहिया

× कल्पना से उत्पन्न, ÷ झूठापन, * हँसी।

निकालते ? यदि नहीं तो फिर ये उक्तियाँ असत्य के अतिरिक्त और हैं क्या ?

संसार के प्रत्येक क्षेत्र में इस कला ने अपना अड्डा जमा रक्खा है—किधर भी देखिये सभी कोई अपनी वाणी का विलास, लेखनी का चमत्कार इसी कला के द्वारा दिखाते प्रतीत होते हैं । तर्क-विद्या का झूठ सर्वप्रथम साधन है । मान लिया कि अमुक बात इस प्रकार है—क्यों मानलिया ? किसी झूठी बात को मानकर आगे बढ़ना कहाँ तक ग्राह्य होना चाहिये ? तार्किक के एक-एक वाक्य को ध्यान से देखें, उसका सारा भवन ही असत्य के ऊपर निर्मित रहता है । असत्य में से सत्य निकालना कितनी हास्यास्पद× बात है ।

कहा जाता है कि वर्तमान राजनैतिक जागृति में सबसे अधिक भाग वकीलों का है । उन्हीं की सतत चेष्टाओं के कारण आज भारत को भी यह दिन प्राप्त हो सका है । किन्तु थोड़ा सोचिये तो ये वकील इतनी प्रसिद्धि में किस प्रकार आए । इनके चमकने का एक मात्र कारण इनकी असत्य-कला-विशारदता है । इसी के आधार पर, इसी कुशलता से, सत्य का गला घोंटकर ÷ इन्होंने अपनी प्रसिद्धि और ख्याति प्राप्त की । न्यायाधीश द्वारा जो इन्होंने न्याय करवाया, उन्हीं से पूछिये, उसमें सत्य का अंश कितना था । बातों के करिश्में, झूठ बोलने की सिद्धहस्तता, वाणी का कौशल$ इनके अतिरिक्त इन वकीलों के पास और रक्खा ही क्या है । ये ही इनके ब्रह्मास्त्र हैं—ये ही इनकी सफलता के उत्कृष्ट साधन ।

युद्ध और राजनीति के लिये तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है कि इनके लिये सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जा सकता है । युद्ध में प्रत्येक कार्य-सत्य असत्य-मान्य है । जब धर्मावतार स्वयं युधिष्ठिर भी झूठ बोल सकते हैं* तो सामान्य योद्धाओं का तो युद्ध-क्षेत्र में कहना ही क्या । जब अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध भगवान् कृष्ण अस्त्र उठा सकते हैं† तब आधुनिक युद्धों में प्रयुक्त साधनों की हम क्यों आलोचना करें । राजनीति को तो 'गन्दा

× हँसने योग्य, ÷ नाशकर, $ चतुरता, * अश्वत्थामा मृतः, नरो वा कुंजरो वा' † रथ का पहिया उठा लेना ।

खेल'* कहा ही है। राजनीति नित नवीन रूप धारण करने वाली कही गई है। वेश्या के अनुरूप राजनीति को नित नूतन आकर्षक रूप में प्रस्तुत होना पड़ता है। वहाँ यदि हम सचाई देखने जावें तो हमें निराशा के अतिरिक्त और क्या हाथ लग सकता है। आज का संसार तो राजनीति के अनेक रूपों का आभासमात्र है, जिन्हें कभी हम एक रूप में देखते हैं कभी दूसरे में। नूतनता उसका स्वाभाविक गुण है; ऐसी अवस्था में सत्य का दर्शन करना व्यर्थ प्रयास के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

राजनीति और युद्ध के साथ हमें एक कोमल भावना का भी स्मरण हो आता है—यह है 'प्रेम'। प्रेम को हम क्या कहें? झूठ को इसमें कितना प्रतिशत बतावें। कोई किसी को प्रेम करता है—क्या वह वास्तव में उसे प्रेम करता है? आजकल के प्रेमियों का जोश तो एक डॉट में समाप्त हो जाता है; एक कठिनाई उनकी प्रेम सम्बन्धी दिये गये सभी आश्वासनों को भुला देती है। और फिर प्रेम यदि सच्चा भी हो तो उसमें की गई बातों के असत्य होने की अनुमति तो शास्त्र भी देता है। अँग्रेजी की उक्ति तो सभी को विदित ही है× । प्रेम में कही गई बातों की थोड़ी आलोचना कीजिये, अतिशयोक्ति ÷ की कितनी मात्रा उनमें होती है। और अतिशयोक्ति झूठ ही तो है। 'तुम मेरे हृदय का स्पन्दन + हो', 'तुम्हारी एक मुस्कराहट मुझे जिला सकती है', 'मेरे स्वप्नों की रानी हो', 'अन्धकारमय जीवन की एक मात्र प्रकाश-रेखा हो', 'और तुम! मेरे जीवन का आधार, मुझे मस्त बना देने वाली मधुर मदिरा·········' किसी काव्य-पुस्तक को देखिये, नाटक देखिये, उपन्यास और कहानी पढ़िये, सर्वत्र यही दिखाई देगा—दिन दहाड़े डंके की चोट* झूठ का व्यापार।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता होगा कि झूठ के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। बात कुछ है भी ऐसी ही। हमारे उपनिषद्-कारों ने तो संसार को मिथ्या बताया ही है और यदि संसार के प्राणी इस

---

* Politics is a dirty game, × Every thing is Fair in love and war ÷ एक अलंकार-किसी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहना + धड़कन, * स्पष्टतम रूप में।

मिथ्या संसार में केवल मात्र मिथ्या को ही अपना साधन स्वीकार करलें तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है। परन्तु हमें इस स्थान पर झूठ को एक कला के रूप में देखना है। कला का अभिप्राय कलाकार के मानसिक भावों को अन्य व्यक्ति तक पहुँचा देना होता है। इसको पहुँचाने का साधन कर्णेन्द्रिय तथा चक्षुरिन्द्रिय होते हैं। कलाकार प्रयास करता है कि इन साधनों के द्वारा अपनी कृति की मध्यस्थता से अपने भावों का स्पष्टीकरण करे और इस रूप में कि ग्रहणकर्ता उससे प्रभावित हो। ऐसा सीधा, सरल, नितान्त सत्य कोई साधन ही नहीं जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जा सके। अतः कलाकार को कुछ टेढ़े, सत्य से हटे हुए, कल्पना से उत्पन्न साधनों को अपनाना पड़ता है और यहीं झूठ का आगमन हो जाता है। एक नाटककार घृणा का भाव आपके हृदय में उत्पन्न कराना चाहता है, उसे रंगमंच पर अवास्तविक पात्रों की सृष्टि करनी पड़ती है। एक चित्रकार किसी स्त्री के रूप-सौन्दर्य का दर्शन कराना चाहता है, अपनी कल्पना के आधार पर वह स्त्री के अंगों को बड़े ही अवास्तविक रूप में चित्रित करता है। बिना इस कला के उसका निर्वाह ही नहीं। अतएव कलाकार के साधन कल्पनाजन्य$ होने से 'झूठे' हुए और 'झूठ बोलने की कला' कलाकार का सबसे उत्कृष्ट आश्रय हुआ। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह झूठ का वर्गीकरण कई रूपों में हो सकता है। एक वह जिसका उद्देश्य सत्य का प्रतिपादन हो, दूसरा वह जिससे सत्य को छुपाया जाय। कलाकार का उद्देश्य प्रथम प्रकार का होता है। व्यावहारिक जीवन में भी शास्त्रों द्वारा अनेक अवसरों पर झूठ बोलना पाप नहीं माना गया है*। यह उसकी उपयोगिता के कारण है। अतएव 'झूठ बोलना' कोई ऐसी बुरी चीज नहीं हुई जैसी वह साधारणतः समझी जाती है। कला एवं उपयोगिता दोनों की दृष्टि से अपने सच्चे स्वरूप में वह वांछनीय ही ठहरी।

आधुनिक प्रवृत्ति इसके कुछ प्रतिकूल है। यद्यपि जीवन में तो झूठ पराकाष्ठा को जा रहा है, भ्रष्टाचार, चोरबाजार उसके प्रत्यक्ष स्वरूप हैं,

---

$ उत्पन्न, * जैसे किसी का सर्वस्व जाता हो, किसी का प्राण बचता हो, प्रेम में स्त्री से।

किन्तु कला में यथार्थवाद§ की ओर कलाकारों का झुकाव हुआ है। यह तो भविष्य के गर्भ में है कि आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद कितना उपयोगी सिद्ध होगा, किन्तु जिससे कलाकार यथार्थ रूप में देखता है क्या वही यथार्थ है यह बताना कठिन है। इस पर भी इस यथार्थ के चित्रण में कौन कह सकता है कि उसके साधन कितने वास्तविक हैं और उसमें उस कला का भाग नहीं जिसने संसार के ऊपर साम्राज्य स्थापित कर रखा है।

विस्तृत रूपरेखा

(१) एक विचित्र विषय—i झूठ बोलना बुरा समझा जाता है, किन्तु ii सभी इसका उपयोग करते हैं।

(२) उदाहरण—i कवि (a)—कविता का कल्पना प्रसूत होना। (b)—कवि की अनेक उक्तियाँ। (c)—अलंकार-योजना। (d)—नखशिख-वर्णन। (e)—स्त्रियों का वर्णन।

ii लेखक (a)—लोकोक्तियाँ और मुहाविरे, इनकी अवास्तविकता। (b)—वर्णन शैली।

iii अन्य—(a)—तार्किक, तर्क झूठी बातों से आरम्भ होता है। (b)—धार्मिक व्यक्ति उनकी अनेक भावनाएँ, विश्वास आदि इसी पर आश्रित हैं। (c)—राजनीति-नित नया झूठ रूप। (d)—युद्ध-झूठ बोलना शास्त्रानुकूल, युधिष्ठिर, कृष्ण के उदाहरण। (e)—वकील-उनका वाणी विलास। (f)-प्रेम-अँगरेजी की उक्ति, प्रेमी प्रेमिका के प्रेम-प्रलाप, उपन्यास, नाटक, कहानी में। (g)—कला और झूठ।

(३) स्पष्टीकरण—i कला का अभिप्राय मानसिक भावों को पहुँचना। ii कला का साधन कल्पना। iii कल्पना और अवास्तविकता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध। iv झूठ का वास्तविक रूप—सत्य के प्रतिपादन में असत्य का योग, कल्पना द्वारा सत्य का अन्वेषण। v कलाकार और झूठ। vi व्यावहारिक तथा कला-क्षेत्र में झूठ का स्थान। vii झूठ हेय नहीं—वास्तविक रूप में ग्राह्य है।

---

§ कविता का एक आधुनिक प्रकार।

(४) उपयोगिता—i कला में। ii व्यवहार में। iii वांछनीय रूप—सत्य के प्रतिपादन में इसका उपयोग हो। उद्देश्य उत्तम हो।

(५) आधुनिक प्रवृत्ति—i आदर्शवाद के स्थान में यथार्थवाद। ii यथार्थवाद—नग्न स्वरूप में कल्पना द्वारा प्रस्तुत। iii यथार्थवाद और इस कला का सम्बन्ध।

४—आवागमन के साधन

संक्षिप्त रूपरेखा

(१) विषय की उपयुक्तता। (२) प्राचीन काल के कुछ साधन। (३) आधुनिक काल के साधन। (४) अनेक देशों के विचित्र साधन। (५) आवागमन के साधन और आधुनिक संसार। (६) क्रमिक विकास।

आवागमन* के हेतु भगवान् ने पैर प्रदान किये थे, और पता नहीं सृष्टि के आरम्भ से कितने समय तक मनुष्य इसी साधन से सन्तुष्ट रहा। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी तो अभी तक पैर अथवा परों द्वारा अपना कार्य संचालन करते आरहे हैं; परन्तु मनुष्य इतने से सन्तुष्ट न रह सका और उसने इधर-उधर साधनों को खोजना आरम्भ किया। मनुष्य ने देखा कि कुछ पशु इधर से उधर घूमते थे। वे उसे शक्ति में अपने से अधिक प्रतीत हुए किन्तु बुद्धि में कम, क्यों न वह अपना कार्य इन से निकाले। एक बात उसने और भी देखी। जहाँ मनुष्य के केवल दो पैर हैं, अन्य पशुओं को उसने 'चतुष्पद'÷ के रूप में पाया—पीठ भी लम्बी-चौड़ी समतल देखी, क्यों न वह इस पर सवारी करे और अपना सामान लादे, अथवा दोनों ही काम ले। उसने बड़े-बड़े जानवरों को पकड़ा, उन्हें अपने वश में किया, पालतू बनाया, उनकी गति पर नियंत्रण किया और उनसे खूब काम लिया। तनक देखिए हाथी जितना विशालकाय पशु मनुष्य की आज्ञा से परिचालित हो उसका भार वहन करता है। मनुष्य को अपनी

* Communication, ÷ चौपाया।

बुद्धि पर अभिमान था। पशुओं के द्वारा उसका काम होता अवश्य था किन्तु समय लगता था। और न केवल उन पशुओं को खिलाना ही पड़ता था प्रत्युत उनकी रखवाली भी करनी पड़ती थी कि कहीं भाग न जाँय। वह आगे बढ़ा, वाष्प की गाड़ियां + बनाईं, पैट्रोल काम में लिया × । पानी पर चलना तो आरम्भ हो ही चुका था, उसने उस साधन को भी अधिक वेगवान् बनाया। जब उसने पक्षियों को आकाश में उड़ते देखा तो उसका मन भी आकाश में उड़ने को करने लगा। पक्षी तो परों से उड़ जाते थे, वह कैसे उड़े ? उसने परों वाले यन्त्र* बनाये और उड़ने लगा। इन्हीं सब बातों को देखकर मनुष्य के आवागमन के साधनों पर विचार करना बड़ा उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्राचीन काल के साधनों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि उस काल में भी वेगवान् साधन थे और मनुष्य इस बात में गर्व का अनुभव करते थे कि वे इस प्रकार के साधनों से सम्पन्न थे। घोड़े, हाथी, ऊँट, रथ और बैल प्रधान सवारियाँ थीं। प्रत्येक देश में घोड़ा अत्यन्त प्रिय वाहन-पशु रहा है। उसकी स्वामि-भक्ति और उसके प्रति प्रेम अनेक रोचक कहानियों का विषय बन चुका है। गति में तो उसकी समानता तीर ही कर सकता है अन्य कोई पशु नहीं। बड़ी लम्बी-लम्बी यात्रायें पूरी करने में वह समर्थ होता है और जितनी सुन्दर उसकी आकृति होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी अनेक प्रकार की जातियाँ होती हैं और यह अनेक देशों में पाया जाता है। श्याम कर्ण नाम की जाति बहुत प्रसिद्ध कही जाती है। हाथी भी अनेक देशों में पाया जाता है। श्वेतवर्ण के हाथी भी पाये जाते हैं। इन्द्र का हाथी† इसी जाति का था। कितना भव्य लगता होगा इस प्रकार का हाथी। ऊँट "रेगिस्तान का जहाज"$ है। रेत से भरे मैदानों को बिना खाये-पिये पार करते चले जाना इसी पशु का गुण है। देखने में बुरा, सवारी करने में बुरा, प्रकृति में बुरा, किन्तु जहाँ कोई न काम आसके वहाँ यह जानवर अपनी उपयुक्तता सिद्ध करता है। बैल अन्य देशों में

+ जैसे रेल, × मोटर आदि, * वायुयान, † ऐरावत, $ Ship of the desert।

सवारी के काम अवश्य आता है किन्तु हमारे यहाँ उस पर सवारी करना निषिद्ध है—केवल शिवजी महाराज ही उस पर सवारी करते हैं और अपनी अनेक विचित्रताओं के साथ एक यह भी विचित्रता रखते हैं। हाँ गाड़ियों में बैल जोत लिए जाते हैं। बैलगाड़ियां अनेक प्रकार की होती हैं। कोई रथ के आकार की होती है, कोई सीधी-सादी बहली नाम वाली गाड़ी। किसी के द्वारा सामान ढोया जाता है। गाड़ियों के काम घोड़ा भी आता है—प्राचीन काल में रथ भी घोड़ों द्वारा ही बड़ी द्रुतगति से खींचे जाते थे। युद्ध में इन रथों की दौड़ दर्शनीय होती थी। यूनान भारत आदि प्राचीन देशों में रथ-दौड़ हुआ करती थी और वीरों की वीरता और चातुर्य का प्रदर्शन होता था। यह एक प्रकार की अलग कला होती थी। पानी पर तैरने वाली नाव तो न जाने कितनी पुरानी है। सम्भव है पशुओं से सवारी का काम लेने से पहले ही मनुष्य ने नाव का अन्वेषण कर लिया हो। इस ओर मनुष्य ने बड़ी वीरता और धैर्य का परिचय दिया। छोटी-सी नाव को लेकर वह पानी की लहरों और हवा के ऊपर विश्वास करता हुआ ही लम्बी-लम्बी यात्रायें करता था। बहुत समय पूर्व से ही इनका आकार यथेष्ट बड़ा होने लग गया था और वस्तुएँ लाने लेजाने के लिए नावें बहुत उपयुक्त सिद्ध हुईं। इनके द्वारा व्यय कम होता था किन्तु इनका मार्ग निश्चित होता था*। भारतवर्ष को छोड़कर अन्य किसी भी देश में, प्राचीन काल में, आकाश में उड़ने की बात सुनाई नहीं पड़ती। किन्तु हमारे यहाँ तो बड़े आदमियों के लिए यह साधन एक साधारण वस्तु थी। प्रत्येक देवता के पास उसका व्यक्तिगत विमान होता था जिसके द्वारा वह कुटुम्बसहित आकाश में भ्रमण कर आनन्द लेता था। किन्हीं-किन्हीं के पास तो इतना बृहद् विमान होता था जैसे "पुष्पक विमान"† जिसमें श्री रामचन्द्रजी की सम्पूर्ण सेना एक कक्ष में ही आ गई।

आधुनिक काल में आवागमन के साधनों में बड़ी उन्नति हुई है और अब भी इस ओर प्रयत्नशीलता है। घोड़े, बैल, ऊँट आदि द्वारा खींची

* केवल धारा में ही, † कुवेर का विमान।

गई गाड़ियाँ धीरे-धीरे चलती थीं और मनुष्य चाहता था कि वह गन्तव्य स्थान पर शीघ्र ही पहुँचे। उसने खोज करनी शुरू की और रेलगाड़ी बना डाली। लोहे की पटरी पर इंजन के पीछे दौड़ने वाली गाड़ियाँ न केवल मनुष्यों को ही इधर-उधर शीघ्रतापूर्वक लेजाती हैं, वरन् अत्यधिक मात्रा में अनेक प्रकार का सामान देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाती हैं। आधुनिक साधनों में यह साधन सबसे अधिक प्रचलित तथा उपयोगी है और प्रत्येक देश में इसका बहुत अधिक प्रचार है। बिजली से दौड़ने वाली ट्रेनें, ट्राम गाड़ियाँ, पैट्रोल से चलने वाले मोटर, लारियाँ, बसें और मोटर-साइकिलें, पानी पर बाष्प से परिचालित दूर की यात्रा करने वाले जहाज तथा सामान को ले जाने वाले व्यापारी पोत* इन सब के अतिरिक्त द्रुतगति से सामान, सवारी तथा डाक लेजाने वाले वायुयान जो आज ४००, ५०० मील प्रति घण्टा की गति से उड़ते हैं। ये सब आधुनिक साधन हैं और इनकी गतिशीलता तथा कार्य-शक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक देश के लिये इन आवागमन के साधनों को उचित रूप में रखना और उनका विकास करना कर्तव्य है। किसी देश की सम्पन्नता के परिचायक आधुनिक युग के आवागमन-साधन ही हैं। इनके बल पर ही राष्ट्र अपनी रक्षा करते हैं, शत्रु के विरुद्ध सेनाएँ एकत्र कर युद्ध करते हैं तथा अकाल से अपनी रक्षा करते हैं। सम्पूर्ण विश्व को एक बना देना इन साधनों के द्वारा ही हुआ है और जिस देश ने इन साधनों का जितना विकास किया है, सभ्यता की दौड़ में वह उतना ही आगे है तथा शक्ति और सम्पन्नता से युक्त है।

साधनों की विविधता और विचित्रता देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, कभी पर्याप्त मनोविनोद भी होता है। वाहनों के विषय में भारत बहुत आगे रहा है। तनिक देवताओं को ही देखिये। वैसे तो देवताओं में वायु-यान का उपयोग सामान्य रूप से होता है। यज्ञों में जाने के लिये, युद्धों का आनन्द लेने के लिये, किसी दर्शनीय उत्सव में सम्मिलित होने के लिये, साधुवाद देने के लिये वे अपने विमानों का प्रयोग करते रहे हैं। उनके

---

* जहाज।

चाले ही नहीं प्रत्युत आकाश में स्थिर रहने वाले विमानों का खूब वर्णन मिलता है। जहाँ लम्बी यात्राओं के लिये विमान थे वहाँ इधर-उधर निकटवर्ती स्थानों तक जाने के लिये उन्होंने विचित्र वाहन चुने थे। विष्णु भगवान को तो वेगवान् गरुड़ ही ठीक लगा क्योंकि भक्तों की रक्षा† करने के लिये शीघ्रतापूर्वक दौड़ना पड़ता था। ब्रह्माजी ने हंस तथा शिवजी ने वृषभ को चुना। स्वामिकार्तिकेय को मोर की रंगीन आकृति पसन्द आई और यम को भीषण आकृति का भैंसा रुचा। सूर्य ने अपने रथ में घोड़े जोड़े तथा इन्द्र ने हाथी पसन्द किया। वाहनों के चुनाव में देवियाँ$ और भी आगे रहीं। सरस्वती ने हंस की सवारी की तो लक्ष्मी को उल्लू ही पसन्द आया। दुर्गा ने अपनी सवारी के लिये सिंह को चुना। गणेशजी ने न जाने क्या समझ कर अपने विशाल भार को वहन करने के लिये मूषक ही उपयुक्त समझा। यह तो रही देवताओं की बात। मनुष्य ने भी स्थान स्थान पर अपनी आवश्यकता के अनुसार सवारियाँ रखीं। बर्फ से भरे मैदानों में कुत्ते और रेनडियरों से खींचे जाने वाली गाड़ियाँ* हैं, पर्वतों पर याक या टट्टुओं से यात्रा करते हैं, रेगिस्तान में ऊंट पार करता है, अरब निवासी घोड़े पर ही प्यार करते हैं, राजाओं ने अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिये हाथी को चुना था, खच्चर, और गदहों पर भी लोग मजे से यात्रा करते हैं। गाड़ियां खींचने में घोड़ा ही अधिक काम में लिया गया। घोड़े द्वारा खींचे जाने वाली विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ यदि एकत्र की जाँय तो एक प्रदर्शिनी लग जाय। यहाँ इक्के, ताँगे, चौकोर ताँगे, बग्घी, फिटिन विक्टोरिया आदि अनेक सवारियाँ हैं। बिना तेल-पानी की, सुगम रूप से रहने वाली बहुत ही हल्की सवारी पैरगाड़ी भी प्रचलित हुई जिसमें मनुष्य की बुद्धि मनुष्य के बहुत काम आई। कुछ साइकिलों द्वारा रिक्शा खींचते हैं और कुछ लोग तो स्वयं ही घोड़े की तरह रिक्शा खींचते हैं। जापान, चीन, बर्मा और भारत के अनेक शहरों में सैकड़ों रिक्शे दिखाई देते हैं।

आज के संसार में आवागमन के साधनों का बड़ा महत्त्व है पग-पग पर हमें इनकी आवश्यकता होती है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी

---

† भक्त की रक्षा, $ देवताओं की शक्तियाँ, * Sledges।

उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। देवताओं की तरह आकाश में घूम कर पुष्प-वर्षा करने के लिये ही हमें विमानों की आवश्यकता नहीं प्रत्युत देश-विदेश के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने के लिये अपनी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु हमें विमान जैसे शीघ्रगामी वाहनों की आवश्यकता है। एक प्रकार से आज का संसार इन साधनों के द्वारा ही निर्मित हुआ है, और अब तो हमारी आवश्यकताओं का क्षेत्र इतना विस्तृत होगया है कि हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि इन साधनों के अभाव में हमारी क्या स्थिति होगी। अन्य आवश्यक वस्तुओं की तरह वेगवान् आवागमन के साधन भी हमारे जीवन का अंग बन गये हैं।

इन साधनों का क्रमिक विकास अत्यन्त मनोरञ्जक है। मानव-जीवन के इतिहास में आवागमन की आवश्यकता तो आरम्भ से ही अनुभव की गई होगी और शनैः-शनैः यह भी अनुभव किया गया होगा कि ये साधन हमारा कार्य शीघ्रतापूर्वक करें। हमें न केवल स्वयं को ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना होता है प्रत्युत बहुत कुछ सामान भी लाना लेजाना होता है; इस सबके लिये मनुष्य की बुद्धि क्रियाशील रही है*। आज हमें पुराने साधन बहुत बुरे जान पड़ते हैं, उन्हें केवल हम विकास का क्रम जानने के लिये पुरातत्वशालाओं† में रखना मात्र ही उपयुक्त समझते हैं। आज तो साधारण वेग से जाती रेलगाड़ी और मोटर भी हमें 'खचड़ा गाड़ी' मालूम होती है। २०० मील प्रति घण्टे की रफ्तार वाला वायुयान अपेक्षाकृत मन्दगति$ वाला मालूम होता है। किसी समय १०० मील जाने में ही सप्ताह लग जाते थे अब एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप पर जाने में कुछ घण्टे लगते हैं। सम्पूर्ण संसार का भ्रमण कर कुछ दिनों में ही घर लौटा जा सकता है। भूगर्भ ट्रेनें, बिजली तथा वाष्प की ऊपर चलनी वाली गाड़ियाँ, मोटर, बसें, लारियाँ, आकाश के वायुयान अनेक जानवरों से खींचे जाने वाले शकट× रिक्शा गाड़ियाँ सभी वेग से चले जाते हैं एक हंगामा-सा मचा रहता है। वैज्ञानिक अब भी सन्तुष्ट नहीं हैं। वे आकाश

* कार्य करती रही है, † Museums, $ Rather Slow, × गाड़ियाँ।

में वायुयानों के प्लेटफार्म बनाना चाहते हैं जहाँ से वायुयान अनेक सहस्त्र मील की गति से विभिन्न ग्रहों की यात्रा कर सकें और उनसे अपना सम्पर्क स्थापित कर सकें। विज्ञान की अपरिमित शक्ति को देखते हुए यह बात भी नितान्त असंभव प्रतीत नहीं होती। आज जो बातें हमारे सम्मुख स्पष्ट रूप में उपस्थित हैं उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञान के द्वारा आवागमन के साधनों में बहुत ही वृद्धि होती है, उनकी संख्या एवं शक्ति दोनों का विस्तार होगा और मानव-समाज के लिये यदि वे चाहेंगे तो बहुत उपकारी सिद्ध होंगे।

विस्तृत रूपरेखा

(१) विषय की उपयुक्तता—i जीवन से अत्यन्त सम्बन्धित विषय। ii मानव इतिहास के विकास का द्योतक। iii पशुओं का इस कार्य के लिए लिया जाना। iv इसमें निरन्तर उन्नति।

(२) प्राचीन काल में—i घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, रथ आदि। ii 'विमानों' वाली बात। iii घोड़े की सवारी। iv रथों की दौड़ें यहाँ तथा यूरोप में। v नावें—नदियों का पार करना।

(३) आधुनिक काल के साधन—i रेलगाड़ी—वाष्पगाड़ियाँ। ii पैट्रोल-गाड़ियाँ। iii जलयान। iv वायुयान। v उनकी गतिशीलता। vi आवागमन के साधनों का विकास किसी देश की सभ्यता एवं सम्पन्नता का मानदण्ड।

(४) विचित्र साधन—i हमारे देवताओं के वाहन—विमान, पशु-पक्षी आदि। ii बर्फीले मैदान, रेगिस्तान, पहाड़ तथा मैदानों की सवारियाँ। iii मैदानों की सवारियों के अनेक रूप। iv वैज्ञानिक साधन। v रिक्शा आदि।

(५) इन साधनों का महत्त्व—i जीवन के प्रत्येक अंग में आवश्यक। ii देश-विदेश में सम्पर्क स्थापन करने के हेतु। iii हमारी आवश्यकताओं का विस्तृत क्षेत्र। v वेगवान् साधनों की संख्या में वृद्धि।

(६) क्रमिक विकास—i प्राचीनकाल में—मंद गति के वाहन, पशु का ठीक उपयोग। ii वैज्ञानिक अन्वेषण। iii वाष्प, पैट्रोल, वायुयान आदि के उपयोग। iv अणु शक्ति का प्रयोग। v ग्रहों की यात्राएँ—सहस्रों मील की गति। vi संभावित भविष्य।

५—मानव का महान शत्रु आलस्य

संक्षिप्त रूपरेखा

१—सभ्यता का विकास, आलस्य का प्रारंभ। २—मनोविज्ञान में आलस्य की व्याख्या। ३—असफलता का मूल कारण। ४—प्रकृति की विरोधी प्रवृत्ति। ५—समय का मूल्य। ६—शारीरिक हानि। ७—दार्शनिक दृष्टि से आलस्य। ८—'भूतल पर मकड़ी का राज्य होगा।'—वेल्स। ६—उपसंहार।

'आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः'। अर्थात् 'आलस्य मनुष्यों के शरीर में बैठा हुआ महाशत्रु होता है।' इस बात को कहने-सुनने वाले इस संसार में जितने हैं, उनके शतांश भी कार्य रूप में परिणत करने वाले नहीं। यों तो बहुत प्राचीन काल में ही मनुष्य ने अपने इस चिर शत्रु को पहचान लिया था। अत्यन्त आदिकाल में जब मनुष्य पशुओं के माँस का आहार करके जीवन धारण करता था, तब आलस्य का परिणाम जीवन से हाथ धोना होता था। जिस दिन शिकार करने के लिए मीलों की धूल नहीं छानी उसी दिन सायंकाल को भोजन के नाम पर शून्य। ऐसे समय में आलस्य का तात्कालिक परिणाम तत्काल मिल जाने से मानव इस शत्रु से दूर ही रहता था। किन्तु जैसे-जैसे समाज कुछ सभ्य और मानव के जीवन-वस्तु-भांडार कुछ सम्पन्न होते गये वैसे-वैसे ही उसने आलस्य से अपना नाता जोड़ना प्रारंभ किया। आगे चलकर तो अनेक दार्शनिकों और फकीरों ने उपदेश देना प्रारंभ कर दिया कि—

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम,
दास मलूका कहि गये, सब के दाता राम।'*

इस मनोवृत्ति ने मानव-जीवन को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई। जिन-जिन देशों में यह मनोवृत्ति रही, वहाँ की जीवन-धारा सूखती चली गई। सभ्यता का स्तर गिरता गया और अन्ततः या तो उन्हें सदियों तक दूसरों की गुलामी का अभिशाप झेलना पड़ा, या फिर उनकी सभ्यता और संस्कृति ही लुप्त हो गई।

मानव-समाज विस्तार में सघनता और समय में व्यस्तता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। आज के व्यस्त जीवन में मनुष्य के पास समय की इतनी अधिक कमी हो गई है कि उसे अत्यन्त तीव्र गति से जीवन-पथ पर चलने के लिए अनेक शतगुण शक्ति-पूर्ण यंत्रों का निर्माण करना पड़ा है। ऐसे क्रियाशील जीवन में दीर्घसूत्रता और आलस्य को प्रश्रय देना जीवन-यान की गति से कितना पिछड़ जाना है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आलस्य क्या है? इस पर सोच लेने से हमारे मंतव्य में काफी सहायता मिल जायेगी। गतिहीनता अथवा क्रियाशीलता का अभाव हमारे मस्तिष्क को ऐसी स्थिति में अवस्थित कर देता है कि उस समय हमारा मन नितान्त चिन्तन-हीन और प्रगति-हीन अवस्था में पड़े रहने में ही सुख भोग का सर्वोच्च अंश समझता है। कर्मशीलता से हीन मनःस्थिति का नाम ही आलस्य है। यह ठीक है कि आलस्य में एक विश्राम अथवा परिशान्ति† की भावना है, इसी कारण मानव-मन उसके वशीभूत हो जाया करता है। किन्तु दार्शनिक और सामाजिक दृष्टि से जिस प्रकार इस अवस्था का नाम पतन अथवा मृत्यु है, उसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से भी इसे रोग की अवस्था कहा जा सकता है। वास्तव में आलस्य एक मानसिक रोग है, जिसके रोगी के हाथ जीवन में असफलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं लग पाता। मैं एक ऐसे अपूर्व प्रतिभाशाली व्यक्ति को जानता हूँ, जो यदि प्रकृत्या आलसी न हुआ होता, तो संसार

* मलूकदास का दोहा, † उदासी-पूर्ण शान्ति।

के बहुत बड़े व्यक्तियों में से होता। सम्भवतः कार्य करने की और आलस्य-त्याग की इसी महत्ता से प्रभावित होकर पण्डित जवाहरलाल ने एक स्थान पर लिखा है:—

"Success always comes to those
Who dare and act and never to the timid."$

जिस प्रकृति ने मानव को शरीर और मस्तिष्क दिया है, उसमें कहीं भी आलस्य नहीं है। आप देखेंगे प्रकृति का प्रत्येक कार्य समय पर होता है। समय पर सूर्य उदय होता है, अस्त होता है। समय पर पुष्प खिलते हैं, मुरझाते हैं। यदि प्रकृति का कोई कार्य असामयिक रूप से घटित हो जाता है, तो प्रकृति में कितनी हलचल मच जाती है। इस बाह्य-प्रकृति के अनुरूप ही मानव की अन्तःप्रकृति की रचना है। यदि उसके अन्तर्विधान में समय पर कार्य नहीं हुआ, तो बहुत बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। कितना दुःख है कि मानव इसे अनुभव करके भी नहीं करता और दिन पर दिन आलस्य का भूत अपने सिर पर चढ़ाये जाता है।

जीवन में असफलता के साथ-साथ आलस्य हमें जीवन-हीनता भी देता है। जिस प्रकार उपयोग में न आने से लोहे पर जंग चढ़ जाती है, उसी प्रकार प्रयोग न करने से मानव की कर्म-शक्ति भी कुंठित हो जाती है। और फिर होते-होते उसकी जीवनी-शक्ति अत्यन्त निर्बल हो जाती है। ऐसी दशा आजाने पर मानव का जीवन रूढ़ियों में बँधी हुई किसी बैलगाड़ी के समान 'ढचर-ढचर' चलता जाता है—नितान्त उद्देश्य हीन और गतिहीन। कर्म में एक सौंदर्य होता है। जिस प्रकार प्यास में मिठास और तृप्ति में फीकापन होता है, ठीक उसी प्रकार कर्म और जीवन में एक विशेष उल्लास और सौंदर्य होता है। आलस्य इसके विपरीत मृत्यु की भाँति शून्य, कुरूप और श्मशानवत् शान्त होता है। कर्म की चहल-पहल और संघर्ष की हलचल एक लहलहाते हुए उपवन की हलचल

$ सफलता उन्हीं को मिलती है जो साहस करते हैं और काम करते हैं; डरपोकों को नहीं।'

है, जिसमें पक्षियों का कलरव पत्ते-पत्ते को मुखरित किये हुए है। आलस्य की शान्ति श्मशान की शान्ति है, जहाँ भयानक उदासी, मायूसी* और उल्लासहीनता है। एक पत्ते का खटकना भी जहाँ पर चौंका देने वाली चीज हो जाती है।

'Time and Tide wait for no man' + यह सत्कथन आलस्य के खोखलेपन और कर्मठता के मूल्य को भली-भाँति प्रकट कर देता है। जो क्षण आगया है, वह बीत कर फिर नहीं आने वाला है; अतः उसका उपयोग उसी समय कर लेना ही जीवन है, सजगता है और है कर्तव्यशीलता। लहर कभी नहीं रुकती। गति में ही उसकी महत्ता है, जीवन है। वायु का झोंका मलय-गंध को अपनी झोली में भरे हुए बाँटता चला जाता है, उसे न किसी विशेष क्षण से मोह है न किसी विशेष तृण से; किन्तु साथ ही वह कभी भी अपने कार्य से विरत भी नहीं होता। इसी प्रकार प्रकृति के अन्य उपादान आलस्य के दुष्परिणामों का नग्न स्वरूप आपके सामने रख सकते हैं। जिस वृक्ष ने समय पर खाद पानी नहीं लिया, उसकी मृत्यु ध्रुव है।

मानसिक रूप से इन दुष्परिणामों ÷ के साथ-साथ आलस्य मानव के तो शरीर पर भी आक्रमण करता है। किसी भी औषधालय में चले जाइये; अधिकांश रोगियों के रोग का कारण एक मात्र आलस्य मिलेगा। बचपन में मैंने एक कहानी एक रोगी की पढ़ी थी, जिसे अपच की शिकायत रहती थी। धनी व्यक्ति था। अपने रोग को दूर करने के लिए लाखों रुपये व्यय किये उसने; किन्तु कोई लाभ नहीं होता था। अन्त में एक बार एक साधारण ग्रामीण वैद्य से उसकी भेंट हुई। उसने उसे बताया कि तुम नित्यप्रति हरी दूर्वा पर पड़ी हुई ओस को एकत्र करके एक तोले उसका पानी पी लिया करो; एक मास में ठीक हो जाओगे। धनिक महाशय ने अपने कई सेवकों को इस कार्य के लिए नियुक्त कर दिया, बड़ा सस्ता-सा इलाज था। एक मास बीतने पर भी उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ; तब तो

---

* निराशापूर्ण अकर्मण्यता, + समय और लहर किसी की प्रतीक्षा नहीं करते, ÷ कुपरिणाम।

वे उस बेचारे ग्रामीण वैद्य के प्राणों को नोचने लगे। वैद्य ने पूछा, 'क्या आपने एक भी दिन ओस पिये बिना नहीं जाने दिया ?' रोगी ने कहा, 'जी हाँ जनाब', एक भी नहीं जाने दिया, और लाभ एक भी रत्ती नहीं हुआ।' वैद्य ने पूछा, 'ओस आप को कहाँ से प्राप्त होती थी, कहीं मात्रा कम तो नहीं ली।' धनिक क्रुद्ध गया, बड़े रोब से बोला—

'मालूम होता है वैद्यजी, तुम्हारा दिमाग फिर गया है। देखते नहीं हो, मेरे बीसियों नौकर हैं; चाहो तो अभी कोठियाँ भरवा दूँ ओस की।'

वैद्य ने अब समझा। वह बोला—'सेठजी, तभी आप अच्छे नहीं हुए। जनाब, मैंने नौकरों की ओस पीने को थोड़े ही कहा था। स्वयं जाकर एक तोले ओस प्रातःकाल ही दूर्वा पर से एकत्रित कीजिये और घर लाकर पीजाइये। हाँ, शर्त यह भी है, कि शहर के बाहर तक आप बग्घी या मोटर में नहीं, पैदल जाकर ही ओस लायेंगे।'

सेठजी और भी डर कर बोले—'जनाब, आप दवा कर रहे हैं या जादू ? भला मैं पैदल कैसे जाऊँगा ?'

वैद्य ने कहा—'सेठजी, आपके रोग का मूल कारण आपका आलस्य है। आप नित्यप्रति जाकर ओस पीजिये, देखिये आप कितने अल्पकाल में चंगे हो जायेंगे।'

सेठ ने यह करना प्रारम्भ किया, और चार दिन बाद ही उसकी सूरत बदलने लगी।

इस कहानी को पढ़कर मैं यह सोचा करता था कि क्या मानव इतना नासमझ है कि अपने इतने बड़े शत्रु को पहचान नहीं पाता ? और आज मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मानव नासमझ तो नहीं है, उसकी समझ कुछ आलस्य-ग्रस्त अवश्य है। समझ कर भी न समझना मानव-मस्तिष्क की बहुत बड़ी विशेषता है।

संसार के जितने सफल जीवन वाले मानव हुए हैं, सब के जीवन में आपको एक बात विशेष रूप से मिलेगी, वह यह कि वे काम करने से

आलस्य नहीं करते थे। नैपोलियन आल्प्स पर्वत को पार करने को चल पड़ा था। बर्नार्डशा अपनी एक-एक मिनट का हिसाब रखता था। गांधी ने अपने जीवन का एक भी घण्टा शायद बेकार नहीं खोया। भौतिक उन्नति की दृष्टि से भी आलस्य कितनी बड़ी बाधा है मानव के सामने, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि कभी कभी एक मिनट के आलस्य में जीवन का चित्र बदल जाता है। एक क्षण की देरी से करोड़पति व्यापारी दिवालिया हो सकते हैं। संभवतः इसी लक्ष्य को सामने रखकर संस्कृत-नीति-कार ने कहा था—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः"†

दार्शनिक दृष्टि से आलस्य के वशीभूत मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य को पराजित करने का दोषी होता है। जैसा कबीर ने कहा है—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब
पल में परलय होयगी, बहुरि करैगो कब ?

बहुरि करैगो कब ? यह प्रश्न प्रत्येक टाला जाने वाला कार्य आपसे पूछता है, और आप उसका उत्तर सिर हिला कर भी नहीं दे पाते कि जीवन की घड़ी के क्षण पूरे हो जाते हैं और फिर अचेतन भस्म के एक-एक कण में यह प्रश्न-चिह्न साकार बना रह जाता है। अँग्रेजी के उस प्रसिद्ध कवि की बात आपको याद होगी, जिसने अपनी मृत्यु के पश्चात् कई कविताएँ अधूरी छोड़ी थीं। और मृत्यु-शय्या पर बड़े पश्चाताप से कहा था, 'काश ! मेरा आलस्य मुझसे इन कविताओं को पूरी किये बिना न छुड़वाता, तो मैं अमर हो जाता।

एच० जी० वेल्स* ने एक भविष्य-कल्पना की है कि कुछ सदियों पश्चात् इस भूतल पर मकड़ी का राज्य होगा। इस भविष्यवाणी का कारण उन्होंने यह बताया है कि चूंकि मकड़ी ही इस समय के जीवित प्राणियों में ऐसा प्राणी है, जो सर्वाधिक कर्मशील है, और आलस्य-हीन है, अतः वह सभी प्राणियों को पराजित कर देगी। मैं नहीं सोच पाता कि

† उद्योगी पुरुषसिंह को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, * प्रसिद्ध अँग्रेजी लेखक और कथाकार एवं विचारक।

क्या मकड़ी का जाला हमारे हवाई जहाजों और मोटरकारों की शक्ति को अवरुद्ध कर लेगा ? किन्तु इस कथन की आत्मा की सचाई अवश्य स्वीकार करनी पड़ रही है। खरगोश और कछुए की प्रसिद्ध दौड़ और कछुए की जीत की कथा आपने सुनी होगी। बस इतनी ही सचाई वेल्स के इस कथन में है, कि यदि मानव तथा अन्य बलशाली प्राणियों ने अपना आलस्य नहीं छोड़ा, तो सम्भव है उनका विनाश समय से पूर्व आजाय और कोई निर्बल प्राणी जीवन-संग्राम में उन्हें पराजित करदे।

और तब आलस्य मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु होगा। हवाई जहाज और मोटरकारें बनी बनाई रखी होंगी, किन्तु आलस्यवश जब कोई ड्राइवर अथवा पायलट† उन्हें चलाने का कष्ट नहीं उठाना चाहेगा, तब निश्चित है कि मानव-जीवन की भौतिक, वैज्ञानिक और मानसिक सभी उन्नति निरर्थक सिद्ध हो जायगी। और मकड़ी या उसकी जैसी ही जाति का कोई हीन प्राणी मानव का विनाश कर सकता है।

विस्तृत रूपरेखा

१—सभ्यता का विकास आलस्य का प्रारम्भ—(i) अत्यन्त प्राचीन काल में परिश्रम के विना भोजन अप्राप्य। (ii) सभ्यता और संचय के साथ आलस्य भी बढ़ा। (iii) आज का व्यस्त जीवन और आलस्य।

२—मनोविज्ञान और आलस्य—(i) क्रियाशीलता का अभाव। (ii) विश्राम और परिशान्ति। (iii) एक मानसिक रोग जिससे जीवन में असफलता अनिवार्य।

३—असफलता का मूल कारण—(i) सफलता कर्मण्यता का परिणाम। (ii) Success always comes to those who dare and act, and never to the timid.

४—प्रकृति से विरोध—(i) प्रकृति सतत गतिशील। (ii) समय का पालन, एक प्राकृतिक नियम। (iii) शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। (iv) कर्म में एक सौन्दर्य है, उल्लास है, आलस्य में मायूसी।

---

† Pilot.

५—समय का मूल्य—(i) Time and Tide wait for no men. (ii) प्रकृति के अन्य उपादानों की क्रियाशीलता। (iii) नैंपोलियन और गांधीजी का जीवन।

६—शारीरिक हानि—(i) रोग अवश्यंभावी। (ii) सेठजी की कहानी। (iii) लक्ष्मी की हानि।

७—दार्शनिक दृष्टि से आलस्य—(i) जीवन लक्ष्य को पराजित करने का दोषी। (ii) कबीर का कथन। (iii) अधूरा छोड़ा कार्य पूरा नहीं होता।

८—'भूतल पर मकड़ी का राज्य होगा।' एच० जी० वेल्स—(i) Slow but steady wins the race. (ii) आलस्य जीवन-संग्राम में पराजय का चिह्न।

९—उपसंहार—(i) आलस्य के साथ उन्नति निरर्थक। (ii) मानव का महान् शत्रु।

६—दो सौ वर्ष बाद का संसार : एक कल्पना-चित्र

संक्षिप्त रूपरेखा

१—सन् २१५०—एक कल्पना, २—विश्व-संघ और भारत—राजनीतिक चित्र, ३—ग्राम-व्यवस्था—उत्पादन-शक्ति, ४—सामाजिक व्यवस्था, ५—कला, अर्थ-व्यवस्था, ७—धार्मिक व्यवस्था, ८—उपसंहार।

यह सन् २१५० ई० है। जनवरी की १० तारीख है। भारत की प्रमुख नगरी दिल्ली में, जो इस वर्ष विश्व-संघ* की शीतकालीन राजधानी है, आज से ही विश्व-संघ-पार्लामेंट$ का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ है। आज अफ्रीका के हब्शी-विश्व-विद्यालय का विस्तार द्विगुण करने का विधेयक§ प्रस्तुत किया गया था, अभी उस पर विवाद समाप्त नहीं हुआ है। भारत के ६० प्रतिनिधियों में से ६ ने इस विधेयक को यथावत् स्वीकार करने की

---

* Federation of the World, $ The World Federation Parliament, § Bill।

विश्व-संघ पार्लमेंट से प्रेरणा की थी। पार्लमेंट के अध्यक्ष, जो अफगानिस्तान के निवासी हैं, आज उपस्थित नहीं हो पाये थे, अतः उपाध्यक्ष भारतीय प्रतिनिधि श्रीमती गुणमयी देवी ने भवन की अध्यक्षता की। विधेयक की माँग का सबसे मुख्य आधार यह था कि अफ्रीका में हब्शी-विश्वविद्यालय यद्यपि विश्व के विश्वविद्यालयों में पंचम स्थान रखता है, किन्तु फिर भी उसके स्नातकों की संख्या विश्व भर से अधिक है। अतः उसे द्विगुणित करके अफ्रीका को विश्व का शिक्षा-केन्द्र बनाने की ओर पार्लमेंट का ध्यान जाना आवश्यक है।

पार्लमेंट के अधिवेशन में भाग लेने के लिए जो प्रतिनिधि आये हैं, उनमें से अधिकांश तो आठ दिन पूर्व ही भारत में आगये थे। पासपोर्ट की प्रथा आज से १५० वर्ष पूर्व ही नष्ट हो चुकी थी, जबकि विश्व-संघ का निर्माण हुआ था। अब सारे देश एक ही विश्व-देश के प्रान्त मात्र हैं। राष्ट्रीयता (Nationality) अब बहुत पुराना शब्द हो गया है। हवाई-साईकिलें† और हवाई-कारें लेकर पार्लमेंट के प्रतिनिधि भारत में पिछले एक सप्ताह से घूम रहे थे। विश्व-देश के इस प्रदेश को इतना उन्नत देखकर कुछ प्रतिनिधि बड़े प्रसन्न थे और इस प्रदेश को प्रकृति की देन के लिए प्रत्येक निवासी को बधाई दे रहे थे। २०३ वर्ष पूर्व इस देश में वर्ग-संघर्ष का चरम स्वरूप दिखाई दिया था, जब अँग्रेजों का साम्राज्यवादी राज्य यहाँ से चला गया था। उसके बाद इस देश में पूंजीवादी प्रजातन्त्र कुछ दिनों तक रहा, किन्तु शीघ्र ही सम्भवतः अँग्रेजों के जाने के पश्चात् प्रथम अथवा द्वितीय आम चुनाव में ही यहाँ प्रजातांत्रिक समाजवाद‡ की विजय हुई थी। तभी से यहाँ सच्चे समाजवाद की स्थापना का श्रीगणेश हुआ है। उसी समय यूरोप में तृतीय और अन्तिम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ था। भारतीय संघ ने समाजवादी प्रजातन्त्र के नेतृत्व में उस काल की प्रमुख शक्तियों अमरीका और रूस दोनों का बायकाट करके तृतीय विश्व-शक्ति का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य उक्त दोनों शक्तियों की भाँति अन्य देशों को निगलना नहीं था; अपितु इसका उद्देश्य बिलकुल ही शुद्ध शान्ति

† Aerocycles, ‡ Democratic Socialism ।

स्थापित करने का था। इस तृतीय शक्ति के आविर्भाव के फलस्वरूप महा युद्ध, विश्व-युद्ध नहीं बन पाया था। फल यह हुआ कि अमरीका और रूस दोनों के भिन्न-भिन्न मार्गों की साम्राज्यशाही की मनोवृत्ति नष्ट हो गई। मानव-संस्कृति नष्ट होते-होते बच गई। इस युद्ध के ५० वर्ष बाद विश्व का नकशा बदला हुआ दिखाई दिया। इन ५० वर्षों में विश्व के सभी देशों में प्रजातांत्रिक समाजवाद कायम हो चुका था, और विश्व-संघ का निर्माण भी हो चुका था। सन् २००० के पश्चात् सारे विश्व में अभूतपूर्व शान्ति का राज्य रहा है। सन् २१०० की जन-गणना में विश्व-भर में कोई व्यक्ति बेकार और भूखा नहीं निकला। केवल कुछ रोगी थे। इन १५० वर्षों में नवीन दुनिया का पूर्णतया निर्माण हो गया है। आज ग्राम और शहर में आकार के अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं। विश्व-पार्लमेंट के एक सदस्य महोदय विश्व-भ्रमण करके अभी आये हैं, उन्होंने यह सूचना दी है विश्व में अब कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो आर्थिक दृष्टि से बेकार अथवा अतृप्त हो। भारत के ग्रामों की पंचायती व्यवस्था यद्यपि इस समय सारे संसार में चल रही है, किन्तु भारत में ही उसका अनोखापन और अभूतपूर्व सफलता दिखाई पड़ती है। प्रत्येक ग्राम, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से पूर्णतया आत्म-निर्भर है। सन् १९५० का कोई व्यक्ति यदि आज भारतीय गाँव की दशा देखे, तो उसे भ्रम होगा कि या तो वह स्वप्न देख रहा है अथवा वह कहेगा कि यह भारत नहीं कोई और देश है। प्रत्येक गाँव में कॉलेज, अस्पताल, म्युनिसपैलिटी, इन्जीनियरिंग वर्कशॉप आदि स्थापित हैं। खेतों का अस्तित्व अलग-अलग अब नहीं हो सकता। जमीन एक-सी कर दी गई है। मशीनों से वैसे तो भूमि की उत्पादन-शक्ति कई गुनी करली गई है, किन्तु साथ ही मानव-श्रम की भी उपेक्षा नहीं होती है। ये अनेक वर्ग, उपवर्ग, जातियाँ, उपजातियाँ और ऊँच-नीच के भाव सब कुछ न जाने कहाँ विलीन हो गये हैं, जो आज से २०० वर्ष पूर्व संसार में मकड़ी के जाले की भाँति फैले हुए थे। मानव ही एक जाति है, श्रमी ही एक वर्ग है, सभी ऊँचे ही ऊँचे हैं; कोई कहीं नीचा नहीं। शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के भेद अवश्य हैं, किन्तु इसके बल पर उच्च और नीच की भावना

का नाम भी नहीं है। किसी भी गाँव में चले जाइये, आपको श्रेष्ठतम वैज्ञानिक, विद्याधर*, दार्शनिक और कलाकार मिल जायेंगे। उन्हें जीवन की सुविधाएँ पूर्णतया मिलती हैं। गाँव के श्रमिकों और कृषकों की भाँति उन्हें भी मस्तिष्कोन श्रम$ के बदले ही सम्मान मिलता है। पंचायतों में से ६० प्रतिशत के अधिकारी श्रमिकों में से ही जाते हैं। कुछ ऐसा लगता है कि दिन-प्रति-दिन शारीरिक और मानसिक श्रम का भेद मिटता जा रहा है। क्योंकि अब अधिकांश शारीरिक श्रमी मस्तिष्क की दृष्टि से भी उतने ही विकसित हो गये हैं और अधिकांश मानसिक श्रमी शारीरिक श्रम की ओर बढ़ गये हैं।

कल हँसी-हँसी में विश्व-संघ के रूस-प्रदेश के एक प्रतिनिधि ने कह दिया था कि 'हमको गर्व है कि विश्व को इस नवीन समाजवादी सभ्यता का सन्देश सर्व प्रथम हमारे प्रदेश ने दिया था।' उनकी इस बात को यद्यपि भारतीय प्रतिनिधियों ने तो परिहास में ही टाल दिया; किन्तु कुछ अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधि गम्भीरता में ले गये। बोले कि अब यह प्रादेशिक भावना हमारे बीच नहीं रहनी चाहिये। यद्यपि सत्य बात तो यह है कि जिस नवीन प्रजातांत्रिक समाजवाद की व्यवस्था से आज हम मानव-जगत् को स्वर्ग बना पाये हैं वह भारत के तत्कालीन मनीषियों के योग से ही स्थापित हुई है। किन्तु किसी पुत्र ने कार्य किया, श्रेय सारे कुटुम्ब को है। आज हम मानव-मानव एक हैं। अब कोई वैभिन्य की भावना हमारे बीच नहीं रही जानी चाहिये।' इस प्रकार नवीन व्यवस्था ने विश्व को अत्यन्त निकट रूप से एक कर दिया है।

युद्ध की बातें इतिहासों में पढ़-पढ़ कर विद्यार्थी हँसा करते हैं। एक चार वर्ष के बालक ने तो अपने शिशु पालन-गृह के अधिष्ठाता से बड़ा सुन्दर प्रश्न किया; वह बोला—"पिताजी, बताइये तो, आज हमने पढ़ा कि १९५४ के लगभग विश्व में महायुद्ध छिड़ रहा था। क्यों लड़ते थे ये लोग; जिसमें करोड़ों की संख्या में मानवों की हत्या होती थी?"

अधिष्ठाता ने उत्तर दिया, "बेटा, उस समय मानव स्वार्थ-लिप्त दुनिया

---

* विद्वान्, $ Mental Labour।

का प्राणी था। एक मानव दूसरे का शोषक था, एक देश दूसरे का माँस नोचना चाहता था। दुनिया छोटे-छोटे देशों में बँटी हुई थी। इन्हीं सब कुव्यवस्थाओं के कारण लोग आपस में महायुद्ध करते थे।"

यह मैंने आपको सन् २१५० में देखी गई विश्व की राजनीतिक तस्वीर$ बताई है। सामाजिक व्यवस्था का एक चित्र भी देख लीजिये। स्वतन्त्र पक्षियों की भाँति नारी-पुरुषों के स्वस्थ सुन्दर जोड़े हवाई साइकिलों पर जब सायंकाल वायु-सेवन के लिए प्रत्येक ग्राम और नगर के बाहर के आयु-मण्डल में निकलते हैं, तो मानव-संसार की अद्भुत ऐश्वर्य-शक्ति पर आश्चर्य होता है। कोई ऐसा कुटुम्ब नहीं, जिसके पास जीवन-यापन के उच्चतम साधन न हों। हवाई जहाज, जहाज, रेलें आदि बड़े-बड़े यातायात के साधन तो सभी समाजीकृत सम्पत्ति हैं और आवश्यकता पड़ने पर कोई भी व्यक्ति इन्हें बिना किसी असुविधा और बदले के काम में ले सकता है। किन्तु हवाई साइकिलें, भूमि-साइकिलें, मोटर कारें आदि साधन तथा बँगले, उपवन आदि अनेक छोटे-छोटे सुखोपकरण व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं, जिसको देने और सुरक्षित रखने के लिए स्थान-स्थान पर सामाजिक यन्त्र-केन्द्र बने हुए हैं।

शिशु-जन्म और पालन की व्यवस्था निराली ही है। स्त्री-पुरुष सभी अपना-अपना कार्य करते हैं। जब कोई स्त्री गर्भवती होती है, तो कई मास पूर्व से उसे बड़े प्रयत्न और सुख से सामाजिक प्रसूति-गृहों में रखा जाता है। वहाँ पर भावी बालक की मनोवृत्ति, स्वास्थ्य एवं मस्तिष्क-शक्ति को शक्तिशाली बनाने के लिए गर्भ-काल में माता को अनेक प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती हैं। स्वास्थ्य एवं मस्तिष्क के लिए यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। फल यह हुआ है कि इस युग में कोई मानव १०० वर्ष से अल्पजीवी नहीं होता। सभी ६ फीट से अधिक ऊँचे पाये जाते हैं और सबके मस्तिष्क इतने प्रबल हैं कि विज्ञान और कला की दृष्टि से मानव-जगत् को अभूतपूर्व बना डाला है।

प्रेम-सम्बन्धी स्वतन्त्रता होने से चरित्र बड़े संयमी और स्वस्थ हो गये

$ Political Picture।

हैं। विश्व-संघ के अमरीका प्रदेश को छोड़कर कहीं पर भी दस प्रतिशत से अधिक विवाह भंग नहीं होते। भारत में तो एक प्रतिशत भी नहीं।

कला के विषय में अवश्य एक-दो बातें दर्शनीय हैं। ताजमहल अभी भी अपना सारा सौंदर्य श्वेत संगमरमर में समेटे शरत्पूर्णिमा के दिन विश्व के इस वैभव पर मुस्करा उठता है। उसकी इस मुसकान में भीतर प्रवेश करें तो आपको स्पष्ट झलक जायेगा कि मानो वह कह रहा है, 'मित्रो, मुझे जी भर कर मुस्करा लेने दो। मैं उस युग की विभूति का अवशेष हूँ, जब मेरे निर्माण के लिए २०-वर्ष तक निरन्तर लाखों व्यक्ति दिन-रात लगे रहे थे, हजारों दब कर मर गये, हजारों को भूखा मार डाला गया और सैकड़ों के हाथ पैर काट डाले गये। तुमने आज मेरी स्पर्धा में ये सैकड़ों वैभवशाली यन्त्र और भवन बना डाले हैं। मानता हूँ मेरी वर्षों की साधना, मूल्य और मेरा गौरव इन नवीन महाप्रासादों के सम्मुख कुछ नहीं है; किन्तु मुझे गर्व यह है कि मैं इन सभी से प्राचीन हूँ, इनका पुरखा हूँ। मेरी कला से ये आगे तो हो गये हैं, किन्तु मेरी समानता करने वाला दूसरा कोई ताजमहल नहीं बन पाया है, बनेगा भी नहीं; क्योंकि तुम्हें आज इतना समय नहीं कि मेरे जैसे भवन के निर्माण के लिए इतनी लम्बी साधना कर सको। इसीलिये इस शरद् की चाँदनी में सिर उठाये मैं जी भर कर हँस रहा हूँ।'

अब समाज की अर्थ-व्यवस्था पर एक दृष्टि डाल लीजिये। पहले हमने देखा है, कि आज सारी सम्पत्ति समाजीकृत* है। केवल उपभोग की वस्तुएँ ही व्यक्ति की सम्पत्ति हैं। किन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था तो यह है कि उत्पादन और वितरण ये दो क्रियाएँ जितनी सफलता, समानता और न्याय से आज के युग में सम्पन्न की जाती हैं, वैसी कभी भी नहीं हुई। लाखों यांत्रिक कारखानों और क्रियाओं के फल-स्वरूप इस समय संसार में प्रत्येक वस्तु का उत्पादन इतना अधिक है, कि उसे पशुओं तक को अनाज खिलाना पड़ता है, और साधारण-साधारण ग्राम-मार्गों में सुन्दर कालीन और फर्श बिछे रहते हैं। इसका कारण यही है कि आज सारी मानव-

* Socialised.

जाति अपनी भिन्न-भिन्न प्राकृतिक शक्तियों का योग देकर सामूहिक रूप से उत्पादन करती है। जिस प्रदेश में जिस वस्तु का अधिक उत्पादन होता है, वहाँ से वह वस्तु तुरन्त दूसरे स्थानों में वितरण के लिये उचित मात्रा में ले जाई जाती है, और उसमें अन्य ऐसी वस्तुएँ जिनका वहाँ अभाव है, लाई जाती हैं। काश्मीर ने इतने कालीन, पश्मीना और दुशालों का निर्माण किया है इन पिछले १०० वर्षों में कि सारा संसार ढक गया है। बिना मूल्य के एक भाग से दूसरे भाग में वस्तुओं का आयात निर्यात* चलता है। वितरण की व्यवस्था भी बड़ी अद्भुत है। प्रत्येक नगर और ग्राम में सामाजिक भाण्डार हैं, जिनमें सामाजिक सम्पत्ति के रूप में प्रत्येक वस्तु यथावश्यक मात्रा में उपस्थित रहती है। जिस ग्राम-निवासी को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, आकर बिना मूल्य ले जाता है। इस प्रकार रुपया तथा अन्य मूल्यन के साधनों की कोई आवश्यकता आजकल नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति समाज को अपनी शक्ति और कार्य के रूप में इतना देता है, जितना देने के वह योग्य है, और आवश्यक सुख-सुविधा के रूप में उतना लेता है जितने की उसको आवश्यकता है।† इस प्रकार चोरी, डकैती आदि अपराध, जिनके विषय में आजकल के बच्चे पुराने इतिहासों में बहुत पढ़ते हैं, उन्हें अजनबी मालूम होते हैं। वे कल्पना भी नहीं कर पाते कि ऐसी चीजें भी मनुष्य कभी करता होगा।

धार्मिक व्यवस्था की भी बात सुन लीजिये। देवी-देवता आदि की बातें तो अब केवल कहानियों की चीजें रह गई हैं। माताएँ और शिशु-पालिकाएँ व्यंग्य-शक्ति बढ़ाने के लिये बच्चों को इन्हें सुनाया करती हैं। ईश्वर को लोग अब दूसरे रूप में मानते हैं। उनकी राय में मानवता ही ईश्वर है। वे अब उसी की पूजा करते हैं। मानव-मानव में प्रेम हो, सृष्टि में प्रत्येक प्राणी समान है, सबके अधिकार समान हों, यही आज के मानव की धार्मिक धारणाएँ हैं। अब पुजारी, पुरोहित, पोप, शेख़, काज़ी

---

* Import and export. †"from everybody according to his capacity and to everybody according to his needs" Marx.

और पण्डों की बातें केवल कहने-सुनने की चीज़ रह गई हैं। कोई मनुष्य किसी अन्य व्यक्ति के मस्तिष्क में धूर्तता, आडम्बर अथवा थोथे अन्धविश्वास भर कर न तो उससे घूंस लेने की बात सोचता है, न एक-दूसरे पर शासन करने की।

और भी अनेक स्वर्गीय बातें हैं इस २१५० के संसार में। आप यदि सम्पूर्ण परिचय आज की दुनिया का प्राप्त करना चाहें तो अपनी कल्पना को समता, बन्धुत्व, स्वतन्त्रता और सम्पन्नता के चार स्तम्भों पर टिका कर ऊपर को उठाइये। आपको २०० वर्ष बाद का संसार स्वर्ग दिखाई देगा।

विस्तृत रूपरेखा

१—सन् २१५०—एक कल्पना—(१) विश्व-संघ का निर्माण। (२) पार्लियामेंट का अधिवेशन। (३) हब्शी विश्व-विद्यालय सम्बन्धी विधेयक।

२—विश्व-संघ और भारत—राजनीतिक चित्र। (i) विश्व-संघ एवं उसके प्रदेश। (ii) भारत का इतिहास। (iii) सन् २००० की जनगणना।

३—ग्राम-व्यवस्था : उत्पादन-शक्ति। आत्म-निर्भरता। (ii) पंचायतें। (iii) अपूर्व उत्पादन। (iv) मस्तिष्क और शरीर की उन्नति।

४—सामाजिक व्यवस्था। (i) कुटुम्ब (ii) शिशुपालन। (iii) प्रेम। (iv) सामाजिक और व्यक्तिगत उपकरण।

५—कला—(i) ताजमहल की मुस्कान। (ii) शतशत ताजमहल।

६—अर्थ व्यवस्था—(i) समाजीकरण। (ii) From everybody according to his capacity and to everybody according to his needs.

७—धार्मिक व्यवस्था—(i) स्वतन्त्रता। (ii) ईश्वरता की समाप्ति।

८—उपसंहार- समता, बन्धुत्व, स्वतन्त्रता और सम्पन्नता।

७—मनोविनोद के साधन

विस्तृत रूपरेखा

१—जीवन में मनोविनोद की आवश्यकता—i बिना मनोविनोद के जीवन भार-स्वरूप बन जाता है। ii यदि कार्य में मनोविनोद भी कभी-कभी आजाय तो कार्यसम्पन्नता में सहायता होगी। iii जीवन को प्रफुल्लित रखने का सुन्दर साधन। iv हास्य और मनोविनोद।

(a) जीवन में हास्य की आवश्यकता।

(b) स्वास्थ्य पर प्रभाव।

(c) कार्यप्रणाली में सुधार।

(d) सद्भावना का प्रसार।

२—कुछ मनोविनोद—i मैदान के खेल—क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, बास्केट बाल, टैनिस, बैडमिंटन, वालीबाल, कबड्डी, काई डंडा, टिठ्जे आदि। ii कमरे के अन्दर—ताश, शतरंज, कैरम, चौपड़, गोटों से खेलना आदि। iii रुचि-कार्य—बागवानी, स्टाम्प एकत्रित करना, चित्र-संकलन, फोटोग्राफी, कविता-पाठ। iv भ्रमण—लम्बी यात्राएँ, प्रकृति के सुन्दर स्थल, प्रातः-सायं भ्रमण, विदेश-यात्राएँ।

v कलात्मक—(a) रंगमंच की ओर—अभिनय दर्शन।

(b) चित्रपट—सिनेमा देखना, वहाँ काम करना।

(c) नृत्य, वाद्य, गायन की ओर।

(d) चित्र-निर्माण, चित्र-दर्शन और विवेचन।

(e) पुराने सिक्कों की खोज, उन पर अध्ययन, पुरातत्व की और वस्तुएँ।

(f) साहित्यिक कहानी, कविता, उपन्यास की रचना तथा उनका पठन-पाठन।

(g) अन्य ललित तथा उपयोगी कलाओं में रुचि।

vi अन्य—(a) नशीले विनोद—भाँग छानना, मद्य पीना, गाँजे की दम लगाना।

(b) गप्पें लगाना, बच्चों से खेलना।
(c) शिकार—जंगलों में, पहाड़ों पर।
(d) पहलवानी—कुश्तियें लड़ना।

३—मनोविनोद को चुनते समय ध्यान—i रुचि की अनुकूलता। ii कम समय तथा व्यय में अधिक से अधिक मनोविनोद। iii दूसरों का अहित न करें—(आर्थिक दृष्टिकोण) iv हमारी भावनाओं, प्रकृति आदि पर दूषित प्रभाव न पड़े। (गंदे सिनेमा, गन्दी पुस्तकें)। v बालकों के मनोविनोद में उनके अभिभावकों का हाथ होना आवश्यक (अपना अहित कर सकते हैं)। vi सामाजिक नियमों का अतिक्रमण न हो। सुरुचिपूर्णता का पालन हो। vii मनोविनोद की सीमा—न अधिक न कम; स्वास्थ्य आदि की अनुकूलता।

४—भारत में मनोविनोद के साधन i मनोविनोद के साधन देश की समृद्धि एवं सभ्यता के साथ बढ़ते हैं। ii हमारे देश की अनेक कठिनाइयाँ मनोविनोद को वांछनीय रूप देने में अनुपयुक्त। iii कुछ कुरुचिपूर्ण साधनों की बढ़ती हुई प्रवृत्ति। iv सुशिक्षा, प्रचार आदि का अभाव। v साधनों की सीमितता। vi भारत में आर्थिक असमानता, दारिद्र्य, जीवन की विषमता, सामाजिक नियम आदि।

५—उपसंहार—i मनोविनोद जीवन में आवश्यक हैं। ii सुरुचि, सामाजिक लाभ, वैयक्तिक उन्नति का ध्यान रखते हुए प्रस्तुत किए जाँय। iii सुख-समृद्धि के साथ इनकी वृद्धि हो।

८—विज्ञान के चमत्कार

विस्तृत रूपरेखा

१—आधुनिक युग की विशेषता—i विज्ञान का युग। ii प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान। iii विज्ञान और मानव-जीवन। iv नवीन खोज और अन्वेषण।

२ - विज्ञान के चमत्कार—i आवागमन के साधन—रेल, मोटर, हवाई-जहाज, जलयान। ii समय पर विजय—तार, टेलीफोन, टेलीविज़न, रेडियो। iii मनोविनोद के साधन—गायन एवं वाद्य यन्त्र, रेडियो, चित्रपट, ग्रामोफोन। iv शिक्षा-क्षेत्र में—विज्ञान की शिक्षा, कला की शिक्षा, ऐतिहासिक भौगोलिक तत्व, रेडियो-स्टेशनों द्वारा प्रोग्राम, अमेरिका में टेलीविज़न द्वारा शिक्षा, विश्वविद्यालयों में स्थान-प्रयोग-शालायें।

v नित्यप्रति—(a) सौंदर्य प्रसाधन—बनावट-सजावट।
(b) बिजली—प्रकाश, पंखे, हीटर, रसोई में।
(c) घड़ी, घंटे।
(d) पेन, चश्मे।
(e) साइकिल, मोटर-साइकिल।

vi रोगनिवारण—(a) अनेक नवीन चिकित्सा-यन्त्र।
(b) एक्सरे।
(c) इन्जेक्शन, क्लोरोफार्म।
(d) नवीन चिकित्सा।
(e) मृत्यु से रक्षा—हड्डी बदलना, पेट के ऑपरेशन, अनेक अङ्गों के ऑपरेशन।

vi युद्ध-क्षेत्र में—(a) मारक यंत्र—बन्दूक, अनेक प्रकार की गन (मशीन-गन, स्टैनगन, टौमीगन), बम, टैंक, एटम-बम आदि।
(b) आवागमन में, सेना-सहायता भेजने में, स्थान पार करने में, समाचार भेजने में।
(c) निरीक्षण में—स्वसैन्य-निरीक्षण, शत्रु-निरीक्षण, आक्रमण की उपयुक्तता का निरीक्षण।

ii उत्पादन-क्षेत्र में (a) कृषि—ट्रैक्टर, मशीनें, खाद, आधुनिक साधन।
(b) समुद्रों से—मोती सीप आदि निकालना।

(c) पर्वतों से अनेक प्रकार की लकड़ी आदि प्राप्त करना।

(d) खानों से—स्वर्ण, रजत, रत्न आदि की प्राप्ति।

(e) कल-कारखानों द्वारा—नित्यप्रति के कार्य की वस्तुएँ, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र, औज़ार।

३—चमत्कारों का प्रभाव—

i सुन्दर प्रभाव (a) मानव जीवन सुखकर।

(b) नवीन सभ्यता की ओर।

(c) अनेक सुविधायें।

(d) अन्तर्राष्ट्रीय भावनायें।

(e) विस्तृत विचार-धारा।

ii चिन्ताजनक (a) युद्ध की ओर।

(b) घातक साधनों की प्राप्ति द्वारा शान्ति को भय।

(c) बेकारी में वृद्धि।

(d) भौतिकता का प्रभाव—भारतीय आदर्शों के प्रतिकूल।

(e) संघर्ष की ओर, कृत्रिमता तथा नीरसता।

(f) हृदय पक्ष का अभाव।

४—वाञ्छनीय रूप—i विज्ञान के चमत्कारों से वास्तविक लाभ उठाया जाय। ii संहार एवं अशान्ति की प्रवृत्ति को दूर करने के उपाय किए जाँय। iii विज्ञान के उत्पादन मानवीय-सुख को बढ़ाने के हेतु हों उसका नाश करने के लिए नहीं। iv प्राप्त साधनों का सदुपयोग। v अन्तर्राष्ट्रीय संघ द्वारा कुछ उद्योग, सद्भावना की आवश्यकता।

५—किस ओर—i ध्यान से देखें विज्ञान हमें किस ओर ले जारहा है—सामान्य जीवन में, राष्ट्र-जीवन में, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में। ii ठीक दिशा में चलें, पथ-भ्रष्ट न हो। iii साकार दृष्टिकोण मानवता का सच्चा विकास हो।

६—स्वास्थ्य-रक्षा

विस्तृत रूपरेखा

१—जीवन में स्वास्थ्य का महत्त्व—i 'जी सुखी तो जहान सुखी' ii 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन' iii जीवन का सम्पूर्ण क्रियाकलाप स्वास्थ्य से सम्बन्धित। iv ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों की प्राप्ति का साधन।

१—ऐन्द्रिक सुख।

२—उत्तम भविष्य के लिए साधन।

v संसार में उन्नति का साधन।

१—क्रियाशीलता का दाता।

२—प्रभावोत्पादकता का साधन।

२—स्वास्थ्य-रक्षा के कुछ सिद्धान्त—i ब्रह्मचर्य-रक्षा। ii चिन्ता, क्रोध आदि षड्रिपुओं का परित्याग। iii नियमित आहार-विहार—खाना, पीना, सोना, उठना, घूमना, काम करना। iv उत्तेजक मनोवेगों से बचना। v आन्तरिक एवं बाह्य स्वच्छता। vi शक्तियों का समुचित उपयोग।

३—स्वास्थ्य के सखा—i नियमित भोजन, शीघ्र पाचक, गरिष्ठता रहित। ii व्यायाम—शक्ति के अनुसार, न कम न अधिक। iii प्रसन्नता, मनोविनोद, हँसना, मस्ती। iv प्राकृतिक जीवन, प्रकृति के नियमों का पालन। v शुद्ध वातावरण—शुद्ध वायु, शुद्ध पानी, तथा शुद्ध विचार। vi जीवन में उमंग तथा आशावादिता।

४—स्वास्थ्य के रिपु—i जीवन-कार्यों में नियमों का अतिक्रमण। ii चिन्ता, क्रोध, उत्तेजक विचार। iii गन्दगी—गन्दी वायु, गन्दा साहित्य, गन्दा मनोविनोद, गन्दे विचार। iv कृत्रिमता—वस्त्र, भोजन, बातचीत आदि में। v मादक पदार्थ। vi विषय भोग।

५—स्वास्थ्य के कुछ नियम—i शारीरिक एवं मानसिक स्वच्छता नियमपूर्वक करें। शरीर के प्रत्येक अंग की स्वच्छता का ध्यान रखें, तथा मन में दूषित विचार न आने दें। ii अपना कार्यक्रम बनाकर उसके

अनुसार कार्य करें व्यर्थ की झंझटों में न फंसायें। iii व्यायाम, भ्रमण, खेल, सन्ध्या, स्नान आदि नियमपूर्वक हों। iv भोजन, शयन, कार्य का समय नियत हो। v स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का परिपालन हो।

६—जन स्वास्थ्य की वर्तमान परिस्थिति— i स्वास्थ्य का स्तर बहुत नीचा हो गया है। ii आँख, बाल, कान, दाँत आदि की असामयिक जरा हमारे स्वास्थ्य को बताती है। iii गन्दा साहित्य (अश्लील उपन्यास, कहानियाँ आदि) कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन (गन्दे सिनेमा, नाटक आदि) और कामोत्तेजक दवाइयाँ हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ रहे हैं। iv मकानों की अवस्था, गलियों की दशा, शहरों की गन्दगी, सफाई का अभाव, बाजार में बिकने वाली अस्वास्थ्यकर वस्तुएँ, दूषित वायु, अस्वच्छ जल हमारे स्वास्थ्य पर कुठाराघात कर रहे हैं। v दूध, घी की अनुपलब्धि, राशन के काल में दूषित अन्न का वितरण, होटलों का भोजन हमें पनपने नहीं देता।

७—क्या हो सकता है? i सरकार द्वारा कड़ा नियन्त्रण। ii शिक्षा-प्रसार के द्वारा जनरुचि में सुधार। iii नगर-विकास-योजनाएं कार्यान्वित करना। iv व्यायामशाला, मनोविनोदस्थल, पार्क आदि की स्थापना। vi स्वास्थ्य-सिद्धान्तों का प्रचार। vii जनता तथा सरकार का सहयोग।

१०—विज्ञापन-कला

विस्तृत रूपरेखा

१—आज का युग विज्ञापन-युग— i प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञापन। ii विज्ञापन के आधार पर सर्व प्रकार की उन्नति, अनेक प्रकार के कार्य-संचालन। iii विश्वविद्यालयों में विज्ञापन-शिक्षण का स्थान iv इस काल की एक विशेषता।

२—विज्ञापन एक कला— i विज्ञापन एक कला है जिसका समुचित शिक्षण आवश्यक। ii अन्य उपयोगी कलाओं की तरह यह भी कला है।

iii विज्ञापन में जनरुचि, प्रभावोत्पादकता, स्थान-काल का ध्यान, व्यापारिक दृष्टिकोण आदि का ध्यान रखना पड़ता है। iv विज्ञापन-कलाविदों की सर्वत्र आवश्यकता (१) सरकार में (२) व्यापार में (३) पत्रों में (४) सामाजिक जीवन में।

३—विज्ञापन की विधियाँ

i विज्ञप्तियों द्वारा (a) स्वतन्त्र विज्ञप्तियाँ, (b) पत्र-पत्रिकाओं में, (c) विज्ञप्तियों को स्थान-स्थान पर लगवाना विशेषतः सार्वजनिक जन स्थानों में (रेल, बिजली के लट्ठे, पार्क, पोस्टआफिस, ट्राम, होटल, धर्मशाला, स्टेशन आदि पर) (d) दीवारों पर लिखकर।

ii चित्रपट द्वारा (१) साहित्य प्रसारित करना, (२) आकर्षक विज्ञप्तियां प्रदर्शन, (३) नवीन प्रकार—छोटी-छोटी कहानियों का रजतपट पर चित्रण और अन्त में किसी वस्तु का विज्ञापन जैसे डालडा, चाय आदि के विज्ञापन, (४) विदेशों में प्रदर्शन।

iii प्रचार द्वारा (a) रेडियो द्वारा प्रचार (आधुनिक प्रणाली) (b) लाउड स्पीकर द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर, (c) वाद्य यन्त्र, गायन, नृत्य आदि द्वारा (बीड़ियों के विज्ञापन) (d) जुलूस निकाल कर, (e) बिना मूल्य वस्तुओं का वितरण करके।

iv अन्य साधन (a) इनामें देना, इनाम की वस्तुएँ छिपाकर रखना (b) मूल्य में रियायत करना; (c) विशेषताएँ बताना।

४—विज्ञापन के प्रकार—i सरकारी विज्ञापन, विज्ञप्तियाँ, समाचार, सूचनायें, कला का अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। किन्तु प्रचार कार्य की सूचनायें कलात्मक होती हैं, जैसे—(a) रेलों से यात्रा, लोडिंग अनलोडिंग, (b) जमींदारी-उन्मूलन, (c) साम्प्रदायिकता उच्छेद, (d) गांधीजी के सिद्धान्त आदि।

ii अर्द्ध सरकारी—प्राइवेट संस्थाओं के—म्यूनिसिपैलिटी, शिक्षा-संस्थायें, चिकित्सालय, अन्य संस्थायें।

iii व्यापारी—(a) वास्तविक विज्ञापन, (b) आकर्षण का ध्यान,

(c) व्यापारोन्नति की भावना से प्रेरित होकर, (d) अनेक साधनों का आश्रय ।

iv अन्य—(a) विवाह सम्बन्धी, (b) जन्म-मरण सम्बन्धी, (c) धन्यवाद–बधाई सम्बन्धी ।

५—विज्ञापन से लाभ—i सार्वजनिक प्रचार में अत्यन्त सुगमता, ii योग्य एवं उपयुक्त वस्तु-व्यक्तियों की प्राप्ति, iii व्यापार की उन्नति का साधन, iv अच्छी वस्तुओं से लाभ उठाने का अच्छा साधन, v विवाह, पदों के लिए व्यक्ति, जीविका-साधन आदि में सहायता, vi जानकारी, सुरुचि-वृद्धि, सार्वजनिक उपयोग, vii पत्र, चित्रपट आदि का व्यापारिक लाभ—विज्ञापन से आय ।

६—हानियाँ—विज्ञापनों में प्रचारित झूठ, ii गन्दे-अश्लील विज्ञापनों का बुरा प्रभाव, iii झूठे विज्ञापनों से अनेक कठिनाइयाँ, iv अनेक अनावश्यक वस्तुओं का व्यर्थ उपयोग ।

७—उपसंहार—i विज्ञापन में सत्य, सुरुचि तथा सद्भावना का ध्यान, ii कलात्मक के साथ-साथ आवश्यक वस्तुओं का प्रचार, iii झूठे, गन्दे, कुत्सित प्रचारों का परित्याग, iv वाञ्छनीय रूप की अभिवृद्धि ।

सामाजिक तथा धार्मिक निबन्ध

११—आज का नवयुवक

संक्षिप्त रूपरेखा

१—देश में नवयुवक का महत्त्व। २—आज का नवयुवक—एक रेखाचित्र*। ३—विशेषताएँ। ४—अनेक प्रभाव। ५—वाञ्छनीय रूप ६—देश और नवयुवक। ७—किस ओर?

निबन्ध—प्रत्येक देश में 'नवयुवक' एक विशेष स्थान रखता है। देश का भविष्य नवयुवकों के हाथों में ही होता है और जिस प्रकार की मनोवृत्ति प्रचलित हो जाती है, देश को भी उसी का अनुगमन करना पड़ता है। सर्वदा यही होता रहा है और भविष्य में भी होगा। इसीलिए तो कहा जाता है कि हमारी शक्तियों का बहुत कुछ अंश नवयुवकों का निर्माण करने की ओर होना चाहिये। यदि हम आदर्श नवयुवक बना सकें तो निश्चय ही हमारा देश भी आदर्श बन जावेगा क्योंकि नवयुवक ही तो देश का भावी कर्णधार है। देश के नेता तो योजनामात्र बना सकते हैं, पथ का निर्देश भी कर सकते हैं किन्तु उस पर जोश और उत्साह के साथ काम करने को तो नवयुवक ही चाहिएँ। योजना को क्रियात्मक रूप तभी दिया जा सकेगा जब उस पर दृढ़ता और धैर्य के साथ काम करने वाले हों। पथ पर अग्रसर हो निर्दिष्ट† स्थान पर पहुँचने के लिए भी इन्हीं गुणों की आवश्यकता है। और ये गुण 'नवयुवक' में ही पाये जा सकते हैं, अतएव वह देश में अत्यन्त महत्त्व रखता है।

इस स्थान पर हम भारतीय नवयुवक पर ही विचार कर रहे हैं, क्योंकि उसका चित्र ही हमें वस्तु-स्थिति का अच्छा परिचय करा

---

* Pen Picture, † निश्चित किया हुआ।

सकेगा। तीन-चार बातें आज के नवयुवक में विशेष रूप से लक्षित होती हैं:--

(१) विचार-स्वातंत्र्य।

(२) प्रगतिशीलता।

(३) विवाह सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण।

(४) पश्चिमीयता।

(५) कल्पना-प्रियता।

(६) मनोविनोद और उत्तरदायित्व की नूतनता।

आज का नवयुवक अपेक्षाकृत अपने विचारों में अधिक स्वतन्त्रता लिए हुए है। उसे यह बात सह्य नहीं कि जो बात होती आई है उसी पर जमा रहे। रूढ़िवादी* युवक कहीं ही देखने को मिलता होगा। बहुत से प्रश्नों पर उसका अपने परिवार के साथ मेल नहीं खाता, और नवयुवक इसकी चिन्ता भी नहीं करता; क्योंकि उसे तो एक अन्य ही प्रकाश मिला हुआ है और उसी प्रकाश से आलोकित हो उसे अपने मार्ग का निर्माण करना है।

प्रगतिशीलता† आज का नवयुवक न केवल विचारों में ही लिए हुए है प्रत्युत वस्त्र, वेश, भूषा, रहन-सहन एवं वार्तालाप आदि जीवन के प्रत्येक अंग में इसका उपासक है। वह चाहता है कि सभी क्षेत्रों में आगे बढ़े। पुरानी वेश-भूषा उसे पसन्द नहीं, पुराना रहन-सहन उसकी रुचि के अनुकूल नहीं, बातचीत में भी वह पुरानापन नहीं देखना चाहता। वैसे तो यह सब स्वाभाविक है, क्योंकि प्रत्येक देश और काल का नवयुवक प्रगतिवादी होता आया है। आज यह मनोवृत्ति अधिक बढ़ गई है क्योंकि अभी थोड़े समय से ही एक नवीन सभ्यता ने भारतीय सभ्यता से टकराहट ली है। यह नहीं कि आज का नवयुवक केवलमात्र पश्चिमीय सभ्यता का उपासक है। वैसे तो उसे अपनी प्राचीन संस्कृति पर गर्व है, परन्तु चाहता वह यह है कि उसकी प्राचीन संस्कृति नवीन आकार प्रकार से उसके जीवन का अङ्ग बने+ और उसके साथ आगे बढ़े।

* पुरानी परिपाटी वाला, † आगे बढ़ा हुआ, + दोनों संस्कृतियों का उपयुक्त सम्मिलन।

नवयुवक के जीवन में विवाह एक विशेष महत्त्व का प्रश्न होता है। इस सम्बन्ध में नवयुवक बहुत ही चिन्तनशील होता है और होना भी चाहिए, क्योंकि यह उसके सम्पूर्ण जीवन तथा सम्पूर्ण उन्नति से सम्बन्धित है। आज का नवयुवक विवाह को एक बन्धन समझने लगा है, वह चाहता है कि बहुत समय तक अविवाहित ही रहकर अपनी उन्नति करे। किन्तु हमारा व्यक्तिगत विचार यह है कि यह विचारधारा नितान्त कृत्रिम× है, और इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होता है जिनमें सबसे प्रधान कारण रुचि का होता है। नवयुवक को जब अपनी कल्पना का प्रतिरूप नहीं मिल पाता तब वह बहाने ढूँढने लगता है कि उसे यह चाहिए, वह चाहिये, उसके जीवन का उद्देश्य यह है, उसके आदर्श इस प्रकार हैं आदि। इसमें कितनी सचाई है और इसका कितना प्रतिपालन होता है यह तो नवयुवक महोदय ही जानें। यह अवश्य देखा जाता है कि विवाह जैसे प्रश्न को लेकर नवयुवक ने समाज में एक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न करदी है।

इस विचारधारा का कारण पश्चिमी† शिक्षा और सभ्यता बताए जाते हैं। अँग्रेजों के साथ पश्चिमीय सभ्यता और अँग्रेजी भाषा भारतवर्ष में आए, और यहाँ के नवयुवकों का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। वेश-भूषा, बातचीत की प्रणाली, चिन्तन की नवीनता, अनेक प्रश्नों के प्रति दृष्टिकोण, सभी पश्चिमीयता से प्रभावित हुए। इतना ही नहीं, नवयुवक के लिए एक नवीन संसार का निर्माण हुआ जो पहले की अपेक्षा अति विस्तृत था। उसकी चकाचौंध में वह अपना मार्ग भी भूल गया और एक अन्य ही दिशा में चल पड़ा; जहाँ पथ-भ्रष्ट हो जाने के कारण उसे इधर-उधर भटकना पड़ा। कर्तव्याकर्तव्य* का ज्ञान भी विलुप्त होगया और पूर्वीयता तथा पश्चिमीयता का एक ऐसा जटिल रूप उसके सामने आया जिसे सुलझाने की उसे आज तक क्षमता प्राप्त नहीं हो सकी है। इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि ये शिक्षा और सभ्यता नवयुवक के लिए सर्वथा हानिप्रद नहीं रहे। आधुनिक सभ्यता और उन्नति की दौड़ में

× बनावटी, * क्या करे क्या जो करे, † पश्चिमीय।

यह आवश्यक था कि नवयुवक इस समय की प्रवृत्ति और प्रणाली से भी अभिज्ञ होता, वह विज्ञान ÷ के उन चमत्कारों को भी जानता जिनके आधार पर संसार का नवनिर्माण हो रहा है, उस राजनीतिक प्रगति से भी परिचित होता जिसका जानना आज प्रत्येक सभ्य देश के लिए आवश्यक है, उसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय बनता जो आज के राजनीतिज्ञ का पथ-प्रदर्शन करता है। मानना पड़ेगा कि इस ओर पश्चिमीयता ने बड़ा लाभप्रद प्रभाव दिखाया है। यदि हम बिना सोचे-समझे, देश और काल पर बिना ध्यान दिए, भ्रमवश कुछ ऐसी बातें ग्रहण कर लेते हैं जो हमारे और हमारे देश के हित में हानिप्रद सिद्ध होती हैं तो इसमें दोष हमारा है।

एक बात देखी जाती है। आज का युवक कल्पना-प्रिय अधिक है—अनेक नवीन चित्रों का निर्माण कर उन्हें मिटाना और फिर नवीन-नवीन चित्र बनाते जाना उसकी प्रकृति में सम्मिलित होगया है। वैसे तो नवयुवक स्वभावतः ही कल्पनाप्रिय होता है किन्तु आज के युग में उसकी कल्पना-प्रियता अधिक बढ़गई है, और यही कारण है कि जब उसकी कल्पनाओं को ठेस लगती है तो वह अधीर हो उठता है। बहुत से नवयुवक तो इन ठेसों के कारण आत्महत्या तक कर डालते हैं। बातें करने की क्रिया, प्रगल्भता + और चातुर्य सम्भवतः आज के नवयुवक में अधिक हो किन्तु कर्तव्यशीलता और विवेचन* उस मात्रा में नहीं पाये जाते जिसमें होने चाहिएँ।

देश और काल के अनुसार मनोविनोद के साधन भी बदलते रहते हैं। किन्तु आज इन साधनों में कुछ समानता-सी आई दिखाई देती है। इसका कारण आवागमन और विचार-विनिमय के साधनों का माधुर्य है। एक चित्रपट को ही लीजिये। इस कला ने बहुत ही उन्नति की है और नवयुवक के लिए तो यह जीवन की सामान्य वस्तु बन गया है—क्योंकि नवयुवक जो कुछ चाहता है वह सब कुछ इनसे प्राप्त करता है, किन्तु वह एक चीज और भी प्राप्त करता है; वह है नितान्त कल्पनामय जगत् और

÷ वर्तमान युग—'विज्ञानयुग', + गहराई, * Analysis।

यही क्रम उसके जीवन में बहुत कुछ अशान्ति ला देता है। खेल-कूद के आधुनिक प्रश्रय सभी देशों में उसी प्रकार के पाये जाते हैं। नवयुवक अब कुछ विस्तृत विचारों वाला हो चला है अतएव उसके मनोविनोदों का क्षेत्र भी बढ़ गया है। इसके साथ ही नवयुवक के उत्तरदायित्व में कुछ नूतनता आई है। वह देश और राष्ट्र को अधिक समझने लगा है और उसको विदेशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय† पृष्ठभूमि के साथ सोचने लगा है। व्यावहारिक क्षेत्र में भी वह अधिक उत्तरदायित्वशील हो चला है, किन्तु इसके साथ उसमें स्वार्थ की भावना आगई है। वह अपना दायरा परिवार के अन्दर, छोटा बनाने लग गया है। उसे चिन्ता अपनी तथा विवाहित होने पर स्त्री की रहती है, कभी-कभी स्त्री की भी नहीं। वह उन सबों की ओर से उदासीन हो चला है जो उसकी ओर सहायता और सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं।*

आज का नवयुवक अनेक विशेषताएँ लिये हुए है---वह विश्व की समस्याओं में एक महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है तथा जीवन की दौड़ में अग्रसर होने की चेष्टा कर रहा है। आधुनिक विचारधारा ने उसे बहुत कुछ प्रभावित किया है। पिछले वर्षों का असमानता का व्यवहार उसे असह्य हो चुका है। जाति और वर्ग में समानता देखने का वह इच्छुक है। यही कारण है कि उसकी प्रवृति साम्यवाद + की ओर झुकी हुई है। यद्यपि साम्यवाद का यथेष्ट विरोध होरहा है, किन्तु एक नवयुवक के हृदय को देखो, उसमें यह वाद निश्चित रूप से अपना घर बनाये बैठा होगा। धार्मिक उदासीनता, राष्ट्रीय चेतना, अछूतोद्धार, वर्गविहीनता, असाम्प्रदायिकता के स्पष्ट आभास उसके वार्तालाप से प्रतीत होते हैं। किन्तु हम नवयुवक को स्वस्थ × रूप में नहीं देखते— न तो वह शरीर से ही स्वस्थ है और न मस्तिष्क से ही। उसका आचार-व्यवहार, जीवन आदि कृत्रिमता लिए हुए हैं और विचारों से घोर संघर्ष है— इस संघर्ष के बीच स्वस्थता किस प्रकार लक्षित हो। आज की समस्याओं ने नवयुवक को शारीरिक विकास के लिए भी अधिक उत्साहवर्द्धक अवसर नहीं दे रक्खा है। भोजन-समस्या

† International, * उसका परिवार, + कम्यूनिज़्म, × Healthy.

इतनी दुर्गम बनती जारही है कि स्वास्थ्यप्रद खाद्यों का मिलना बहुत कठिन होरहा है। सामाजिक एवं पारिवारिक प्रणालियाँ भी इस ओर सहायक नहीं, और फिर प्रचलित वातावरण तो उसे और भी प्रभावित कर रहा है। देशी और विदेशी अनेक प्रभाव उसके जीवन को वास्तविकता से हटाने का उद्योग कर रहे हैं।

नवयुवक का आधुनिक स्वरूप हमारे लिये चिन्ता का विषय है। हमें तो उसे ऐसा बनाना है कि हमारा क्रिया-कलाप सुचारु रूप से संगठित होकर चले। राष्ट्र की सम्पूर्ण उन्नति देश के नवयुवकों पर ही आश्रित है। चरित्र-बल, कर्मण्यता, धैर्य, तत्परता, विचारशीलता आदि ऐसे गुण हैं जिनके बिना हमारे नवयुवक हमारी आशाओं को पूरा नहीं कर सकते। हमें नवयुवकों में इन गुणों का संचार करना है। यह कार्य शिक्षा-संस्थाओं सामाजिक संगठनों* तथा अन्तर्राष्ट्रीय विचार विमर्श द्वारा किया जा सकता है। यदि नवयुवक चाहें तो आज की अन्तर्राष्ट्रीय कटुता थोड़े ही समय में दूर हो सकती है। देश और विदेश के विद्यालयों को देखिये और वहाँ के वातावरण का अध्ययन कीजिये। उसे देखकर निश्चय हो जाता है कि नवयुवक इस समस्या का हल बड़ी सरलता से कर सकते हैं। वहाँ न साम्प्रदायिकता होती है न वर्गवाद। हमें ऐसे ही नवयुवक चाहियें और उनके द्वारा देश तथा राष्ट्र का कल्याण—जिसमें विश्व-कल्याण† की भावना निहित हो। यही हमारी संस्कृति का ध्येय रहा है।

अतः हमें देखना है कि हमारे नवयुवक किधर जा रहे हैं उनके मार्ग में क्या कठिनाइयाँ हैं, वह कहाँ गिर सकते हैं, उलझ सकते हैं अथवा पथ-भ्रष्ट हो सकते हैं। यह समय जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है और साथ ही बहुत ही सूक्ष्म भी। थोड़ी-सी असावधानी करने पर बहुत कुछ अहित हो सकता है। प्राचीन काल में परिस्थितियाँ इतनी विषम नहीं होती थीं, वातावरण भी इतना संश्लिष्ट$ नहीं होता था और नवयुवक अपने जीवन का निर्माण विधिपूर्वक भव्य रूप में कर सकता था; किन्तु आज परिस्थिति

* Social organisations, † भारतीय संस्कृति का मूलाधार,
$ Complex उलझा हुआ।

बदल गई है और बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। आज के नवयुवक को अपनी कल्पना-प्रियता को कर्मठता से युक्त करना होगा, अपनी जीवन-समस्याओं को स्वयं ही उपयुक्त रूप से हल करना होगा; देश ही नहीं विश्व के हितों का ध्यान रखते हुए अपने मार्ग का निर्माण करना पड़ेगा। उसके सामने अनेक मार्ग हैं, अनेक विचार-धारायें हैं, अति विस्तृत क्षेत्र हैं—सावधानी के साथ चुनाव करने की आवश्यकता है। यदि हमारा नवयुवक अटक जाता है, अथवा उसका पथ प्रदर्शन उचित रूप से नहीं होता तो फिर जीवन भर उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है। देश के लिये एक सुसंगठित निर्माण-योजना[1] की आवश्यकता है और उसी के अनुसार नवयुवक अपने जीवन के मार्ग निर्धारित करें। हमें देखना है हमारे देश की आधुनिक आवश्यकताएँ क्या हैं, विश्व की आर्थिक, राजनैतिक विचारधारायें किस ओर जा रही हैं, अन्य देशों में क्या हो रहा है, किन बातों में उनका अनुकरण करना है और किस ओर स्वतन्त्र मार्ग का अनुसरण करना है। इन सारी बातों को देखकर योजना बनाई जावें और नवयुवक उन पर आरूढ़ होकर देश को आगे बढ़ावें।

विस्तृत रूपरेखा

१—देश में नवयुवक का महत्त्व—i भविष्य नवयुवकों के हाथ में। ii देश के भावी कर्णधार। iii योजनाओं को क्रियात्मक रूप देने वाले।

२—आज का नवयुवक—i विचार-स्वातन्त्र्य। ii प्रगतिशीलता—वेश, भूषा, विचार, रहन-सहन में। iii विवाहसम्बन्धी—कल्पना का योग, नवीन विचारधारा। iv पश्चिमीयता—पश्चिम की शिक्षा, संस्कृति, विचार, पूर्व तथा पश्चिम का संघर्ष। v कल्पनाप्रियता—नवीनता का निर्माण, क्रियात्मक रूप देने में कठिनाई, कर्तव्यशीलता की कमी। vi मनोविनोद, उत्तरदायित्व नवीन साधन, पश्चिमीय साधन, चित्रपट पश्चिमीय खेल-कूद, अपने की अपेक्षा देश के प्रति अधिक उत्तरदायी, स्वार्थबुद्धि।

---

[1] स्कीम।

३—विशेषताएँ—i समानता का भाव। ii साम्यवाद। iii वर्ग विहीनता। iv धार्मिक उदासीनता। v राष्ट्रीय चेतना। vi आत्मिक, शारीरिक तथा मस्तिष्क सम्बन्धी अस्वस्थता।

४—अनेक प्रभाव—i वर्तमान समस्याएँ-खाद्य समस्याएँ। ii सामाजिक तथा पारिवारिक प्रणालियाँ। iii पश्चिमीयता।

५—वाञ्छनीय रूप—i देश और राष्ट्र के लिये हितकारी। ii विश्वकल्याण की भावना से युक्त। iii चरित्र-बल, कर्मण्यता, धैर्य, तत्परता। iv शिक्षा-संस्थाओं द्वारा तथा सामाजिक संगठनों का प्रभाव उनके समुचित रूप की आवश्यकता।

६—किस ओर i मार्ग-निर्धारण। ii आज की परिस्थितियाँ विषम, वातावरण संश्लिष्ट। iii सावधानी से चुनाव की आवश्यकता। iv सुसंगठित निर्माण-योजना की आवश्यकता। v विश्व की आर्थिक राजनैतिक विचारधाराओं का ज्ञान। vi नवनिर्माण।

१२—हिन्दू-गृहिणी : एक रेखा-चित्र

संक्षिप्त रूपरेखा

१—हिन्दू गृहिणी - एक परिभाषा, २—बन्धनों का प्रारम्भ, ३—मेरे कमरे के आस-पास, ४—जीवन—एक दृष्टि, ५—एक उदाहरण—बच्चा किसका है ? ६—शिक्षित हिन्दू-गृहिणी, ७—अर्द्ध शिक्षित परिवार, ८—आवश्यकता क्या है ?

घर की चहारदीवारी तक ही जिसका संसार सीमित है; पति-देवता की सेवा और बच्चों का पालन-पोषण करने तक ही जिसका कर्तव्य सीमित है; रामायण और ब्रह्मानन्द भजन माला के कुछ पद्यों तथा अधिकतर साधारण लोक-गीतों तक ही जिसका ज्ञान सीमित है; कब किसका विवाह हुआ, कब किसके बच्चा हुआ इन्हीं बातों तक जिसकी सामाजिक भावना सीमित है; संसार क्या है, विज्ञान क्या है, मानव-जाति किस परिस्थिति में से गुजर

रही है इन फालतू की बातों से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं; वह है हिन्दू-गृहिणी जो मानव-जाति के दशांश भाग की जननी है, जिस पर आज भी नवोदित राष्ट्र के निर्माण का भार है। किन्तु उसे न अपनी महत्ता का ज्ञान है न अपने उत्तरदायित्व का। कवि मैथिलीशरण के शब्दों में—

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।
अबला-जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ॥*

हिन्दू-गृहिणी का सच्चा रेखा-चित्र है। आखिर नारी है, पुरुष की पूज्या जननी। और इसी जननी के गौरव से आक्रान्त होकर मनु महाराज ने एक बार तो कह दिया था—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'† किन्तु संभवतः थोड़े दिनों बाद ही उन्हें अपनी भूल मालूम हुई और बड़ी कठोरता से लिख डाला, 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'$। बस तभी से हिन्दू जाति ने नारी का बड़े से बड़ा अपमान किया है। सदियाँ हो गईं, उसे घर की सीमाओं के बाहर चरण रखने की आज्ञा नहीं मिली है। शिक्षा के वह अयोग्य समझी गई। वेद-पाठ उसके अधिकार से बाहर रखा गया। पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति का एक भाग वह भी होकर रह गई। ज्ञान-विज्ञान, युद्ध, कला आदि से उसका कोई स्वतन्त्र सम्बन्ध नहीं समझा गया। मानव-जाति की वृद्धि करने वाली एक प्राकृतिक मशीन जो किसी नामवर ×, जेम्सवाट + अथवा एडीसन ÷ ने नहीं, स्वयं त्रैलोक्यनाथ ने निर्मित करके हिन्दू पुरुष को सौंप दी है, जिस पर उसकी सवा सोलह आने बपौती है। यह है हिन्दू-गृहिणी, इससे अधिक कुछ नहीं।

मेरे कमरे के चारों ओर छोटे-छोटे मिट्टी के अनेक घर बने हुए हैं। खपरैलों और छोटी-छोटी पट्टियों से उनकी छतें बनी हैं। सायंकाल को मेरे कमरे की बिजली के प्रकाश में मुझे उन खपरैलों में से एक अजीब

---

* 'यशोधरा' से उद्धृत, † जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, $ स्त्री स्वातन्त्र्य के योग्य नहीं, × प्रसिद्ध, + वैज्ञानिक, ÷ आविष्कारक।

मायूसी* भूत की तरह घूमती हुई मालूम होती है। इन छोटे-छोटे घरों में से कुछ में आँगन भी हैं, जिनमें से एकाध में नीम के पुराने वृक्ष लगे हुए हैं। हिन्दुओं का मुहल्ला है, सभी एक तरफ से सनातन धर्मी। मैं अपने कमरे की छत पर बैठकर जब कभी प्रातः अथवा सायं जीवन-संघर्ष से व्याकुल अपने मस्तिष्क को कुछ ताजी वायु का सेवन कराने की चेष्टा करता हूँ, तभी मुझे इन खपरैलों के घरों में जिस भयानक जीवन-संघर्ष और पराजय के दर्शन होते हैं, उससे मैं घबरा जाता हूँ। छाया की तरह आँगन में घूमती हुई, कभी बर्तन मलती, कभी कपड़े धोती, कभी पतिदेव के शरीर में तेल मलती, कभी बच्चे को नहलाती, कभी दूध पिलाती एक दुबली-पतली पीली-पीली-सी नारी-मूर्ति अक्सर मेरे सामने के एक घर में दिखाई दिया करती है। सारे मुहल्ले में उसके गृहिणी-धर्म की प्रशंसा होती है। मुहल्ले के पुरोहितजी तथा अन्य बूढ़े-बड़े उसके नारी-कर्तव्य-पालन की सराहना मुक्त-कण्ठ से करते हैं। और एक दिन तो उसकी प्रशंसा करते-करते सनातन धर्म के महापण्डित पुरोहितजी मुझसे कह ही बैठे,—'क्यों बाबू, आपने अँग्रेजी पढ़ी है। अँग्रेज अथवा और किसी भी जाति में नारी का ऐसा कर्तव्यशील स्वरूप मिलता है? आह! क्या ही सुन्दर विधान किया है, हमारे पूज्य ऋषियों ने हिन्दू-गृहस्थ और हिन्दू-गृहिणी का।'

मुझे स्मरण नहीं, मैंने क्या उत्तर दिया पुरोहितजी को। पर शायद यही कहा होगा,—'नहीं पुरोहितजी, कहीं नहीं।' क्योंकि बात है भी सच; और कुछ विद्रोह-पूर्ण बात कह कर मैं पुरोहितजी का घण्टों का भाषण, पुराणों की सैकड़ों कथायें और अनेक संस्कृत के श्लोक और उनकी व्याख्या सुनने की हिम्मत नहीं रखता था। खैर! तो उस दिन की उस आदर्श हिन्दू-गृहिणी की समाज के कर्णधारों द्वारा मुक्तकण्ठ-प्रशंसा मेरे कानों में आज बड़े जोर से गूँज रही है, जब मैं हिन्दू-गृहिणी के जीवन को रेखा-चित्र में उतारना चाहता हूँ। मैं सोचता हूँ कब तक हिन्दू नारी पशु बनी रहेगी? क्या उसका कोई कर्तव्य नहीं है?

* उदासी।

और फिर अधिक विस्तार में चले चलिये। यह तो एक दिशा है, जिसमें हिन्दू-नारी अपने रक्त से पुरुष को जीवन-दान कर रही है। प्रातः-काल से सायं तक आँगन के एक कोने से होकर दूसरे कोने तक उसका कार्य-क्षेत्र रहता है। जब कभी उत्सव, विवाह, जनेऊ आदि विशेष अवसर आते हैं, तो इस गृहिणी को पुरुष के साथ बैठने का अधिकार मिल जाता है। उस समय इसके कैदी-जीवन में कुछ हलचल होती है; उसकी कला-प्रियता जागती है। अनेक लोक-गीतों को अपने प्रकृति-दत्त मधुर कण्ठ से गायन करके वह पुरुष का मनोरंजन भी करती है। अभावों, उदासी, मायूसी और क्षणिक उल्लास के इन्हीं उतार-चढ़ावों में होकर हिन्दू-गृहिणी की जीवन-धारा न जाने कितने वर्षों से बहती चली आरही है, और बहती जायेगी। प्रतिपल संसार कितना आगे बढ़ता जारहा है, इसे कुछ पता नहीं। अज्ञान के अन्धकार में इसी प्रकार यौवन कट जाता है। पति-महोदय की डाट-फटकार और कभी-कभी एकाध प्यार की बात इसके लिए जीवन का सबसे बड़ा वरदान है। यदि कुटुम्ब भरा-पूरा है, तो हिन्दू-गृहिणी के उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ जाते हैं। घर के छोटे-से-छोटे शिशु से लेकर वृद्धतम पितामह तक की वह लौंडी होती है। सभी का कार्य उसे करना होता है। उसे अधिकार नहीं कि अपना अस्तित्व आदर के साथ स्थापित कर सके। और फिर, ईश्वर न करे, दुर्भाग्य ने और भी करारा धक्का दिया, और हिन्दू-गृहिणी को जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप वैधव्य* यदि प्राप्त हो गया; तो समझ लीजिये दुनिया के किसी देश, किसी जाति और किसी जीवित प्राणि-समूह में उसके समान अभागा कोई अन्य प्राणी नहीं। जब कभी हिन्दू-पुरुष विधुर हो जाता है, तो प्रसन्नता होती है, उसके माता-पिता और कुटुम्बियों को। इसलिये कि दूसरे विवाह में दहेज और भी मिलेगा, कुछ धन-वृद्धि होगी ही। नारी का मूल्य पैसे से आँका जाता है हिन्दू-कुटुम्ब में। किन्तु दुर्भाग्य से नारी यदि विधवा हो गई, तो उसके जितने भी मानवीय अधिकार हैं, सब छीन लिए जाते हैं। शुभ अवसर पर उसका मुख नहीं देखा जाना चाहिये। घर का

* विधवा हो जाना।

नीचे से नीचा कार्य करने को उसे ही सर्व प्रथम समय मिलना चाहिये। आदि-आदि।

यह सब बातें मैं अपने गाँव और प्रान्त तथा सारी हिन्दू-जाति में नित्य प्रति देखता हूं। इस सबको देखते-देखते मुझे कुछ ऐसा अभ्यास-सा पड़ गया है कि इतनी अमानवीय घटनाओं में भी कोई नूतनता दिखाई नहीं पड़ती, और उस दिन–जब हिन्दू कोडबिल का ड्राफ्ट मैंने पढ़ा, तो बड़ी प्रसन्नता हुई मन को: किन्तु तभी तक मेरे कमरे से नीचे एक घर में से किसी नारी-कण्ठ के रोने की आवाज आई। रात के ग्यारह बजे थे। पतिदेव अपनी पाणि-गृहीता पत्नी को घर से निकाल रहे थे। पौष की रात थी। बच्चा बीमार था, माँ को उससे इसलिये अलग किया जारहा था कि उसने पतिदेव की इच्छा-पूर्ति नहीं की थी। कोडबिल में तलाक के अधिकार को मैंने पढ़कर समाप्त ही किया था कि यह चीख-चिल्लाहट! मुझे तलाक की बातों का नया-नया नशा-सा था। मैं बाहर निकला, कुछ अन्य मुहल्ले वाले भी आगये थे। लोग कह रहे थे—'भाई, अपने पति की सेवा तो पहला काम है।' युवती खड़ी-खड़ी शीत में काँप रही थी, मार के कारण रो रही थी और बच्चे की कराहों को सुन-सुनकर उसके हृदय में जैसे बिजली कौंध उठती थी। भीतर से पति की गरजती हुई आवाज आई—'जा चुड़ैल, तेरी सींग समाये वहाँ जा, मुझे नहीं है तेरी जरूरत।' मैंने सुना, युवती ने सिसकते हुए किन्तु अत्यन्त क्षुब्ध और विवश स्वर में कहा—'मुझे मेरा बच्चा दे दो।'

और सभी उपस्थित लोगों के देखते-देखते माता की इस उचित माँग पर पति महोदय का पारा १३२ पर पहुँच गया। भीतर से लाठी लिए निकले; तीन-चार उसकी निर्बल पीठ में ठोकते हुए कहा—'तेरे बाप का है बच्चा।'

मैं अधिक नहीं सह सका। झटका-सा खाकर अपने कमरे में लौटकर धड़ाम से किबाड़ बन्द कर लिए। अपनी शय्या पर गिरकर सोचने लगा—'आखिर बच्चा किसका है? माँ का या बाप का?'

यह है हिन्दू-गृहस्थ-जीवन का एक चित्र, जिसमें भरी हुई अनेक रंग-

विरंगी रेखाएँ, आप किसी भी ग्रामीण अथवा अपढ़ मुहल्ले में चले जाइये, किसी भी समय मिल जायेंगी।

किन्तु एक दूसरा चित्र भी है, जिसके बिना आपका ज्ञान अधूरा रह सकता है। आप कह सकते हैं, यह सब अशिक्षा का प्रभाव है। शिक्षित घरों में ऐसा कभी नहीं होता। एक शिक्षित हिन्दू-गृहिणी का जीवन पूर्ण-तया सुखमय होता है। वह देश-विदेश की समस्याओं को समझती भी है। अपने उचित कर्तव्य को भी जानती है। आत्म-सम्मान की रक्षा भी कर सकती है। स्वावलम्बिनी* होने के कारण आर्थिक दृष्टि से पति के हाथ की पुतली भी नहीं बनती। इन सब बातों को देखकर एक शिक्षित हिन्दू-गृहिणी का रेखा-चित्र अवश्य ही बड़ा सुन्दर और आनन्ददायक हो सकता है। किन्तु मेरा उद्देश्य यहाँ न तो हिन्दू-गृहिणी के जीवन का केवल अन्धकार-ही-अन्धकार है न केवल प्रकाश-ही-प्रकाश। अपने रेखा-चित्र में मैं जहाँ काली रेखाएँ दिखाऊँगा, वहाँ उजली रेखाओं के प्रस्तुत करने में भी संकोच नहीं करूँगा।

यह सही है कि शिक्षित हिन्दू-गृहिणी का जीवन सुखमय होता है, और यदि शिक्षा का पूर्ण प्रसार हो जाय तो फिर हिन्दू-गृहस्थ का जीवन स्वर्ग हो जाय। किन्तु क्षमा कीजिये, उस समय वह गृहस्थ-जीवन भारतीय-का जीवन हो जायगा, 'हिन्दू-गृहस्थ' का नहीं। 'हिन्दू-गृहस्थ' से मैं जो अर्थ लेता हूँ, वह यही कि आज हिन्दू-जाति जिन रूढ़ियों और परम्पराओं में जकड़ी पड़ी है, उन्हीं को और सुदृढ़ करते रहने वाला कुटुम्ब। यदि शिक्षा के प्रभाव से गृहस्थ-जीवन अधिक प्रगतिशील हो गया, नारी को उसका उचित स्थान मिल गया, तो फिर मैं उसे स्वतन्त्र भारत के भारतीय कुटुम्ब का गृहस्थ-जीवन कहूँगा।

और आज के अच्छे शिक्षित हिन्दू-कुटुम्बों की दशा देख लीजिये। पति महोदय बड़े विद्वान्, अनेक डिग्रीधारी हैं, किन्तु पत्नी बेचारी वही 'काला अक्षर भैंस बराबर'। फलतः जीवन की कटुता बढ़ते-बढ़ते नरक हो जाती है।

---

* अपने पर निर्भर रहने वाली।

जहाँ शिक्षा है, वहाँ प्रतिक्रिया-स्वरूप हिन्दू-नारी में उच्छृङ्खलता* आगई है। पश्चिम की नकल की चेष्टा में भारतीय नारी अपनी स्वाभाविक ममता को खोये दे रही है। वह अपने अपमान की रक्षा तक ही सीमित नहीं रहना चाहती; पुरुष को अपमानित भी करना चाहती है। शायद वह भूल रही है कि उसकी मार्ग-दर्शिका पश्चिमी नारी भी केवल पुरुष को आकर्षित करने के लिए इतने बनाव-शृङ्गार करती है कि उसके जीवन का आधा भाग सजावट में ही खर्च होता है। वह और भी अपने कर्तव्य के प्रति विमुख है।

ऐसी दशा में आगामी दिनों की भारतीय, विशेषकर हिन्दू-गृहिणी को अपना स्वरूप किस प्रकार का स्थिर करना चाहिये, यह एक विवादास्पद विषय है और इस रेखा-चित्र की सीमा के बाहर भी। अतः उसका संकेत मात्र करके हम छोड़ना चाहेंगे। पाश्चात्य सभ्यता में यदि किसी बात की कमी है, जिसके कारण अद्भुत उन्नति करके भी वह इतने शीघ्र विनाश-पथ पर अग्रसर हो रही है, तो वह है ममता की भावना। भारतीय जीवन में ममता और प्रेम इतना अधिक है कि उसी के कारण भारत अभी तक जीवित है, अन्यथा इतने तूफानों को सहन करके अपनी संस्कृति को बनाये रखना हँसी-खेल नहीं। यदि भारतीय नारी पश्चिम से शिक्षा, स्वच्छन्दता, आत्म-सम्मान और समानता लेती है, तो उसे अपना चिर संचित ममता और प्रेम किसी भी दशा में छोड़ना नहीं चाहिये। इन दोनों के संयोग से भारतीय गृहिणी अपने देश के जीवन को स्वर्ग बना सकती है।

क्या हम हिन्दू-गृहिणी के लिए इस प्रकार के रंगों की कल्पना करें?

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दू गृहिणी एक परिभाषा—i संसार : घर की चहारदिवारी। ii कर्तव्य : पति-सेवा। iii ज्ञान : भजन और लोकगीत। iv सामाजिकता :

* सीमा से बाहर जाने की प्रवृत्ति या धृष्ट स्वच्छन्दता।

विवाह और बच्चों की बात । v स्थिति : मानव-जाति के दशांश भाग की जननी, नवोदित राष्ट्र-निर्मात्री । vi मैथिलीशरण की पंक्तियाँ ।

२—बन्धनों का प्रारम्भ—i मनु की दो आज्ञाएँ । ii मानव उत्पन्न करने की ईश्वर-निर्मित एक मशीन । iii पति की सवा-सोलह आने बपौती ।

३—मेरे कमरे के आस-पास—i सनातन धर्मियों का मुहल्ला । ii खपरैलों के एक घर में हिन्दू-गृहिणी की चलती-फिरती छाया । iii कर्तव्य-पालन की प्रशंसा । iv पुरोहित जी का प्रश्न ।

४—जीवन–एक दृष्टि—i साधारणतया कार्यक्षेत्र, गृह और आँगन । ii उत्सव आदि के विशेष अवसर और सौभाग्य । iii भरे पूरे कुटुम्ब और उत्तरदायित्व । iv वैधव्य : सबसे बड़ा दुर्भाग्य । v पति और शिशु के बीच ।

५—एक उदाहरण–बच्चा किसका है ? i हिन्दू कोडबिल की तलाक-धारा । ii मेरा अनुभव । iii बच्चा किसका है ?

६—शिक्षित हिन्दू-गृहिणी—i आर्थिक स्वावलम्बन । ii समानता, आत्म-सम्मान और ज्ञान । iii सुन्दर प्रतीत होने वाला जीवन । iv यूरोपीय नारी की नकल और कृत्रिम सज्जा ।

७—अर्द्ध शिक्षित परिवार—i पति-पत्नी की दशा में कोसों का अन्तर ।

८—आवश्यकता क्या है ? i भारतीय ममता को पाश्चात्य सम्मान से मिलाया जाय । ii स्वतन्त्र भारत की आवश्यकता ।

१२—स्वतंत्र भारतीय समाज में नारी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—समाज के दो अंग—पुरुष और नारी । २—स्वतन्त्र भारतीय समाज—उसके दो काल । ३—प्राचीन स्वतन्त्र भारतीय समाज में नारी का स्थान । ४—अभिनव स्वतन्त्र भारतीय समाज की पृष्ठभूमि में नारी । ५—आज के तथा आगामी काल के समाज में नारी का महत्त्व । ६—

हिन्दूकोड बिल और भारतीय नारी। ७—भारतीय नारी की शक्ति और विशेषता। ८—समाज-निर्माण की नारी से आशा।

निबन्ध—'सियाराम मय सब जग जानी' कहते समय तुलसीदास के मस्तिष्क में समाज के नारी और पुरुष दोनों अंगों का उचित महत्त्व समाया हुआ था। ब्रह्म और माया, शिव और शक्ति तथा पुरुष और नारी एक ही विकास-क्रम की सीढ़ियाँ हैं। पुरुष और स्त्री प्रकृति से ही एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के संयोग से एक अन्य मानव की उत्पत्ति इसी तथ्य की परिचायिका है। किन्तु पूरक होते हुए भी सृष्टि के आदि-काल से ही इन दोनों में एक मानसिक मैत्री का ही भाव रहा; भौतिक दृष्टि से दोनों द्वन्द्व में उलझे रहे। *पितृप्रधान और † मातृप्रधान समाज-विधान इस बात के साक्षी हैं। कहा जाता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मानव-समाज मातृ-प्रधान ही था। बाद को पुरुष के कुछ प्राकृतिक गुणों ने उसे प्रधान बना दिया। इस परिवर्तन-क्रम को कवि ÷ ने इस प्रकार प्रकट किया है :—

"तुम भूल गये पुरुषत्व-मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति की दृष्टि में मानव-समाज में जो महत्त्व पुरुष का है, उससे रत्तीभर भी कम नारी का नहीं।

भारतीय समाज स्वतन्त्रता-परतन्त्रता की दृष्टि से तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है:—१—पश्चिमी साम्राज्यवाद + का दास होने के पूर्व स्वतन्त्रता का काल २—साम्राज्यवादी आधिपत्य में परतन्त्रता का काल ३—आधुनिक भारतीय स्वतन्त्रता का काल। इन तीनों कालों में स्वतन्त्रता के काल प्रथम और तृतीय हैं। इन दोनों कालों के स्वतंत्र भारतीय समाज पर विचार किए बिना हम "स्वतंत्र भारतीय समाज" की सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पायेंगे। विदेशी साम्राज्यवाद के आगमन के

* Patriarchal Society, † Matriarchal Society, ÷ कामायनी महाकाव्य में श्री जयशंकरप्रसाद की पंक्तियाँ, + Western Imperialism।

पूर्व ही भारतीय समाज में अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों का मिश्रण हो चुका था। इन सभी का प्रभाव नारी की स्थिति पर बहुत कुछ पड़ा। जैसे वेदों में नारी की जिस स्थिति का चित्र है, वह बड़ा ही गौरवपूर्ण है। उस काल की नारी इतनी अधिक आगे थी कि वेदों की ऋचाओं के सृजन में अनेक विदुषी ऋषिपत्नियों का हाथ था। इसके पश्चात् स्मृति-काल में जहाँ नारी को सम्मानित रखने की चेष्टा की गई, वहाँ उसका स्वातंत्र्य-अधिकार भी कुछ-कुछ छीना जाने लगा। स्मृतिकार कह सकते थे कि 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' ×

वहीं यह भी कह सकते थे कि—

"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।"*

इसी परिस्थिति में से गुजरती हुई भारतीय नारी ने पौराणिक युग में प्रवेश किया। इस समय तक अनेक विदेशी जातियाँ ÷ भारतीय समाज से सम्बद्ध हो चुकी थीं। इन सभी की संस्कृतियों का प्रभाव भारत की आर्य-संस्कृति पर पड़ा; फलस्वरूप एक नवीन संस्कृति का निर्माण हुआ, जो आर्य संस्कृति न रहकर भारतीय संस्कृति कहलाई। इस परिवर्तन के फलस्वरूप नारी के अधिकार और उसकी स्थिति भी परिवर्तित हुई। पुरुष की वैयक्तिक सम्पत्ति तो वह पहले ही हो चुकी थी, अब तो उसके सम्मान और चरित्र की रक्षा के बहाने पुरुष ने उसे घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया। और मध्ययुग के अन्त तक आते-आते भारतीय नारी-पुरुष के विलास की सामग्री मात्र रह गई। उसके आँसू पुरुष के मनोरंजन का विषय बने। उसके शरीर का सौन्दर्य पुरुष के उपयोग का प्रमुख प्रसाधन बना। नारी अपने प्राकृतिक स्तर$ को खो बैठी। नारी की स्थिति के इस पतन का उत्तरदायित्व समाज के निर्माता और पथप्रदर्शक ऋषियों, राजनीतिज्ञों तथा कवियों पर था। यहाँ पुरुष नारी की भावनाओं से खुल कर खेल रहा था। इस कटु प्रक्रिया में भारतीय समाज अपने शौर्य

× जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।—मनुस्मृति, * स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है—मनु, ÷ शक, हूण, मुसलमान आदि, $Natural Standard।

और तेज का बहुत अंश खो बैठा। तभी पाश्चात्य जातियों का आधिपत्य देश पर हुआ। कहना न होगा कि भारतीय नारी के तेजोहत होने से भारत के दास होने में कितनी बड़ी सहायता मिली।

दासता के इस युग को हम अभिनव स्वतन्त्र भारत की पृष्ठभूमि* के रूप में देखते हैं; क्योंकि इस दासता के फलस्वरूप हमें अपने खोये अतीत† की याद आई, हमने अपना विस्मृत§ स्वरूप पहचाना। पश्चिम के स्वतन्त्र नारी-समाज के चकाचौंध करते हुए तेज ने हमारी गृह-कारा$ में बन्द नारी के पीले‡ शरीर का झकझोर दिया। दासता के इस युग में जिस प्रकार भारतीय पुरुष ने अचानक अपने हृदय में आत्म-गौरव के तार की झंकार सुनी, उसी प्रकार भारतीय नारी ने भी आत्म-जागृति की प्रकाश-किरणों से चकाचौंध होकर पलकें खोलीं। स्वतन्त्रता-संग्राम में इसी नव-जाग्रत अलसाई हुई नारी-चेतना ने शक्ति भर भाग लिया। एक बार फिर भारतीय संस्कृति ने विदेशी संस्कृति को आत्मसात्× करने का सफल प्रयत्न किया है, और आज स्वतन्त्र भारत अपनी प्राचीन सुदृढ़ संस्कृति की नींव पर मानवी ज्ञान-विज्ञान के आधुनिकतम विकास से लाभ उठा कर एक नवीन महल खड़ा करने जा रहा है। इस निर्माण में नारी का क्या महत्त्व होगा, इसी पर हमें आगे की पंक्तियों में विचार करना है।

भारत की स्वतन्त्रता अभी तीन वर्ष की बालिका है। इस बालिका का स्वरूप गढ़ने में मानवी समाज के अर्द्धाङ्ग‖ पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। यद्यपि भारत के स्वतन्त्र होने के बाद भी भारतीय नारी आज भी परतन्त्र ही है। आज भी कवि मैथिलीशरण के शब्दों में हम उससे कह सकते हैं—

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥'+

किन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आज की

---

* Back gronud, † भूतकाल, § भूला हुआ, $ घर की चहारदीवारी, ‡ Pale, × अपने में पचा लेना, ‖ Better half, + 'यशोधरा' से उद्धृत।

भारतीय नारी सचेतन हो चली है। यद्यपि अभी भी परमुखापेक्षिता × उसका प्रमुख स्वभाव है, किन्तु पाश्चात्य वातावरण के प्रभाव स्वरूप उसने अपना सिर ऊंचा करना अवश्य सीखा है। किन्तु भारत के नारी-समाज का बहुत बड़ा अंग अभी भी उसी दशा में है, जिसमें वह सदियों से रहा है। अशिक्षा और आर्थिक दासता ये दो भयानक अभिशाप हैं जो भारतीय नारी के जीवन को खाये जा रहे हैं।

गांधीजी ने भारतीय नारी के उद्धार के अनेक प्रयत्न किये। नारी-जीवन से सम्बन्धित उनका एक अलग दर्शन था। किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी-जीवन के पुनरुद्धार के लिये जो प्रयत्न सामने आये हैं, उनमें काँग्रेस-सरकार द्वारा आयोजित हिन्दू कोडबिल$ ही कुछ आशाजनक है। वैसे अनेक प्रतिक्रियावादी तत्व इस बिल के विरोध में भरसक शक्ति लगा रहे हैं, किन्तु यदि यह मान कर चलें कि यह बिल यथावत् रूप में भी पास हो जाता है तो हम यह नहीं कह सकते कि नारी के उद्धार के लिये यह श्रेष्ठतम प्रयत्न होगा। किन्तु इतना कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता कि हिन्दू कोडबिल हिन्दू समाज में आमूल क्रान्ति उपस्थित करना चाहता है। लड़की को भी पैतृक सम्पत्ति की भागीदार बनाकर उक्त बिल नारी को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र करने की ओर बढ़ता है, साथ ही* तलाक की प्रथा का प्रचलन करने की अनुमति देकर दो पत्नी रखने की प्रथा पर बन्धन लगा कर तथा अन्य कुछ विशेष अधिकार नारी को देकर इस बिल द्वारा भारतीय नारी की कट्टर दासता को बहुत दूर तक हटाने की चेष्टा की जा रही है। इस प्रकार शिक्षा के प्रचार, पुरुष-समाज के अनेक मनीषियों† की उदार-चेता वृत्ति§ तथा कोडबिल‡ प्रभृति शासकीय प्रयत्नों द्वारा आज की भारतीय नारी अपने स्वर्ण-भविष्य के स्वप्न देख रही है।

हम नहीं सोच सकते कि कोई भी स्वतन्त्र समाज नारी की रचना-शक्ति का लाभ उठाये बिना जीवित रह सकेगा। निबन्ध के प्रारम्भ में हमने पुरुष

× दूसरे का मुँह देखना, $ केन्द्रीय विधान सभा में विचाराधीन (मार्च १९५१), * Divorce system. † Thinkers. § Generous mentelity. ‡ इत्यादि।

और नारी के समग्र महत्त्व पर विचार किया है। यहाँ हम यही कहना चाहते हैं कि भारतीय नारी समाज-निर्माण, समाज-व्यवस्था एवं समाज-शासन में कभी भी पुरुष से पीछे नहीं रही है। नारी के योग से पुरुष की ऊबड़-खाबड़× सृष्टि कलात्मक हो जाती है। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारा समाज तभी कलात्मक रूप से नव निर्मित हो सकेगा, जब नारी अपना योग दे। क्या भारतीय नारी अपने समाज को एक बार फिर स्वर्ग बनाने का आदर्श लेकर साधना करेगी? क्या फिर मैत्रेयी, गार्गी, दमयन्ती मीरा और लक्ष्मीबाई इस सद्य-जाग्रत जाति में नव जीवन भरेंगी?

विस्तृत रूपरेखा

१—समाज के दो अंग पुरुष और नारी—i ब्रह्म और माया, शिव और शक्ति पुरुष और नारी एक ही विकास-क्रम की सीढ़ियाँ। ii दोनों एक-दूसरे के पूरक। iii एक मानसिक मैत्री, किन्तु भौतिक दृष्टि से उलझन। iv पितृ-प्रधान और मातृ-प्रधान समाज-विधान। v धीरे-धीरे परिवर्तन क्रम।

२—स्वतन्त्र भारतीय समाज—उसके दो काल—i भारतीय समाज के तीन काल। ii स्वतन्त्रता के दो काल।

३—प्राचीन भारतीय समाज में नारी—i पश्चिमी साम्राज्यशाही से पूर्व का काल। ii आधुनिक भारतीय स्वतन्त्रता का काल। iii वेदों में नारी की स्थिति—ऋचा-निर्माण। iv स्मृति कालीन नारी। v पौराणिक युगीन नारी। vi आर्य-संस्कृति में अनेक अन्य संस्कृतियों का मिश्रण। vii पुरुष की प्रधानता और नारी की दासता। viii नारी के आँसू पुरुष के मनोरंजन के साधन। ix इसका उत्तरदायित्व ऋषियों, राज-नीतिज्ञों और कवियों पर।

४—अभिनव स्वतन्त्र भारतीय समाज की पृष्ठभूमि में नारी—i पाश्चात्य शिक्षा की चकाचौंध और प्रभाव। ii विदेशी संस्कृति को एक बार

× rough and raw.

फिर आत्मसात करने का प्रयत्न। iii स्वातन्त्र्य-संग्राम में भारतीय नारी का योग।

५—वर्तमान और भविष्य समाज की नारी—i बालिका स्वतन्त्रता का स्वरूप गढ़ने में अर्द्धांग का योग। ii भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् भी नारी की परतन्त्रता-मैथ्लिशरण की उक्ति। iii किन्तु नारी में सचेतनता का आभास। iv परमुखापेक्षिता प्रमुख-स्वभाव। v अशिक्षा और आर्थिक दासता-भारतीय नारी के भयानक अभिशाप।

६—हिन्दू कोडबिल और भारतीय नारी—i गांधीजी के प्रयत्न। ii हिन्दू कोडबिल। iii विरोधीतत्वों का विरोध। iv सम्पूर्णतम प्रयत्न तो नहीं किन्तु समाज में आमूल क्रान्ति अवश्य उपस्थित करता है। v बिल का परिचय। vi भविष्य की आशा।

७—नारी की शक्ति, विशेषता और आशा—i नारी कभी पीछे नहीं रही। ii पुरुष की ऊबड़-खाबड़ सृष्टि में कलात्मकता नारी का योग। iii भारतीय नारी से आशा।

१४—भारत की धर्म-प्रियता

संक्षिप्त रूपरेखा

१—अति प्राचीन काल से धर्म-प्रियता, २—जीवन के संपूर्ण अङ्गों में व्याप्त—सामाजिक कृत्य, सामान्य व्यवहार तथा नित्यप्रति के कार्यों में, ३—इस अभिरुचि के कारण चिन्तन की सुविधा, देश की रम्यता, प्रकृति का स्वरूप, ४—इस प्रवृत्ति का परिणाम—आस्तिकता, भाग्यवाद, कुछ कृत्रिम-स्वरूप, ५—आधुनिक अवस्था—पश्चिमीय शिक्षा और सम्पर्क का प्रभाव, आधुनिक विचार-धारा, राजनीति, ६—भारतीय जीवन और धर्म, ७—उपसंहार—हमारी संस्कृति पर धार्मिक छाप सर्वदा रहेगी।

निबन्ध—भारत में यदि कोई सबसे विशेष बात रही है तो वह है

यहाँ की धर्म-प्रियता*। संसार के किसी भी देश में जीवन से धर्म का इतना गहरा सम्पर्क हम कदापि नहीं पा सकते। हमारे जीवन के प्रत्येक अंग में यह व्याप्त हो गया है और किसी भी प्रकार हमारा जीवन इससे शून्य नहीं हो सकता। धर्म के विशेष निरूपण का तो यह स्थान नहीं, और न हमें धर्म के स्वरूप का ही निदान करना है, हमें तो इस स्थान पर, केवल इतना कहना है कि हमारी सभ्यता के अति प्राचीन काल से धर्म हमारे जीवन का सर्व प्रमुख अङ्ग रहा है। धर्म क्या है? इसकी व्याख्या करना तो अप्रासंगिक† होगा, किन्तु जिसे भी हम धर्म कहते हैं, वह हमारे जीवन के साथ अच्छी तरह घुल-मिल गया है। धर्म का बाह्य रूप क्रियात्मक होकर समय-समय पर अभिलक्षित§ होता है। वैदिक कालीन सभ्यता से ही हम अपने जीवन में धर्म का उत्कृष्ट स्थान देखते हैं और निरन्तर जीवन के साथ इसका सम्बन्ध अधिकाधिक गहरा होता हुआ प्रतीत होता है। समय के प्रभाव से हमारे ऊपर अनेक कठिनाइयाँ आईं, हिन्दू धर्म पर भी घोर अत्याचार हुए, राम और कृष्ण का नाम लेने वाले तलवार के घाट उतारे गये। धर्म-परिवर्तन के उपरान्त अनेक प्रलोभन दिखाई दिये, किन्तु यह सब हमें अपने धर्म से विचलित न कर सका। इसका कारण है धर्म का हमारे जीवन में अत्यन्त गहराई तक पहुँच जाना, जहाँ से उसका उन्मूलन × हो ही नहीं सकता। यह प्रकरण हमें कुछ साम्प्रदायिकता की ओर ले आता है, किन्तु भारत और हिन्दुत्व एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जा सकते, अतएव भारत की धर्म-प्रियता के साथ हमारा अभिप्राय हिन्दू-धर्म से हो जाता है। इसी दृष्टिकोण से हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

हमारे जीवन के प्रत्येक अङ्ग में धर्म पूर्ण रूप से व्याप्त है। बच्चा जब से गर्भ में आता है और जब तक पंचत्व + को प्राप्त करता है धर्म उसके साथ-साथ रहता है, किसी भी अवसर पर धर्म उसे छोड़ता नहीं। हमारे जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अङ्ग को संस्कार रूप में धर्म से सम्बन्धित किया

* धर्म को बहुत प्रिय समझना, † प्रसंग से बाहर, § दिखाई देना, × उखाड़ना, + मृत्यु।

गया है। गर्भाधान से लेकर अन्त समय तक १६ सुप्रसिद्ध संस्कार* हैं, जिन्हें हम यथोचित रूप में मनाते है। जीवन का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य किसी न किसी प्रकार के धार्मिक कृत्य से खाली नहीं। इतना ही नहीं, सामान्य व्यवहार और नित्य प्रति के कर्तव्य में भी धार्मिक अभिरुचि और प्रवृत्ति प्रस्तुत रहती है। स्नान करने के पूर्व यह मन्त्र बोलना चाहिये; शैय्या परित्याग करते समय इस मन्त्र का उच्चारण हो; प्रस्थान करते समय अमुक मन्त्र का पाठ होना कल्याणकारी है, किसी कार्य को करने के पूर्व इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। भोजन से पूर्व और उपरान्त के ये मन्त्र हैं। सोते तथा जागते समय इन विभिन्न मन्त्रों का क्रमशः उच्चारण करना चाहिये—इस प्रकार अन्य भी सभी क्रिया-कलापों को धार्मिक रूप में ढाला गया है और एक धार्मिक हिन्दू का जीवन धर्म का ही प्रतिरूप हो गया है। एक बात हमें इस स्थान पर स्वीकार करनी पड़ेगी कि इन मन्त्रों, श्लोकों एवं प्रार्थना के द्वारा कई प्रकार की बातें साध्य हैं। कुछ के द्वारा हमारे सामने कुछ अनुकरणीय† उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं, किन्हीं के द्वारा काम में जल्दबाजी करने को रोका जाता है, कुछेक हमें किन्हीं पूर्व वृत्तान्तों का स्मरण दिलाते हैं, जिनके द्वारा हमें जीवन में उत्साह और आशा प्राप्त होते हैं। किन्तु इनका जो सामान्य रूप बन गया है तथा अज्ञान के कारण जनता ने जो मनमाना रूप बना लिया है वह हमारे लिए अनेक अवसरों पर हानि और निराशा का कारण बन जाता है। किसी भी बात को करने के पूर्व हमें उसके तथ्य पर, उसकी वास्तविकता पर ध्यान देना चाहिये और इसके लिए सच्चे ज्ञान की आवश्यकता है। सच्चे ज्ञान की पृष्ठभूमि पर ही हम सब बातों का यथार्थ अभिप्राय समझ सकते हैं।

इस अभिरुचि के इतनी अधिक मात्रा में होने के कई कारण हैं। हमारे देश में चिन्तन$ की सुविधा रही। जीवन-यापन‡ इतनी कठिन समस्या न बन सकी जितनी अन्यत्र; प्रकृति का हम भारतीयों के ऊपर परम

* गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जन्म, कर्णवेध आदि, † अनुकरण करने योग्य, $ सोचना, मनन ध्यान करना, ‡ जीवन बिताना।

अनुग्रह रहा, नित्य प्रति की आवश्यकतायें थोड़े ही परिश्रम के पश्चात् सरलता-पूर्वक पूर्ण हो जाती थीं। ऐसी अवस्था में हमारे पूर्वजों को अनेक समस्याओं पर विचार करने का यथेष्ट अवसर मिला। उन्होंने जीवन के अनेक अङ्गों का ही अध्ययन नहीं किया, वरन् प्रकृति के विचित्र पदार्थों को देखते-देखते उन पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया और आध्यात्मिक पक्ष की सृष्टि हुई। लौकिक विषयों से पारलौकिक प्रसगों तक अच्छी तरह अध्ययन किया गया। आत्मा और परमात्मा का प्रतिपादन हुआ तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा हुई*। यह प्रकरण इतना रुचिकर सिद्ध हुआ कि हमारा सम्पूर्ण जीवन धर्म-मय हो गया। हमारे देश की रम्यता¶ भी हमारी इस प्रवृत्ति में सहायक हुई। जब हमने प्रकृति के अनेक रम्य रूपों को देखा तो यह स्वाभाविक ही था कि हमने उनको उत्पन्न तथा विकसित करने वाले का रूप और अस्तित्व जानना चाहा, इससे ही धर्म की रूपरेखा बनी जो हमारे जीवन में निरन्तर समाती गई।

धर्म की इस प्रवृत्ति का परिणाम अनेक रूपों में लक्षित हुआ। भारत की आस्तिकता§ प्रभु पर विश्वास इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। जब हम प्रकृति के अनेक सौम्य-रूपों को देखते हैं तो हमारा ध्यान उनके कर्त्ता की ओर जाता है जो हमें आस्तिकता की ओर अग्रसर करता है। भारत में जो भगवान् में अत्यधिक श्रद्धा और विश्वास है वह इसी प्रवृत्ति के कारण है। सम्भव है हमारे देश जैसा धार्मिक वातावरण अन्यत्र कहीं न मिले। साथ ही भाग्यवाद‡ भी अपनी पूरी शक्ति के साथ भारत में व्याप्त रहा और अनेक अवसरों पर मन्त्र का कार्य करता रहा। 'अवश्यम् भाविनो-भावी'$, 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' इस प्रकार की उक्तियों की ओर लोग आकर्षित हुए और कुछ महात्माओं ने तो यहाँ तक कह डाला-'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गये सब के

---

* उत्पन्न हुआ, ¶ सुन्दरता, § भगवान् को मानना, ‡ भाग्य पर विश्वास करना, $ होने वाला अवश्य होगा।

दाना राम ॥'* आलसियों का यह मन्त्र भाग्यवाद का ही परिणाम है। यद्यपि हमारे शास्त्रों और उपनिषदों ने कर्मण्यता की ओर काफी ध्यान दिलाया और गीता का उपदेश तो कार्ययोग का प्रतिपादन ही है, फिर भी भाग्यवाद की गहरी छाप मिट न सकी और इसका कुछ दुष्परिणाम अवश्य हुआ। वैसे हमारे यहाँ निश्चेष्ट† बैठने के लिए कहीं नहीं कहा गया और उद्योगी पुरुषसिंह के लिए ही लक्ष्मी की प्राप्ति बताई गई है×। धर्म के अनेक अङ्गों का प्रतिपादन होते होते कुछ कृत्रिम रूप भी हमारी संस्कृति में सम्मिलित हो गये। बाह्य आडम्बर, झाड़फूँक, अन्ध-विश्वास तथा अनेक देवी-देवताओं की कल्पना हो गई। धर्म का रूप बहुत कुछ विकृत बन गया, जिसमें धर्म की वास्तविकता लुप्त होने लगी। हमारे आज के धर्म में न जाने कितना आडम्बर और अवाञ्छनीय रूप भर गया है।

पश्चिमीय शिक्षा और सम्पर्क के साथ हमारी अनेक संस्थाओं§ में परिवर्तन हुआ। हमारे धर्म के ऊपर भी इसका प्रभाव पड़ा। पश्चिमी साहित्य और संस्कृति का अध्ययन कर हमने बहुत-सी नई बातें सीखीं और पुरानियों को विस्मृत कर दिया। पश्चिम की चकाचौंध ने हमारी आध्यात्मिकता का ह्रास किया है और भौतिकता को जीवन में उच्चतर स्थान दिलाया है। किसी समय द्विजजाति मात्र में सन्ध्यावन्दन अनिवार्य नित्यकर्म समझा जाता था, आज की सभ्यता ने इसमें अनेक बाधायें उपस्थित कर दीं। चौके में भोजन करना, मन्दिरों में दर्शन के लिए जाना, हमारी धार्मिक भाषा-संस्कृत की शिक्षा, कर्मकाण्ड के अनेक अङ्ग, श्राद्ध-तर्पण, वैवाहिक कृत्य आदि सभी पर पश्चिमी सभ्यता ने अपनी छाप लगाई और भारत के उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति अपने को साहब बनाने में‡ गौरव का अनुभव करने लगे। आधुनिक विचार-धारा ने हमारी धार्मिक भावनाओं को बहुत परिवर्तित किया है। साम्यवाद आदि राजनैतिक

---

* मलूकदास कृत, † बिना काम के, × 'उद्योगिन पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मी' आदि, § Institutions, ‡ पश्चिमीय लोगों की तरह रहने में।

विचार-धारा भी भारत की धर्म-प्रियता के विरोध में ही खड़ी है। आज धर्म के अनेक अङ्गों को, राजनैतिक नेताओं द्वारा साम्प्रदायिकता के रूप में देखा जाता है। हिन्दू-धर्म में साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। जो धर्म 'वसुधा' भर को 'कुटुम्ब'§ के रूप में देखता है, पशु-पक्षी, चर-अचर सभी प्राणी और पदार्थों मे अपनी आत्मा की छाया ही देखता है, उस पर साम्प्रदायिकता का अभियोग* लगाना सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

हमने ऊपर देखा कि भारतीय जीवन और धर्म अमितकाल से साथ-साथ चले हैं, कोई भी शक्ति उन्हें आज तक अलग नहीं कर सकी। धर्म हमारे जीवन में इतना मिल गया है कि हम सामान्य क्रिया-कलाप और धर्म को अलग-अलग कर ही नहीं सकते। सारे ससार में विवाह एक सामाजिक कृत्य है किन्तु हमारे यहाँ धार्मिक, सन्तानोत्पत्ति, क्षौरकर्म, स्नान, वस्त्र धारण, स्त्री के शृङ्गार†, विद्याध्ययन सभी धार्मिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही लिए जाते हैं। हमारे जीवन का कोई भी कार्य धर्म से अलग नहीं। इसका एक तो यह परिणाम हुआ कि इन सांसारिक पदार्थों में हमारी आशक्ति बढ़ी नहीं, हम इन्हें माया का रूप ही समझते रहे। दूसरे हमारे यहाँ कार्यों को बहुत कुछ नियमित कर दिया गया। अनेक प्रतिबंध ऐसे लगा दिये गये जिनके कारण समाज में व्यवस्था और गम्भीरता स्थापित रह सके। सम्पूर्ण प्राणियों में अपनी ही प्रतिच्छाया देखना, अन्य स्त्री की ओर दृष्टि भी न करना, तामसी$ भोजन का परित्याग करना, सूर्योदय तक न सोना ये धर्म सम्बन्धी बातें मानी गई हैं, इनमें धर्म आयोजित कर दिया गया है। अतः धर्म की भावना से प्रभावित होकर हम यह कार्य नहीं करते। बहुत से कर्तव्यों का विधान तथा अनेक कार्यों के करने का विरोध धर्म की सीमा में रखकर मर्यादा को बहुत कुछ आश्रय मिला।

बहुत कुछ चेष्टा हुई कि धर्म और समाज को अलग-अलग समझा

§ 'वसुधैव कुटुम्बकम्', * अपराध, इलज़ाम, † सौभाग्यवती के शृङ्गार-विशेष, $ तामस गुण से पूर्ण, अधिक मिर्च मसालें का, तामसी वृत्ति जगाने वाला।

जाय, किन्तु यह सब कुछ न हो सका। अमित काल से जीवन और धर्म घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित रहे हैं और आज भी हैं। हमारे जीवन के अङ्ग-प्रत्यंग पर जो धार्मिक छाप है वह इतनी गहरी है कि उसे कोई भी बाह्य कारण नहीं मिटा सकते। हिन्दू-धर्म और समाज के ऊपर अनेक प्रहार हुए, विदेशी और विधर्मी आक्रान्ताओं* के क्रूरतम आक्रमण हुए, परन्तु हिन्दुत्व नष्ट नहीं हो सका। हिन्दुओं की धर्म-प्रियता अक्षुण्ण रही और आज भी वही स्थिति है। विदेशी सरकार के प्रस्थानोपरान्त* इधर कुछ अधिक ही प्रवृत्ति हो गई है, कोई भी कारण इसे कम नहीं कर सके।

विस्तृत रूपरेखा

१—अति प्राचीनकाल से धर्म-प्रियता—i भारतवर्ष की विशेषता यहाँ की धर्मप्रियता है। ii वैदिक काल से अब तक इस प्रवृत्ति में कमी नहीं हुई। iii अनेकानेक विरोध और अत्याचारों के होते हुए भी ज्यों की त्यों। iv भारतीय धर्मप्रियता से हिन्दुओं की धर्मप्रियता का अभिप्राय।

२—जीवन के सम्पूर्ण अंगों में व्याप्त—i सामाजिक कृत्य धर्म की भावना से परिपूर्ण। ii हिन्दुओं के षोड़श संस्कार। iii प्रत्येक कार्य के लिए मंत्र और उनका धर्म में स्थान। iv धार्मिक भावना के द्वारा समाज का उपकार। v जनता ने जीवन में धर्म के स्थान को मनमाना रूप देने की चेष्टा की। vi सच्चे ज्ञान की पृष्टभूमि पर इसे देखना चाहिए।

३—इस अभिरुचि के कारण—i चिन्तन की सुविधा—जीवन-यापन का प्रश्न इतना कठिन और गहरा नहीं, आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से। ii देश की रम्यता—प्रकृति के सुन्दर पदार्थ हमें इस ओर ले चलने में सहायक हुए। iii प्रकृति के स्वरूप को हमने देखा और उसके कर्ता का ज्ञान प्राप्त करना चाहा। iv इस प्रकार धर्म-प्रियता जीवन में आई।

हमला करने वालों, * जाने के पश्चात्।

४—प्रवृत्ति के परिणाम—i आस्तिकता की भावना, भगवान् पर विश्वास हुआ। ii भाग्यवाद का जोर—किन्तु भ्रमपूर्ण रूप में ग्रहण किया गया। iii भाग्यवाद और कर्मयोग—कर्मयोग की प्रधानता। iv कुछ कृत्रिम रूप—अन्धविश्वास, अनेक देवी-देवता, झूठा कर्मकाण्ड और आडम्बर।

५—आधुनिक अवस्था—i पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव। ii उच्चशिक्षा का प्रभाव जो अंग्रेजी माध्यम द्वारा हुई। iii आध्यात्मिकता का ह्रास—पश्चिमी चकाचौंध के कारण। iv हमारी व्यक्तिगत आवश्यक वस्तुओं से अरुचि। v आधुनिक विचारधारा का प्रभाव। vi राजनैतिक वातावरण—साम्यवाद आदि। vii साम्प्रदायिकता के रूप में देखना—यह दृष्टिकोण भ्रामक है।

६—भारतीय जीवन और धर्म—i हमारे जीवन के प्रत्येक अङ्ग में व्याप्त। ii हमारा सारा क्रिया-कलाप धर्म का अंगमात्र—उससे अलग कोई कार्य नहीं। iii लाभ—सांसारिक पदार्थों में आसक्ति न होना, व्यवस्था, मर्यादा-रक्षा, अनेक दुर्गुणों से बचना, कर्तव्य में आसक्ति।

७—उपसंहार—i हमारे जीवन और संस्कृति पर धार्मिक छाप सर्वदा रहेगी। ii जीवन और धर्म का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। i i विदेशी सरकार के जाने पर इस ओर अधिक प्रवृत्ति हुई है।

१५—गंगा की गोद में

संक्षिप्त रूपरेखा

(१) प्रस्तावना—गंगा की महत्ता। (२) गंगा-स्नान। (३) किनारे के दृश्य और अनुभव। (४) प्रभाव। (५) एक विचित्र दर्शन। (६) लाभ। (७) उपसंहार—

'गंग सकल मुद मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला॥'*

पुण्य सलिला भगवती भागीरथी की महिमा अपार है। यह केवल भावुकता ही नहीं, इस युक्ति के पीछे विज्ञान और अनुभव छिपा हुआ है। यदि हम गंगावतरण† का प्रसंग देखते हैं तो हमें विदित होता है कि इस भूमि पर गंगा का अवतरण उद्धार के ही हेतु हुआ। आज के युग में भी असंख्य नरनारी गंगा का दर्शन, पान और स्नान करने के हेतु लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते हैं और माता की गोद में जाते ही वर्णनातीत आनन्द का अनुभव करते हैं। गंगा को अत्यन्त महत्त्वशाली माना गया है। वैसे तो 'गंगा माता' शब्द प्रचलित ही है किन्तु शपथ के हेतु, धर्म का प्रतिरूप दिखाने के लिए भी गंगा अथवा गंगाजल का प्रयोग किया जाता है। वैसे देवी-देवताओं की बातें हम बहुत सुनते हैं—कुछ लोग इन पर विश्वास करते हैं कुछ नहीं, किन्तु यदि प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो पवित्र जाह्नवी§ का दर्शन कीजिए। प्रत्यक्ष फल देने वाली देवता 'गंगा' ही है। लहरों को देखने से ही मन के सन्ताप दूर होते हैं और जल का पान करने पर तो मन आनन्द और उमंग से परिपूरित हो जाता है। पूज्य चरण गोसाईं जी ने बताया—

राम बिलोकहिं गंग-तरंगा।
देखि होंहि दुख दारिद भंगा॥
मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयेऊ।
शुचि जल पियत मुदित मन भयेऊ॥

और इसी प्रकार गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा—

"दर्शन मज्जन पान त्रिविधि भय दूर भगावत।"

---

* 'राम चरित मानस' से, † गंगा का पृथ्वी पर आना, § जह्नु की पुत्री गंगा।

विस्तृत रूपरेखा

१—गंगा की महत्ता—i हिन्दू-संस्कृति में स्थान—गंगामाता, गंगा-जल। ii प्रत्यक्ष देवता। iii जल का प्रभाव। iv दर्शन, मज्जन, पान आदि का फल। v भारतीय चिन्तन में।

२—गंगास्नान—i एक पवित्र धार्मिक कृत्य। ii विशेष पर्वों पर स्नान। iii तीर्थ-स्थल। iv एकान्त का रमणीय सेवन। v स्नान का आनन्द vi प्रभावकारी स्नान।

३—किनारे के दृश्य, अनुभव—i जलस्रोत, नौकायें, भक्त, यात्री, पशु, पक्षी, सन्त, महात्मा, पूजन आदि। ii सत्संग। iii सुन्दर विचारधारा, प्राचीन वृत्तान्त, पौराणिक कथाएँ। iv कर्तव्य का उपदेश—अनेक समस्याओं का हल।

४—प्रभाव—i शरीर, मन और आत्मा पर प्रभाव। ii संस्कार और विश्वास का स्थान। iii उन्नति के लिये उपयुक्त साधन।

५—विचित्रदर्शन—i सन्त-महात्मा आदि उच्चकोटि के जीव। ii जल-जीव मकर आदि। iii एक विशेष मकर का वर्णन।

६—लाभ i लौकिक, पारलौकिक। ii सत्संग, रमणीय प्राकृतिक दृश्य। iii आनन्द, भावनाएँ, जागृति।

७—उपसंहार—i वर्तमान में उत्पन्न त्रुटियाँ। ii उनका निराकरण। iii सुन्दर वातावरण का प्रसार।

६—"कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥"

संक्षिप्त रूपरेखा

१—नाम शब्द का इतिहास, अर्थ, २—राम-नाम और सन्त कवि, ३—प्रस्तुत अर्द्ध चौपाई का प्रसंग, ४—राम-नाम और 'मानस', 'विनय', आदि में, ५—व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्व,

६—'नाम' में वास्तविक भावना—आधुनिक संकीर्तन, रामध्वनि आदि, ७—नाम और समाज।

निबन्ध—आर्य सभ्यता में 'नाम' शब्द का विशेष महत्त्व है। अनादि-काल* से ही यह शब्द हिन्दू-सभ्यता तथा संस्कृति का रक्षक रहा है। हिन्दू-समाज तथा सभ्यता के ऊपर अनेक आक्रमण हुए, किन्तु 'नाम' ने ऐसी निराशा के समय सर्वदा आश्रय और आशावादिता† का संचार किया।

'नाम' शब्द किस प्रकार इतना विस्तृत हो गया? इस शब्द का वास्तविक तात्पर्य क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर विकासवाद से सम्बन्ध रखता है। भगवान के प्रसन्न करने हेतु प्रथम युग-सत्‌युग‡ में 'ध्यान' करते थे। यह ध्यान केवल भगवन्नाम स्मरण मात्र ही नहीं होता वरन् सम्पूर्ण बाह्य एवं आन्तरिक प्रवृत्तियों का निरोध कर§ उन्हें ब्रह्म की ओर केन्द्रित करना होता है। मायामय प्रकृत जगत् से सम्बन्ध विच्छेद कर 'सत्, चित्, आनन्द' को अपने जीवन का लक्ष्य बनाना है। इस युग के उपरान्त द्वितीय युग में 'ध्यान' का स्थान वेद-मन्त्रों द्वारा किये जाने वाले यज्ञों ने लिया। इन मन्त्रों में भी भगवान की प्रशंसा ही थी और उसकी सर्वोपरि सत्ता का विवेचन। यज्ञों का समय भी बदला, भगवान का ध्यान-मात्र लोगों को आश्चर्यकारी प्रतीत नहीं हुआ, यज्ञों से भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए, भगवान के निर्गुण रूप को सगुण करने की चेष्टा की गई। अवतारवाद का प्रचार हुआ और साथ ही पूजा का भी श्रीगणेश। भगवान की प्रतिमा बनाकर पूजा की जाने लगी। गोस्वामीजी ने संक्षेप में ही कह दिया—

ध्यान प्रथम जुग मख* बिधि दूजे।
द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥

समय का फेर, कुछ ऐसे कारण उपस्थित हो गये कि ध्यान, यज्ञ, पूजा तीनों में कठिनाई प्रतीत होने लगी। ध्यान के लिए आवश्यकता है एकाग्र चित्त की, यज्ञ और पूजा के लिए साधनों की, समय और स्थान

* अति प्राचीन समय से, † optimism. ‡ ये युग प्रसिद्ध चार युग हो सकते हैं अथवा हिन्दुत्व के विकास युग, § रोक कर, * यज्ञ।

की; किन्तु जमाना बदल गया, अनेक अत्याचारी लोग इस धराधाम पर धार्मिक पुरुषों के ऊपर अत्याचार करने लगे। ध्यान-मग्न पुरुषों को सताना, यज्ञों को विध्वंस करना तथा मूर्तियों को नष्ट कर पूजा-सामग्री को फेंक देना नित्यप्रति की बातें होने लगीं। अब आवश्यकता थी ऐसे साधन की, जिसमें बाह्य कर्मकाण्ड, किसी भी प्रकार का आडम्बर आदि न हो, कोई निश्चित समय अथवा स्थान भी अनिवार्य न हो।

इन सारी आवश्यकताओं की पूर्ति केवल एक शब्द ने कर दी और वह शब्द था "नाम"। कुछ लोग इसे "सोऽहं§" शब्द का रूपान्तर बताते हैं और कुछ "राम" का पर्यायवाची, किन्तु साधारण अर्थ में जिस प्रकार इसका उपयोग होता है उसके अनुसार तो 'नाम' शब्द के अन्तर्गत कोई भी अवतारी आ सकता है। भगवान् के सहस्रों† नाम हैं, उनमें से कोई भी इस कोटि में आ सकता है।

'नाम' के उच्चारण में भक्ति, विवेक, ध्यान, शारीरिक शुचिता, एकान्त आदि किसी भी प्रकार की आवश्यकता नहीं है। चाहे जहाँ, चाहे जब, जिह्वा पास है, अथवा मन में ही अपने इष्ट 'नाम' का उच्चारण कीजिए और आपका कल्याण होने में कोई सन्देह नहीं है।

'नहिं कलि करम न भगति विवेकू।
राम नाम अवलम्बन एकू॥
भायँ कुभायँ अनख मन बसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'

यों तो प्राचीन काल में भी 'नाम' का महत्त्व यथेष्ट था, किन्तु सन्त कवियों के समय से इसका महत्त्व स्पष्ट देखने में आता है। कबीर, नानक, दादू, सुन्दरदास आदि सन्तों ने नाम की महिमा गाई है। वे 'नाम' शब्द को 'सत्नाम' या 'ब्रह्म' के लिए प्रयुक्त करते हैं।

'लूटि सकै तो लूटि ले, 'सत्तनाम' की लूट।
पीछे फिरि पछिताहुगे, प्राण जाहिं जब छूट॥'

इन सन्त कवियों तक 'नाम' निर्गुण ब्रह्म का ही द्योतक रहा। 'नाम'

---

§ ब्रह्म जीव का ऐक्य, † विष्णु सहस्र नाम, गोपाल सहस्र नाम।

'सतनाम', 'हंसा', 'ब्रह्म', 'परमात्मा' निर्गुण ब्रह्म के ही पर्यायवाची थे, किन्तु इनके पश्चात सगुण मार्गी, रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी कवियों ने 'नाम' के साथ अवतारी सगुण ब्रह्म का मिश्रण कर दिया। विशेषतः राम-मार्गी भक्त और कवियों में तो 'नाम' का अत्यधिक प्रचार हुआ। यह प्रचार इतना बढ़ा कि आज भी सर्वत्र 'रामनाम' सुनाई पड़ता है। यह नाम 'सत्य' समझा जाता है और इसी की मधुर-ध्वनि के साथ हमारी जीवन-लीला भी समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत अर्द्ध चौपाई में तो कवि ने 'नाम' का महत्त्व राम से बढ़ाया ही नहीं प्रत्युत 'नाम' की महिमा गाने में 'राम' को भी असमर्थ सिद्ध कर दिया है। 'रामनाम' का प्रसङ्ग तुलसीदासजी ने 'मानस' के बालकाण्ड के प्रारम्भ में विस्तृत रूप से लिखा है और वहीं यह प्रसङ्ग है। इस सम्बन्ध में कवि की उक्तियाँ और विषय प्रतिपादन की विधि मनन करने योग्य है। ब्रह्मा, शिव सभी 'नाम' का स्मरण करते हैं। शिवजी ने बताया—

राम रामेति-रामेति, रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यं, रामनाम वरानने॥

अन्य सभी नामों से 'रामनाम' अधिक है, इस बात को भी कवि ने युक्ति पूर्वक सिद्ध किया है। अरण्य काण्ड में नारदजी ने भगवान् राम से वरदान माँगा था—

'राम सकल नामन्ह तें अधिका।
होहु नाथ अघ खग गण बधिका॥'

जब भगवान् ने 'तथास्तु*' कह दिया, तब फिर 'रामनाम' के सर्वश्रेष्ठ होने में कोई सन्देह रह ही नहीं जाता।

राम का नाम 'गणेश'जी§ को सर्व प्रथम पूजा दिलाता है— 'प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ'। उलटा नाम जपना भी कल्याणकारी होता है—

---

* 'एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपा सिन्धु रघुनाथ', § 'राम' नाम लिख-कर परिक्रमा।

'उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भे ब्रह्म समाना॥'

और यहाँ तक—

'राम नाम कहि जे जमुहाँहीं।
तिनहि न पाप पुंज समुहाँहीं॥'

राम के 'नाम' और 'रूप' में भी कोई अन्तर नहीं है—

'नाम रूप दोउ ईस उपाधी।'

फिर भी—

'देखिअ रूप नाम आधीना।
रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥'

भगवान् के निगुर्ण और सगुण दोनों रूपों से भी बढ़कर नाम है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

कारण नाम से 'अगुण' 'सगुण' दोनों प्रकार के रूप सुगम हो जाते हैं।

इस प्रसंग में कवि ने 'नाम' की महत्ता का भी वर्णन किया है। राम ने एक तपस्वी की स्त्री (अहिल्या) का उद्धार किया, 'नाम' ने करोड़ों दुष्टों का सुधार किया। राम ने शिवजी का धनुष तोड़ा, नाम संसार के भ्रम का नाश करता है। राम ने भालू, बन्दरों की सहायता से बड़े परिश्रम के पश्चात् 'सेतु' बाँधा, किन्तु—

'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।'

नारद, प्रह्लाद, ध्रुव* और यहाँ तक कि महापापी अजामिल† भी राम के नाम का प्रभाव जानते हैं। वे सब 'नाम' के प्रभाव से ही इतनी उच्च कोटि को पहुँचे। तभी तो कवि यह सिद्ध करने में समर्थ हुआ कि—

'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई॥'

---

* प्रसिद्ध भगवद्भक्त, † 'नारायण' नाम लेने से मुक्ति।

'रामनाम' का प्रभाव वैसे तो पहले से ही था। किन्तु—

'कलियुग केवल नाम अधारा।'

कलियुग में तो अन्य कोई भी साधन नहीं है, केवल-मात्र यही साधन है। किसी भी प्रकार 'रामनाम' लिया जाय, सर्वदा मंगल होगा। विनय पत्रिका में भी गोस्वामीजी नाम की बड़ाई नहीं भूले हैं। किन्तु 'नाम' का जो वैज्ञानिक विश्लेषण 'मानस' के बालकाण्ड में मिलता है, जो तर्कयुक्त उक्तियाँ वहाँ उपलब्ध हैं—अन्यत्र नहीं।

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन-घाम को॥
कहत मुनीस महेश महातम उलटे सूधे नाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को॥$

—विनय०

सम्पूर्ण कामनाओं से हीन राम-भक्तों को भी इसकी आवश्यकता है—

सकल कामना हीन जे, राम-भगति रस लीन।
नाम प्रेम पीयूष हृद, तिनहुँ किए मन मीन॥*

भगवान् ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त भी राम नाम ही बताया है

ब्रह्महत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते।
मुच्यते कोटि हत्याभ्यो जपन्नाम सहस्रकम्॥

इससे अधिक राम-नाम की महिमा के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है। इसी स्थान पर सन्त कवि कबीर की यह उक्ति भी उल्लेखनीय है—

सपनेहू बर्राइ के धोखेहु निकसै नाम।
वाके पद की पैंतरी मेरे तन को चाम॥†

इस प्रश्न पर तनक लौकिक और व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार करना असंगत न होगा। लोग कहते हैं 'नाम' रटने से क्या होता है—'हाथ

$ मृत्यु, * दोहावली में भी, † कुछ परिवर्तित रूप में दोहावली में भी।

सुमरनी पेट कतरनी।' ऐसे लोगों से परमात्मा बचावे। इसका उत्तर कबीर ने इस प्रकार दिया—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो चहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि॥

तन्मयता की आवश्यकता है। आरम्भ में तो 'भाव', 'कुभाव', 'अनख' इत्यादि हो सकते हैं, किन्तु किसी भी वस्तु से मनुष्य का दृढ़ सम्पर्क कुछ ऐसी शक्ति रखता है कि उस वस्तु में निजत्व का भाव आने लगता है—प्रेम बढ़ने लगता है। 'रामनाम' का भी यही हाल है। 'नाम' स्मरण किया जावे, किसी रूप में जप किया जावे, प्रेम की मात्रा बढ़ने लगेगी, फिर आनन्द प्राप्त होने लगेगा, तदनन्तर उसमें श्रद्धा होगी और 'जाप' का आधिक्य।

नाम को मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी कसा जा सकता है। कहते हैं किसी भी वस्तु या व्यक्ति का स्मरण करने से तत्सम्बन्धी गुणों की वृद्धि होती है। यदि 'राम' नाम प्रतिक्षण जिह्वा पर है, यदि उधर कुछ तल्लीनता है तो अवश्य ही राम के चरित्र का कुछ प्रभाव पड़ेगा। जहाँ मनुष्य प्रभावित हुआ फिर उसका मार्ग ठीक है। एक और भी बात है; कोई मनुष्य यदि एकान्त में उद्योग-हीन बैठा है तो अँग्रेजी उक्ति के अनुसार उसके मस्तिष्क में बुरी धारणायें उत्पन्न होंगी। ऐसे समय यदि 'रामनाम' या 'शिव नाम' का नुसखा याद है तो मनुष्य कभी बुरी धारणाओं का शिकार नहीं हो सकता है। इन्द्रिय विषयक वस्तुओं को देखने से मस्तिष्क में विकार‡ उत्पन्न हो जाते हैं, मदान्धता छा जाती है, ऐसे समय 'नाम'-जप निश्चय इन्द्रियों के जाल से बचावेगा।

युद्ध में उत्साह दिलाने के लिए, संघर्ष में विजय प्राप्ति के हेतु, घनघोर बीहड़ वन में, भूत-पिशाचों से डर के समय नाम के अतिरिक्त अन्य कोई सुगम साधन नहीं होता। धर्म के भावों का स्पष्टीकरण 'नाम' के द्वारा अच्छा होता है। 'नाम'-स्मरण आलसियों का ही मन्त्र नहीं, कर्मण्यों को

‡ काम आदि।

भी कर्म में सफलता प्रदान करता है, हमारे मन को आशा और उत्साह से परिपूरित कर विजय-श्री* लाभ कराता है।

'नाम का महत्त्व और प्रभाव इस बात के लिए किंचित् स्थान नहीं छोड़ता कि उसमें किसी भी प्रकार का सन्देह किया जाय। और यों तो नाम की ओट शिकार$ खेलने वाले तो सर्वत्र होते हैं। जो लोग 'रामनाम' से अनुचित लाभ उठाते है, उसमें नाम का दोष नहीं उनकी वृत्तियों अथवा वातावरण का दोष है। 'नाम' के प्रभाव से तो हिन्दू-समाज ही नहीं, अन्य समाज भी प्रभावित हैं। मुसलमानों में 'तस्बीहख्वाँ' और ईसाइयों में 'रोज़ैरी टैलर' होते हैं। अपने यहाँ तो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सम्पूर्ण जीवन ही 'रामनाम' से व्याप्त है। वर्तमान समय में 'कीर्तन' का प्राचुर्य और 'रामधुनि' का आधिक्य भी 'नाम'-महिमा को ही बताता है।

इसमें सन्देह नहीं कि 'नाम' स्मरण और नाम के 'जप' ने अगणित मनुष्यों का उपकार किया। यदि पारलौकिक सुख की बात असत्य भी है तो इस लोक में तो 'नाम' हमारे धैर्य, उत्साह और आशा का कारण है, तथा विपत्तियों में आश्रय है। निस्सन्देह 'नाम' का महत्त्व 'राम' से बढ़कर है और यह चौपाई सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य सत्य है।

विस्तृत रूपरेखा

१—नाम शब्द का इतिहास—i ध्यान—प्रथम युग (सतयुग), ii यज्ञ—द्वितीय (त्रेता), iii पूजा—तृतीय (द्वापर), iv जप—वर्तमान (कलियुग)।

२—राम नाम और सन्त कवि—i कबीर आदि सन्त कवियों ने, ii 'नाम' निर्गुण ब्रह्म के अर्थ में, iii सतनाम, ब्रह्म, ईसा, परमात्मा आदि का द्योतक, iv भक्त कवियों ने सगुणात्मकता लादी।

३—प्रसंग एवं स्पष्टीकरण—i बालकाण्ड के प्रारम्भ में 'नाम' की महिमा, ii वैज्ञानिक तर्क युक्त विश्लेषण, iii अनेक व्यक्तियों पर प्रभाव,

* सफलता, $ धोखेबाज़।

iv नाम की महिमा, v निर्गुण, सगुण सबसे ऊपर, vi साधन की सुगमता, फल की अधिकता।

४—भक्त कवियों द्वारा राम, कृष्ण, शिव आदि नामों की महत्ता।

५—व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक—i तन्मयता, सच्ची लगन का प्रभाव, ii कर्मठता का पाठ, आशा, युद्ध में विजय, भय में रक्षा, सुख में साथ, iii इन्द्रिय-विकारों को शमन करने का साधन, iv वृत्तियों को पवित्र करने का उपाय, v बराबर जपने का प्रभाव—चरित्र से प्रभावित, मस्तिष्क पर छाप।

६—'नाम' में भावना—i हमारा सम्पूर्ण जीवन 'राम नाम' से व्याप्त, ii सभी वर्ग, समुदाय धर्मों में जो आस्तिक हैं, iii प्रचलित कीर्तन, रामध्वनि आदि, iv महात्मा गांधी का मार्ग निर्देशन।

७—नाम और समाज—i समाज पर उपकार, ii विपत्ति में रक्षा, iii धैर्य, उत्साह और आशा का प्रदाता।

१७—स्वतन्त्र भारत में संस्कृति-शिक्षा

संक्षिप्त रूपरेखा

१—'संस्कृति' और 'संस्कृति-शिक्षा' का अर्थ। २—हमारी सांस्कृतिक विरासत। ३—वर्तमान कालीन सांस्कृतिक शिक्षा-यत्नों पर एक दृष्टि। ४—केन्द्रीय और प्रान्तीय शासनों का योग। ५—भविष्य की कल्पना। ६—उपसंहार।

'संस्कृति'* शब्द का अर्थ समझे बिना हम अपनी विषय-वस्तु की ओर अग्रसर नहीं हो पायेंगे। 'कृति' का अर्थ है सृष्टि अर्थात् विधाता की कृति या फिर जीवन। इस जीवन अथवा कृति में गतिशीलता एक स्वाभाविक गुण है। 'कृति' स्थिर नहीं है। आगे की ओर चले, चाहे पीछे की ओर; नीचे की ओर चले, चाहे ऊपर की ओर; उसका चलना

* Culture।

अवश्यम्भावी है। इसीलिए उसे 'जीवन' का नाम दिया गया है। तो इस कृति को जो वस्तु नीचे की ओर ले जाती है वह 'विकृति' और जो ऊपर की ओर ले जाती है वह 'संस्कृति' है। कृति को सम्यक्† गति देने वाली क्रिया ही संस्कृति है। अर्थात् मानव,जीवन की वह सारी कार्य-प्रणाली जो जीवन को उन्नति और देवत्व की ओर ले जाती है, 'संस्कृति' के नाम से पुकारी जा सकती है। यह मैंने आपको 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ बताया है, किन्तु उसका वास्तविक प्रयोगात्मक अर्थ भी इससे भिन्न नहीं है। मानव-जाति ने अपने चिरकालीन जीवन में प्रकृति के संघर्ष से जिस प्रकार अपने को जीवित रखा और जिस प्रकार वह दिन-प्रति-दिन देवत्व की ओर बढ़ती जारही है, वह 'संस्कृति' के ही वरदान हैं। अधिक स्पष्ट और व्यावहारिक होने के लिए हम कह सकते हैं कि मानव की कला, विज्ञान, साहित्य, राजनीति, दर्शन और समाज सम्बन्धी सारी उन्नति संस्कृति में आ जाती है। इस प्रकार जब निबन्ध के शीर्षक में 'सांस्कृतिक शिक्षा' शब्द रखे गये हैं, तो बड़ा असमंजस खड़ा हो जाता है विचारक के सामने कि क्या सांस्कृतिक शिक्षा से तात्पर्य इन सभी विषयों की शिक्षा से है। जी हाँ, असमंजस की आवश्यकता नहीं। पहले तो आज 'शिक्षा' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त है, वही इन सभी विषयों को ढक लेता है। और फिर जब आप सांस्कृतिक शिक्षा की बात कहते हैं तो मन्तव्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है, कि मानवी संस्कृति के सभी अंगों के शिक्षण से ही शीर्षककार का तात्पर्य है।

'सांस्कृतिक शिक्षा' का यह तात्पर्य समझ लेने के पश्चात् हमें यह देखना है कि स्वतन्त्रभारत ने सांस्कृतिक शिक्षा के क्षेत्र में क्या विरासत$ पाई है। इसका विवरण कुछ विस्तृत दिखाई पड़ता है, क्योंकि भारत की प्राचीन संस्कृति बहुत अधिक उन्नत थी, फिर उसमें बाह्य शक्तियों के मिश्रण से पाश्चात्य संस्कृतियों का भी मिलन हुआ। किन्तु हम शीघ्र अपने निबन्ध की मुख्य वस्तु पर आना चाहते हैं, इसलिए बहुत थोड़े में भारत की सांस्कृतिक विरासत को देख डालेंगे।

† अच्छे ढंग से, $ उत्तराधिकार (Inheritage)।

संस्कृति का प्रमुख अंग कला होती है। भारत का प्राचीन इतिहास इस बात का मुखर साक्षी है कि भारत में कला की उन्नति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। आज भी बौद्धकालीन कला के नमूने अजंता की गुफाओं में अपने चिर संचित गौरव को लिए बैठे हैं। कला की दृष्टि से गुप्तकाल भारत का स्वर्ण-युग ÷ था। संगीत, चित्र, मूर्ति आदि सभी कलाओं में एक विशेषता का आभास हमें अपने प्राचीन इतिहास में मिलता है, जिसे सरोजनी नायडू ने 'स्वर्गीय शान्ति' कहा है। उस युग में संस्कृति के केन्द्र तक्षशिला, पाटलीपुत्र आदि नगरों में सांस्कृतिक शिक्षा की विधिवत् व्यवस्था थी। हमने प्रागैतिहासिक + काल का जिक्र जानबूझकर छोड़ दिया है, अन्यथा रामायण और महाभारतकाल की कला का आभास हमें उस युग की सभ्यता के विवरण में भरपूर मिल जाता है। इसी प्रकार साहित्य और दर्शन (संस्कृति के अन्य उपाङ्गों) में भी भारतीय मस्तिष्क अतुलनीय ऊँचाई पर पहुँच गया है। साहित्य के सभी उपाङ्गों का उच्चतम सृजन तथा दर्शन की गहराइयों का अभूतपूर्व और असम्भाव्य विवेचन भारतीय मस्तिष्क के समान कहाँ मिलेगा। कवि प्रसाद ने ठीक ही इस देश को 'दार्शनिकों का देश' कहा है। कुछ दिनों पश्चात् ग्रीस, हूण, शक फिर इस्लाम की संस्कृतियों से भारत आक्रांत हुआ। उसकी अपनी संस्कृति की विशाल बाहों में कुछ तो इनमें से समा गईं, कुछ अवश्य पृथक् रहीं। किन्तु कुल मिलकर, अँग्रेजों के पूर्व तक, भारतीय संस्कृति ताजमहल से जगमगा रही थी; उच्चकोटि का संगीत भारत के आकाश में गूँज रहा था और कालिदास, कबीर और तुलसी की कविताएँ भारतीय जीवन की भित्ति को सम्भाले हुए थीं। बुद्ध, कृष्ण, पतञ्जलि* और गोरखनाथ की दार्शनिकता इस देश के आत्मिक जीवन की स्तंभ थी।

अँग्रेजी राज्य के आने पर इस देश का एक ऐसी नई चमचमाती हुई संस्कृति से परिचय हुआ, जिसने इसकी आँखों को बहुत अधिक चकाचौंध में डाल दिया। इसका कारण था, कि यह नई संस्कृति कला दर्शन,

÷ Golden age, + Prehistoric. * प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक।

साहित्य आदि उपाङ्गों के साथ-साथ संस्कृति के एक अन्य उपाङ्ग को लेकर आई थी, वह था विज्ञान। यह नहीं कि भारत वैज्ञानिक तथ्यों से अपरिचित रहा हो; किन्तु आधुनिक विज्ञान का परिचय उसे पश्चिम द्वारा ही हुआ। इस प्रकार अँग्रेजी राज्य में हमारी संस्कृति एक नवीन कक्ष में प्रविष्ट हुई। कला, साहित्य, दर्शन सभी के क्षेत्र में हम यथार्थवाद$ की ओर बढ़ चले। किन्तु हमारी आत्मिक परम्परा ÷ ने अनजाने ही हममें वह वस्तु रहने दी, जिसके अभाव में पाश्चात्य संस्कृति आज भी अपने विनाश की घड़ियाँ गिन रही है; वह वस्तु थी हमारी आध्यात्मिक समता। हम इसी आध्यात्मिक समता का नवीन विज्ञान से संयोग करके रवीन्द्रनाथ, रवियर्मा, चन्द्रशेखर रमन और विवेकानन्द को उत्पन्न कर पाये। इसी ने हमें गान्धी जैसा योगी राजनीतिज्ञ और अरविन्द जैसा राजनीतिज्ञ योगी दिया।

संक्षेप में यह थी हमारी सांस्कृतिक विरासत, जो १५ अगस्त ४७ को राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ हमने अँग्रेजी राज्य के पश्चात् पाई। इस सारे विहंगावलोकन + से एक बात मस्तिष्क में बड़े जोर से टकराती है, वह यह कि क्या कारण है कि भारत के पास सांस्कृतिक उन्नति का विशाल और अत्यन्त मूल्यवान् इतिहास होते हुए भी पाश्चात्य विज्ञान ने उसकी संस्कृति को इतना आक्रांत कर दिया कि विश्वभारती (शान्ति निकेतन) जैसे दो सांस्कृतिक केन्द्र भी इतने लम्बे काल में उसे नहीं मिल पाये? इसका उत्तर भी उतना ही अधिक खेदजनक है। वास्तव में अपनी नवीन राजनीति और रणनीति के बल पर अँग्रेजों ने भारतीय संस्कृति के साथ ऐसा व्यवहार किया, जैसा एक मानव-जाति को दूसरी मानव-जाति के साथ करना मानवता का सबसे बड़ा कलंक है। यदि भारतीय संस्कृति इतनी दृढ़ नहीं हुई होती, उसका आत्मिक बल पाश्चात्य संस्कृति के आत्मिक बल से सहस्रों गुना श्रेष्ठ नहीं हुआ होता, तो सम्भव था कि आज भारत ईसाई देश होता।

$ Realism, ÷ Spiritual traditions, + Bird's eye view।

अस्तु; आज अपने साथ इस सारी करुण कहानी, खेद-परिखेद और ताप-पश्चात्तापों को लेकर भारतीय संस्कृति ने पुनः एक करवट बदली है। अब यदि हम सतर्क रहे, तो राजनीति के बाँसों पर हमें नचाने वाला कोई नट हमारे सिर पर नहीं बैठ सकता। भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता ने सर्वप्रथम उत्तरदायित्व जो भारत के साहित्यिकों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और कलाकारों पर डाला है, वह है भारत की प्राचीन संस्कृति का युगानुकूल नवीनीकरण। अन्य वर्गों से अधिक राजनीतिज्ञ को सतर्क रहना है, क्योंकि उसके थोड़ा भी पथभ्रष्ट हो जाने पर फिर से सामंतशाही और शोषण के गर्त में हमारे गिर जाने का भय है। हमें समझे रहना चाहिये कि संस्कृति के नाम का दुरुपयोग करने वाली ऐसी शक्तियाँ अभी हमारे देश में मौजूद हैं, जो प्राचीन संस्कृति का नारा लगा कर भोली जनता के मस्तिष्क को विकृत करने की चेष्टा कर सकती हैं।

अब हम उन थोड़े से सुझावों पर विचार करें जो स्वतन्त्र भारत में सांस्कृतिक शिक्षा के लिए रखे जा रहे हैं। सर्वप्रथम सुझाव यह दिया गया है कि सांस्कृतिक शिक्षा के वैसे ही कुछ केन्द्र स्थापित किये जाँय, जैसा शांति-निकेतन है। वास्तव में यह एक सुन्दर सुझाव है। यदि इसी प्रकार के महान आदर्शों को लेकर कुछ व्यवस्थित केन्द्र देश भर में स्थापित किये जा सकें तो भारत एक नवीन साँस्कृतिक जीवन का संचार अपनी रगों में कर सकता है। हिन्दी के महाकवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने एक ऐसी ही योजना 'लोकायतन'‡ के निर्माण के लिए सोची है। किन्तु बड़े खेद की बात है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ को जिन कठिनाइयों का सामना विदेशी शासन के युग में करना पड़ा था उनसे कहीं अधिक कठिनाइयाँ पन्त जी को स्वदेशी शासन के युग में आ रही हैं। क्या शासन केवल पुलिस के प्रबन्ध तक ही सीमित है? क्या मानव के आत्मिक विकास* की ओर उसका कोई कर्तव्य नहीं है?

‡ पन्तजी द्वारा आयोजित एक सांस्कृतिक केन्द्र, * Spiritral developement।

अभी हाल ही में विश्व-विख्यात भारतीय नृत्यकार उदयशंकर ने बड़े ही दुःख और पीड़ा का अनुभव करते हुए एक वक्तव्य निकाला था कि संस्कृति और कला के उत्थान के लिए भारतीय शासन बहुत कम सोचता है" किन्तु अभी-अभी ही १९५१ के प्रथम चतुर्थांश में भारत के मनीषियों ने कुछ ऐसे सांस्कृतिक प्रयत्न किये हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि सम्भव है कुछ दिनों में हम अपने सांस्कृतिक उत्तरदायित्व को समझलें। श्री जयप्रकाशनारायण की अध्यक्षता में हाल ही में बम्बई में सांस्कृतिक-स्वतन्त्रता-सम्मेलन हुआ है, जिसका उद्घाटन श्री के० एम० मुंशी ने किया है। इस सम्मेलन में देश-विदेश के अनेक महान् कलाकार और साहित्यकारों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में अनेक प्रतिनिधियों ने स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि उनका राजनीति से उतना सम्बन्ध नहीं जितना सांस्कृतिक विचार-विनिमय से; किन्तु फिर भी वे राजनीतिक मतों का अपमान नहीं करेंगे, क्योंकि आज राजनीति के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इधर स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जनता में सांस्कृतिक कार्यक्रमों और संस्थाओं की बाढ़-सी आगई है। यह लक्षण शुभ है। किन्तु इन सभी में बड़ी सतर्कता से भाग लेने की आवश्यकता है, क्योंकि इनमें से कुछ व्यक्तिगत स्वार्थों को लेकर चली हैं, कुछ प्रतिक्रियावादी* भावना को लेकर। फिर भी कुछ ऐसे गैरसरकारी (अशासनीय) सांस्कृतिक आन्दोलन प्रारम्भ हो चुके हैं, जिन पर प्रगतिशील और ईमानदार मस्तिष्क बड़े मजे में विश्वास कर सकता है। ऐसे ही विशुद्ध आन्दोलनों में 'नव संस्कृति-संघ' की स्थापना भी है। यह संस्था सांस्कृतिक उद्देश्यों को लेकर अखिल भारतीय पृष्ठभूमि पर संगठित की जारही है। इसका मुख्य उद्देश्य है प्रगतिशील सांस्कृतिक विचारों द्वारा भारतीय जीवन और भारत की बिखरी हुई संस्कृति का जीर्णोद्धार करके उसका अद्यतन* रूप से वैज्ञानिक निर्माण। यह संस्कृति भारतीय आध्यात्मिकता और मार्क्स-

---

* Reactionery, * Up-to-date.

वादी भौतिकता की सम्मिलित भित्ति पर निर्मित होकर विश्व भर को एक नवीन दिशा दिखाने की चेष्टा करेगी।

यहाँ तक हमने पूर्णतया अशासकीय शिक्षा-यत्नों और सांस्कृतिक संस्थाओं का विवरण दिया है; किन्तु इसके पश्चात् शासकीय और अर्द्धशासकीय$ प्रयत्नों पर भी दृष्टि डाल लेना पूर्णतया आवश्यक है। भारत के शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद स्वयं एक बहुत बड़े सांस्कृतिक व्यक्तित्व को लिए हुए हैं। किन्तु हमें दुःख है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् यदि सबसे कम शासकीय कार्य हुआ है तो शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में ही। कोई ऐसी ठोस सांस्कृतिक योजनाएँ भारत के शासन ने नहीं कार्यान्वित की हैं जिनसे जन-जीवन में कुछ भी आत्मिक चेतना का अनुभव होता। किसी बहुत बड़े सांस्कृतिक शिक्षा-केन्द्र का प्रारम्भ तो दूर, सांस्कृतिक शिक्षा-केन्द्रों को शासकीय सहायता तक पूर्णतया नहीं मिल पा रही है। प्रान्तों की दशा इससे भी बदतर है। वहाँ पर अधिकांश मंत्रिगण स्वार्थ त्यागी न हो पाने के कारण सांस्कृतिक कार्यों को अपना स्वार्थ सिद्ध करने में उपयुक्त करते हैं। मध्यभारत का उदाहरण मैं आपको दूँ। यहाँ विजय-वर्गीय-मंत्रिमण्डल के समय में एक विशाल सांस्कृतिक योजना शासन ने तब बनाई, जबकि प्रान्त में अशासकीय ढंग से अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापनाएँ हो चुकी थीं। और फिर वह योजना आज दो वर्ष पश्चात् भी कागजों में सीमित होकर ही रह गई। पता नहीं उसके लिए स्वीकृत लक्षाधिक धन का क्या होरहा है? इसके अतिरिक्त अर्द्धशासकीय भी कोई ऐसा सांस्कृतिक जीवन इस प्रान्त में नहीं स्थापित किया गया है, जो नवीन संस्कृति के निर्माण का आदर्श लेकर चले। लश्कर, इन्दौर आदि नगरों में कुछ स्वार्थी लोगों ने शासन से सहायताएँ हड़पकर प्रतिक्रियावादी भावनाओं के आधार पर अवश्य कुछ नाटक-मंडलियाँ-सी बना रक्खी हैं।

अशासकीय संस्थायें कुछ पते-ठिकाने की इस प्रान्त में हैं तो सही, किन्तु उनमे भी नवीन और स्वस्थ सांस्कृतिक आदर्श लेकर चलने वाली

$ Government aided.

और प्रान्तव्यापी आयोजना लिए हुए एकमात्र सांस्कृतिक संस्था यहाँ का "नव संस्कृति-संघ" ही है। दुर्भाग्य है कि हमें स्वतन्त्रता के पश्चात् अपनी सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए भी अशासकीय ढंग पर कार्य करना पड़ता है, और शासन की सहायता से वंचित ही नहीं रहना पड़ता, अपितु शासन के सन्देहों और गुप्तचरों का शिकार बनकर कार्य करना पड़ता है। भारतीय स्वतन्त्रता और इस देश की सांस्कृतिक परम्परा को देखते हुए यह बात किसी भी शासन के लिए अशोभनीय कही जा सकती है।

यहाँ तक मैंने आपके सामने भारत की वर्तमान-साँस्कृतिक शिक्षा का परिचय दिया। अब मैं भविष्य का एक संभाव्य चित्र आपके सामने रखना चाहता हूँ, जो हमारी संस्कृति का चित्र होगा। शासन तो आज नहीं कल ढंग पर आ ही जायगा। संस्कृति-प्रधान भारत जैसे देश में कोई दल साँस्कृतिक उन्नति और शिक्षा से विमुख होकर बहुत दिनों तक जनता का विश्वासपात्र नहीं रह सकता। अतः थोड़े समय बाद की जब मैं कल्पना करता हूँ, तो स्पष्ट दिखता है कि 'विश्व भारतियों' और 'लोकायतनों' का युग बड़ी ही सुदृढ़ गति से हमारी ओर चला आ रहा है। आज तो चाहे साक्षरता ही इस देश में ११ प्रतिशत हो किन्तु बहुत थोड़े समय पश्चात् ही यदि हम अपने देश से पूँजीशाही और सामन्तशाही का उन्मूलन† कर सकें, तो निश्चित रूप से इस देश का प्रत्येक व्यक्ति एक सांस्कृतिक व्यक्तित्व ÷ का अधिकारी हो सकेगा। क्या हमारी अहिंसक परम्परा हमें लोकतान्त्रिक तरीकों से शीघ्र ही अपने मन का सा समतामय वातावरण बनाने में सहायता करेगी? और तब क्या हम एक बार पुनः युद्धाक्रान्त विश्व को अपनी नवीन आध्यात्मिक और भौतिक रूप से मिश्रित संस्कृति का नवीन सन्देश नहीं दे सकेंगे? आइये एक बार पुनः विश्व के नेतृत्व का भार कन्धों पर लें।

---

† विनाश, ÷ Cultural personality.

विस्तृत रूपरेखा

१—संस्कृति' और 'साँस्कृतिक शिक्षा' का अर्थ—i कृति, विकृति और संस्कृति। ii प्रयोगात्मक अर्थ। iii संस्कृति का विस्तार। (राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन आदि उपांग)।

२—हमारा सांस्कृतिक उत्तराधिकार—i प्राचीन भारतीय संस्कृति। ii बौद्ध, गुप्त आदि कालों की संस्कृति। iii अँग्रेजों के पूर्व तक की संस्कृति। iv अँग्रेजी काल में दो संस्कृतियों का संघर्ष। v परिणाम और नवीन विकास।

३—वर्तमानकालीन सांस्कृतिक शिक्षा—i खेद की बात—एक ही शान्तिनिकेतन बन पाया। ii प्रतिक्रिया से सतर्क रहने की आवश्यकता। iii कुछ सुझाव—लोकायतन। iv उदयशंकर की पीड़ा। v बम्बई का सांस्कृतिक स्वतन्त्रता सम्मेलन। vi नई संस्कृति-सम्बन्धी स्थापना।

४—केन्द्रीय और प्रान्तीय शासनों का योग—i स्वतन्त्रता के पश्चात् संस्कृति और शिक्षा शासन के सर्वाधिक उपेक्षित विषय। ii मौलाना आजाद का सांस्कृतिक व्यक्तित्व और जनता की निराशा। iii प्रान्तों में स्वार्थ त्याग का अभाव। iv मध्यभारत का उदाहरण। v स्वार्थियों को शासकीय सहायता, विशुद्ध संस्थाओं को शासकीय सन्देह और गुप्तचरों का वरदान।

५—भविष्य की आशा—i अहिंसक और लोकतान्त्रिक समता की स्थापना भारत में अवश्यभावी। ii नयी संस्कृति का उद्धार। iii जीर्ण विश्व को नवीन संस्कृति का सन्देश भारत ही देगा। iv आध्यात्मिकता भार्क्सवादी भौतिकता।

१८—भारतीय दर्शन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—भारतीय दर्शन की प्रख्याति। २—दर्शन शब्द का अर्थ—पूर्वीय, पश्चिमीय। ३—दर्शन के प्रकार। ४—भारतीय दर्शन की विशेषताएँ

और उसका उद्देश्य। ५—भारतीय दर्शन पर मिथ्यारोप। ६—दर्शन का श्रेणी विभाग कालविभाग। ७—दर्शनों की समानता। ८—आधुनिक स्वरूप।

निबन्ध—"भारत का यह पुण्यमय देश सदा से प्रकृति नटी का रमणीय रंगस्थल बना हुआ है। प्रकृति देवी ने अपने कर-कमलों से सजाकर इसे शोभा का आगार बनाया है। भारत का यह बाह्य रूप जितना ही भव्य और मनोहर है, उसका आन्तर रूप उतना ही अभिराम तथा आभामय है।"† ऐसे सुन्दर देश में ही अध्यात्मविद्या की उन्नति हो सकती थी और यह बात सर्वत्र स्वीकृत है कि इस विद्या में भारत सब का गुरु रहा है। पश्चिम के विद्वान् तो इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि जब उनके यहाँ साधारण बातचीत करने का भी लोगों में ढंग न था, भारतीय चिन्तन उच्च कोटि पर पहुँच चुका था। यदि कोई ऐसी वस्तु है जिस पर हम भारतीय वास्तविक अभिमान कर सकते हैं, जिसके द्वारा भारत की प्रख्याति ∔ और नाम है, तथा जिसके बल पर पश्चिम के सभ्य देशों में भारतीय विद्वानों का समादर होता है तो वह भारतीय दर्शन ही है। भारत के दर्शन का लोहा सभी मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहँस, राधाकृष्णन प्रभृति दार्शनिकों ने आज भी भारत का नाम इस दृष्टि से ऊँचा किया है। आज से ही नहीं बहुत समय से भारतीय दर्शन संसार में सर्वत्र आदर और सम्मान के साथ देखा जाता है—अरस्तू + और प्लेटो के समय में भी भारत के दर्शन का बोल-बाला था।

जिसके द्वारा देखा जाय उसे दर्शन कहते हैं—'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अब प्रश्न उठता है—क्या देखा जाय? इसका उत्तर दिया गया है कि वस्तु का सत्यभूत तात्त्विक* स्वरूप देखा जाय। वस्तुओं की उत्पत्ति, कारण, प्रकृति, कर्तव्य साधन आदि के समुचित उत्तरों की प्राप्ति ही दर्शन का लक्ष्य होता है। दर्शन एक प्रकार का शास्त्र है। शास्त्र शासन करने

---

† बलदेव उपाध्याय, ∔ प्रसिद्धि, + Aristotle and Plato प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान्, * असली।

वाले होते हैं और इनके दोनों ही रूप हो सकते हैं—विधि बताने वाले अथवा निषेध करने वाले। शास्त्र हमें किन्हीं बातों को करने की विधि बताता है साथ ही अनेक बातों के करने का निषेध भी करता है। अंग्रेजी में दर्शन को Philosophy† कहा जाता है जिसका अर्थ है "विद्यानुराग" यह विद्यानुराग प्रधानतः जगत, जीव और ईश्वर के प्रति होता है। पश्चिम और पूर्व के दर्शन में एक विशेष बात यह देखी जाती है कि पश्चिम-दर्शन 'कल्पनाकुशल कोविदों के मनोविनोद का साधन' है, वे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ कर, अनेक विचारों का आश्रय ले मनोविनोद मा करते हैं किन्तु हमारे यहाँ दर्शन का उद्देश्य दुःखत्रय ÷ को आमूल × उच्छेद करने का रहा है। एक प्रकार से दुःखत्रय से उद्विग्न होकर ही मनुष्य दर्शन का आश्रय लेता है और फिर इस बात की खोज में रहता है कि किस प्रकार इन तीनों प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाकर परमानन्द की प्राप्ति हो।

हमारे यहाँ के दार्शनिक सिद्धान्तों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक के अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, कर्म तथा वेदान्त आ जाते हैं जिनमें ईश्वर की सत्ता, वेदों की प्रामाणिकता आदि पर विश्वास किया गया है। नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि दर्शन आते हैं। पश्चिमीय विद्वानों ने दर्शन का श्रेणी विभाग उसकी क्रियात्मक प्रणाली के विचार से किया है। दर्शन के ६ विभाग हैं—(१) तत्त्वमीमांसा + —जो सत् के चिंतन की ओर अग्रसर होता है, (२) प्रमाणमीमांसा /\ —जिसके द्वारा 'ज्ञान' का विवेचन किया जाता है, (३) तर्कशास्त्र ‡ जो विशिष्ट नियमों के पालन से तर्क द्वारा निश्चयों पर पहुँचाता है, (४) आचारमीमांसा § —जिसमें जीवन को उपयोगी बनाने की बातों पर विचार होता है, (५) सौन्दर्य मीमांसा $ —जो सौन्दर्य का निर्णय करता है और व्यावहारिक

† फिलास-सोफिया, ÷ दैविक, दैहिक, भौतिक, × जड़-सहित, + metaphysics, /\ Epistomology, ‡ Logic, § Ethics, $ Aesthetics।

सौन्दर्य को बताता है तथा (६) मनोविज्ञान*—जिससे मन की विविध प्रवृत्तियों का शास्त्रीय विवेचन होता है। पश्चिम में दर्शन के अन्तर्गत इन सभी शाखाओं का बोध कराया जाता है। पश्चिमीय और भारतीय दृष्टिकोण को समझने के लिए इन वर्गीकरणों का जानना आवश्यक है।

भारतीय दर्शन की कुछ विशेषताओं से भी हमें अवगत होना चाहिये। हमारे साहित्य और धर्म में दर्शन की एक स्वतंत्र स्थिति है, यह एक महत्त्वपूर्ण विषय गिना जाता है। साथ ही इसका धर्म से गहरा सम्बन्ध है। हम लोग मानते आये हैं कि जैसा विचार हो वैसे ही आचार भी हों, जीवन में चिंतन और आचार यहाँ तक कि व्यवहार भी एक रूप हो जावें। सत्य की सर्वत्र खोज ही हमारा ध्येय रहा है। पश्चिम में दर्शन का उद्गम 'आदमुत्य'† में है। कुछ वस्तुएँ विचित्र प्रतीत होती हैं उनके सम्बन्ध में विवेचन का कार्य दर्शन द्वारा कराया जाता है। परन्तु भारत में तो दुःख की सत्ता और उसका निराकरण दर्शन का विषय है। हमारे देश की दार्शनिक धारा पुण्यवती पवित्र सलिला गंगा की भाँति अविच्छिन्न× रूप से बहती हुई अनेकानेक अन्य दर्शनों को प्रभावित करती रही है। फारसी, लैटिन, जर्मन, अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके हैं हमारी दर्शन-पद्धति उदार, व्यापक, विशाल है और ईश्वर जैसे सर्वमान्य विषयों पर भी स्वतंत्र विचार करती आई है। दृष्टिकोण सर्वदा व्यापक रहा है। प्रतिपक्षी के मत की अवहेलना नहीं की गई है प्रत्युत उसके मत का प्रतिपादन कर फिर प्रबल युक्तियों द्वारा उसका खण्डन किया है और तदुपरान्त अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। व्याख्या केवल सैद्धान्तिक÷ ही नहीं है, अनुभवपूर्ण है। प्रत्येक बात को तीनों अवस्थाओं+ में देखा गया है।

'आत्मा को पहचान कर उसका साक्षात्कार करना' हमारे दर्शन का लक्ष्य रहा है। संसार में सबसे प्रिय वस्तु आत्मा है, और इसका ह

---

* Psychology, † Philosophy begins in wonder
× अटूट, ÷ Theoretical, + जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति।

वास्तविक रूप जानना सबसे मुख्य है। एक प्रकार से हमारी सभी विद्याओं का यही लक्ष्य रहा है। आत्मा ही एकमात्र द्रष्टव्य पदार्थ है इसका ही साक्षात्कार अपेक्षित है। दर्शन ने इसकी तीन युक्तियाँ बताई —श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन* ।

दर्शन और जीवन का इतना घनिष्ठ योग देखकर तथा दर्शन की इतनी व्याप्ति देखकर कुछ लोग भारतीय दर्शन पर मिथ्यारोप करते हैं। उनका कहना है कि भारतीय दर्शन ने हमें निराशा और अकर्मण्यता केवल दो ही वस्तुएँ प्रदान की हैं। भाग्य के सहारे बैठा रहना और जीवन को दुःख और निराशा से परिपूरित समझना—ये दो बातें ही हमें सिखाई जाती हैं। ऐसा समझना भारी भूल है। दर्शन की निराशा, वर्तमान में असन्तोष को कराने वाली है, किन्तु उसमें मनोरम भविष्य की कल्पना है। यह दुःखत्रय से उत्पन्न होती है, इनकी हम किसी भी अवस्था में अवहेलना नहीं कर सकते क्योंकि ये तो हैं ही, परन्तु हमारा दर्शन इस दुःखत्रय का समूल उच्छेद करने की ओर अग्रसर होता है। कहना चाहिये कि दर्शन क्लेश और निराशा के स्थान में आनन्द और मनोरम भविष्य की स्थापना करता है। इसी प्रकार अकर्मण्यता का मिथ्यारोप है। भारतीय दर्शनकार 'कर्मवाद' के सिद्धान्त को मानते रहे हैं। सुप्रसिद्ध गीता को ही देखिये जिसमें कितनी दृढ़ता के साथ कर्म का पाठ पढ़ाया गया है। मायावाद के प्रचारक शंकर की ही कर्मठता देखिये। साथ ही दर्शन श्रुति और तर्क दोनों का ही सहारा लेता है। ऋषियों के द्वारा अनुभूत अपरोक्ष ज्ञान‡ तथा अनेक प्रकार के तर्क द्वारा वास्तविकता को जानने की चेष्टा करता है। ऐसी अवस्था में दर्शन पर आरोपित दोनों दोष भ्रमात्मक हैं।

जैसा अन्यत्र संकेत किया है, हमारा दर्शन दो प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक के अन्तर्गत वैदिक काल, उपनिषद् काल तथा दर्शनकाल आते हैं; तथा नास्तिक में बौद्ध एवं जैन दर्शनों की गणना है। वैदिक काल में प्रवृत्तियाँ प्रज्ञा†

---

* अष्टांग योग आदि, ‡ आध्यात्मिक, † बुद्धि ।

तथा तर्क-मूलक थीं जो उपनिषद् काल में मुख्यतः तर्क मूलक ही बन गईं। 'तत्त्वमसि[§]' ही भारतीय दर्शनों की उत्पत्ति का मूल कारण हुआ। इसका विवेचन मुख्यतः ६ शास्त्रों में हुआ। कपिल मुनि के सांख्य द्वारा प्रकृति तथा पुरुष के पार्थक्य को ज्ञात करने पर तत्[¶]त्वं[‡] की एकता घोषित की गई। पतञ्जलि ने अपने योग दर्शन में व्यावहारिक रूप पर विशेष बल दिया। वैशेषिक के रचयिता कणाद ने आत्मा तथा परमात्मा के गुण का विवेचन किया। ज्ञान की शास्त्रीय पद्धति का निरूपण गौतम द्वारा 'न्याय' में किया गया। कर्मकांड की ओर मीमांसाकार जैमिनि आकर्षित हुए और सर्व प्रसिद्ध ज्ञानकाण्ड की मीमांसा वेदान्त द्वारा, बादरायण व्यास द्वारा की गई जिस पर बड़ा गम्भीर विवेचन हुआ और उपयोगी साहित्य का सृजन हुआ।

नास्तिक दर्शन भी औपनिषद् परम्परा में ही हैं, किन्तु वहाँ आचार की सहायता से शरीर-शुद्धि मानी गई है। बौद्ध दर्शन में 'अष्टांग मार्ग' नाम का आचार मार्ग मुक्ति का साधन माना गया है। जैन दर्शन 'स्याद्वादी' है, वह 'अनेकान्तवाद' भी कहलाता है। इसी के ऊपर जैन-धर्म का समस्त आचार मार्ग अवलम्बित है।

इतना कुछ होने पर भी भारतीय दर्शनों में पारस्परिक समानता रही है। सबका उद्देश्य व्यावहारिक रहा है—विपत्ति से मुक्ति की ओर सभी दर्शनों का ध्येय रहा है। 'दुःखत्रय' को देखकर ही चिन्तन से आरम्भ हुए हैं। वर्तमान के असन्तोष और भविष्य की उज्ज्वल कल्पना उनका पथ-प्रदर्शक रहा। 'चार आर्य सत्य'—दुःख, दुःख का हेतु, मोक्ष तथा मोक्षोपाय हमारे दार्शनिकों के सामने रहे। हमारे ऋषि इस बात में विश्वास करते रहे कि विश्व में सर्वत्र व्यवस्था है। यदि ऐसा नहीं होता तो उनके सिद्धान्तों की आधार-भित्ति सर्वदा हिलती रहती। कर्म सिद्धान्त को सभी दर्शनकारों ने माना है, साथ ही यह भी माना है कि अविद्या से बन्धन तथा विद्या से मोक्ष की प्राप्ति होगी—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'। मोक्ष का सिद्धान्त भी अति प्रचलित है। इस जन्म ही मुक्ति-जीवन्मुक्ति—यह

---

§ ब्रह्म और जीव की एकता, ¶ ब्रह्म, ‡ जीव।

आदर्श उपनिषदों की बहुमूल्य देन है। मोक्ष-मार्ग में सभी ने 'साधना' की आवश्यकता बताई है। बौद्धों ने 'अष्टांग मार्ग' बताया, योग ने 'अष्टांग' का आदर्श लिया तथा जैन दर्शन 'सम्यक् चारित्र*' पर बल देता रहा। उपनिषदों ने भी प्रेय† और श्रेय$ दो मार्ग बताये और श्रेय मार्ग पर जोर दिया।

इस प्रकार भारतीय दर्शन न केवल हमारा ही अपितु विश्व का मार्ग आलोकित करता हुआ, विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित हो वास्तविक आनन्द तथा आत्मा के साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता रहा है।

विस्तृत रूपरेखा

१—भारतीय दर्शन की प्रख्याति—i विदेशों में—बहुत समय से अब तक, ii अनेक विद्वान, iii सम्यक् विवेचन।

२—दर्शन शब्द का अर्थ—i वस्तु के सत्य मूल रूप को देखना—उत्पत्ति कारण, कर्तव्य, साधन, प्रकृति आदि का समुचित उत्तर प्राप्त होना, ii दुःखत्रय से उद्विग्न होकर, iii पश्चिम में—मनोविनोद का साधन, वैचित्र्य का स्थान।

३—प्रकार—i भारतीय (a) आस्तिक—वेद, उपनिषद् दर्शन, (b) नास्तिक—चार्वाक, जैन, बौद्ध, ii पाश्चात्य—१—तत्त्व मीमांसा, २—प्रमाण मीमांसा, ३—तर्क शास्त्र, ४—आचार मीमांसा, ५—सौन्दर्य मीमांसा, ६—मनोविज्ञान।

४—भारतीय दर्शन की विशेषताएँ—i स्वतन्त्र स्थिति-महत्त्वपूर्ण विषय, ii दर्शन और धर्म की घनिष्ठता, iii अविच्छिन्नता—अनेक अन्य दर्शनों पर प्रभाव, iv विवेचनात्मकता, v व्यापक दृष्टि, vi अनुभव पूर्ण व्याख्या, vii उद्देश्य—आत्मा का साक्षात्कार।

५—मिथ्यारोप—i नैराश्यवाद, ii अकर्मण्यता, iii समाधान—(a) भविष्य की कल्पना, (b) दुःखत्रय से छुटकारा, (c) क्लेश के

---

* यम, नियम, ध्यान आदि, † प्रवृत्ति, $ निवृत्ति।

स्थान में आनन्द, (d) गीता का कर्म-सिद्धान्त, (e) शंकर की कर्मठता, (f) श्रुत—अनुभूत ज्ञान, (g) तर्क विद्या।

६—काल विभाग - i आस्तिक—(a) वैदिक, (b) उपनिषद्, (c) दर्शन—६ दर्शन, ii नास्तिक—(a) चार्वाक, (b) बौद्ध, (c) जैन।

७—दर्शनों की समानता—i व्यवहारिक उद्देश्य, ii वर्तमान से असन्तोष, चार कार्य सत्य, iii नैतिक व्यवस्था में विश्वास, iv कर्म सिद्धान्त, v मोक्ष तथा उसके मार्ग की एकता।

८—उपसंहार—वांछनीय रूप।

(बलदेव उपाध्याय कृत 'भारतीय दर्शन' के आधार पर)

१६-वर्णाश्रम धर्म

विस्तृत रूपरेखा

१—अभिप्राय और आवश्यकता—i वर्णाश्रम धर्म चार वर्ण और चार आश्रमों की बात बताता है, (a) समाज के चार विभाग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, (b) जीवन के चार विभाग—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, ii सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन की नियमितता के हेतु—(a) समाज में कुव्यवस्था न हो, (b) सब कार्य सुचारु रूप से चले, (c) मनुष्य का जीवन सुख-शान्तिमय हो, iii आवश्यकता के कारण ही वर्णों की स्थापना तथा आश्रमों की योजना।

२—वर्ण—i वर्ण चार हैं, ii कार्य के विचार से विभाग हुआ, (a) पठन-पाठन (ब्राह्मण), (b) रक्षा और शस्त्र-संचालन (क्षत्रिय), (c) उत्पादन तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति (वैश्य), (d) सेवा (शूद्र), iii जन्मना अथवा कर्मणा—दूसरा सिद्धान्त आजकल मान्य होता है, iv वर्ण के अनुसार लोगों का विभाजन, अथवा योग्यता के अनुसार विभाजन, v दोष—(a) दोष काला-

न्तर में आ गये, (b) छुआछूत—अछूतों की समस्या, (c) ब्राह्मणों का प्रभुत्व, vi दोषों का परिहार—लगभग हो चुका है।

३—आश्रम—i आश्रम भी चार हैं, ii विकास की दृष्टि से उनकी कल्पना, (a) शिक्षा, योग्यता और शक्ति की प्राप्ति (ब्रह्मचर्य), (b) सामाजिक संचालन (गृहस्थ), (c) गृह-त्याग (वानप्रस्थ), (d) विश्व-हित-चिन्तन तथा आत्मा के स्वरूप की खोज (संन्यास), iii आधुनिक रूप—(a) नष्ट प्राय—केवल दो कुछ, किसी रूप में हैं, (b) जीवन के अन्तिम दो कालों का लोप, (c) जीवन के रूप में परिवर्तन, iv पुनरुद्धार का प्रश्न—(a) ब्रह्मचर्य को शिक्षा प्राप्ति, शारीरिक सङ्गठन के लिए रखा जाय, (b) अन्तिम दो पर उदासीनता, (c) जीवन की गहनता में, रोटी के प्रश्न में गृहस्थ तक समाप्ति।

४—वर्णाश्रम का उपयोग—i कार्य विभाजन के सिद्धान्त पर वर्ण-धर्म की स्थापना—दोष पीछे आया। ii सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को सम्यक् रूप में संचालित करना—पहले बड़े-छोटे का भेद नहीं था। iii वर्ण भेद किसी न किसी रूप में सर्वदा, सर्वत्र रहेगा—धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, काले-गोरे, श्रमिक-पूँजीपति आदि। iv आश्रमों द्वारा जीवन में व्यवस्था थी—जीवन को पूर्ण बनाने का साधन था और सर्वांगीण उन्नति का स्थान था। v लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति (प्रेय-श्रेय) को स्थान था।

५—ह्रास के कारण—i वर्ग विशेष की अहंमन्यता। ii पश्चिमीय—साम्यवादी आदि सिद्धान्त। iii पश्चिमीय विचार-धारा तथा साहित्य का प्रसार। iv जीवन की गहनता—सामाजिक, पारिवारिक जीवन में परिवर्तन। v मुसलमानी, अँग्रेजी अनेक प्रभाव।

६—वर्तमान रूप—i छूआछूत बहुत कम हो गया है किन्तु वर्ण चल रहे हैं। विवाह, जीवन-कृत्य आदि अवसरों पर लक्षित होते हैं। ii जाति को अन्त करने की धारा है अवश्य, किन्तु काफी समय लगेगा।

iii आश्रम एक दम समाप्त हो गए—ब्रह्मचर्य-गृहस्थ में भी कोई बंधन नहीं, मनमाना रूप चल रहा है।

७—उपसंहार—विचार विशेष—आवश्यकता अनावश्यकता, सुधार, वाञ्छनीय रूप, वर्तमान प्रवृत्ति, सम्भावित भविष्य।

२०—हिन्दुओं के तीर्थ

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दुओं की धार्मिक भावना—i जन्म से मृत्यु पर्यन्त धार्मिकता। ii जीवन के प्रत्येक अङ्ग में। iii यहाँ की रम्य प्रकृति, पावन प्रदेश तथा जीवन की सुगमता। iv चिन्तन की सरलता और आधिक्य।

२—तीर्थ—i अधिक तीर्थ होने के कारण—(a) धार्मिक भावना। (b) सत्संग की प्रेरणा। (c) सुन्दर स्थलों एवं व्यक्तियों के दर्शन। (d) जीवन-सुधार—इस लोक में परलोक में। ii कुछ तीर्थ—(a) पहाड़ों में—बद्रीनाथ, केदारनाथ। (b) नदियों के किनारे, संगमों पर—मथुरा, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, गंगासागर। (c) प्रसिद्ध पौराणिक तथा ऐतिहासिक स्थानों पर—नासिक, एकलिंग, वृन्दावन, गोवर्धन, रामेश्वर, द्वारकापुरी, श्रीनाथजी, कुरुक्षेत्र। (d) देश में चारों ओर।

३—तीर्थों का महत्त्व—i स्थानों का महत्त्व—कुछ सिद्ध तपोभूमियाँ - जैसे बद्रिकाश्रम, नासिक। ii सभ्यता एवं संस्कृति-प्रसार के केन्द्र—उज्जैन, प्रयाग, हरिद्वार, रामेश्वर आदि। iii पारस्परिक मिलन, संगठन की भावना, एक ही धर्मावलम्बियों का आदान-प्रदान। iv जीवन में सन्तुष्टि—(a) कुछ सिद्धान्तों से जीवन प्रभावित। (b) प्राचीन स्मृतियां। (c) अपनी क्रिया-प्रणाली पर ध्यान। (d) आस्तिकता से सुन्दर भावना। v पारलौकिक—(a) हमारी विचार-धारा। (b) जीवन का उद्देश्य। (c) स्वर्ग, मुक्ति, साक्षात्कार की

भावना। (d) साधना की सुलभता। vi विशेष अवसरों पर तीर्थ-सेवन, स्नान दर्शन आदि तथा उनके विशेष प्रसंग।

४—तीर्थ स्थानों की वर्तमान अवस्था—i सरकार का ध्यान—साम्प्रदायिक भावना को दोष दिये जाने के कारण बहुत कम है। ii पुनरुद्धार की भावना—सोमनाथ का पुनः स्थापन। iii यात्रियों की भावना। iv तीर्थाधिकारियों—पण्डों आदि की हीन अवस्था, उनके कारण यात्रियों का भाव-परिवर्तन। v आवागमन के साधनों की सुविधा पहुँचने में कम कठिनाई। vi स्थानों की पवित्रता, मुख्यता, महत्त्व आदि की ओर ध्यान का अभाव। vii जनता और तीर्थ-अधिकारी।

५—लाभ - i धार्मिक केन्द्र। ii आध्यात्मिकता के अध्ययन प्रचार आदि की सुविधा का सुयोग। iii विश्व-कल्याण की भावना का प्रसार। iv सत्संग, कीर्तन, हृदय शुद्धि की सुगमता। v साधु महात्माओं को प्रदत्त सुविधाएँ। vi स्थान के प्रभाव से प्रभावित।

६—उपसंहार—आजकल की विचार-धारा—तीर्थों के विरुद्ध–परन्तु यदि –i यात्री तीर्थों के वास्तविक महत्त्व को समझें। ii पंडों के व्यवहार, उनके जीवन तथा उनकी प्रणाली में अत्यन्त सुधार की आवश्यकता। iii व्यर्थ के यात्री-करों को हटाया जाना। iv आवागमन में अधि-काधिक सुविधा की आवश्यकता। v तीर्थ-स्थानों में निवास स्थानों पर निरीक्षण, उनकी सुगमता तथा नियमों में परिवर्तन। vi वाता-वरण की पवित्रता, कुरुचिपूर्णता का निष्कासन–भद्दे प्रदर्शन न हों–इन बातों पर ध्यान दिया जाय तो परम लाभकारी हो सकते हैं।

२१—हिन्दी के भक्त कवि

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दू जीवन, संस्कृति, धार्मिक चेतना में भक्ति का स्थान—i ज्ञान कर्म एवं उपासना—भक्ति का महत्त्व। ii सगुणोपासना की परि-पाटी—मन्दिर आदि। iii भक्ति का अनेक प्रकार से निरूपण,

नवधा भक्ति, भक्ति के अन्य प्रकार, भगवन्नाम जप, संकीर्तन, भक्ति साहित्य की परम्परा। iv भारत के प्रत्येक प्रान्त में भक्त कवि।

२—हिन्दी में भक्तिकाल के नाम से सुविख्यात कालविभाजन—i दोनों प्रकार की भक्ति—निर्गुण, सगुण। ii निर्गुण भक्ति में ब्रह्म, आत्मा, जीव, माया आदि के प्रकरण दो प्रकार (a) ज्ञानाश्रयी—सन्त कवि (b) प्रेममार्गी—सूफीकवि। iii सगुण भक्ति--भक्ति का अधिक विकसित रूप (b) जनसाधारण में प्रचलित (c) भक्ति के दो प्रकार—रामभक्ति; कृष्णभक्ति। iv भक्ति काल का साहित्य और उसमें भक्त कवियों का स्थान—सुन्दर उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य, मुक्तक गीतात्मक, नाटक आदि रामचरित मानस, सूरसागर, रासपंचाध्यायी, प्रसन्नराघव पद, दोहा आदि (सन्त साहित्य)।

३—भक्तों की विचार-धारा और काव्य प्रतिभा—i सन्तकवि अपने उच्च विचार, उपदेशात्मक प्रवृत्ति और सुधारवादिता से प्रभावित थे उनके उद्योग (a) साम्प्रदायिक कटुता, (b) कर्मकाण्ड-आडम्बर, (c) सामाजिक कुरीतियाँ, (d) अछूत भावना, (e) कविता में काव्य-गुणों की कमी, (f) रहस्यात्मक प्रणाली, व्यङ्ग्ययुक्त, (g) पद, दोहा आदि के विरुद्ध थे और बड़ी तत्परता से प्रचार किया। ii राम और कृष्ण के भक्त-कवि। (a) सौभाग्य, सरलता, भावुकता, (b) सरस, काव्य गुण पूर्ण रचनाएँ, (c) राम और कृष्ण के मनोमुग्धकारी तथा जीवनोपयोगी रूप (d) उनके जीवन और काव्य की कलात्मकता। iii आधुनिक भक्त-कवि -- (a) भगवान् के गुणों का दिग्दर्शन, (b) लोक कल्याणकारी, आदर्श रूप का उद्घाटन (c) महापुरुष भावना, (d) रहस्य की ओर मनोवृत्ति, हृदय-पक्ष का प्राबल्य। (e) प्रबन्धों को नवीन रूप।

४—हिन्दी में भक्त-कवियों की परम्परा—i आदिकाल – (a) वज्रयान सम्प्रदाय—वामाचारी--८४ सिद्ध इनकी बानी अपभ्रंश भाषाओं में है—(b) गोरखपन्थी—योगी, कनफटे। (c) मैथिल कोकिल विद्यापति शैव थे, किन्तु काव्य राधाकृष्ण सम्बन्धी है। ii पूर्व मध्य-

काल—परिचय भक्तिकाल के अन्तर्गत है। (a) सन्त—कबीर, रैदास, नानक, धर्मदास, सुन्दरदास, दादू, मलूकदास, नागर अनन्य। (b) प्रेममार्गी—जायसी, कुतबन, मंझन, उसमान, (c) राम के भक्त—रामानन्द, तुलसीदास, नाभादास, हृदयराम (हनुमानजी के उपासक। (d) कृष्णभक्त—अष्टछाप के कवि (सूर आदि) मीरा, रसखान। iii उत्तर मध्यकाल—भक्ति का विकृत रूप आरम्भ शृङ्गार-प्रियता। iv आधुनिक—राम-कृष्ण-भक्ति की ओर प्रेम गुप्त—साकेत, पञ्चवटी, द्वापर। हरिऔध—प्रियप्रवास, वैदेही-बनवास। वियोगीहरि—व्रजभाषा में माधुर्य, फुटकर रचनाएँ।

५—अतिरिक्त विचार—i भक्त-कवि कविता को साधनमात्र समझते हैं साध्य नहीं। ii भक्ति सम्बन्धिनी कविताएँ अनुभव एवं प्रेमाधिक्य से हृदयस्पर्शिनी होती हैं। iii भारत में भक्तों के अनेक सम्प्रदाय हैं—वैष्णव, शैव, शाक्त वैष्णवों में भी स्मार्त, वल्लभाचारी, निम्बार्क आदि अनेक श्रेणियाँ हैं। iv विभिन्न मतावलम्बियों में प्रायः प्रेम और सद्भावनाएँ रहीं। v भक्त कवियों ने भारत के जीवन को अत्यन्त प्रभावित किया।

६—भक्ति और भक्त-कवियों की अविच्छिन्न परम्परा।

राजनीतिक तथा आर्थिक निबन्ध

२२—छब्बीस जनवरी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—तिथि का इतिहास। २—भारत को गणतन्त्र राज्य घोषित किया जाना। ३—भारत का संविधान—भाग, अनुसूचियों तथा अनुच्छेदों का कुछ वर्णन। ४—राष्ट्र का एक पर्व। ५—२६ जनवरी का महत्त्व। ७—उपसंहार—कामनाएँ।

निबन्ध—सन् १६२६ में* भारत ने अपना ध्येय "पूर्णस्वराज्य" घोषित किया और तब से, निरतर, २६ जनवरी 'स्वराज्य दिवस' के नाम से मनाया जाना रहा। इस दिन देश के कोने-कोने में सभायें होती थीं, जुलूस निकाले जाते थे, वन्देमातरम् गायन होता था, राष्ट्रध्वजारोहण† तथा उसकी वन्दना होती थी और सबसे मुख्य 'स्वराज्य' प्राप्ति के ध्येय और उसके लिए बलिदान करने की प्रतिज्ञा को दुहराया जाता था। भारत का बच्चा-बच्चा इस बात को दुहराने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था कि शताब्दियों की दासता से मुक्त हो पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही भारत की राष्ट्रीय महासभा का एकमात्र ध्येय है। हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण§ अवश्य है किन्तु हमें प्रत्येक बलिदान के लिए प्रस्तुत रहना है, सरकार का सभी अत्याचार सहन करना है, जेल की यंत्रणायें+ हँसते-हँसते झेलनी हैं और जो भी कठिनाई सामने आवे उसका स्वतन्त्रता के नाम पर स्वागत करना है। यह वही दिन है जब विदेशी सरकार इस पवित्र दिवस को मनाने पर प्रतिबन्ध लगा देती थी, जुलूस और सभाओं

---

* राष्ट्रीय महासभा के लाहौर अधिवेशन में, † तिरङ्गा झण्डा फहराना, § काँटों से भरा हुआ, + कठोर दुःख।

पर १४४ धारा ÷ लगादी जाती थी, कहीं लाठियों के प्रहार होते थे, गोलियाँ चलती थीं, पुलिस की लारियाँ भर भर कर देश के नवयुवकों को लेजाकर जेल के सींखचों के अन्दर डाल देती थीं। किन्तु यह दिवस मनता रहा, 'आजादी के दीवाने' अपना कर्त्तव्य पूर्ण करते रहे और एक दिन उनका यह स्वप्न सत्य हो ही गया।

भारतीय संविधान × जब प्रस्तुत होरहा था तब अनेक दिवसों के ऊपर विचार किया गया, किन्तु २६ जनवरी से अधिक उपयुक्त कोई भी अन्य दिन प्रतीत नहीं हुआ। सन् १९५० में इसी दिन भारत को एक गणतन्त्री† राज्य घोषित कर दिया गया—जो गणतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व से सम्पन्न था। जनता के हाथों देश की बागडोर दे दी गई, और देश का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र होकर इस देश के शासन में अपने उत्तर-दायित्व का अनुभव करने लगा।

भारत का संविधान इसी दिन से लागू हुआ। देश के इतिहास में यह दिवस अत्यन्त महत्वपूर्ण है जब समस्त भारत के लिए यह विधान प्रचलित हुआ। इस विधान का संक्षिप्त परिचय और उस पर कुछ विचार अप्रासंगिक* नहीं होगा।

विधान २६ जनवरी सन् १९५० ई० से समस्त भारत में प्रचलित हुआ जिसमें २२ भाग ७ अनुसूचियाँ तथा ३९५ अनुच्छेद हैं। भाग १ के अनुसार भारत राज्यों का संघ होगा जिसके अन्तर्गत ४ प्रकार के राज्य व राज्य-क्षेत्र होंगे। इन भागों में प्रथम प्रकार के राज्य वे हैं जो अबतक ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत प्रान्तों के नाम से प्रसिद्ध थे जैसे उत्तर प्रदेश$, बिहार, मद्रास आदि। दूसरे प्रकार के राज्य देशी रियासतों के विलीनी-करण द्वारा बने हैं अथवा बड़े राज्य स्वतन्त्र रूप में हैं—जैसे राजस्थान, मध्यभारत, मैसूर, हैदराबाद। तीसरी सूची में वे राज्य हैं जो परिस्थिति विशेष से बने जैसे—अजमेर, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश। अन्तिम भाग में

÷ जिसके अनुसार मनुष्य समुदाय में एकत्रित नहीं हो सकते थे, × Indian Constitution, † रिपबलिक, * बिना अवसर का, $ पुराना युक्त प्रान्त।

अण्डमान और निकोबार द्वीप हैं। दूसरे भाग में भारत के नागरिक का वर्णन है जिसके अनुसार भारत में उत्पन्न होने वाले सभी व्यक्ति, भारत में उत्पन्न माता अथवा पिता की सन्तान तथा ५ वर्ष पूर्व से रहने वाले सभी व्यक्ति भारत के नागरिक होंगे। भाग ३ में अनेक प्रकार के संसद ÷ तथा सभाओं का वर्णन है। चौथे भाग में भारतीय नीति का निरूपण है जिसमें बताया गया है कि सभी स्त्री-पुरुषों की जीविका, आर्थिक व्यवस्था, उत्पादन, स्वास्थ्य, शक्ति का उचित उपयोग किस तरह किया जावेगा। राष्ट्रपति का निर्वाचन भाग ५ में बताया गया है। राष्ट्रपति ५ वर्ष के लिए निर्वाचित होगा और उसका चुनाव संसद के दोनों सदन × (राज-परिषद् तथा लोक परिषद्) के सदस्य, सूबों व रियासतों की परिषद् के चुने हुए सदस्य करेंगे। राज्य का कुल प्रबन्ध राष्ट्रपति के अधिकार में होगा। राष्ट्रपति के अधिकार, उनका उपयोग, त्यागपत्र, पुनर्निर्वाचन, वेतन आदि का भी इसमें वर्णन है। अगले भाग में राज्यों के राज्यपाल + उनके चुनाव की विधि, मंत्रिमण्डल आदि का उल्लेख है। भाग ७, ८ तथा ६ में क्रमशः राज प्रमुखों के प्रान्त, चीफ कमिश्नरों के प्रान्त तथा अण्डमन निकोबार द्वीपों के प्रबन्ध का वर्णन है। भाग १० और ११ भी शासन एवं अनुशासन से सम्बन्धित हैं। पारस्परिक सम्बन्ध, विवादग्रस्त प्रश्न आदि भाग ११ में हैं। सम्पत्ति सम्बन्धी बातें भाग १२ में हैं। भाग १३ व्यापार और वाणिज्य सम्बन्धी हैं और इस विषय में सरकारी कानूनों और प्रतिबन्धों का वर्णन करता है। भाग १४ में कर्मचारियों की नियुक्ति वेतन, परीक्षाओं ÷ आदि का विवरण है। निर्वाचन सम्बन्धी नियम भाग १५ में दिए गए हैं। पिछड़ी हुई जातियों के लिए भी एक पृथक् भाग दिया गया है जिसके अनुसार इनको उन्नत करने का प्रयत्न किया जावेगा। भाग १७ के अनुसार राजभाषा हिन्दी तथा लिपि देवनागरी रही किन्तु आगामी १५ वर्ष तक अँग्रेजी प्रयोग में आती रहेगी। बाहरी अथवा भीतरी गड़बड़ी के नियम, विधान आदि का उल्लेख भाग १८ में

÷ पार्लियामेंट, × हाउस, + गवर्नर, ÷ पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा आयोजित।

है। भाग १६ राष्ट्रपति, राजपाल, राजप्रमुख और राजाओं की द्रव्य स्वीकृति के सम्बन्ध में है—कोई ऐसा नियम न बनेगा जिसमें उस द्रव्य के मिलने में बाधा हो। अन्तिम तीन भागों में संविधान में संशोधन के नियम हैं। अन्तिम भाग में संक्षिप्त नामावली है।

यह है भारतीय सम्विधान का अति सूक्ष्म परिचय। इसके द्वारा एक नवीन व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ है। सभी के अधिकारों और स्वत्वों* की रक्षा का वचन दिया गया है और देश का शासन निर्वाचन के आधार पर है। किसी भी प्रकार से जनता की स्वतन्त्रता को सीमित नहीं किया गया है और साथ ही वे सब नियम भी प्रयुक्त हुए हैं जिनका होना किसी देश की आन्तरिक शान्ति और बाह्य सम्बन्धों के लिए आवश्यक है। देश की राजभाषा तो हिन्दी हो ही गई है और लिपि देवनागरी। अँग्रेजी को स्थानान्तरित× करने के लिये १५ वर्ष का समय रक्खा गया है किन्तु इन १५ वर्षों में सरकार शान्त बैठी न रहेगी—प्रति ५ वर्ष के बाद राष्ट्रपति एक कमीशन नियत करेगा जो यह रिपोर्ट देगा कि हिन्दी कहाँ तक प्रयोग में लाई जा सकती है। १५ वर्ष के बाद तो कोई भी बिल बिना राष्ट्रपति की विशेष आज्ञा के अँग्रेजी में उपस्थित ही न किया जा सकेगा।

२६ जनवरी हमें इस संविधान का भी स्मरण कराती है। हमारी वर्षों की की गई पूर्ण स्वराज्य की मांग को हमारे सामने उपस्थित कराती है। हम सोचते हैं आजादी भी कितना बड़ा वरदान है? देश के होनहार युवकों ने कौनसा बलिदान इसके लिए नहीं किया। हमारे नेताओं ने किस कर्मण्यता के साथ, सन् २६ की कीगई प्रतिज्ञा को, अनेक अत्याचार सहते हुए भी किस प्रकार पूरा कर दिखाया। संक्षेप में २६ जनवरी एक राष्ट्रीय पर्व है, जब हमें अपनी प्रतिज्ञा को वास्तविक रूप देने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ होना है। हम आजाद हो गए लेकिन हमें आजादी का सम्पूर्ण रूप देश में उपस्थित करना है।

---

* विशेष अधिकार, × स्थान से हटाने और दूसरी स्थापित करने।

यह तिथि एक समारोह + के रूप में देश भर में मनाई जाती है। कहीं गण-तन्त्र दिवस मनते हैं तो कहीं साप्ताहिक समारोह का आयोजन किया जाता है। खेल, तमाशे, परेड, सजावट, भाषण, सभाएँ, रोशनी, कवि-सम्मेलन, राज-दरबार, वाद-विवाद प्रतियोगिता, मॉक पार्लियामेंट* प्रतिद्वन्द्वी खेल※, अनेक प्रकार के समारोह देश भर में होते हैं। प्रजा तथा सरकार दोनों ही इस पुण्य पर्व को मनाते हैं। वैसे तो अब प्रजा और सरकार में कोई अन्तर रह ही नहीं गया है। विदेशी सत्ता के समाप्त होते ही दोनों में ऐक्य स्थापित हो गया है और दोनों के कर्तव्य तथा ध्येयों में एकीकरण हो गया है। सम्पूर्ण देश में प्रसन्नता और आनन्द की एक लहर दौड़ जाती है। समाचार-पत्र अपने-अपने सुन्दर विशेषांक निकालते हैं। सभी प्रकार इस मंगल-दिवस का अभिनन्दन किया जाता है।

वास्तव में २६ जनवरी देश के लिए एक महत्त्वपूर्ण तिथि है। भारतीय इतिहास में इस दिन का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में होगा। देश का सम्पूर्ण भविष्य इसी तिथि से सम्बन्धित है। और इसके पीछे एक लम्बा इतिहास ÷ है। प्रत्येक भारतवासी की यही कामना होगी कि इस पुण्य तिथि को हम अधिकाधिक उत्साह से चिरकाल तक मनाते रहें, और इस देश के द्वारा प्राप्त स्वतन्त्रता को सर्वदा अक्षुण्ण × रखें।

विस्तृत रूपरेखा

१ – तिथि का इतिहास—i सन् १९२९ का पूर्ण स्वराज्य वाला प्रस्ताव। ii 'स्वराज्य दिवस' के रूप में अनेक वर्षों तक रही। iii इस तिथि को मनाते समय विदेशी सरकार के अत्याचार। iv नवयुवकों के बलिदान।

२ गणतन्त्र राज्य—i ता० २६ जनवरी को भारत एक गणराज्य घोषित

+ उत्सव, * Mock Parliament, ※ मैचेज, ÷ कम से कम सन् २९ से, × स्थापित, नष्ट न होने देना।

किया गया। ii जन समुदाय के अधिकार। iii संविधान लागू होने की तिथि।

३—भारत का संविधान—i २२ भाग, ७ अनुसूचियाँ, ३६५ अनुच्छेद। ii भागों का विवरण—(१) भारत राज्यों का एक संघ। (४ प्रकार के राज्य)। (२) भारत का एक नागरिक। (३) संसद तथा सभाएं। (४) नीति-निरूपण—व्यवस्था, उत्पादन, शक्ति। (५) राष्ट्रपति का निर्वाचन। (६) राज्य पालों का चुनाव। (७, ८, ६) अन्य तीन प्रकार के राज्यों का वर्णन। (१०) शासन तथा अनुशासन। (११) राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध। (१२) सम्पत्ति प्रकरण। (१३) व्यापार और वाणिज्य। (१४) कर्मचारियों का चुनाव, वेतन आदि। (१५) निर्वाचन-नियम। (१६) पिछड़ी जातियाँ। (१७) राज-भाषा हिन्दी, लिपि देवनागरी (१८) आन्तरिक शान्ति तथा बाह्य सम्बन्ध (१६) द्रव्य स्वीकृति (२०, २१, २२) संविधान में संशोधन के नियम तथा नामावली। iii जनता के अधिकार। iv सभी के अधिकारों की रक्षा। v हिन्दी का स्थान।

४—राष्ट्र का एक पर्व—i आज़ादी का वरदान। ii नेताओं की सेवाएँ, बलिदान। iii प्रतिज्ञा को वास्तविकता देने का अवसर। iv देश भर में समारोह—अनेक प्रकार के प्रसन्नतासूचक आयोजन। v सरकार और प्रजा द्वारा उत्साह।

५—महत्त्व और कामना—i आजादी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण। ii अन्य देशों के अनुसार यहाँ की गणतन्त्रात्मक प्रजा का स्वप्न। iii पिछला इतिहास। iv देश वासियों की कामना। v स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने की बात।

२३—हड़ताल

संक्षिप्त रूपरेखा

१—सत्य और अहिंसा से सम्बन्धित एक प्रभावशाली अस्त्र, २—इसका उपयोग—वास्तविक अर्थ में, ३—दुरुपयोग, ४—हड़ताल का प्राचीन सामान्य रूप—दो रूप, ५—हड़ताल का एक दिन, ६—हड़ताल तब और अब, ७—उपसंहार—वाञ्छनीय रूप—श्रमिक और विद्यार्थी।

निबन्ध—'आज कालेज नहीं जावेंगे' क्यों, क्या कारण है?—'आज हड़ताल है।' पिछले स्वतन्त्रता संग्राम में यह वस्तु हाथ आई और इसका उपयोग आरम्भ हुआ। अनेक अवसरों पर इसका प्रभाव ब्रह्मास्त्र* जैसा हुआ, और बिना किसी विशेष कठिनाई के कठिन कार्य सम्पन्न हो गया। स्कूल और कालेजों में भी इसे खूब काम में लाया गया और विशेष कुछ वर्षों तो यह एक सामान्य प्रवृत्ति हो गई कि जब कोई बात विद्यार्थियों की रुचि के अनुकूल न हुई तो इस मार्ग का अवलम्बन लिया—अस्सी प्रतिशत सफलता तो अवश्य ही प्राप्त हुई। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा प्रदत्त यह ब्रह्मास्त्र सत्य और अहिंसा से सम्बन्धित है। इसको काम में लाने के पूर्व इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये कि हमारा आचरण सत्य पर आश्रित है या हम केवल हठधर्मी करने जारहे हैं। उद्देश्य की सत्यता का निश्चय करने के उपरान्त ही इसे ग्रहण करना चाहिये, और जब इसका प्रयोग किया जाय तो प्रत्येक रूप में अहिंसात्मक रहने की आवश्यकता है। मन में हिंसात्मक भाव भी न आने पावें। यदि किसी प्रकार का व्यक्तिगत वैमनस्य आगया, अथवा क्रोध प्रकट हो गया तो इस पवित्र सिद्धान्त का घोर अपमान हुआ समझिये। यह क्रिया-प्रणाली सविनय आज्ञा भंग† से सम्बन्धित है। आज्ञा भंग अवश्य होता है किन्तु विनय का परित्याग नहीं किया जाता। यदि विनय से हम च्युत$ हो गये तो हमने सिद्धान्त की आदर्श रूपात्मकता को§ कलुषित कर दिया।

---

* सर्वदा सफल होने वाला अस्त्र, † Civil disobedience, $ गिर जाना, § सत्य और अहिंसा युक्त।

इस अस्त्र का उपयोग सच्चाई और पवित्रता के साथ करना चाहिये। जब हमें इस बात का पूर्ण विश्वास हो जाय कि हमारी मांग नितान्त नियमानुकूल है और उसे स्वीकार नहीं किया जारहा है तभी इसको हाथ में लेना चाहिये। छोटी-छोटी बातों के लिए इसका आश्रय लेना सिद्धान्त के आदर्श को नीचे गिराना है। जब सभी प्रकार की अनुनय-विनय व्यर्थ सिद्ध होने लगे, दूसरे पक्ष पर कोई प्रभाव न पड़े और नियम तथा न्याय की अवहेलना हो तभी हड़ताल करने की ओर ध्यान जाना चाहिये। इसके पीछे सत्य और अहिंसा के उच्चतम सिद्धान्त छिपे हुए हैं, साथ ही विनय की मात्रा भी पर्याप्त है अतएव इन तीनों बातों का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। असत्य एवं अवास्तविक बातों के लिए हट करना किसी भी दशा में उचित नहीं, हम अपने स्वार्थ के लिए सत्य का गला नहीं घोंट सकते। इसी प्रकार यदि हमने अपने प्रयास में अहिंसा का परित्याग कर दिया, अथवा किसी भी प्रकार की हिंसात्मक प्रवृत्ति दिखाई तो हमारा आन्दोलन अपने उद्देश्य से नीचे गिर जायगा। उसमें वह चारित्र-बल ही न रहेगा जिसके द्वारा इसमें शक्ति संनिहित है। विनय भी अहिंसा का ही अङ्ग है। अपने व्रत में पूर्ण दृढ़ता रखते हुए भी विनय का अतिक्रमण* करना न होगा। 'अनुशासन' को अवश्य भङ्ग करना है, किन्तु यह कार्य 'सविनय' होना है।

प्रायः देखा जाता है कि इस उत्कृष्ट प्रणाली का दुरुपयोग किया जाता है। छोटी-छोटी बातों के लिए हड़ताल की धमकी दी जाती है और वह क्रियान्वित† भी करदी जाती है। हमारे कालेज से अमुक अध्यापक हटा दो, अन्यथा हम हड़ताल करेंगे। अमुक दिनों की छुट्टी होनी चाहिये, यदि नहीं तो हम कक्षा में ही न जावेंगे। परीक्षा न होनी चाहिये। यदि ली गई तो कोई भी परीक्षा में न बैठेगा। अथवा श्रमिकों की हड़तालें जो वेतन, छुट्टी या किसी व्यक्ति विशेष के व्यवहार के कारण होती हैं। इनमें बहुत ही कम अवसर ऐसे होते हैं जब हम हड़ताल का उचित और न्यायानुकूल

* त्याग, छोड़ देना, † कार्य रूप में लाना।

बता सकें, अन्यथा तो केवल हठधर्मी या कुछ क्षुद्र स्वार्थों के कारण होती हैं। इस प्रकार का व्यवहार किसी भी दशा में शोभनीय नहीं।

अब तनक हड़ताल के रूप पर भी विचार करें। दो प्रकार की हड़तालें होती हैं—एक तो वह हड़ताल जो किसी कारण विशेष द्वारा—किसी शोकप्रद अथवा अन्य घटना के कारण सर्वत्र की जावे। इस प्रकार की हड़ताल के सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना, क्योंकि ऐसे शोकप्रद अवसरों पर स्वभावतः दुःख होता है और कार्य करने को जी नहीं चाहता तथा व्यक्ति विशेष के प्रति सम्मान का सूचक होता है। जब राष्ट्र की कोई अत्यधिक क्षति§ होती है—हमारा कोई महान् नेता हम से बिछुड़ता है तो उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन के हेतु कई दिन की भी हड़ताल हो सकती है।

जिस हड़ताल से हमें यहाँ प्रयोजन है वह एक दूसरे प्रकार की है‡। यह हड़ताल किसी वर्ग या समुदाय विशेष द्वारा किसी के विरोध में अनुशासन भङ्ग करने के हेतु की जाती है, जिससे सम्बन्धित व्यक्ति अथवा संस्था पर दबाव पड़े और हड़ताल करने वालों के अनुकूल बात हो जाय। तांगे वालों की रेट न बढ़ाने पर वे हड़ताल कर सकते हैं; अपनी माँगों को पूरी कराने के लिए महतर भी हड़तालें कर डालते हैं; मिल और फैक्टरियों में लम्बी हड़तालें हो जाती हैं; और विद्यार्थियों की हड़तालें तो आये दिन होती ही रहती हैं। इस प्रकार की हड़तालों में हम कई विशेष बातें देखते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह किसी संस्था अथवा व्यक्ति विशेष के विरुद्ध की जाती है; दूसरे हड़ताल करने वालों की कुछ माँगें होती हैं; इन हड़तालियों द्वारा काम, सामूहिक रूप में एक दम बन्द कर दिया जाता है जिससे सामान्य जनता को कष्ट होता है और जनता की ओर से इस बात का जोर डाला जा सकता है कि कोई पारस्परिक समझौता कर लिया जाय। ये हड़तालें प्रायः समझौते में समाप्त होती हैं, कभी-कभी बात बहुत बढ़ जाती है और शान्ति भङ्ग होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे अवसरों पर राजकीय अधिकारियों को अपना कर्तव्य करना पड़ता है और

---

§ बड़ी हानि, ‡ स्ट्राइक।

कभी-कभी तो बड़ी भीषण परिस्थिति हो जाती है जब अश्रु गैस +, डण्डे तथा गोली तक का आश्रय लेना पड़ता है। सिद्धान्त रूप से तो हड़तालों को एक दम शान्त रहना चाहिये, विनयशील रहना चाहिये; परन्तु कभी-कभी बड़े विकट झगड़े होते देखे गये हैं जब शान्ति स्थापना के लिए कानून की अनेक धाराओं को लगाना पड़ता है।

आइये, आपको हड़ताल के एक दिन का दर्शन करायें। वैसे तो हड़ताल कई दिन से चल रही थी, किन्तु हम हड़ताल के पाँचवें-छठे दिन को ले रहे हैं। मेहतरों ने नगर-पालिका सभा × से अपनी कुछ माँगें मानने के लिए प्रार्थना की थी। म्यूनिसिपैलिटी की आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं थी कि उन माँगों को स्वीकार किया जा सके। अतएव कई दिन समझौते की असफल बातों के पश्चात् हड़ताल की घोषणा कर दी गई और सब भङ्गी अपने घर बैठ गये। म्यूनिसिपैलिटी के कर्मचारियों का साथ वृत्ति वालों$ ने भी दिया और नगर पर घोर कठिनाई आगई। दो-एक दिन तो कुछ विशेष असुविधा अनुभव नहीं हुई, किन्तु जब सभी प्रकार की स्वच्छता को कई दिन व्यतीत हो गये तो जनता का कष्ट बढ़ने लगा। जनता ने अपने घरों का कूड़ा निकाल-निकाल कर सड़कों पर ऊँचे ढेर कर दिये; हलवाइयों की दूकानों के सामने तो वीभत्सता* का जमाव जम गया, होटलों में व्याकुलता बढ़ने लगी। लोगों के झुण्ड के झुण्ड शहर से बाहर जाते-आते दिखाई देने लगे। नालियाँ सड़ने लगीं। गन्दगी के कारण गलियों से निकलना एक समस्या बन गई। गन्दगी से भरी सड़कों के ऊपर मोटर, ट्रक आदि शीघ्रता से दौड़ते हुए दृश्य को और भी दूषित बनाने लगे। चारों ओर बेचैनी फैल गई। क्या किया जाय? अन्त को कुछ सेवा भाव से प्रेरित कांग्रेसवादी निकले। सब काम अपने हाथों करना चाहिये। यही तो महात्मा गांधी ने सिखाया था, फिर पीछे क्यों रहें, स्थिति का सामना करना चाहिये। सारा नगर कष्ट में है क्यों न हम आगे बढ़ें। झाड़ू, ढकोले लेकर लोग निकल पड़े, कुछ विशिष्ट सभ्य कांग्रेसवादियों के निक-

---

+ टीयर गैस, † जैसे १४४, × म्यूनिसिपैलिटी, $ जो जनता के घरों को झाड़ते थे, * गन्दगी।

जाते ही बहुत से लोग उनके साथ हो लिए। सबसे आवश्यक कार्य सड़कों की सफाई थी क्योंकि शौच आदि के लिए नगर से बाहर जाकर लोगों ने उस कठिनाई को तो इतना बढ़ने नहीं दिया था। बड़े वेग से सड़कें साफ की जाने लगीं। जनता उनके सेवा-भाव से चकित हो गई। कुछ ही घण्टों में सारा शहर साफ हो गया। कम से कम सड़कें तो स्वच्छ हो ही गई। तमाशा देखने वाले भी खूब थे, किन्तु इसका प्रभाव अच्छा पड़ा। इसके परिणामस्वरूप अगले दिन ही समझौता हो गया और इस प्रकार इस हड़ताल का अन्त हुआ।

विदेशी सरकार के समय में हड़ताल करना सरकार के प्रति विद्रोह गिना जाता था। कालेजों में हड़ताल होती तो सरकारी कर्मचारियों को सजग हो जाना पड़ता था कि कहीं ऐसा न हो उनसे कुछ पूछताछ हो जाय; बाजार बन्द करते समय ध्यान रखना पड़ता था कि कहीं पुलिस की सील दुकान पर न लगा दी जाय; मिल-मजदूरों को पुलिस द्वारा दी जाने वाली प्रत्येक यन्त्रणा† के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था। यही कारण था कि उस समय पूरी तैयारी करने के बाद इस ओर पग उठाया जाता था, और जहाँ तक होता हड़तालियों के झुकने का$ अवसर नहीं आता था। अब इस ओर छूट कुछ अधिक मिल गई है और लोग बहुत ही क्षुद्र बातों के लिए इस ओर अग्रसर हो जाते हैं। ऐसा करना किसी भी प्रकार उचित नहीं, क्योंकि जो कुछ हम करें उसका आधार सुदृढ़ होना चाहिये।

इसमें तो सन्देह नहीं कि हड़ताल रूपी एक दृढ़ अस्त्र हमें मिल गया है जिसमें कुछ त्याग की भावना रखनी पड़ती है। वैसे कुछ अधिक तैयारी नहीं करनी पड़ती। जब श्रमिक इसमें सम्मिलित होता है तो उसे कुछ दिनों के लिए अपनी आय समाप्त हुई समझ लेनी चाहिये। यही हाल ताँगे वालों, रिक्शा वालों तथा अन्य श्रमजीवियों का होता है। इसी कारण इनकी हड़तालें इतनी अधिक नहीं होतीं। विद्यार्थियों की बात कुछ दूसरी ही है। स्वभाव से ही वे लोग छुट्टी चाहते हैं, अतएव हड़ताल में उन्हें कुछ विशेष त्याग नहीं करना पड़ता, उल्टी छुट्टी मिलती है; हाँ, उप-

---

† घोर दुःख, $ हार मानने का, दब जाने का।

स्थिति का प्रश्न आ सकता है सो उसे अन्य माँगों के साथ सम्मिलित कर लिया जाता है। अध्ययन के सम्बन्ध में तो आज के विद्यार्थी को कुछ ऐसी चिन्ता ही नहीं रहती। कुछ भी हो विद्यार्थी वर्ग को भी विचार से काम लेना चाहिये और अपने समय तथा द्रव्य का अच्छे से अच्छा उपयोग कर अपनी शक्ति का व्यय उचित रूप से करना चाहिये। हड़ताल के लिए यह आवश्यक ही है कि वह सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुगमन करें तथा उस चरित्र-बल को क्षीण न होने दें जो इसका मेरुदण्ड है*।

विस्तृत रूपरेखा

१—एक प्रभावशाली अस्त्र—i सत्य और अहिंसा पर आश्रित। ii व्यक्ति तथा वर्गों द्वारा प्रयुक्त—८० प्रतिशत सफलता। iii विनय का परित्याग नहीं करना है। iv सिद्धान्त की उत्कृष्टता नष्ट न होनी चाहिये।

२—सदुपयोग—i अत्यन्त आवश्यकता होने पर उपयोग करना। ii सिद्धान्तों का अतिक्रमण न होने देना। iii छोटी-छोटी बातों पर इस ओर न जाना। iv विनय-पूर्वक प्रयुक्त कर सफलता प्राप्त करना।

३—दुरुपयोग—i विचारहीन व्यक्ति एवं संस्थाओं द्वारा दुरुपयोग। ii विद्यार्थियों तथा श्रमिकों की हड़तालें। iii नियम-विरुद्ध बातें मनवाने का प्रयास।

४—हड़ताल के दो रूप—i किसी शोकप्रद घटना पर वियुक्त आत्मा के प्रति सम्मान—इसमें कोई हानि नहीं यथोचित रूप में रखी जाय। ii माँगें स्वीकार कराने के लिए हड़ताल—ताँगे वाले, महतर, श्रमजीवी, विद्यार्थी, मिल वाले आदि। iii दूसरे प्रकार की विशेषताएँ—(a) व्यक्ति अथवा संस्था विशेष के विरुद्ध। (b) कुछ माँगें होना। (c) सामूहिक रूप में। (d) सामान्य जनता को कष्टानुभव, जनता की जोर से प्रेरणा। (e) प्रायः समझौते हो जाते हैं। (f) शान्ति भङ्ग होने के अवसर—कभी-कभी भीषण परिस्थिति। (g) आवश्यकता—विनयशील रहने की।

---

* सम्भालने वाला, रीढ़ की हड्डी।

५—हड़ताल का एक दिन—महतरों की हड़ताल—i म्यूनिसिपैलिटी के विरुद्ध माँगें न मानने पर। ii नगर की गन्दगी-चारों ओर। iii सड़क, गलियों में विशेष रूप से। iv जन-सेवकों द्वारा सफाई का काम--सभी लोग सम्मिलित हो गये--गांधीजी की शिक्षा का परिणाम। v अगले दिन समझौता।

६—हड़ताल तब और अब—i विदेशी सरकार के समय में--सरकारी कर्मचारियों को डर, दुकानदारों को माल पर सील लगा देने का भय, पुलिस के अत्याचार--हड़ताल कम होती थी और जो होतीं उनमें प्रत्येक त्याग के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था। ii अब स्थिति बदल गई है--अधिक छूट है, सरकार का उतना भय नहीं।

७—उपसंहार—वाञ्छनीय रूप--हड़ताली—i श्रमिक--हड़ताल की तैयारी, त्याग के लिए प्रस्तुत रहना, जीविका पर प्रभाव, कार्य से हटाये जाने की सम्भावना। इसी कारण विचार के पश्चात् हड़तालें। ii विद्यार्थी--विद्यार्थी और छुट्टी, कोई प्रत्यक्ष हानि दिखाई नहीं देती, उपस्थिति की विशेष चिन्ता नहीं रहती--माँगों में सम्मिलित रहती है। अधिक हड़तालें करते हैं। iii वाञ्छनीय रूप--(a) आवश्यकता पड़ने पर ही जब अन्य सभी उपाय असफल हो जावें। (b) सत्य, अहिंसा, विनय का धारण करना। (c) विद्यार्थी वर्ग अधिक विचार से कार्य करे अपनी शक्ति और समय का सदुपयोग करे।

२४—खाद्य-समस्या

संक्षिप्त रूपरेखा

१—भारत की प्राचीन समृद्धि। २—आधुनिक अवस्था तथा उसके कारण। ३—खाद्यान्न की विकट समस्या। ४—समस्या को हल करने के साधन। ५—कार्यान्वित हुए कुछ उपाय। ६—हल कैसे हो? ७—समस्या की गुरुता और उसका भविष्य रूप। ८—उपसंहार।

निबन्ध—हम बराबर देखते और पढ़ते आए हैं—भारत एक कृषि-प्रधान देश है; यहाँ के निवासियों का सर्व प्रधान व्यवसाय कृषि है; ७० प्रतिशत जनता का जीविकोपार्जन कृषि द्वारा होता है; लगभग ६० प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती है—और आजकल हम देखते और समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि देश क्षुधा की भीषण ज्वाला से सन्तप्त हो रहा है; भूख के कारण अनेक प्रान्त व्याकुल होरहे हैं और अनेक निरीह* प्राणी भूख से तड़प-तड़प कर अपने प्राणों की बलि चढ़ा रहे हैं; चारों ओर 'त्राहि-त्राहि' मच रही है। हमारा भारत वही तो है जहाँ सुख और समृद्धि का निवास था, जिस भारत में दूध और दही की सरिताएँ प्रवाहित होती थीं, जहाँ अपने भोजन की तो बात ही क्या, किसी भी अथिति को भोजन-सत्कार के उपरान्त ही जाने दिया जाता था। अन्नाभाव का प्रश्न था ही नहीं, प्रकृति हमारे ऊपर दयालु थी और शस्य के श्यामला धरित्री× थोड़े से परिश्रम के फलस्वरूप ही हमारे भांडारों को परिपूरित कर देती थी। प्रत्येक गृह धान्य से परिपूरित रहता था। खाद्य-समस्या नाम की किसी समस्या की कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था। अन्नों के भावों पर यदि विचार करें तो पिछले कुछ वर्षों में ही जो घोर अन्तर हुआ है वह हमारे लिए ही एक विचित्र बात दिखाई देती है-- एक दो गुनी नहीं ८-१० गुनी वृद्धि मूल्यों में हुई है हमारे अतीत का वह सुन्दर और समृद्ध चित्र आज स्वप्नवत्-सा प्रतीत होता है।

किन्तु आज अवस्था बिलकुल बदल गई। समाचारपत्र इस बात के साक्षी हैं कि देश के कोने-कोने में खाद्यान्नों का अभाव अनुभव किया जा रहा है। गाँव-गाँव में लोग भूखे मर रहे हैं, अपने स्थानों से पलायन$ कर रहे हैं, सरकार द्वारा दिए गए सड़े और गले अन्न को खाकर अनेक बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। अन्न की कमी के कारण स्वास्थ्य के अनुकूल न होते हुए भी अनेक अन्य वस्तुओं की ओर लोगों का ध्यान जारहा है—कोई शकरकन्द खाने की बात कहते हैं, कोई मूँगफली सुना कर खिलाते हैं, किन्हीं के अनुसार मछली पकाई जाती हैं, कोई शाकाहारी

* दया के योग्य, दीन, × अन्न से परिपूरित पृथ्वी, $ भागना।

बनाना चाहते हैं, कहीं-कहीं गोलियों के आविष्कार भी होरहे हैं, कुछ लोग बहुत समय से उपेक्षित$ व्रत को अनिवार्य बना रहे हैं। खाद्यान्न के परिमाण में तो निरन्तर न्यूनता होती जारही है, कभी ५० प्रतिशत और कभी २५ प्रतिशत कम किया जाता है। प्रत्येक बड़े शहर में 'राशन' तो हो ही गया है—सीमा निर्धारित करदी गई है कि इतना ही खाओ—और फिर कभी कहा जाता है इतना नहीं इसका आधा ही खाओ, इस पर भी वह आधा भी कभी महीनों प्राप्त नहीं होता। 'मरता क्या न करता' किसी भी प्रकार अन्न-प्राप्ति की चेष्टा की जाती है, द्विगुण, त्रिगुण मूल्य में अन्न मिलता है, पेट के लिए ही स्त्रियों के आभूषण बेचे जारहे हैं, यहाँ तक कि बच्चों को बेचा जाता है। चारों ओर भीषण दुर्दशा है और भाव तथा प्राप्ति की सुविधाएँ दिनों दिन कठिन होती जारही हैं। इस सबका कारण क्या है? आज ऐसी अवस्था क्यों होगई? इस प्रश्न पर विचार करने से कई प्रसंग हमारे सामने आते हैं। अन्न की यह अव्यवस्था गत महा-युद्ध के समय से ही हुई। उस समय तो यह समझा जाता था कि युद्ध के सैनिकों को बहुत अन्न की आवश्यकता होती है तथा भूमि पर काम करने वालों में कमी होगई है। जब युद्ध समाप्त हो गया तो यह दशा चलती रही, उत्पादन में वृद्धि होने पर भी समस्या की गम्भीरता में कोई कमी न आई। इसमें तो सन्देह नहीं कि भारत की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई है और उसी अनुपात में सम्भवतः साधन नहीं बढ़ पाए हैं। भारत के विभाजन ने भी इस प्रश्न की गुरुता को बढ़ा दिया है। भारत का बहुत अच्छा प्रान्त जो अन्न उत्पादन में बहुत आगे रहता था, भारत से अलग हो गया, और वहाँ जो अन्न की प्रचुरता† थी उससे भारत वंचित रहा। गेहूँ, चावल आदि सभी की दृष्टि से भारत घाटे में रहा। खाद्यान्न के स्थान पर अनेक व्यक्ति अन्य अन्नों की उत्पत्ति में भी लगे क्योंकि उसमें द्रव्य की दृष्टि से अच्छा लाभ रहता था। इन्हीं सब कारणों से भारत की अन्न समस्या गहनतम+ होती चली गई। एक कारण यह भी बताया जाता है कि अन्न वितरण की व्यवस्था समुचित नहीं है और अनेक पूँजी-

---

$ ध्यान न दिया गया, † अधिकता, + अधिकाधिक गहरी।

पतियों का हाथ होने से यह अभाव अपने कठिनतम रूप में सामने आरहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि खाद्यान्न समस्या ने विकटतम रूप धारण कर रखा है और अनेक प्रान्तों के लिए अतीव कष्टप्रद समय है। इस समस्या को हल करने के लिए अनेक उपाय बताये जाते हैं जिनमें स्वावलम्बी बनना सबसे प्रथम है। यह तो सभी को विदित है कि अनेक वर्षों से भारतवर्ष की अन्नपूर्ति के लिए विदेशों से लाखों टन अन्न आता है— आस्ट्रेलिया तथा कनाडा और अमेरिका इस ओर विशेष उल्लेखनीय हैं। अब भी कई लाख टन की यात अमेरिका से चल रही है। यद्यपि अमेरिका को यह बहुत बुरा लगा होगा कि चीन के मामले में भारत अमेरिका के विरुद्ध वोट दे और उसे आक्रान्ता§ घोषित करना अस्वीकार करदे, परन्तु अन्न सम्बन्धी वार्ता अभी है और उसके लिए उपाय किया जारहा है। क्योंकि बिना विदेश से आए अन्न के भारतवर्ष का निस्तार नहीं। किन्तु यह साधन ऐसा नहीं जिस पर निर्भर रहा जा सके। अभी भगवान् न करे, युद्ध आरम्भ हो जाय तो यातायात‡ के सभी साधन दुर्लभ हो जावेंगे, क्योंकि सभी साधन युद्ध के लिए काम में लाए जावेंगे। फिर विदेश पर अन्न के लिए निर्भर रहने वाले प्राणियों का क्या होगा। और भी अनेक बातें ऐसी हैं जो हमें स्पष्टतः यह बताती हैं कि जब तक हम स्वावलम्बी न हो जावेंगे हमारी समस्या का अन्त न होगा। और हमारी कठिनाइयाँ राजनीतिक वातावरण की उलझनों के साथ बढ़ती ही जावेंगी। अब प्रश्न होता है कि स्वावलम्बी कैसे बना जाय। खेती को तो बराबर बढ़ाया जारहा है, अनेक भूमिभाग जो अब तक जोते नहीं जाते थे उनमें अन्न उत्पन्न किया जाने लगा है। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का भी उपयोग होरहा है और वैज्ञानिक खाद के द्वारा उपज को बढ़ाने की चेष्टा की जारही है। "अधिक अन्न उपजाओ"* नाम का आन्दोलन अनेक रूपों में चलाया जारहा है। सरकार द्वारा इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि अन्न के स्थान में काम आने वाले अन्य पदार्थों का भी उपयोग

§ हमला करने वाला, ‡ आने-जाने, * Grow more food।

किया जाय इनमें शाक-सब्जियों के नाम उल्लेखनीय हैं। जो लोग काम में ला सकते हैं उन्हें मछली का भी परामर्श दिया जारहा है। उपवास हमारे यहाँ की एक उत्तम क्रिया रही है, इस ओर लोगों का ध्यान अबतक नहीं था यद्यपि इसके लाभों से सभी परिचित थे। अब बड़े-बड़े नेता भी इस पक्ष में हो गए हैं कि उपवास अनिवार्य रूप से किए जायें—१५ दिन के स्थान में १४ दिन का ही राशन दिया जाय।

इस समस्या को सफलतापूर्वक हल करना जहाँ सरकार का कर्तव्य है वहीं जनता का इस ओर सब प्रकार का सहयोग देना भी आवश्यक है। हमारे देश में बहुत सा अन्न व्यर्थ चला जाता है; खेतों से इतनी उपज नहीं की जाती जितनी अन्य देशों में; घी, दूध की बराबर कमी होरही है; गो-वंश प्रतिदिन क्षीण होता जारहा है; हमारी दावतें अब भी पूर्ववत् किसी न किसी रूप में चलती हैं; बहुत से व्यक्ति, बिना कुछ कार्य किए ही, राष्ट्र की सम्पत्ति में कमी करते हैं—उन्हें खाने को तो चाहिए ही; अशिक्षा के कारण हमारे किसान अभी तक उसी प्राचीन परिपाटी पर चले जारहे हैं; स्वास्थ्य-सिद्धान्तों का अतिक्रमण† करके भी आहार-संयम$ नहीं करते। इन सब बातों का होना आवश्यक है। और यह हम सबके द्वारा होना चाहिए। इस ओर हमारा स्त्री-समाज बहुत कुछ योग दे सकता है—चौके की मालिक वे ही हैं, उन्हें वहाँ सुव्यवस्था करनी चाहिए। थोड़ा भी अन्न नष्ट न हो। सभी प्रकार के साधन प्रयुक्त किए जावें जिनसे उपज बढ़े। साथ ही सरकारी व्यवस्था भी ऐसी होनी चाहिए कि बिना आवश्यकता अन्न कहीं रुककर न पड़ा रहे—वह सड़े नहीं काम में आवे। अन्न का अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय, किसी भी प्रकार दुरुपयोग में न जावे।

वास्तव में खाद्य की समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विकट है। यह एक ऐसी वस्तु है जिसकी आवश्यकता प्रतिदिन कम से कम दो समय पड़ती ही है। बिना इसके कोई भी वर्ग अथवा समुदाय रह नहीं सकता। वास्तविक जीवन-मरण का प्रश्न इसी के साथ है। यदि अन्न सम्बन्धी

† न मानना, $ खाने पीने का परहेज़।

प्रश्न हल नहीं होता तो हमारी सारी क्रियाशीलता विफल है। जिस देश के निवासियों को सुविधापूर्वक भोजन न मिले उसे किस प्रकार हम जीवन के उत्कृष्ट कार्यों में आगे बढ़ते हुए देख सकते हैं। फिर हमारी अतीत की समृद्धि का चित्र इतना स्पष्ट है कि इस बात का कभी कोई समझौता हो ही नहीं सकता। देश की दशा तो तभी सुधरेगी जब इस प्रश्न का सम्यक्¶ हल किया जायेगा। 'भरपेट भोजन' की व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी—सरकार का यह सर्वोपरि कर्तव्य है तथा हम-जनता को भी उसमें सभी प्रकार की सहायता देनी चाहिये। भारत जैसे समृद्ध देश के ऊपर लगा यह नया कलंक शीघ्र ही धुलना चाहिए।

विस्तृत रूपरेखा

१—भारत की प्राचीन समृद्धि—i धन-धान्य परिपूरित। ii दूध-दही की सरितायें। iii प्रकृति के प्रीति-भाजन—सभी प्रकार का सुख।

२—आधुनिक अवस्था—i खाद्यान्न का अभाव। ii विदेशों पर निर्भरता। iii मूल्यों में अनेक गुनी वृद्धि। iv सम्पूर्ण देश की अवस्था। v सरकार के सामने भी कठिन परिस्थिति।

३—कारण—i भारत का विभाजन। ii जनसंख्या में वृद्धि। iii अनुपात में उत्पादन वृद्धि न होना। iv दूसरी ओर ध्यान।

४—समस्या को हल करने के साधन—i दूसरे देशों पर निर्भर रहना उपयुक्त साधन नहीं। ii अन्न के स्थान में अन्य वस्तुओं का उपयोग। iii आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से वृद्धि करना। iv सरकार की ओर से उचित व्यवस्था होना। v जनता का सभी प्रकार से सहयोग।

५—समस्या की गुरुता—i देश के सम्मुख भीषण परिस्थिति। ii चारों ओर त्राहि-त्राहि। iii स्वास्थ्य-विहीन पदार्थों को खाना। iv खाद्यान्नों की घोर कमी। v विदेशों की ओर आँखें।

¶ ठीक तरह।

६—उपसंहार—i स्वावलम्बी बनना चाहिए। ii उत्पादन में वृद्धि-उपाय शीघ्र कार्यान्वित हों। iii भारत-सरकार की आशा—२, ३ वर्ष में देश अपने ऊपर निर्भर रहने योग्य हो जावेगा।

२५—ग्राम्य-समस्याएँ

संक्षिप्त रूपरेखा

१—भारतवर्ष में ग्रामों की संख्या। २—ग्रामों का महत्त्व। ३—वहाँ की समस्याएँ—शिक्षा, स्वास्थ्य, मुकदमेबाजी, कुप्रथाएँ आदि। ४—निराकरण के उपाय। ५—आजकल की अवस्थाएँ—पहले से कुछ सुधरी हैं। ६—एक आदर्श ग्राम का चित्र। ७—भारत का भविष्य—ग्रामों के सुधार पर।

निबन्ध—भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की जनसंख्या का अधिकांश ग्रामों में निवास करता है। यद्यपि औद्योगीकरण* की वृद्धि के कारण नगरों की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई, फिर भी ग्राम्य जनसंख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। भारतवर्ष में बड़े नगर अधिक नहीं और साधारण श्रेणी के नगरों को भी मिलाकर ग्रामों की संख्या बहुत अधिक है। हजारों ग्रामों के पीछे कहीं एक नगर का नाम आ सकेगा। हमारे ग्राम २-४ झोंपड़ियों से आरम्भ हो हजारों की जनसंख्या वाले हैं, और देश में सर्वत्र ग्राम ही ग्राम दिखाई देंगे। इसका कारण यही है कि लोगों का निर्वाह गाँवों में रहकर ही हो सकता है शहरों में नहीं—वहाँ तो कुछ थोड़े लोग ही अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं।

ग्रामों की अतिविस्तृत संख्या को देखने से उनके महत्त्व का भी अनुमान हो जाता है—जो वस्तु महत्त्वपूर्ण नहीं होती उसकी अधिकता साधारणतः नहीं होती है। भारत में गाँवों की संख्या बहुत अधिक है। इसका कारण है। कृषि पर निर्भर रहने वाले देश में लोग वहीं बसेंगे जहाँ उनकी खेती होती है—प्रकृति भारत पर बड़ी प्रसन्न रही, उपजाऊ भूमि

---

* उद्योगों का होना।

प्रदान की अतएव ग्राम-निवासियों की संख्या बहुत बड़े अनुपात में हुई। भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा अंश ग्रामों में ही निवास करता है, अतएव प्रत्येक विचारपूर्ण व्यक्ति के लिए ग्राम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—भारत की उन्नति, समृद्धि और सुख ग्रामों की दशा उन्नत और समृद्ध होने पर है—यदि हम गाँवों को पीछे छोड़ देते हैं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि हमने देश के बहुत बड़े अधिक भाग की अवहेलना† की। अतएव यदि भारत का पुनर्निर्माण§ होना है, उसकी सभ्यता और संस्कृति का यथोचित विकास होना है, भौतिक‖ एवं अन्य प्रकार की उन्नति करनी है तो हमें अपने कार्य का क्षेत्र गाँवों को बनाना चाहिए। हमारे गाँवों की समस्याएँ अनेक हैं और प्रत्येक के लिए हमें यथेष्ट उद्योग करना चाहिए तभी उसका हल हो सकता है। उदाहरण के लिए सर्व प्रथम हम शिक्षा पर ही ध्यान देते हैं। बड़े आश्चर्य का विषय है कि हमारे ग्राम इस ओर बहुत ही पिछड़े रहे हैं—इसमें कुछ तो विदेशी सरकार का दोष है जो हमारी शिक्षा को बराबर पीछे धकेलती रही और कुछ हमारा भी कि हमने इस ओर कभी सचेष्ट* ध्यान नहीं दिया—जिस प्रकार चलता था उसी से सन्तोष किया। यद्यपि अब अवस्था में कुछ सुधार होरहा है किन्तु अब भी गाँव में पहुँची एक चिट्ठी को पढ़ने की समस्या उपस्थित हो जाती है। शहर से लगते गाँवों को तो छोड़िये, जो गाँव शहरों से दूर बसे हुए हैं वहाँ शिक्षा का नितान्त अभाव है। शिक्षा-हीनता के दुष्परिणाम तो सभी को विदित हैं और इस अशिक्षा के कारण हमारे ग्रामों ने भी बड़ा कष्ट उठाया और उठा रहे हैं—बहुतों को तो यह पता ही नहीं कि उनके ग्राम के बाहर भी कुछ और है, उनसे अधिक सभ्य और लोग हैं तथा वे किसी एक राष्ट्र के अंग हैं जिसकी उन्नति उन सभी पर निर्भर है। हमारी बहुत-सी समस्याओं का हल यथोचित शिक्षा के प्रचार और प्रसार से हो सकता है। वे भी तो देश हैं जहाँ शिक्षित व्यक्ति ९० प्रतिशत हैं और जिनमें बहुत से कई एक भाषाएँ जानते हैं‡, जिन देशों में प्रत्येक गाँव

---

† ध्यान न दिया, § फिर से बनाना, ‖ सांसारिक, द्रव्य आदि सम्बन्धी। * चेष्टा युक्त, सक्रिय, ‡ जैसे स्विटज़रलैंड।

एक आदर्श के रूप में विद्यमान है, जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मनोविनोद का समुचित प्रबन्ध है। हमारे यहाँ तो अशिक्षा ही ऐसे रूप में विद्यमान है कि किसी और ओर देखने का अवसर ही नहीं। राजस्थान में ही देखिए—कितना प्रतिशत शिक्षित हैं—कितने ऐसे व्यक्ति प्रतिशत हैं जो अपने हस्ताक्षर भी कर सकते हों। फिर साधारण पढ़ने-लिखने की तो बात ही क्या? अशिक्षा के इतने घोर अन्धकार में किस प्रकार उन्नति का प्रकाश मिले। तनिक ध्यान तो दें, हमारे यहाँ साधारण शिक्षा का स्तर हस्ताक्षर करना मात्र है। प्रौढ़-शिक्षा योजना के अन्तर्गत हस्ताक्षर करना सीख जाने वाला व्यक्ति भी एक महत्त्व रखता है। इस ओर अशिक्षा को दूर करना होगा, तभी देश का कल्याण है।

प्रकृति हमारे ऊपर बहुत दयालु है, और अनेक कठिनाइयों से हमें बचाती रहती है। यदि प्रकृति हमारी सहायता न करे तो उसके प्रति हम जितना अत्याचार करते हैं वह हमीं को शीघ्र ही नष्ट कर सकती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से ग्रामों पर दृष्टिपात करें तो जैसी स्थिति वहाँ है वह बहुत ही घातक है और लोग नित्यप्रति बीमारियों के शिकार रहते, किन्तु प्रकृति की दयालुता ही हमारी रक्षक है। बिना किसी क्रम के बने हुए अव्यवस्थित मकान, कूड़े के ढेर, चारों ओर गन्दगी, पशुओं को चाहे जहाँ बाँध देना, मैले-कुचैले वस्त्र, घर के अन्दर फैली हुई वस्तुएँ आदि ऐसी स्थिति के द्योतक ÷ हैं जिसमें स्वास्थ्य के लिए सर्वदा भय रहे, विशेषतः जब गाँव में कोई भी योग्य चिकित्सक अथवा परामर्शदाता न हो। किन्तु वहाँ प्रकृति ही हमारी सहायता करती है। गाँवों को ये स्वास्थ्य के प्रतिकूल बातें दूर करदी जावें तो जीवन बहुत ही सुखप्रद हो सकता है। जब कोई बीमारी फैल जाती है, तो गाँव के गाँव नष्ट हो जाते हैं और किसी प्रकार की सहायता उन तक नहीं पहुँच पाती गाँवों में इस प्रकार का भी कोई प्रबन्ध नहीं कि प्रारम्भिक चिकित्सा भी की जासके। स्वास्थ्य के मूल-सिद्धान्तों से वे लोग अनभिज्ञ रहते हैं और अनेक कठिन रोगों के शिकार हो जाते हैं। यह ठीक है कि नगर वालों की अपेक्षा ग्राम के निवासियों

---

† जैसे उदयपुर डिवीज़न, ÷ बताने वाले।

का स्वास्थ्य उत्तम होता है, किन्तु हमें तो वह परिस्थिति बनानी है जब स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई भय न रहे और उन्नति के साधनों की ओर अधिकाधिक शक्ति लगाई जावे।

प्रतिदिन हम देखते हैं कि अदालतों में ग्रामीण मनुष्यों की भीड़ लगी रहती है—कोई वकीलों के पीछे घूम रहे हैं, कोई किसी अहलकार को मनाने में लगे हैं किन्हीं का कल्याण चपरासियों को प्रसन्न करने में है। इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अदालत के घेरे में घूमने वाले दलाल हैं जो मुकदमेबाज़ी की सारी रूपरेखा प्रस्तुत कराते हैं। ज़रा-ज़रा सी बात पर झगड़ा कर अदालत की शरण लेना और फिर बहुत समय तथा द्रव्य व्यय करना साधारणतः देखा जाता है। एक-एक गज़ ज़मीन के लिए अनेक व्यक्तियों के सिर फूटते हैं और फिर फौजदारी और दीवानी में बराबर चक्कर लगाने पड़ते हैं। वे न अपनी बात दूसरे को समझा सकते हैं और न दूसरे की बात समझते हैं—इसी के कारण वैमनस्य× होता है और मारपीट तथा मुकदमेबाजी की आवश्यकता पड़ जाती है। इसका निराकरण* भी शिक्षा की अभिवृद्धि में है—जब लोग शिक्षित होंगे तो बिना यथेष्ट कारण के ऐसी परिस्थिति नहीं आवेगी। अनेक प्रान्तों में इस मुकदमेबाज़ी को अन्त करने की योजनाएँ काम कर रही हैं। पंचायत-राज† इस ओर उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण पग है किन्तु उसका रूप इतना गौण‡ और अस्पष्ट है कि अभी कोई विशेष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

इनके अतिरिक्त अनेक सामाजिक कुप्रथाएँ भी ऐसी हैं जो हमारे ग्रामीण भाइयों के कष्ट का कारण होती हैं। लम्बी दासता ने हमारे समाज में अनेक कुरीतियाँ तथा कुप्रथाएँ ला दीं और यद्यपि हमने स्वतन्त्रता प्राप्त करली है किन्तु ये बुराइयाँ हमें अभी तक नहीं छोड़तीं। ग्रामों में तो ये उसी रूप में विद्यमान हैं। यदि हमें १६ वीं शताब्दी की कुप्रथाओं का जीता जागता चित्र देखना है तो वह ग्रामों में सरलतापूर्वक देखा जा सकता है—जिन बातों को नगर-

× विरोध, मनमुटाव, * दूर करना, † उत्तर प्रदेश का, ‡ अप्रधान।

निवासी बहुत पहले छोड़ चुके वे गाँवों में अभी जैसी की तैसी हैं। एक स्वतन्त्र देश के लिए यह कलंक की बात है कि उसकी जनसंख्या का इतना बड़ा अंश इस प्रकार पिछड़ा रहे, किन्तु वास्तविक अवस्था है इसी प्रकार की।

आज के युग में सबसे बड़ी समस्या आर्थिक* होती है। और कुछ समय पूर्व हमारे ग्रामों में आर्थिक समस्या उग्रतम रूप में थी। न खाने को अन्न और न पहनने को कपड़ा। दरिद्रता का ऐसा नग्नस्वरूप दिखाई देता था कि हृदय द्रवित हो जाता था। जो हमारे अन्नदाता हैं, जिन्हें अत्यधिक परिश्रम करना है, जो वास्तव में भूमि के स्वामी हैं, उनकी ऐसी हीन अवस्था देखकर प्रत्येक विचारशील व्यक्ति दुःखी होता था। यह सन्तोष का विषय है कि अब ग्रामों की वह दरिद्रता दूर होरही है। खाने के लिये अन्न का जितना संकट शहरों में है, सम्भवतः गाँवों में उतना नहीं। जमींदारों के कष्ट से भी किसान धीरे-धीरे छूट रहे हैं। दसगुना या उसके आस-पास द्रव्य लेकर किसानों को उनके द्वारा जोती हुई भूमि का मालिक बनाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन† बिल भी पास होकर कानून बन गया है और यह अन्य प्रदेशों में भी होगा। आज का किसान अपने व्यक्तित्व को इतना हीन नहीं समझता जितना कुछ दिनों पहले समझता था। दुःख केवल इसी बात का है कि यह परिस्थिति अभी देश के थोड़े भाग में ही उत्पन्न हो सकी है, और जहाँ है भी वहाँ इसके रूप को विकृत करने की चेष्टा की जारही है। आर्थिक अवस्था अच्छी होनी चाहिये और उसका वास्तविक उपयोग भी होना चाहिये।

इन समस्याओं को हल करने के अनेक उद्योग किये जारहे हैं। शिक्षा की ओर सरकार प्रयत्नशील है, कोई-कोई प्रान्त तो अनिवार्य शिक्षा§ की बात सोचते हैं, उनका विचार है कि प्रारम्भिक शिक्षा सब के लिये अनिवार्य होनी चाहिये। प्रान्त का कोई भी बच्चा अनपढ़ न हो इसके लिये सभी प्रकार के उपायों को काम में लाया जाय। प्रौढ़-शिक्षा‡ की अनेक

* द्रव्य सम्बन्धी, † जमींदारी प्रथा को नष्ट करना, § आवश्यक रूप में सब को पढ़ना, ‡ अवस्था में बड़ों को पढ़ाना।

योजनाएँ चल रही हैं और इस ओर शिक्षक तथा उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों का सहयोग वांछनीय है जो अनेक प्रकार से प्राप्त हो भी रहा है। स्त्री-शिक्षा की कमी का अनुभव लोगों ने बहुत समय से किया और गाँवों में तो इस ओर घोर निराशा ही है। अनिवार्य शिक्षण की योजना में बालक बालिकाएँ सभी को लेना चाहिये और देश में कोई भी व्यक्ति ऐसा न हो जो अशिक्षित कहा जा सके। अनिवार्य शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि के द्वारा शिक्षा का प्रसार हो सकता है। साथ ही स्वास्थ्य के प्रश्न को भी नहीं टाला जा सकता। प्रत्येक ग्राम में ऐसे साधन उपलब्ध होने चाहियें जिनके द्वारा प्रारम्भिक चिकित्सा* तो अवश्य की जा सके; और कठिन रोगों के लिये ग्राम के बड़े नगरों में सुविधा हो। कोई भी ग्रामीण इस बात का अनुभव न करे कि ग्राम का निवास उसके लिये किसी भी दृष्टि से अभिशाप बन जाय। स्वास्थ्य-सिद्धान्तों का प्रचार करने वाली संस्थाएँ हों। ग्राम की पंचायतों का रूप व्यवस्थित किया जाय, शिक्षण के द्वारा उन्हें बताया जाय कि उनके समाज में कुरीतियाँ किस प्रकार दुःख का कारण बन रही हैं। साथ मिलकर कार्य करने की प्रणाली, सहकारी समितियों की स्थापना तथा जीवन के उच्चतर स्तर से उनको परिचित कराया जाय। साथ ही यथोचित मनोविनोद के साधन भी हों जिनसे हमारे ग्रामीण भाई जीवन की कटुता में कुछ माधुर्य की झलक भी पा सकें। हमारा तो विचार है कि शिक्षा का सम्यक् प्रचार और प्रसार ही हमारी इन समस्याओं को हल करने में सहायक हो सकता है।

उस आदर्श ग्राम की कल्पना करो जहाँ सभी मकान स्वास्थ्य-सिद्धान्तों पर व्यवस्थित रूप में बने हुए हैं, शिक्षा के प्रचार के लिये आवश्यक संस्थाएँ हैं, एक छोटा औषधालय है, ग्रामीणों से निर्मित एक सहकारी समिति† है, वहाँ के सभी प्रश्न पंचायत के द्वारा हल हो जाते हैं, स्वस्थ बच्चे शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, ग्राम की मोटी-मोटी आवश्यकताओं की वहीं पूर्ति हो जाती है उन्हें शहर नहीं दौड़ना पड़ता। विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों का उपयोग कर लहलहाती खेती चारों ओर

* फर्स्ट एड, † कोआपरेटिव सोसाइटी।

दिखाई पड़ती है। सभी लोग शिष्ट$ और सभ्य है, पारस्परिक प्रेम की सरिता प्रवाहित होती है, गृहस्थ-जीवन सुखपूर्ण है, यातायात के साधन सुलभ हैं, सायंकाल मनोविनोदन के नवीन आयोजन होते हैं। सम्पूर्ण ग्राम में प्रेम, उत्साह और समृद्धि का अनुपम वातावरण है। हमारे ग्रामों का यह काल्पनिक चित्र कुछ दुष्कर नहीं है केवल प्रचार और व्यवस्था की आवश्यकता है, कुछ कटिबद्ध नवयुवकों का त्याग चाहिये और सरकार का सर्व प्रकारेण प्रोत्साहन एवं सहयोग। सरकार और जनता दोनों ही इस ओर प्रयत्नशील हों।

कुछ समय पहले की अपेक्षा अवस्था में अब कुछ सुधार है और गाँवों के लोग धीरे-धीरे अपने अस्तित्व का अनुभव करने लगे हैं। शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया है, तथा सरकारी नीति के कारण आर्थिक अवस्था में बहुत कुछ सुधार हुआ है। इन सब बातों को देखते हुए ग्रामों का भविष्य अति उज्ज्वल दिखाई पड़ता है, और वह दिन आ सकता है जब हम अपने ग्रामों की तुलना योरुप के ग्रामों से करने लगें, जब हम अपने जीवन का कुछ समय ग्रामों में बिताकर अपने को कृतकृत्य समझें।

विस्तृत रूपरेखा

१—भारतवर्ष में ग्रामों की संख्या—i नगरों की अपेक्षा कहीं अधिक। ii हजारों ग्राम पीछे एक नगर। iii जनसंख्या का बहुत बड़ा अंश ग्रामों में। iv कृषि प्रधान देशों में ग्रामों का आधिक्य।

२—ग्रामों का महत्त्व—i कृषि की दृष्टि से। ii देश की उन्नति में ग्रामों का स्थान। iii देश का पुनर्निर्माण ग्रामों पर निर्भर।

३—समस्याएँ—i शिक्षा—ग्रामों की अशिक्षा, अनेक कठिनाइयाँ। ii स्वास्थ्य-साधन हीनता, बीमारियाँ, महामारी, स्वास्थ्य-सिद्धान्तों की अवहेलना। iii मुकदमेबाजी—छोटी-छोटी बातों पर, अदालतों में, वैमनस्य, द्रव्य का दुरुपयोग, अशिक्षा के कारण। iv सामाजिक कुरीतियाँ, अनेक कुप्रथाएँ, १९ वीं सदी का दृश्य, शक्ति तथा द्रव्य का दुरुपयोग। v आर्थिक स्थिति उसमें पूर्ण व्यवस्था की आवश्यकता।

$ अच्छे व्यवहार वाले, * धन्य।

४—निराकरण के उपाय—i शिक्षा-प्रसार, अनिवार्य शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा, सार्वजनिक संस्थाएं, शिक्षित वर्ग का कर्तव्य। ii स्वास्थ्य-सिद्धान्तों का प्रचार। iii पंचायत राज। iv समाज-सुधारक संस्थाओं का उद्योग। v सहकारी समितियाँ। vi मनोविनोद आदि।

५—आदर्श ग्राम—i शिक्षा-संस्थाएँ, औषधालय, यातायात के साधन व्यवस्थित ग्राम-पंचायतें, आवश्यकताओं की पूर्ति, विज्ञान का उपयोग, उत्पादन-वृद्धि, मनोविनोद के साधन। ii प्रचार की आवश्यकता। iii सरकार तथा जनता का कर्तव्य।

६—भारत का भविष्य i ग्रामों के सुधार पर आश्रित है। ii ग्रामों का आदर्श रूप सामने आये।

२६—निर्वाचन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—आज के युग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण। २—लोक-तन्त्रात्मक राज्यों में उपयुक्तता। ३—भारत और निर्वाचन*। ४—निर्वाचन की तैयारियाँ। ५—निर्वाचन की प्रणाली और उसके लाभ। ६—प्रणाली की त्रुटियाँ। ७—आदर्श निर्वाचन।

निबन्ध—लोक तन्त्रात्मक देशों में निर्वाचन का अत्यधिक महत्त्व है। जब भारतवर्ष एक "सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोक तन्त्रात्मक† गणराज्य"§ घोषित हुआ तभी इस बात की नींव पड़ गई कि भारत का शासन एक ऐसे समुदाय द्वारा होगा जो यहाँ की जनता द्वारा किसी न किसी रूप में निर्वाचित हो। भारत की संविधान सभा‡ में ता० २६ नवम्बर सन् १९४९ को संविधान अङ्गीकृत किया गया और तब से ही लोग निर्वाचन की ओर अधिक आकर्षित हुए। वैसे तो निर्वाचन का कार्य छोटे बड़े पैमाने पर बहुत समय से चलता ही था और थोड़े समय के लिये उसकी चहल पहल

---

* Election, † Republic, § Democrate ‡ Constitute Assembly।

बहुत प्रभावित करने वाली होती थी, परन्तु नवीन संविधान के अनुसार तो निर्वाचन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम बन गया।

आज के युग में निर्वाचन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद्धति है। अब वह समय तो है नहीं कि किसी एक ही व्यक्ति द्वारा कोई व्यक्ति विशेष किसी सार्वजनिक कार्य को करने के लिये निश्चित कर दिया जाय। अब तो छोटे-छोटे कार्यों के लिये भी निर्वाचन-प्रणाली का आश्रय लिया जाता है जिस भी व्यक्ति के पक्ष में अधिक मत आएँ वही विजयी घोषित कर दिया गया। नगर पालिका × सभाओं के निर्वाचन नगरों में बहुत कुछ उत्साह उत्पन्न कर देते हैं, बड़ी भाग-दौड़ होती है, काफी विज्ञापन होता है। किसी शिक्षा-संस्था के निर्वाचनों को ही देखिये। प्रत्येक पद के लिये कई व्यक्ति खड़े होते हैं और खूब नोटिसबाजियाँ होती हैं, बड़े-छोटे अनेक प्रकार के पर्चे वितरित होते हैं, कालेज का अहाता ही नहीं शहर की सड़क और दीवारें अनेक प्रकार के प्रचार* कार्यक्रम से भर जाते हैं। जितना उत्साह प्रदर्शन निर्वाचन के अवसर पर होता है यदि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उतनी ही लगन और कार्यशीलता दिखाये जांय तो संसार बहुत कुछ उन्नति कर सकता है और व्यक्तिगत विकास की सुन्दर सम्भावना है। अनेक अन्य सभा-संस्थाओं के पदाधिकारी भी निर्वाचित ही होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है सर्वप्रियता का पता लगाने के लिये इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन भी नहीं है। जहाँ कोई विवादग्रस्त प्रश्न आया उस पर मत लेकर ही उसका निर्णय कर दिया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तियों के चुनाव में निर्वाचन हमारे जीवन से बहुत अधिक सम्बन्धित हो गया है और घर के बाहर हमारे कार्य-क्षेत्रों में उसका बहुत हाथ है।

यूरोप के अनेक देश, अमेरिका आदि के निर्वाचनों की बातें सुनते थे, किन्तु इतने बड़े पैमाने पर निर्वाचन होते नहीं देखे गए थे जैसा अब नवीन विधान के अन्तर्गत देखेंगे। भारत की सबसे बड़ी सार्वजनिक सभा

× म्यूनिसिपैलिटी, * Propaganda.

राष्ट्रीय महासभा$ ही थी और उसके सभापति का चुनाव बड़े उत्साह और तैयारी के साथ किया जाता था किन्तु मतदाताओं की संख्या इतनी अधिक नहीं होती थी। अब जो नये चुनाव होने जारहे है उनमें मतदाताओं की संख्या लगभग १५ करोड़ है। भारत के बड़े से बड़े पदाधिकारी जैसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति आदि निर्वाचन द्वारा ही नियुक्त होंगे।

जब भारत का संविधान प्रस्तुत हुआ तो उसमें निर्वाचन की प्रणाली, मतदाता की योग्यता तथा निर्वाचन सम्बन्धी अन्य बातों का उल्लेख कर दिया गया। प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार दिया गया जो भारत का नागरिक है। 'धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होगा, तथा किसी विशेष निर्वाचक-नामावलि में सम्मिलित किए जाने का दावा न करेगा।' संसद्† के प्रत्येक सदन* अथवा किसी राज्य के विधान मंडल+ के सदन के निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक नामावलि प्रस्तुत कराई जावेगी। इसके अगले अनुच्छेद‡ में बताया गया है कि लोकसभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान सभा के लिए निर्वाचन 'वयस्क-मताधिकार'§ के आधार पर होंगे। कोई भी व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है मत देने का अधिकारी होगा। इस निर्वाचन कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए और सन्देह तथा विवादों का निर्णय करने के हेतु निर्वाचन-न्यायाधिकरण÷ की नियुक्ति की गई, और इस कार्य को सम्पन्न करने के हेतु एक अलग विभाग बनाया गया।

निर्वाचन कार्य की ओर सरकार तथा जनता दोनों का ही ध्यान होता है। निर्वाचन कराने से पूर्व बहुत कुछ कार्य करना पड़ता है। सर्व प्रथम निर्वाचन के नियमों का अध्ययन होता है तथा प्रान्त विशेष की निर्वाचन-सूची बनाने की प्रणाली निश्चित होती है। सब मकानों पर अङ्क डलवा दिये जाते हैं, जिसमें किसी मकान के व्यक्ति नामावली में लिखे जाने से छूट न

$ नेशनल कांग्रेस, † पार्लियामेंट, * House, + Legislature, ‡ Article, § Adult franchise, ÷ Election Trilmral.

जावें। इसके पश्चात् पटवारियों द्वारा अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा मतदाताओं की सूचियाँ तैयार कराई जाती हैं जिनमें बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। सूचियों को अच्छे प्रकार जाँच करने के पश्चात् मुद्रण के लिए दे दिया जाता है। क्योंकि मतदाता-नामावलि ÷ की अनेक प्रतियों की आवश्यकता होती है। निर्वाचन-नामावलि में क्रम-संख्या के अतिरिक्त मकानों का नम्बर होता है तथा मतदाता के नाम उनके पिता अथवा पति के नाम के साथ उल्लिखित होते हैं। साथ ही उनकी अवस्था भी लिखी जाती है कि कोई व्यक्ति २१ वर्ष की अवस्था से कम तो नहीं है। सूची को जनता की जानकारी के लिए सार्वजनिक स्थानों में रखा जाता है, जैसे नगर-पालिका, नगर-न्यायाधीश × का कार्यालय आदि। एक निश्चित अवधि तक सूची सम्बन्धी सभी शिकायतें बताई जा सकती हैं ताकि उनकी शुद्धि हो सके। जब सूचियाँ सब प्रकार से शुद्ध हो जाती हैं तब उन्हें निर्वाचन के योग्य समझा जाता है।

इधर जनता भी निर्वाचन के प्रति बहुत रुचि दिखाती है। बहुत समय पूर्व इसका कार्य आरम्भ हो जाता है। जो निर्वाचन के हेतु खड़े होते हैं वे अपना प्रचार-कार्य स्वयं आरम्भ कर देते हैं तथा अपने दलों द्वारा कराते हैं। नोटिस, भाषण, चित्रपट, सभाएँ आदि अनेक प्रकार के साधनों द्वारा अपने पात्रत्व + का प्रकाश कर जनता को अपने अनुकूल बनाते हैं। यह वह समय होता है जब निर्वाचनार्थी से किसी भी प्रकार के आश्वासन लिए जा सकते हैं, जब वह अनेक समाजोचित गुणों को अपने अन्दर लाने का प्रयास करता है, जब उसकी सहानुभूति प्रवृत्ति एक दम जाग जाती है। तन, मन, धन तथा जन चारों प्रकार की युक्तियों द्वारा चेष्टा की जाती है। दूसरी ओर मतदाता भी सोचने लगते हैं कि किसे अपना बहुमूल्य मत प्रदान किया जाय, कौन उपयुक्त व्यक्ति है, कौन उनके हित में अधिक से अधिक बातें करा सकेगा। परन्तु अधिक क्रियाशीलता दूसरी ओर ही होती है और मतदाता* उनके प्रचार-कार्य और अपने लाभ को देखकर किसी को मत देना निश्चित कर लेता है। कभी-कभी तो वह अन्त तक

÷ Electoral Rolls, × Magistrate, + योग्यता, * वोटर।

निश्चय नहीं कर पाता और फिर जिसे भी मन में आता है वोट दे डालता है।

जनता का मत जानकर, उसकी इच्छा के अनुरूप उनके ही चुने हुए व्यक्तियों द्वारा कार्यवाहन कराना एक अत्युत्तम प्रणाली है और जनता में सरकार के प्रति विश्वास एवं सद्भावनायें स्थापित कराने की सुन्दर विधि है। सरकार उसी प्रकार की बनेगी जैसी जनता चाहती है। यदि आज जनता का विश्वास कांग्रेस से उठ जाता है तो उसे अधिकार है कि अगले निर्वाचन में कांग्रेस से खड़े हुए व्यक्तियों को वोट न दे। यदि जनता समझती है कि उसका हित करने में कोई अन्य संस्था अधिक उपयुक्त है तो उसी संस्था के प्रतिनिधियों को मत प्रदान कर उनमें अपना विश्वास निहित† किया जा सकता है। निर्वाचन-प्रणाली वास्तव में एक उत्तम विधि है और इसके अनेक लाभ हैं। सरकार और जनता में संघर्ष होने का कोई कारण ही नहीं होता, जब निर्वाचित-सरकार जनता की ही चुनी हुई है और यदि किसी प्रकार कोई सरकार अप्रिय$ हो जाय तो अगले निर्वाचन में उसे हटाया जा सकता है। निर्वाचन में किसी व्यक्ति विशेष को अधिक अधिकार नहीं मिलता, सबका समानाधिकार होता। चाहे वह भारतीय संघ§ का राष्ट्रपति हो अथवा एक अति साधारण व्यक्ति। देश का शासन-देशवासियों द्वारा ही हो—केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा जो जन-साधारण से निर्वाचित हैं, तो इससे अधिक उपयुक्त और क्या बात हो सकती है। आज आगे बढ़े हुए देशों का सम्पूर्ण कार्यवाहन किसी न किसी रूप में निर्वाचन-प्रणाली द्वारा ही होता है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हम इस प्रणाली का वास्तविक अर्थ में सदुपयोग करें।

निर्वाचन-प्रणाली दोषयुक्त नहीं है किन्तु इसको क्रियात्मक रूप में लाने पर अनेक त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। सर्व प्रथम तो निर्वाचन-सूची प्रस्तुत करने में ही अनेक त्रुटियाँ हो जाती हैं। जो असावधानियाँ वर्तमान निर्वाचन-सूचियों को प्रस्तुत करने में देखी गई है उनके अनेक पूरक*

---

† लगाना, रखना, $ Unpopular, § Union, * Supplementory।

तथा शुद्धि पत्र प्रस्तुत होने पर भी यह सुना जाता है कि वे एक दम अशुद्ध हैं और उनकी सावधानी पूर्वक शुद्धि होने के उपरान्त, पुनर्मुद्रण† आवश्यक है। इसके उपरान्त निर्वाचन जिस रूप में चलता है वह भी त्रुटि पूर्ण है। इस सबके लिए जनता का शिक्षित होना आवश्यक है। जब तक जनता निर्वाचन को अच्छी प्रकार समझेगी नहीं, तब तक निर्वाचन का कार्य सन्तोषजनक नहीं हो सकता। निर्वाचन के कार्य में किसी भी प्रकार का अवाञ्छनीय प्रभाव लाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। मतदाताओं में इतनी समझ हो कि वे अपने मत का मूल्य समझकर उसका उपयोग कर सकें। निस्सन्देह यह प्रत्येक देशवासी का अधिकार है कि वह अपना मत प्रकाशित कर सके, किन्तु उसके लिए पात्रता होना आवश्यक है। तभी तो कहा गया है 'मतदाताओं में बाहुल्य मूर्खों का होता है'। और यह सरलतापूर्वक समझा जाता है कि इस प्रकार के मतदाताओं द्वारा किस प्रकार का निर्वाचन होगा। किन्तु इस युक्ति में तथ्य उसी अवस्था तक है जब तक जन-समुदाय वास्तव में शिक्षित नहीं होता और अपने उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करता।

आवश्यकता इस बात की है कि निर्वाचन नामी इस सुन्दर संस्था§ का उपयोग वास्तव में जनता के लाभ के लिए हो। इसके लिए आवश्यक है कि सर्व प्रथम देश में शिक्षा का प्रचार हो। साक्षर होने पर ही जनता निर्वाचन का महत्त्व समझ सकेगी। जब जन-समुदाय यह सारी बातें समझता ही नहीं तो उसे गूंगे पशुओं की तरह चाहे जिधर हाँक देना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है। वे क्या जानें कि कांग्रेस ने देश के लिए क्या किया और क्या करेगी; उन्हें पता नहीं कि समाजवादी नेताओं की क्या योजना है और देश कल्याण के लिए उनकी क्या युक्तियाँ हैं? वह यह भी नहीं जानती कि साम्यवादी× का बढ़ता हुआ रूप उसके हितों के रक्षण में कहाँ तक उपयुक्त सिद्ध हो सकेगा; वह क्या जाने कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अथवा हिन्दू महासभा किन उद्देश्यों को लेकर निर्वाचन क्षेत्र में जाने का विचार रखते हैं। इस सबका सम्बन्ध शिक्षा से है, जाग्रत

---

† Reprint, § Institution, × Communism।

से है और विचार प्रकाशन से है। कोई भी सभ्य देश इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि वहाँ की जन-संख्या का इतना बड़ा भाग इतना पिछड़ा हुआ रहे। साथ ही निर्वाचन करते समय वे सभी साधन काम में लाये जावें जिससे जनता के मत का सच्चा परिचय मिल सके। प्रचार-कार्य हो सकता है, किन्तु गन्दगी को स्थान देना क्षम्य नहीं होना चाहिये। केवल वैधानिक, सुरुचिपूर्ण साधनों का ही प्रयोग हो और ईमानदारी से देश का कार्यवाहन करने के लिए ऐसे व्यक्ति निर्वाचित हों जो जनता-जनार्दन का सच्चा हित करने में समर्थ हो सकें।

विस्तृत रूपरेखा

१—लोक-तन्त्रात्मक राज्यों में निर्वाचन की उपयुक्तता--भारत एक लोक-तन्त्रात्मक गण-राज्य है।

२—आज के युग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण—i जन-साधारण के मत का मूल्यांकन। ii निर्वाचनों के प्रति उत्साह। iii नगर-पालिका, कालेज, समाजों के निर्वाचन। iv सर्वोत्तम साधन--बहुमत का पता लग जाता है। v जीवन के अनेक क्षेत्रों में उपयोग।

३—भारत और निर्वाचन—i २६ जनवरी सन् १९४९ से भारत एक गण-राज्य है। ii यहाँ के वोटर १५ करोड़ हैं। iii राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद् के सदन, विधान मण्डल सभी निर्वाचित व्यक्तियों द्वारा बनेंगे। iv प्रत्येक वयस्क नागरिक को अधिकार। v धर्म, जाति, लिंग-भेद का कोई विचार नहीं। vi निर्वाचन के हेतु उक्त व्यवस्था।

४—निर्वाचन की तैयारियाँ—i सरकार द्वारा सूचियाँ, मुद्रण, शुद्धिकरण, प्रकाशन, आदि। ii जनता द्वारा प्रचार-कार्य, विज्ञापन, संगठन आदि।

५—निर्वाचन की प्रणाली और उसके लाभ—i एक उत्तम प्रणाली। ii जनता द्वारा जनता का शासन। iii चुने हुए व्यक्तियों से जनहित की आशा। iv सरकार और जनता का सहयोग।

६—प्रणाली की त्रुटियाँ—i क्रियात्मक रूप देने में त्रुटियाँ। ii सूची

तैयार होने में असावधानी । iii निर्वाचन-कार्य में असावधानी । iv मतदाताओं की अल्पज्ञता । v मत प्रकाशन में अयोग्यता ।

७—आदर्श निर्वाचन—i शिक्षा-प्रचारद्वारा जनता का स्तर ऊँचा हो । ii निर्वाचन-प्रणाली का ज्ञान । iii ईमानदारी से निर्वाचन iv सुरुचिपूर्ण, वैधानिक प्रचार । v जनहित का ध्यान । vi सुन्दर भावना का संयोग ।

२७—शरणार्थी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—शब्द का अभिप्राय । २—आधुनिक समस्याएँ । ३—शरणार्थी की कठिनाइयाँ । ४—सरकार का सहयोग । ५—देश के सामने शरणार्थी की समस्या । ६—शरणार्थी का भविष्य ।

निबन्ध—शरणार्थी शब्द अभी थोड़े दिन का ही है और इसका उद्‌गम अँग्रेजी का शब्द रिफ्यूजी* है । इस शब्द के अन्दर किसी प्रकार के अपमान की भावना नहीं है, जैसा कुछ लोग अनुमान करते हैं । यह तो केवल परिस्थिति विशेष का सूचक है । इस व्यक्ति विशेष की प्रथम अवस्था निष्क्रमणार्थी होती है और जब किसी अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाता है तो शरणार्थी । शरणार्थी कोई ऐसा प्राणी नहीं जिसे केवल दया का ही पात्र समझा जाय । कुछ समय तो उसके प्रति इस प्रकार का व्यवहार आवश्यक है किन्तु वह शीघ्र ही अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य हो जाता है । इसी कारण कुछ शरणार्थी, विशेषतः पंजाब प्रान्त से आये हुए शरणार्थी कहाये जाने में अपना अपमान समझते हैं और अपने को 'पुरुषार्थी'$ कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं । 'शरणार्थी या पुरुषार्थी' राष्ट्र के लिये उनका एक ही अर्थ है और उनकी समस्याएँ भी एक ही प्रकार की हैं ।

इधर कुछ समय से शरणार्थी शब्द बहुत सुनने में आया है । पहले तो

* Refugee. Evacuee. † अपने पुरुषार्थ पर आश्रित ।

समाचार-पत्रों में भी यह शब्द पढ़ने में नहीं आया, किन्तु आज न केवल बड़े शहरों में किन्तु छोटे-छोटे गाँवों में भी अत्यन्त प्रचलित है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं संसार के अनेक देशों में यह शब्द प्रचलित हो गया है। इस शब्द के मूल में संसार की आधुनिक राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याएँ हैं। एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है तो आक्रान्ता* के डर से देशवासी अपने घरों को छोड़ कर रक्षा की दृष्टि से अन्य देशों या प्रान्तों में चले जाते हैं और वहाँ शरणार्थी की कोटि में परिगणित होते हैं। अरब, चीन, जर्मनी अनेक देशों में इस प्रकार की परिस्थितियाँ आईं और जनता अपने घरों को छोड़ रक्षा के हेतु इधर-उधर भागी। भारत में एक विलक्षण ही बात हुई। देश को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये एक भारी बलिदान देना पड़ा, वह था देश का विभाजन। अँग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या को शनैः-शनैः इतना गुरुतर बना दिया कि राष्ट्रीय महासभा को भी अँग्रेजों का विभाजन सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार कर लेना पड़ा। किन्तु यह मान लेना पड़ेगा कि हमारे नेताओं ने भी इतनी भीषणता, बरबादी, अत्याचार और गहनता का अनुमान नहीं किया था जितना विभाजन के उपरान्त देश के सामने आया। यदि यह परिस्थिति कल्पना में भी आ जाती तो सम्भव है इस प्रकार की पंगु, आत्मघाती स्वतन्त्रता स्वीकार न की जाती। परन्तु देश का दुर्भाग्य! विभाजन हुआ, अखण्ड भारत दो भागों में विभक्त हुआ और क्रूरतम कठोरता एवं अत्याचार का प्रतिरूप शरणार्थी देश के सामने एक गहन समस्या बन कर आया।

एक शरणार्थी की दशा का अनुमान कीजिये। देश का विभाजन हो गया है। नगर में मार-काट मच रही है, हम दूसरे धर्म वाले को अपने देश में नहीं रहने देंगे, वे अपने हिस्से में जाकर रहें। यदि नहीं जाते हैं तो हम उनको मार कर निकाल देंगे अथवा उन्हें तथा उनके कुटुम्ब को समाप्त ही कर देंगे। उनकी सम्पत्ति पर भी उनका क्या अधिकार, वह तो हमारे हिस्से में आगई। यदि वे भागें भी तो अपनी किसी वस्तु को ले

* आक्रमण करने वाला।

जाने के अधिकारी नहीं। देश के विभाजन के साथ वह वस्तु भी तो हमारे अधिकार में आ गई। और स्त्री बच्चे इन पर भी उसका कुछ अधिकार नहीं, हम जो चाहें करेंगे, और स्वयं इसके जीवन पर भी इनका क्या अधिकार है। यदि जीवित रहना चाहता है तो धर्म परिवर्तन करे, हम जैसा बनकर रहे। यह थी मनोवृत्ति जो देश विभाजन के समय काम कर रही थी। विधर्मी* जनता घबरा गई, और भागने लगी। जिधर भी मुँह उठा सर्वस्व त्याग कर चलदी। उनकी सम्पत्ति उनके सामने ही लूटी गई, उसमें आग लगा दी गई, उनके स्त्री-बच्चों पर अमानुषिक† अत्याचार उनकी आँखों के ही सामने हुए। चारों ओर घोर आन्तक छा गया। जो कुछ बचा, उसमें से जो उठा सके उसको लेकर भागे। जायें तो कहाँ? मार्ग में स्थान-स्थान पर वे ही घटनायें, पास में साधनों की कमी, स्त्री और लड़कियों का साथ, किधर जायँ। किसी प्रकार निकल कर दूसरे भाग में पहुँचे तो देखा कि वहाँ उनके जैसे शरणार्थियों की भारी भीड़ है, उनका किसी तरह का कोई प्रबन्ध नहीं है। रहने का तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं, भोजन भी कभी मिल जाता है। अधिक कोशिश करने से कोई टूटा हुआ खेमा या झोंपड़ी रहने को मिल जाते हैं जिनमें बरसात और जाड़ा काटना तो बहुत ही कठिन होता है। अपने बचे हुए सामान और कुटुम्ब के साथ शरणार्थी बड़ी ही कठिनाई से अपना जीवन यापन$ करता है। जिनके पास सुख और समृद्धि थे वे आज दुःखपूर्ण दारिद्र्य के सखा बने हुए हैं। इस सबके होते हुए भी एक बात हमें स्वीकार करनी पड़ेगी कि पंजाब और सिन्ध से आये हुए शरणार्थियों ने बड़ी वीरता और धैर्य से काम लिया है। इतने शरणार्थी इधर आये किन्तु भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करने वाला एक भी व्यक्ति नहीं मिलेगा। उदरपूर्ति के लिये कोई न कोई साधन अवश्य बना लिया गया है। क्या स्त्रियाँ, क्या बच्चे सभी कुछ न कुछ काम करते हैं और इस प्रकार अपने परिवार और साथ ही सरकार की कठिनाइयों को हलका करते हैं। सड़कों पर, गलियों में, रेल-गाड़ी के डिब्बों में, दुकानों के सामने सभी स्थानों में शरणार्थी कार्यशील

---

* अन्य धर्म मानने वाले, † राक्षसी, $ बिताता।

दृष्टिगोचर होगा। इसीलिये तो ये कहते हैं --हमें शरणार्थी क्यों कहा जाता है हम तो पुरुषार्थी हैं, अपने ही बलबूते पर ठहरे हुए हैं।

यह सब होते हुए भी हम यह नहीं भुला सकते कि सरकार इस ओर बहुत ही प्रयत्नशील रही है। विशेषतः केन्द्रीय सरकार तो एक प्रकार से यह बात स्वीकार करती है कि इन लोगों पर जो अत्याचार हुए तथा जो कठिनाइयाँ आईं उसका कारण देश का विभाजन करने की नीति है, और इस पर ध्यान देती हुई वह बहुत कुछ कार्य करती रही है। "शरणार्थी एवं पुनर्निवास"* नाम का एक अलग ही सरकारी विभाग है जिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता है और अन्य आवश्यक कार्यों के साथ इस विभाग को बहुत-सी द्रव्यराशि शरणार्थियों पर व्यय करने के लिये दी जाती है। इस द्रव्यराशि का कैसा और क्या उपयोग होता है यह तो दूसरी बात है, किन्तु यह बात निश्चय है कि सरकार की इस ओर अत्यन्त उदारतापूर्ण नीति है। प्रान्तीय सरकारें भी इस ओर अपने साधनों का उपयोग कर रही हैं और देश में जो एक अव्यवस्था फैल गई है उसे दूर करने की चेष्टा कर रही हैं। अनेक नगरों में शरणार्थियों के लिये निवास एवं व्यापार की व्यवस्था की जा रही है। कृषि के लिये बहुत सी भूमि दी जा रही है और बैल, बीज, खाद आदि के लिये तकावी भी बाँटी जारही है। जो लोग सामूहिक रूप में अधिक भूमि-भाग को जोतना चाहते हैं उनके लिये बड़ी रकम दी जारही है जिससे आधुनिक कृषि सम्बन्धी साधनों† को जुटाया जा सके। बहुत समय तक सरकार की ओर से शरणार्थियों के लिये भोजन-व्यवस्था भी रही और उद्योग-धन्धों के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की गई।

देश के लिये भी शरणार्थी-समस्या कम महत्त्वपूर्ण नहीं। भारत की आर्थिक तथा व्यापारिक परिस्थिति पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा है और अनेक दिशाओं में बहुत-सी समस्यायें खड़ी होगई हैं। निष्क्रान्त व्यक्तियों के लिये पुनर्निवास बड़ा ही आवश्यक है और साथ ही उनकी जीविकोपार्जन के साधनों का जुटाना। देश का बँटवारा हो जाने से अन्न और वस्त्र

* Refugee & Rehabilitation. † ट्रैक्टर आदि।

की समस्या वैसे ही अति कठिन होगई है, फिर इतने शरणार्थियों के आने से तो यह समस्या उग्रतर होती जा रही है। मँहगाई दिनों दिन बढ़ रही है, काम काज की कमी होने से बेकारी भी नजर आने लगी है। रक्षा के साधन बढ़ाने ही हैं। साथ ही भारत में आये व्यक्तियों की छूटी हुई सम्पत्ति को प्राप्त करना भी है, यही हाल पाकिस्तान का है। देशों में खींच-तान-तनातनी है। अनेक समझौते होते हैं किन्तु पूरे नहीं हो पाते, क्योंकि हृदय उज्ज्वल नहीं, कल्मषता* से प्रभावित हैं। शरणार्थियों के परिवार जो अस्तव्यस्त हो गये, बहुत से व्यक्ति जो इधर-उधर रह गये उन्हें खोजने की चेष्टायें की गईं, किन्तु कौन लौटाता है—लौटाने का कुछ कार्य हुआ अवश्य किन्तु प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह कार्य किस प्रकार हुआ। देश के लिये यह कितने कलंक की बात है कि उसका रूप इतना क्षत-विक्षत† हुआ तथा मुण्ड के झुण्ड व्यक्ति बेघरबार इधर-उधर फिरते दृष्टिगत होते हैं। तनक सोचिये तो कितनी दयनीय परिस्थिति है। खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं तथा रहने के लिये स्थान नहीं। और फिर बेचारा शरणार्थी तो और भी संकटग्रस्त§ है। इतने दूर से भागा हुआ वह किस प्रकार साधनसम्पन्न हो सकता है। शरणार्थी-समस्या हल होने के साथ देश की बहुत सी समस्यायें स्वतः ही हल हो जावेंगी।

यह समस्या अत्यन्त ही विकट है और जब तक इसका अन्त नहीं होगा तब तक देश की अवस्था पूर्णतः सँभलने की सम्भावना नहीं। इसमें बृहत् धनराशि, सच्ची लगन और पूर्ण सद्भावना की परम आवश्यकता है। सरकार द्वारा स्थापित विभाग$ इस ओर बहुत कुछ कर रहा है और प्रतिवर्ष प्रचुर धनराशि व्यय होती है। किन्तु कहा जाता है कि इस धन का वैसा उपयोग नहीं होता जैसा होना चाहिये। वैसे तो बहुत से शहरों में शरणार्थियों के लिये अलग कलोनी‡ बने हैं, लम्बे-लम्बे मार्केट बने हैं, स्टॉल लगाने की सुविधाएँ दी गईं हैं और बहुत से कार्यों में विशेष रियायतें हैं।

* कालापन, † नष्ट भ्रष्ट, § आपत्ति में फँसा, $ Refugee and Rehabilitation ‡ Colony।

इन सबसे, ऐसा प्रतीत होता है, शरणार्थी का काम नहीं चल पाता, क्योंकि वह बहुत ही असन्तुष्ट है। लोगों का तो कहना है कि शरणार्थियों के प्रति उदासीनता का व्यवहार है तथा जो भी द्रव्य इनके नाम पर अलग रखा जाता है उसमें से बहुत कम प्रतिशत इन लोगों के काम आता है। बाकी तो इधर-उधर यों ही जाता है। इसे हम सरकार का दोष तो कह नहीं सकते। यह तो कर्मचारियों की अयोग्यता तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम है। सरकार इस ओर भरसक प्रयत्नशील प्रतीत होती है, देखना है स्थिति कैसे सुधरती है।

शरणार्थियों की जनसंख्या अभी स्थिर रूप में नहीं है, वेग से स्थान परिवर्तन होता है। शरणार्थी जब देखता है कि स्थान विशेष उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता तो वह अन्य स्थान की ओर जाता है। इस प्रकार शरणार्थियों का इधर-उधर आना-जाना अभी चल ही रहा है और देश की जनसंख्या स्थान-स्थान पर अनिश्चित है। बसाने का कार्य शीघ्रता से होना चाहिये और हमें इस बात की चेष्टा करनी चाहिये कि शरणार्थी स्थिर होकर उपयुक्त स्थानों पर बैठें। उसके लिये जीविका के साधनों का हल होना चाहिये अन्य बातें तो फिर भी किसी प्रकार निभ जाती हैं। इस स्थान पर साधारण एवं विशिष्ट* जनता से भी एक प्रश्न पूछना है कि उसने इस समस्या के हल करने में कितना योग दिया है। सरकार के कार्यों की कटु आलोचना करना अत्यन्त ही सरल कार्य है, परन्तु हम यह भी देखें कि स्वयं हम उस ओर क्या कर रहे हैं और सरकार के कार्यों और योजनाओं में कितना सहयोग दे रहे हैं। यदि सहयोग की यह प्रणाली अपनाई जाय और जनता इस ओर उत्साह के साथ कार्य करे तो सरकार को बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समस्या का हल सरकार और जनता दोनों के सम्यक्† सहयोग से ही हो सकता है।

शरणार्थियों ने अपने लिये बहुत कुछ किया है। उनकी प्रयत्नशीलता अत्यन्त श्लाघ्य है। जो कोई भी साधन उपलब्ध हो जाता है उसी को ग्रहण

---

* विशेष, साधन-सम्पन्न, † यथा उचित।

एक उस पर पूर्ण तन्मयता के साथ कार्य करते हैं। महनत और परिश्रम करने में अथक§ उत्साह दिखाते हैं—क्या बुड्ढे, क्या बच्चे सभी कार्य में रत रहते हैं और कोई भी व्यक्ति भिक्षा या अन्य गर्हित साधन द्वारा जीविका की बात नहीं सोचता। व्यापार-उद्योग आदि क्षेत्रों में ये लोग बहुत ही सफल सिद्ध हो रहे हैं, यहाँ तक कि स्थानीय जनता इनकी सफलता से विचलित होने लगी है, क्योंकि अधिक परिश्रम और कम लाभ इनके उद्देश्य होते हैं। व्यापारी वर्ग के सामने यह समस्या बहुत कुछ उग्र-रूप धारण कर चुकी है। कुछ शरणार्थी स्थिर होते भी दिखाई देते हैं और अन्त को स्थिर होना ही है। यह बात तो अब बहुत दूर की दिखलाई देती है कि शरणार्थी अपने-अपने स्थानों पर पहुँच जावें और अपनी चल-अचल सम्पत्ति प्राप्त कर पूर्ववत् जीवन व्यतीत करें। समस्या यही है और इसी ओर सबका प्रयत्न होना चाहिये।

विस्तृत रूपरेखा

१—शब्द का अभिप्राय—i अँग्रेजी के refugee तथा evacuee शब्द। ii शरणार्थी और पुरुषार्थी। iii शरण प्राप्ति का इच्छुक अथवा पुरुषार्थ पर आश्रित।

२—आधुनिक समस्याएँ—i विश्व व्यापी समस्या। ii आक्रान्ताओं द्वारा त्रस्त जनता। iii भारत का विभाजन, हिन्दू-मुस्लिम कटुता। iv विभाजन का कठोर परिणाम।

३—शरणार्थी की कठिनाइयाँ—i अव्यवस्था। ii लोगों की मनोवृत्ति। iii देश छोड़ने को बाध्य, कठोरतम अत्याचार और अन्याय। iv मार्ग की कठिनाइयाँ। v साधनहीनता। vi कहाँ जायँ? क्या करें? vii जीविकोपार्जन का प्रश्न। viii शरणार्थियों की प्रयत्नशीलता।

४—सरकार का सहयोग—i अलग विभाग की स्थापना। ii प्रचुर धन-राशि। iii प्रान्तीय सरकारों की उदार नीति। iv कृषि, उद्योग व्यापार सम्बन्धी सुविधाएँ। v आर्थिक सहायता।

---

§ बहुत अधिक।

५—देश के सामने—i आर्थिक तथा व्यापारिक दृष्टिकोण। ii अन्न, वस्त्र और निवास। iii निष्क्रान्त-सम्पत्ति प्राप्त करना। iv बिछुड़े हुए परिवारों के लोग। v देश में उत्पन्न अनेक अन्य समस्याएँ।

६—शरणार्थी का भविष्य—i जनता और सरकार के सहयोग की आवश्यकता। ii जनसंख्या को स्थिर करना। iii जीविका के साधन। iv प्रयत्नशील शरणार्थी। v यहीं रहना है।

२८—आदर्श-शासन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—शासन की उत्पत्ति : व्यवस्थाओं का विकास। २—सामन्तशाही और प्रजातन्त्र। ३—रामराज्य : एक दृष्टि। ४—सच्चा प्रजातन्त्र और समाजवाद। ५—समाजवादी समाज की तस्वीर। ६—आशा।

मानव-प्रकृति-शास्त्रियों का यह मत है कि मानव ने प्रकृति से संघर्ष करते-करते सभ्यता सीखी; तथा आपसी संघर्ष के कारण उसे राज्य या शासन जैसी वस्तु का निर्माण करना पड़ा। जब से शासन अथवा राज्य-प्रथा का संगठन मानव-जगत में हुआ है, तभी से वह इस व्यवस्था के कुछ अनिवार्य दुर्गुणों से पीड़ित भी रहा है। समय विशेष में कुछ विशेष परिस्थितियाँ पाकर ये दुर्गुण जब भी कभी असहनीय दशा को पहुँच गये हैं, तभी मानव को राजनीतिक क्रांति करनी पड़ी है और राज्य-व्यवस्था को बदलना पड़ा है। इस प्रकार की अगणित क्रांतियों* के रक्त से मानव-जाति का इतिहास रँगा पड़ा है। हर बार मनुष्य एक व्यवस्था को नष्ट करके दूसरी व्यवस्था स्थापित करता है। एक आदर्श के पीछे पागल, परिवर्तन का अद्भुत प्रेमी मानव-समाज इस क्रांति के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी दे डालता है। और विनाश के पश्चात् फिर सृजन करता है, किन्तु जिस प्रकार किसी आदर्श-प्रेमी बालक का घरूला† कभी उसके मन का-सा नहीं बन पाता। वह बनाता है, फिर मिटा देता है; फिर बनाता है, फिर

* Revolutions, † मिट्टी का घरौंदा।

मिटाता है। किन्तु उसका आदर्श बच्चे में नहीं उतर पाता। ठीक उसी प्रकार मानव भी अपने मन की राज्य-व्यवस्था स्थापित करने के लिए क्रांति पर क्रांति, परिवर्तन पर परिवर्तन, विनाश पर विनाश और सृजन पर सृजन करता जाता है, किन्तु उस आदर्श-मन्त्री† बालक की भाँति इस स्वर्गीय आदर्श वाले मानव की राज्य-व्यवस्था भी कभी उसके मन की-सी नहीं बन पाती। मानो मानव एक ऐसा कलाकार है, जो अपनी कल्पना को आकार बनाने के लिए एक चित्र बनाता है, दूसरा बनाता है, फिर अगणित बनाता है, किन्तु उसके मन की तृप्ति नहीं होती। उसकी आदर्श कल्पना एक में भी नहीं उतर पाती।

आज तक का मानव-इतिहास बताता है कि मानव अपनी दशा से कभी सन्तुष्ट नहीं रहा। प्रारम्भिक काल में जब सामन्तशाही का उदय नहीं हुआ था, तब राज-व्यवस्था कबीलों में निहित थी। एक प्रकार की कुटुम्ब-गण-राज्य-प्रथा थी वह। किन्तु धीरे-धीरे इस प्रथा को मानव ने असमर्थ पाया अपनी रक्षा करने में, अतः इसका स्वरूप बदलकर सामन्त-शाही स्थापित हुई। हजारों वर्षों तक सामन्त-शाही और साम्राज्य शाही का राज्य इस भूतल पर रहा। सम्भवतः यह अब तक की राज्य-व्यवस्थाओं में सर्वाधिक दीर्घायु व्यवस्था थी। इसके दीर्घजीवी होने का कारण यह था कि कभी-कभी ऐसे राजा और सामन्त सिंहासनारूढ़ हो जाते थे, जो इस व्यवस्था की सारी बुराइयों को दूर रखकर अत्यन्त न्याय्य शासन करते थे। भारत में आप रामराज्य की बहुत बड़ी प्रशंसा सुनते होंगे। आज भी लाखों भारतीय इसे आदर्श शासन मानते हैं। इतना आदर्श मानते हैं कि कुछ संस्थायें तो प्रजातन्त्र और आर्थिक समानता के इस युग में भी उसी प्रकार की सामन्त-शाही-व्यवस्था स्थापित करने की बात करती हैं, और फिर 'रामराज्य-परिषदों'* के नाम से प्रजा में अपना प्रचार भी करती हैं। किन्तु हमें नहीं भूल जाना चाहिये कि मृत सामन्त-शाही को फिर से संजीवनी पिलाने के ये हथकण्डे हैं। वास्तव में रामराज्य है क्या? इसे यदि

† Idealist, * हाल में ही भारत में प्रतिक्रियावादी शक्तियों का मोर्चा।

हम समझ लें तो रामराज्य का नाम बेचने वालों से उसी प्रकार बचे रह सकते हैं, जिस प्रकार गांधी का नाम बेचने वाले चोर बाजारियों से। सारे मानव-इतिहास में रामराज्य सामन्तशाही का स्वर्ण युग था। उस युग में एक साधारण धोबी के कथन पर सीता जैसी पटरानी को निर्वासन का दण्ड दिया जा सकता था। यही एक तर्क है रामराज्य को आदर्श बताने वालों के पास। किन्तु यदि आप देखें, तो पायेंगे कि रामराज्य में ऐसी कोई राजकीय नियम-व्यवस्था नहीं थी, कि न्याय की इतनी अतिशयता$ जिससे प्रयोग में लाई जाती हो। वह तो राम का व्यक्तित्व ही ऐसा था, उनका स्वभाव ही ऐसा था कि वे मानव-प्रेमी थे। मैं तो सोचता हूँ, राम की परम भक्त भारतीय जनता भी राम को राजा के रूप में नहीं, भगवान् (महापुरुष) के रूप में स्मरण करती है। फिर राम का राज्य पुनः स्थापित करने के नाम पर वोट माँगने वालों अथवा युवकों को बहकाने वालों की कौन-सी बात मानी जाय? क्या गारण्टी है कि पुनः सामन्त-शाही स्थापित होने पर भारत के सारे राजे-महाराजे राम बन जावेंगे। अभी तो देशी रियासतों की प्रजा को उन भयानक जुल्मों की स्मृति बहुत ताजी है। सामन्तशाही अब सारे विश्व में समाप्त हो चुकी है और अब उसकी ओर मुँह फेरना देश को प्रतिक्रिया की ओर ले जाना है, सबसे बड़ा देश-द्रोह है।

पश्चिम में पिछली २–३ सदियों में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है। यह प्रजातन्त्र भारत में एक बार पहले आया था, जिसके प्रमाण हमें मालव, लिच्छवी, क्षत्रप आदि गण-राज्यों के इतिहास में मिलते हैं, किन्तु उस समय सामन्तशाही का यौवन-काल था और व्यवस्था में श्रेष्ठता न होते हुए भी वह बल में गण-राज्य-व्यवस्था से अधिक शक्तिमान् थी। इसीलिए उस समय भारतीय गण-राज्य-व्यवस्था को पीस डाला गया। यूरोप और अमरीका में १६ वीं, १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में जिस प्रजा-तन्त्र ने जन्म लिया है, वह समय पर आने के कारण बलशाली हो गया, और उसे मानव-जाति के बुद्धि क्षेत्रीय महापुरुषों† का आशीर्वाद भी

$ Sxcees, † Great Intelleets।

मिला। फलतः सारे विश्व में उससे प्रेरणा लेकर प्रजातन्त्र कायम किये जा रहे हैं।

इस व्यवस्था में कई दोष हैं, इस तथ्य को अस्वीकार करना सत्य से मुख मोड़ना है, किन्तु जब तक मार्क्स द्वारा कल्पित राजहीन व्यवस्था का कोई प्रमाण मानव-संसार में उपस्थित नहीं हो जाता, तब तक इसे सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था मानना ही पड़ रहा है। मार्क्स ने एक ऐसी अवस्था की कल्पना की है जिसमें राज-सत्ता समाप्त होकर विशुद्ध साम्यवाद स्थापित हो जायगा। किन्तु मार्क्स साम्यवाद स्थापित करने के लिए राजसत्ता को बनाये रखना आवश्यक समझते हैं। कुछ अराजकतावादी* राजसत्ता को नितान्त निर्मूल करके व्यक्ति में सत्ता की स्थापना करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में राजसत्ता शोषण का सबसे बड़ा साधन है। मैं अराजकतावादी नहीं हूँ, इसलिये अधिक देर तक आपसे अराजकतावाद की बात नहीं कर पाऊँगा। मैं मार्क्स के उस कथन से अवश्य प्रभावित हूँ जिसमें वे साम्य-वाद और प्रजातन्त्र को आधार-आधेय मानते हैं। राजसत्ता समाप्त होने से भी मार्क्स का तात्पर्य सम्भवतः यही था कि राज्य आज जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है उस अर्थ में उसकी समाप्ति हो जायगी। अन्यथा मार्क्स यह नहीं कहते कि बिना प्रजातन्त्र के साम्यवाद हो ही नहीं सकता, और साम्यवाद स्थापित हो जाने के पश्चात् भी प्रजातन्त्र तो स्वयमेव चलता ही रहेगा। वास्तव में सच्चा प्रजातन्त्र स्वयं साम्यवाद है। आज की पश्चिमी पूँजीवादी प्रजातांत्रिक व्यवस्थायें इसीलिये सफल नहीं हैं कि वहाँ मानवी समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व नहीं।

इस विवेचन से स्पष्ट हुआ होगा कि आज के नवयुवक-मस्तिष्कों और मानवता के कल्याणकांक्षी मनीषियों की आदर्श-शासन-व्यवस्था समाजवाद की स्थापना है। इस समाजवाद का स्वरूप क्या होगा? यह भी समझ लेना चाहिये। मार्क्स ने समाजवाद की जो तस्वीर सामने रखी है, उससे आज के मनीषी कुछ भिन्न प्रकार की तस्वीर रख रहे हैं। कारण यह है कि मार्क्स ने जिस युग के अनुभव लेकर अपनी चिन्ता-धारा प्रसारित की

---

* Anarchists।

थी, उस युग से आज के युग की प्रगति में कोसों का अन्तर हो गया है। हाँ, तो इस व्यवस्था का सर्व प्रथम अध्याय होगा, देश के प्रत्येक निवासी को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समानता एवं स्वतन्त्रता का अनुभोग कराना। शोषण के सारे मार्ग बन्द कर दिये जावेंगे। इस प्रकार मनुष्य अपने विकास के लिए व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र होगा। समाज की सारी सम्पत्ति का समाजीकरण हो जाने से वह सम्पत्ति समाज के सारे व्यक्तियों द्वारा उपभोग्य होगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत उद्योग अत्यन्त आवश्यक सीमा तक सीमित हो जायेंगे। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाज के प्रत्येक प्राणी को भोजन, कार्य और जीवन एवं विकास की सुविधा देने के लिए समाज उत्तरदायी होगा, वहाँ प्रत्येक मानव का अपना एक कौटुम्बिक और वैयक्तिक जीवन भी होगा, जिसमें उसे सारी सुविधाएँ और सुख तो होंगे किन्तु आज की भाँति रोग, चिन्ताएँ और भुखमरी नहीं होगी। यह वह अवस्था होगी जब प्रत्येक व्यक्ति से इतना कार्य लिया जायेगा, जितना वह समाज के लिए कर सकता है, और उसको इतना दिया जायेगा, जितनी उसे आवश्यकता है। ग्रामों में सत्ता बाँट दी जावेगी। आज की भाँति राजसत्ता तथा धन-सम्पत्ति को केन्द्रित नहीं रखा जावेगा। सत्ता का विकेन्द्रीकरण* समाजवाद का प्रथम लक्ष्य है। प्रत्येक ग्राम अपने जीवन और विकास की सारी सुविधाओं को पाने के साथ-साथ अपने समाज में न्याय और सुशासन की स्थापना भी स्वयं कर लेगा। नाम-मात्र के लिए बाह्य आक्रमण से रक्षा के लिए तथा उचित ढङ्ग से व्यवस्था चलाने के लिए जिस केन्द्रीकृत राजसत्ता की आवश्यकता होगी, वह रहेगी। प्रत्येक ग्राम और स्वायत्त शासन-प्राप्त समाज उस केन्द्र-सत्ता से उचित सहयोग और रक्षा प्राप्त करेगा।

इस प्रकार आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समानता के प्राप्त हो जाने पर समाजवादी समाज विज्ञान एवं कला की सर्वोच्च उन्नति का लाभ उठा सकेगा। क्योंकि जब मानव को आर्थिक दृष्टि से सुविधा मिल जाती है तो वह कला और विज्ञान में अद्भुत उन्नति कर सकता है।

---

* Decentralisation।

यह है वह आयोजित अवस्था, जिसके लिए आज सारे विश्व के शान्ति-प्रिय मस्तिष्क सोच रहे हैं। किन्तु अभी न जाने कब तक मानव-जाति का दुर्भाग्य उसे इस पूँजीवादी और साम्यवाद के चोले में साम्राज्यवादी संघर्षों में घसीटता रहेगा। इस समय तो भारत ही एक ऐसा देश है जो बुद्ध और गांधी की अहिंसक परम्परा तथा अपनी आध्यात्मिक अभिवृत्ति को लेकर संसार में एक नवीन प्रकार का स्वर्ग-समाज स्थापित कर सकता है।

विस्तृत रूपरेखा

१—शासन की उत्पत्ति : व्यवस्थाओं का विकास—i शासन-शक्ति की आवश्यकता। ii गुण-दुर्गुण। iii निरन्तर क्रान्ति और परिवर्तन। iv नई-नई व्यवस्थाओं का विकास। v मानव : एक शिशु अथवा कलाकार।

२—सामन्तशाही—i कुटुम्ब-राज्य। ii सामन्तशाही का जन्म। iii सर्वाधिक दीर्घजीवी प्रथा।

३—रामराज्य : एक दृष्टि—i रामराज्य : एक श्रेष्ठ सामन्ती राज्य, स्वर्ण-युग। ii भारतीय जनता राम को राजा के रूप में नहीं, भगवान् के रूप में देखती है। iii सामन्ती व्यवस्था की ओर नहीं लौटा जा सकता। iv प्रत्येक सामन्त राम होगा, इस पर मूर्ख भले ही विश्वास करें।

४—सच्चा प्रजातन्त्र और समाजवाद—i प्रजातन्त्र भारत में भी था। ii आधुनिक प्रजातन्त्र पश्चिमी। iii प्रजातन्त्र के कई दोष। iv समाजवाद : एक मोहक कल्पना। v आज की सर्वश्रेष्ठ कल्पित व्यवस्था।

५—समाजवाद की तस्वीर—i समाजीकरण—सम्पत्ति और साधनों का। ii सत्ता का विकेन्द्रीकरण। iii शक्ति के अनुरूप कार्य और आवश्यकता के अनुरूप वस्तु प्रत्येक को मिलेगी।

६—आशा—i भारतीय-परम्परा से आशा।

२६—भारतीय सरकार की कुछ कठिनाइयाँ

संक्षिप्त रूपरेखा

१—भारत का विभाजन और अँग्रेजों का जाना। २—विभाजन की कठिनाइयाँ—निष्क्रमण और शरणार्थी। ३—देशी राज्य, काश्मीर तथा आन्तरिक स्थिति। ४—खाद्य समस्या। ५—मुद्रास्फार, बेकारी, आर्थिक समस्याएँ। ६—देश की व्यवस्था और आन्तरिक शान्ति। ७—विश्व में व्याप्त अशान्ति, साम्यवाद तथा एशियाई देशों में उथल-पुथल। ८—पश्चिमीय देशों का रुख। ९—भारतीय सरकार की क्षमता। १०—किस ओर ?

निबन्ध—अँग्रेज चले गये, देश आजाद हो गया, किन्तु आजादी बड़े मँहगे दामों मिली। अब भी कुछ लोग सोचते हैं हमें आजादी नहीं उसकी परछाईं मात्र उपलब्ध हुई है; कुछ कहते हैं क्या देश अँग्रेजों के ही राज्य में अधिक सुखी न था। अँग्रेजों ने हमें आजादी दी, किन्तु देश को क्षत-विक्षत* करके; भारतीय सरकार देश के नेताओं की बनी, किन्तु देश में अनेक मतभेद डालकर; पूर्व से पश्चिम ने अपना हाथ हटाना चाहा, किन्तु उसकी लिप्सा÷ बनी रही। आज देश हमारा अवश्य है, किन्तु हमारे देश की कैसी अवस्था है। सरकार की कठिनाइयों के साथ ही साथ जनता कितनी त्रस्त+ हो रही है। देश के कोने-कोने में खाद्य की समस्या अधिकाधिक गम्भीर बनती जा रही है; शरणार्थी अभी बसाये नहीं जा सके हैं। उधर विश्व की राजनैतिक अवस्था बड़ी नाजुक हो चली है; चिनगारियाँ सुलग चुकी हैं, किसी भी समय युद्ध की आग भड़क सकती है।

भारत का विभाजन देश के इतिहास में एक नवीन बात हुई। बहुत समय से सम्पूर्ण देश एक ही सत्ता द्वारा समष्टि× के रूप में एक राष्ट्र घोषित होता रहा है, किन्तु देश की वह समष्टि नष्ट हुई, भारतवर्ष पाकि-

* नष्ट-भ्रष्ट, ÷ लोभ, + दुःखी, भयभीत, × सम्मिलित इकाई।

स्तान और हिन्दुस्तान दो राष्ट्रों में बट गया। पाकिस्तान के पुनः दो विभाग हुए—पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान। नामकरण तक तो कोई विशेष आपत्ति न थी, किन्तु इस विभाजन के परिणामस्वरूप प्रजा को जो कष्ट हुआ उसकी कल्पना करते ही रोमांच हो आता है—नृशंसता-पूर्ण* उन कृत्यों का स्मरण कर हृदय त्राहि-त्राहि कर उठता है। कितने समृद्ध व्यक्ति आज कौड़ी-कौड़ी के मोहताज हो दर-दर भटक रहे हैं। कितनी स्त्रियाँ पति-विहीना हुईं, कितने बालक अनाथ बने, कितनी स्त्रियों पर असानुषिक÷ अत्याचार हुए, आग की प्रचण्ड लपटों ने कितने स्थानों को भस्मीभूत कर दिया, आक्रान्ताओं+ के कराल अस्त्रों ने कितने निरीह प्राणियों का प्राणान्त किया, देश में कितनी अव्यवस्था फैली, टोल के टोल शरणार्थी इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे। सरकार के सामने एक भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो गई, इतने निष्क्रान्त† व्यक्तियों को किस प्रकार बसाया जाय। उनके भोजन-आच्छादन$ का क्या प्रबन्ध किया जाय। सरकार द्वारा इतना द्रव्य व्यय और प्रयत्न करने पर भी यह समस्या अभी हल नहीं हो पाई है, और चारों ओर से तरह-तरह के लाञ्छन सरकार पर लगाये जा रहे हैं। सरकार के सामने यह एक बड़ी कठिन समस्या है, साथ ही इन निष्क्रान्त व्यक्तियों की सम्पत्ति को भी उन्हें दिलाने का प्रश्न सामने है। पाकिस्तान से अनेक प्रकार के समझौते किये जा रहे हैं। कहीं व्यापार की बातें हैं, कभी खाद्य-सामग्री सम्बन्धी, किन्तु सबसे बड़ा प्रश्न है निष्क्रान्त-सम्पत्ति के विषय में।

देशी राज्यों की समस्या भारतीय सरकार के सामने बड़े वृहत् रूप में थी। इतने छोटे बड़े राज्य थे कि उन्हें बड़ी इकाइयों में मिलाना बड़ा ही कठिन कार्य था। भारत के रियासती विभाग ने इन देशी रियासतों को बड़ी इकाइयों में मिलाकर एक अत्यन्त गुरुतर कार्य कर डाला है। अब प्रश्न है इनको सुव्यवस्थित रूप देकर अन्य प्रगतिशील प्रान्तों के स्तर पर लाया जाय। देशी राज्य मिट तो गये, किन्तु उनकी खराबियाँ अब भी

---

* अमानुषिक कठोरता से भरा, ÷ मनुष्यता से गिरे हुए, + हमला करने वाले, † निकाले हुए, $ वस्त्र।

बाकी हैं उन्हें दूर करना है। वास्तव में देशी राज्यों के सम्बन्ध में जितना कुछ भी हुआ है, वह भारतीय सरकार की दूरदर्शिता तथा नीति-पटुता× का सुन्दर उदाहरण है, और जिस समय इन स्थानों में व्यवस्था तथा सुधार हो जावेंगे, वर्तमान सरकार के समय का यह बहुत बड़ा कार्य होगा। आवश्यकता है आन्तरिक स्थिति को सुधारने की। शिक्षा का प्रचार, आवागमन* के साधन, खाद्य पदार्थों की पूर्ति, जल सम्बन्धी योजनाएँ, औद्योगिक प्रगति तथा शासन की समुचित व्यवस्था, इन देशी राज्यों द्वारा बनी इकाइयों ÷ की महत्त्वपूर्ण आवश्यकतायें हैं।

काश्मीर का प्रश्न आरम्भ से ही भारत-सरकार के सामने रहा है। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये गये। सैन्य कार्यवाही भी बहुत समय तक रही और उसमें देश का द्रव्य तथा शक्ति बड़ी मात्रा में व्यय हुए। अनेक बार समझौते के भी प्रयत्न हुए और अन्य शक्तियों ने इसमें सहयोग दिया। पंच फैसले की भी बातें आईं। आधुनिक काल की सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण परिषद्† ने भी इस समस्या का हल करना चाहा। अभी हाल में प्रधान-मन्त्रियों के लन्दन सम्मेलन में इस प्रश्न पर कुछ बातें हुईं, किन्तु यह प्रश्न अभी उलझा हुआ ही पड़ा है। अन्य गम्भीर समस्याओं के साथ देश के लिए यह भी एक बड़ा प्रश्न है और इसका सन्तोषजनक हल होना वाञ्छनीय है।

देश की अन्य अनेक कठिनाइयों के साथ इधर खाद्य सम्बन्धी समस्या बड़े भयंकर रूप में सरकार के सामने उपस्थित होती रही है। अन्न का भाव देखकर तो आजकल के विचारशील व्यक्ति घबरा उठे हैं कि इस परिस्थिति का किस प्रकार सामना किया जावेगा। सरकार ने राशन नियत कर दिया है, किन्तु इसमें भी निरन्तर कमी करनी पड़ रही है। राशन द्वारा नियत मात्रा भी उपलब्ध नहीं हो पाती और अनेक अवसरों पर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक वस्तुएँ लेनी पड़ती हैं। खाद्यान्नों का एक दम अभाव-सा प्रतीत हो रहा है और लोग किसी प्रकार काम चला रहे

× चतुरता, * आना-जाना, ÷ units, † U. N. O.।

है। वे लोग जो गेहूँ के अतिरिक्त अन्य किसी अन्न का प्रयोग नहीं करते थे, आज मक्का और ज्वार को काम में ला रहे हैं। कहीं चावल दुर्लभ है तो कहीं गेहूँ। कहीं बाजरा नहीं मिलता तो कहीं चना लुप्त हो जाता है। अन्न की उत्पत्ति निरन्तर बढ़ रही है, पर समस्या की गुरुता कम नहीं हो रही है। देश में खाद्यान्न$ की पूर्ति के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। आशा तो है कि आगामी २, ३ वर्षों में भारत इस ओर से स्वावलम्बी हो जावेगा, किन्तु कुछ विश्वास-सा होता दिखाई नहीं देता। अन्न के साथ कुछ अन्य आवश्यक वस्तुओं का भी बुरा हाल है। चीनी एक दुष्प्राप्य ÷ सामग्री बन गई है। तोले माशों में यह पदार्थ प्राप्त होता है और अधिक पाने के लिए कई गुना दाम देना पड़ता है। घी का मिलना तो असम्भव हो गया है, असली घी के नाम पर पूरा मूल्य देते हुए भी केवल मिश्रणमात्र ही उपलब्ध होता है। कई अवसर आये जब सरकार ने इस ओर बहुत ध्यान दिया और वनस्पति तैल* में रंग आदि डालने की बातें आईं, किन्तु कार्य-रूप में परिणत अभी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। तेल में भी अनेक प्रकार के मिश्रण चल रहे हैं और कोई-कोई बहुत हानिकारक चीजें पेलकर तेल में मिश्रित कर देते हैं।

जब हम वस्तुओं के बढ़े हुए भावों को देखते हैं तो कभी-कभी दिल दहल उठता है। अभी कुछ वर्ष ही पहले वस्तुओं का जो मूल्य था उससे लगभग आठ गुना मूल्य, अनेक वस्तुओं को खरीदते समय, चुकाना पड़ता है, और हम कोई भी लक्षण ऐसे नहीं देख पाते जिनसे मूल्य में कमी होने की आशा हो। कभी-कभी कुछ कमी होती है, किन्तु शीघ्र ही पहले से भी कहीं अधिक मूल्य बढ़ जाते हैं। इसका एक कारण मुद्रास्फार× है। युद्ध के समय मुद्रा की बहुतायत हो गई और अब अनेक युक्तियों से भी यह स्थिति सम्भलने में नहीं आरही है। हाँ, एक दुष्परिणाम अवश्य दृष्टिगोचर हो जाता है कि व्यापार में रुपये की खींच हो चली है, और बहुत से बड़े व्यापारी कठिनाई में हैं। देश की आर्थिक समस्याएँ बहुत विकट हो चली

$ खाने के काम आने वाला अन्न, ÷ जो प्राप्त न हो सके, * Vegetable Oil. × Inflation नोट रुपयों का बढ़ जाना।

हैं। मूल्य में वृद्धि के साथ सरकारी कर्मचारियों के वेतनों में वृद्धि करनी पड़ रही है, महँगाई देनी पड़ती है, किन्तु आय के आँकड़े उस अनुपात में बढ़े नहीं हैं। इससे अनेक स्थानों पर कमी करने की आवश्यकता है। यह कमी देश में बेकारी ला देगी, अब भी इसके लक्षण स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ते हैं और भविष्य तो और भी अन्धकार-मय प्रतीत होता है। जनता तो तभी सन्तुष्ट होगी जब वस्तुओं के मूल्य में कमी हो और आवश्यक वस्तुएँ सरलता से प्राप्त हो सकें।

इस समय देश को पूर्ण-रूपेण व्यवस्थित बनाना तथा आन्तरिक शांति स्थापित करना सरकार के सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न के रूप में है। अनेक कारणों से व्यवस्था के स्थान पर अव्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही है और अनेक परिस्थितियों ने देश की आन्तरिक शान्ति के लिए भी भय उपस्थित कर दिया है। राष्ट्रीय सरकार के सामने यह एक कठिन समस्या है कि आन्तरिक शान्ति स्थापन के लिए किस मार्ग का अवलम्बन किया जाय। बहुत-सी ऐसी पेचीदा† बातें हैं कि कोई कड़ा कदम नहीं उठाया जा सकता, किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी अवश्य बन रही हैं कि देश सुख-शान्ति से नहीं रह सकता। राष्ट्र-निर्माण के लिए भी इस स्थिति को उत्पन्न करना आवश्यक है। आज देश में अनेक स्थानों से शान्ति-भंग के समाचार मिलते हैं। डाकुओं के उपद्रव, मार्ग में लूट, व्यापारियों को धोखा, श्रमजीवियों की हड़तालें, विद्यार्थियों पर गोलियाँ, ट्रेन-दुर्घटनायें आदि ये सभी बातें आन्तरिक व्यवस्था में कमी की ओर संकेत करती हैं और इस अवस्था में सुधार करना बहुत ही आवश्यक है।

अनेक बातों में हमारे देश पर विश्व की बातों का प्रभाव पड़ रहा है। खाद्य समस्या, आर्थिक प्रश्न, अशान्ति, क्षुब्ध वातावरण अब किसी देश विशेष से सम्बन्धित न हो विश्व-व्यापी$ प्रश्न बन गये हैं। हाँ, हमारे देश में ये कुछ अधिक उग्ररूप में विद्यमान हैं। आज का संसार अशान्ति से परिपूरित है, घटनाएँ युद्ध की ओर जाती दिखाई दे रही हैं। विश्व के नेता युद्ध रोकने को प्रयत्नशील होते हैं, किन्तु युद्ध रुक सकेगा या नहीं,

† उलझी हुई, $ संसार में सर्वत्र व्याप्त।

यह एक विचारणीय प्रश्न है। इधर एशियाई देशों में उथल-पुथल हो रही है, घटनाएँ उग्र रूप से गतिशील हैं। परिस्थिति बिगड़ती जा जा रही है। चीन का नूतन-स्वरूप* पश्चिमी देशों की आँखों में गड़ रहा है। कोरिया का युद्ध विश्व-शान्ति के प्रश्न को पीछे धकेल रहा है। कोई भी देश इन घटनाओं की अवहेलना नहीं कर सकता। फिर भारत तो इस सम्पूर्ण वातावरण से दूर ही कैसे रह सकता है। आज जब तिब्बत और चीन में कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब भारत को अपनी नीति का स्पष्टीकरण करना आवश्यक हो गया है। अनेक बड़े राष्ट्रों से मतभेद हो सकता है, किन्तु हमारे देश को परिस्थितियों का सामना व्यावहारिक रूप से करना पड़ेगा।

आज के विश्व में पश्चिमीय देशों का बोलबाला ÷ है। यद्यपि पूर्वीय देश अपनी चिर-निद्रा का परित्याग कर जागरण की अँगड़ाई ले रहे हैं। जागृति का नव-प्रभात होने जा रहा है, फिर भी पश्चिमीय प्रभुत्व अपना अस्तित्व जमाये हुए हैं। भारत को इन देशों के साथ सम्बन्ध रखना पड़ेगा। आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से सुन्दर-नीति का अनुगमन कर भारत अपना निश्चित स्थान बनावेगा। ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल × में सम्मिलित रहना इसी दृष्टि से आवश्यक समझा गया था, और अमेरिका तथा रूस जैसे राष्ट्रों से मैत्री भी इसी उद्देश्य से वाञ्छनीय हो जाती है। पर प्रश्न उठता है कि वर्तमान परिस्थितियों में भारत अपने ये सम्बन्ध किस प्रकार बनाये रहेगा, उसे तो स्थिति की कटुता का सामना करना ही पड़ेगा और निकट-भविष्य में कोई निश्चित नीति स्थिर करनी होगी।

हमारी वर्तमान सरकार ने जिस प्रकार इन समस्याओं को हल करने की चेष्टा की है वह उनकी दूरदर्शिता तथा नीति-कुशलता का परिचायक‡ है और सामान्य स्थितियों में उनकी नीति-निपुणता का परिणाम स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होता, किन्तु परिस्थितियाँ इतनी भीषण हो गई और विश्व-

---

* लालचीन, साम्यवादी चीन, ÷ महत्त्वपूर्ण स्थान, × Commonwealth., † वर्तमान दो विरोधी शक्तियों के प्रतीक, ‡ बताने वाला।

समस्याओं ने इतना जटिल$ रूप धारण कर लिया है कि सरकार की ओर से जनता को सन्तोष नहीं हो सका है। यह तो प्रायः सभी लोग कहते सुने जाते हैं कि सारी बातों पर दृष्टि रखते हुए कोई भी अन्य सरकार भारत की वर्तमान सरकार से अधिक सफल नहीं हो सकती थी।

देखना यह है कि भारत किस ओर जाता है, विश्व की स्थिति कैसी होती है, शान्ति का क्या रूप बनता है। इसके साथ ही साथ भारत की आन्तरिक व्यवस्था में परिवर्तन देखे जा सकेंगे, किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत की वर्तमान सरकार अनेक महान कठिनाइयों से घिरी हुई है और देश के प्रति उसे बहुत कुछ करना है। इन पर विजय पाकर ही देश में सुख-शान्ति की स्थापना हो सकेगी।

विस्तृत रूपरेखा

१—भारत का विभाजन और अँग्रेजों का जाना—i विभाजन के उपरान्त देश को स्वतन्त्रता। ii कठिनाइयों में अभिवृद्धि। iii राजनैतिक अवस्था की गम्भीरता।

२ विभाजन की कठिनाइयाँ—i खून-खराबी, लूट-मार, अत्याचार। ii निष्क्रमण। iii निष्क्रान्त सम्पत्ति, जान-माल। iv शरणार्थियों का प्रश्न—बसाना, जीविकोपार्जन के साधन देना, उनकी सम्पत्ति को प्राप्त करना। v सम्पूर्ण देश पर इसका प्रभाव। vi आबादी की अव्यवस्था—सरकार की योजनाओं में घोर परिवर्तन, अनेक नवीन समस्याएँ।

३ देशी-राज—i भारत के देशी राज्यों का विलीनीकरण। ii उनकी आन्तरिक व्यवस्था, उन्नति, देशी राज्यों की प्रजा का प्रश्न—उनके लिए अनेक आवश्यक योजनाएँ। iii काश्मीर—जटिल प्रश्न, अनेक उपाय, विश्व जन-रक्षा, परिषद् के सामने, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के बीच कटुता का मूल, भारत और काश्मीर, राजनीतिक तथा न्याय की दृष्टि से।

$ कठिन, पेचीदा।

४—खाद्य-समस्या—i देश के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न। ii विश्व-स्थिति। iii भारतीय परतन्त्रता--विदेशों से अन्न, चीनी आदि। iv साथ ही चीनी, घी, तेल की कठिनाई। v स्वावलम्बन की योजनाएँ।

५—आर्थिक समस्याएँ—i मुद्रा-स्फार--युद्ध का प्रभाव। ii व्यापार-क्षेत्र में रुपये की खींच। iii वस्तुओं का अनेक गुना मूल्य। iv सरकारी कर्मचारियों के वेतन, मँहगाई और उनकी कठिनाई। v कमी और बेकारी। vi जनता की दृष्टि--कम मूल्य में सरलता से आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति।

६—देश की व्यवस्था—i आन्तरिक अशान्ति। ii देश भर में शान्ति-भंग के समाचार--हड़तालें, दुर्घटनाएँ, उपद्रव आदि। iii व्यवस्था की आवश्यकता।

७—विश्व-अशान्ति—i खाद्य-समस्या, आर्थिक प्रश्न, क्षुब्ध वातावरण। ii एशियाई देशों में नवीन जागरण। iii साम्यवादी समुदाय। iv विश्व-रक्षा-परिषद के प्रयत्न। v शान्ति स्थापन की चेष्टाएँ। vi अन्धकार-मय भविष्य--विश्व-शान्ति के लिए पूर्ण भय। vii विश्व और भारत।

—पश्चिमीय देशों का रुख—i आज के युग में इसका महत्त्व। ii भारत और ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल। iii अमेरिका और रूस के सम्बन्ध। iv चीन को मान्यता और तत्सम्बन्धी समस्याएँ। v वर्तमान परिस्थिति। vi भारत को अपनी निश्चित नीति का स्पष्टीकरण।

९—सरकार की क्षमता—i हल करने की चेष्टा--दूरदर्शिता तथा नीति-कुशलता का परिचायक। ii वर्तमान भीषण परिस्थिति में कठिनाई। iii परिस्थितियों के अनुरूप उत्तम सरकार। iv अत्यन्त अधिक उत्तरदायित्व--जनता के प्रति।

१०—किस ओर—i भारत किस ओर जावेगा? विश्व के प्रश्नों पर ii आन्तरिक व्यवस्था में। iii नीति-निर्धारण में। iv देश की परिस्थिति को परिवर्तित करने में।

३०—शासन और अनुशासन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—उपक्रम विषय-प्रवेश। २—शाब्दिक अर्थ और प्रवृत्तियों का विश्लेषण। ३—एक दूसरे से सम्बन्ध। ४—राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में महत्त्व। ५—शासन के दो क्षेत्र। ६—शासक और अनुशासक। ७—उपसंहार।

हिन्दी के महाकवि श्री जयशंकरप्रसाद ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में शासन और अनुशासन के पारस्परिक सम्बन्ध और तद्गत समस्या$ को छुआ है। 'संघर्ष' सर्ग की ये पंक्तियां इस प्रश्न को बड़े जोर से उठा रही हैं कि अनुशासन शासित और शासक दोनों से किस प्रकार सम्बन्धित है ?

"आह प्रजापति ! यह न हुआ है, कभी न होगा।
निर्बाधित अधिकार आज तक किसने भोगा॥"

और,

······किन्तु नियामक नियम न माने।
तो फिर सब कुछ नष्ट हुआ-सा निश्चय जाने॥

अनुशासन और शासन दोनों अपने शाब्दिक अर्थ और रचना में जितने निकट हैं, उतने ही भौतिक प्रयोग में भी। शाब्दिक दृष्टि से शासन का अर्थ 'आज्ञा पालन कराना' होता है, तो अनुशासन का 'आज्ञा का उप पालन कराना'। इस प्रकार इन दोनों का सम्बन्ध आधार और आधेय का सम्बन्ध है। इनका सम्बन्ध कठोर तथा कोमल अथवा फिर विवशता और कर्तव्य का भी सम्बन्ध है। शासन राजनीतिक और सामाजिक संस्थान है, किन्तु अनुशासन केवल वैयक्तिक संस्थान है। अर्थात् शासन का अस्तित्व राजनीति के विशद विधानों और समाज के विस्तृत

$ Problem therein.

चौखटे पर निर्भर करता है, जबकि अनुशासन का अस्तित्व एक व्यक्ति के उचित नियम-पालन की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

जिस प्रकार व्यक्तियों से मिलकर समाज और राज्य बनता है उसी प्रकार अनुशासन का सामूहिक संस्करण† ही शासन है। शासन से राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता। वह भौतिक बल से अनुप्रेरित व्यक्ति अथवा दल का समाज पर अधिकार है, जिसमें कर्तव्य की भावना चाहे न हो, भय और दण्ड-व्यवस्था अवश्य है। शासित व्यक्ति कर्तव्य से नहीं, भय और दण्ड से चुप रहता है। अनुशासन एक सांस्कृतिक गुण है उसमें भौतिक बल की उतनी अपेक्षा नहीं, जितनी आत्मिक बल की। भय और दण्ड-व्यवस्था उसमें होती अवश्य है किन्तु इनसे ऊपर कर्तव्य-भावना प्रमुख होती है। अनुशासित व्यक्ति भय और दण्ड ही नहीं, कर्तव्य-भावना से भी शान्ति कायम रखता है।

जहाँ शासन है वहाँ अनुशासन आवश्यक रूप से मिलता है। हाँ, जहाँ अनुशासन है वहाँ शासन आवश्यक हो ऐसी कोई बात नहीं। अनुशासन-हीन समाज शासन-हीन भी होता है, अराजकता से आक्रान्त होता है, किन्तु शासन-हीन समाज में कहीं-कहीं उच्चकोटि का अनुशासन मिलता है। वैयक्तिक गुण होने से अनुशासन सामाजिक गुण भी है। प्रकृति के मानवेतर$ जीवों में चाहे शासन न मिले, पर अनुशासन कहीं-कहीं बहुत मिलता है। झुण्ड बनाकर चरते हुए हिरनों में, बड़े-बड़े समूहों में उड़ते हुए बगलों में अनुशासन बहुत दिखाई पड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि अनुशासन का मूल प्रकृति की नियमबद्धता और एक रूपता में है। शासन मानव-सभ्यता के विकास की उत्पत्तियों में से है। प्रकृति के जीवों में बल प्रयोग करने वाले भयंकर जीवों में ही शासन की प्रवृत्ति पाई जाती है, वे साथ ही अनुशासन-हीन भी हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शासन वन्य प्रकृति का भयंकर पहलू है। अनुशासन उसका कोमल और नैतिक पहलू है।

यह तो शासन और अनुशासन के मूल्यों और प्रवृत्तियों का विश्लेषण

---

† Collective Edition. $ मानव से भिन्न।

हुआ। अब हमें यह देखना है कि मानव के राजनीतिक सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में शासन और अनुशासन का क्या महत्त्व है ?

राजनीति दृष्टि से शासन मानव-संसार की सर्वोच्च शक्ति है, अनुशासन उसका साधक-स्वरूप। प्रत्येक शासन अपने शासितों से अनुशासन की अपेक्षा रखता है। यदि अनुशासन न हो तो केवल भौतिक बल पर आधारित रहने वाले शासन का कहीं पता भी नहीं लगे। यदि नेपोलियन में सैनिक शक्ति को अनुशासन में रखने की शक्ति नहीं होती, तो उसके शासकों की श्रेणी में आने का प्रसंग ही नहीं छिड़ता। इस प्रकार कभी-कभी जहाँ अनुशासन शासन का स्थापक होता है, वहीं कहीं-कहीं उसका संचालक भी। कभी-कभी शासक न होते हुए भी व्यक्ति विशेष एक सम्पूर्ण समाज का अनुशासन-कर्त्ता हो जाता है। जैसे कृष्ण और गांधी। किन्तु इस दशा में अनुशासन का स्वरूप राजनीतिक न रहकर आध्यात्मिक हो जाता है।

सामाजिक दृष्टि से शासन का स्वरूप नैतिक होता है, भौतिक उतना नहीं। इसीलिये अनुशासन का विशुद्ध रूप राजनीति में न मिलकर समाज में ही मिलता है, किन्तु यह सामाजिक अनुशासन कभी-कभी चिरजीवी होने के कारण रूढ़ियों का स्वरूप धारण कर लेता है, और उस समय वह समाज की उन्नति में बाधक होता है। उदाहरणार्थ भारतीय समाज के सामाजिक और धार्मिक अनुशासन को जिस प्रकार कट्टर-रूढ़ियों का स्वरूप प्राप्त हुआ है, इसके कारण भारतीय समाज की अकथनीय हानि हुई है। फिर भी सामाजिस अनुशासन प्राकृतिक अनुशासन का ही सुव्यवस्थित स्वरूप है। पुत्र द्वारा अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन मानवी स्नेह का स्वरूप तो है, किन्तु इसे यदि प्राकृतिक अनुशासन* ही कहा जाय तो कथन अधिक स्पष्ट और सही हो सकता है। मानव के सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाने में प्राकृतिक अनुशासन ने बहुत अधिक सहायता दी है। अन्यथा मानव-समाज स्वार्थपरता में किसी पशु-समाज से कम नहीं होता।

---

* Natural discipline।

वैयक्तिक दृष्टि से अनुशासन का ही महत्त्व है, शासन का नहीं। इसके कारण हैं। शासन कभी एक व्यक्ति का नहीं रहा। घोर सामन्ती युग में भी सिंहासनारूढ़ राजा एक वर्ग का प्रतिनिधि होता था, एकाकी व्यक्ति-मात्र नहीं। दूसरी ओर अनुशासन कभी भी वर्ग का नहीं रहा, वह व्यक्ति का ही रहा है। हम पहले कह चुके हैं कि अनुशासन एक वैयक्तिक भावना है। इसी कारण इसमें हमें कर्तव्य, विचारकता और भावुकता आदि वे भावनाएँ मिलती हैं, जो शासन में नहीं।

अनुशासन के इन क्षेत्रों की भाँति ही शासन के भी कुछ विभाजन होते हैं, उनमें मुख्य दो ही हैं। १—भौतिक शासन। २—आध्यात्मिक शासन। अभी तक हम भौतिक शासन की ही बात करते आ रहे थे। वास्तव में शासन का साधारण अर्थ भी भौतिक शक्ति-जीवी राजसत्ता से ही आज-कल लिया जाता है, किन्तु यहाँ हमें शासन का आध्यात्मिक पहलू भी छोड़ना नहीं चाहिये। क्योंकि संसार के महान् पुरुषों ने प्रायः आध्यात्मिक शासन से ही अपना सम्बन्ध रखा है। शासन के इस अङ्ग में अनुशासन का वैयक्तिक और सामाजिक स्वरूप भी समा जाता है। बुद्ध के आध्यात्मिक शासन के साथ बौद्ध धर्म का सामाजिक अनुशासन गुथ गया था। म० गांधी कांग्रेस के पदाधिकार से दूर रहे, किन्तु जब तक जीवित रहे, तब तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय राजनीति पर उन्होंने आध्यात्मिक शासन किया। उनका अनुशासन भंग करने की हिम्मत किसी की नहीं पड़ती थी।

अब तक शासितों अथवा अनुशासितों द्वारा पालित शासन और अनुशासन की बात करते आरहे थे, किन्तु जब इस निबन्ध के प्रारम्भ में उल्लिखित समस्या पर दृष्टि डालते हैं, तो प्रश्न-चिह्न* यथावत्$ खड़ा रह जाता है कि शासक और अनुशासक का शासन और अनुशासन से क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कहा जा सकता है कि शासक शासक है, वह कभी अपने शासन से शासित नहीं होता, किन्तु अनुशासक अपने अनुशासन से अवश्य अनुशासित होता है। इस वैभिन्य का कारण भी यही है कि शासन को

* Question Mark, $ जैसे का तैसा।

जीवन भौतिक शक्ति से मिलता है, जो शासितों पर लादी जा सकती है, किन्तु अनुशासन को जीवन नैतिकता और आध्यात्मिकता से अधिक मिलता है। अतः उसकी शक्ति अनुशासित पर लादी नहीं जाती, वह एक कर्तव्य-भावना के रूप में उसके हृदय में समाती है। ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ भी अनुशासन को जीवन भौतिक शक्ति से मिलता है, वहाँ वह भी अनुशासक पर बाधक नहीं होता।

शासन में आज्ञा पालन कराई जाती है, अनुशासन में आज्ञा पालित होती है। अनुशासन मानवता के ऊँचे मूल्यों की वस्तु* होने के कारण उसका विकास मानव-सभ्यता के श्रेष्ठ विकसित समाजों में ही अधिक मिलता है। जहाँ कहीं भी मानव-मूल्यों का स्खलन हो गया है, जहाँ कहीं भी मानव-सभ्यता के विकास को दासता, युद्ध आदि पैशाची भावनाओं ने आक्रान्त किया है, वहीं अनुशासन का स्वरूप भी विकृत हो गया है। इसका कारण यह है कि शासन में तो व्यक्ति विवश रहता है। किसी वस्तु के अभाव में तड़पकर रह जाना पड़ता है उसे; किन्तु अनुशासन में विवशता नहीं संयम होता। वहाँ अभाव के कारण तड़पना नहीं पड़ता, अपितु कर्तव्य भावना के कारण त्याग करना पड़ता है, और यह कर्तव्य-भावना और संयम मानव-हृदय के मूल्यवान् पदार्थों में से हैं। किसी स्खलित† समाज में इनका लुप्त हो जाना बिलकुल स्वाभाविक है। पिछली कुछ सदियों की घोर दासता के फलस्वरूप भारतीय समाज में यह स्खलन आया है। किन्तु स्वतन्त्रता के संग्राम ने बहुत कुछ उसे उसके मानवीय मूल्यों से परिचित करा दिया है, और आशा है भारतीय समाज अब शासन ही नहीं, अनुशासन की आज्ञा का पालन भी सीखेगा।

विस्तृत रूपरेखा

१—उपक्रम : विषय प्रवेश—i 'प्रसाद' द्वारा कामायनी में उपस्थित की गई समस्या। ii शासन और अनुशासन का शासक और अनुशासक से सम्बन्ध।

*A thing of high human values, † Degenerated.

२—शाब्दिक अर्थ और प्रवृत्तियों का विश्लेषण—i शाब्दिक निकटता के साथ भौतिक प्रयोग की निकटता भी। ii आधार और आधेय का सम्बन्ध। iii शासन राजनीतिक संस्थान, अनुशासन वैयक्तिक। iv शासन-व्यवस्था अनुशासन सांस्कृतिक गुण।

३—पारस्परिक सम्बन्ध—शासन के लिए अनुशासन आवश्यक है, अनुशासन के लिए शासन आवश्यक नहीं। ii प्राकृतिक अनुशासन और शासन-हीनता। iii शासन पाशन प्रवृत्ति है, अनुशासन नैतिक।

४—महत्त्व—i राजनीतिक महत्त्व--(शासन मानव-जगत् की सर्वोच्च शक्ति, किन्तु अनुशासन के बिना अस्तित्व असम्भव--नैपोलियन--शासन के अभाव में अनुशासन का अस्तित्व--कृष्ण और गांधी)। ii सामाजिक महत्त्व--(नैतिक स्वरूप--अनुशासन का विशुद्ध-स्वरूप समाज में ही--अनुशासन चिरंजीवी होकर रूढ़ि बन जाता है--प्राकृतिक अनुशासन)। iii वैयक्तिक महत्त्व--(केवल अनुशासन--शासन व्यक्ति का नहीं वर्ग का--अनुशासन वर्ग का नहीं व्यक्ति का--भावनाओं की उच्चता)।

५—शासन के दो क्षेत्र—i भौतिक शासन। ii आध्यात्मिक शासन।

६—शासक और अनुशासक—i निबन्धारम्भ की समस्या पुनः। ii शासक का अस्तित्व भौतिक मात्र--अनुशासक आत्मिक शक्ति का प्राणी।

३१—समाचार-पत्र और राष्ट्र-निर्माण

संक्षिप्त रूपरेखा

१—मानव-समाज की विशदता और उसमें पारस्परिक सम्बन्धों के साधन। २—समाचार-पत्र: आधुनिक युग का सर्वाधिक उत्तरदायी कार्य। ३—राष्ट्र-निर्माण के लिए जन-मनोवृत्ति का निर्माण। ४—ध्वंस और निर्माण में समाचार-पत्र का महत्त्व। ५—समाचार-पत्र के उद्देश्य और कर्तव्य। ६—उपसंहार।

मानव-समाज आज इतना विशद हो चुका है कि उसके एक भाग को दूसरे की गतिविधि से परिचित रखने में, विज्ञान न होता तो, सम्भवतः कोई शक्ति सफल न होती। प्राचीन काल में जब वैज्ञानिक साधन इतने उन्नत नहीं थे अथवा कहिये न गण्य थे, तब मानव-समाज विवशतया बहुत संकुचित सीमाओं से बँधा हुआ था। क्योंकि सामाजिकता तो मानव का जातीय गुण है। वह वहीं तक अपना प्रसार करेगी, जहाँ तक मानव की शक्ति और साधन उसे करने दे सकेंगे। आज वैज्ञानिक चमत्कारों से परिस्थिति एक दम बदल गई है। संसार बहुत सघन होता जा रहा है। सारे देश एक कुटुम्ब के सदस्य से बने जा रहे हैं। वैज्ञानिक जीवन ने ऐसे सम्बन्ध उत्पन्न किये हैं कि एक मानव-प्रदेश दूसरे से अनिवार्यतया बँध गया है। इस सुदूर विशदता को निकटता में परिवर्तित करने वाले साधनों में जहाँ रेडियो, टेलीफोन, बिजली, वायुयान आदि का महत्त्व है, वहाँ समाचार-पत्रों का भी कम नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि साम्पत्तिक* दृष्टि से अभी उतना सम्पन्न न हो पाने के कारण एक साधारण व्यक्ति जिन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने में समर्थ हो पाया है, उनमें समाचार-पत्र भी एक है। एक या दो आने में सारे विश्व की गतिविधि से परिचय और नवीनतम विचार-सरणियों$ का ज्ञान आधुनिक काल में समाचार-पत्र का ही वरदान है। इसके प्रचार का अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि भारत जसे अत्यल्प साक्षर देश में भी प्रायः प्रत्येक ग्राम समाचार-पत्र (अखबार) की बात कुछ न कुछ सुन ही लेता है।

जहाँ समाचार-पत्र इतना सुलभ और प्रसार-प्राप्त साधन बन गया है, वहाँ उसका उत्तरदायित्व भी असीमित गति से बढ़ गया है। वास्तव में परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई है कि इस समय मानव-समाज का बहुत बड़ा अंश अपना मानसिक भोजन समाचार-पत्र से ही लेता है। परिस्थितियों ने जनसाधारण को इतना विवश कर दिया है कि केवल पेट भरने के लिए अपने जीवन के अत्यन्त अमूल्य क्षणों को आज ९० प्रतिशत लोगों को खपाना पड़ रहा है। इतना व्यस्त हो गया है मानव-जीवन, कि सम्भवतः

* धन-सम्बन्धी, $ विचार-धाराओं।

मानव-जाति के इतिहास में कभी नहीं हुआ होगा। इस अत्यधिक व्यस्तता के कारण उसे समय नहीं कि शेष मानव-जगत् की गति-विधि जानने और उससे सम्पर्क बनाये रखने के लिए देश-विदेश के ग्रन्थ पढ़ सके। आज तो वह प्रतिदिन समाचार-पत्र से ही अपना मानसिक भोजन प्राप्त कर लेता है। प्रातःकाल शरीर को जिस प्रकार चाय अथवा अन्य प्रकार का नाश्ता (जल-पान) लेने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आज के सभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य मानव-प्राणी को समाचार की आवश्यकता मानसिक स्वास्थ्य के लिए होती है। बस ठीक यहीं समाचार-पत्र पर राष्ट्र-निर्माण और समाज-निर्माण का उत्तरदायित्व आ जाता है। जिस प्रकार सुपुष्ट भोजन शरीर को उचित स्वास्थ्य प्रदान करता है, उसी प्रकार स्वस्थ समाचार-पत्र प्रत्येक नागरिक के मन को स्वस्थ रख सकता है। उत्तेजना तथा क्रांति के काल में तो समाचार-पत्र ही समाज पर शासन करने वाला एकमात्र साधन हो जाता है। उसके हाथ में उस समय वह शक्ति होती है, जिससे वह जन-मानस को पलभर में आन्दोलित कर सकता है। मनुष्य-समाज के छिपे रत्नों और विचारों को प्रकाश में लाकर समाचार-पत्र किसी समाज को उसकी शक्ति और सम्पत्ति से परिचित करा सकता है।

समाचार-पत्र का महत्त्व ध्वंस और निर्माण दोनों में एक-सा है। समाचार-पत्र वास्तव में जन-जीवन की आत्मा का स्वर होता है। यद्यपि अनेक अभागे देशों में समाचार-पत्र को पूर्ण अथवा उचित स्वतन्त्रता नहीं है और इस कारण समाज की प्रगति में बाधा पहुँचती है और मानव की स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति को बहुत धक्का लगता है। किन्तु अधिकांशतः प्रत्येक प्रजातन्त्र समाचार-पत्र की स्वतन्त्रता* के लिए निश्चित रूप से उदार होता है। ध्वंस में समाचार-पत्र के महत्त्व की बात यदि सोची जाय तो कहना पड़ेगा कि उसकी शक्ति अपार है। यदि किसी देश के समाचार-पत्र क्रांति के स्वरों में एक साथ बोल उठें, तो व्यवस्था बदलते देर नहीं लगती। जन-मानस प्रकृत्या† शान्ति-प्रिय होता है, उसमें परिवर्तन और क्रांति की भावना भरने के लिए एक विशेष प्रेरणा की आवश्यकता होती है। यह

* Freedom of the press, † Naturally ।

प्रेरणा जितनी समाचार-पत्र से मिल सकती है, उतनी प्रचार के बहुत कम साधनों से मिलनी है। यह मैंने समाज और व्यवस्थाओं के ध्वंस की बात की है। जहाँ तक इस ध्वंस का उद्देश्य सत् है, वहाँ तक तो ठीक है। किन्तु जहाँ पूँजी तथा अन्य प्रकार के प्रलोभनों में पड़कर समाचार-पत्र स्वार्थ और प्रतिक्रिया के स्वरों में बोलने लगते हैं, वहाँ इस ध्वंस का उद्देश्य नितान्त असत् हो जाता है, और तब समाचार-पत्र की दशा भी उस तलवार की-सी हो जाती है, जो किसी दुष्ट को समाप्त करने के लिए चलाई जाय और उलट कर चलने वाले को ही लगे। ध्वंस-काल में समाचार-पत्र का यह बहुत ही अशोभनीय दुरुपयोग होता है।

जो वस्तु जितनी ध्वंसकारिणी होती है, उसमें सृजन-शक्ति भी उतनी ही छिपी रहती है। समाचार-पत्र जहाँ पलभर में किसी भी राज-सत्ता को ध्वंस कर सकता है, वहाँ उसमें यह भी शक्ति है कि वह किसी नवोदित राष्ट्र का सुदृढ़ सृजन भी कर सके। समाचार-पत्र की शक्ति के इस पहलू को समझने के लिए हमें प्रथम यह देखना है कि राष्ट्र-निर्माण के लिए किन शक्तियों, प्रवृत्तियों और अवयवों की आवश्यकता है। देखा यह गया है कि तानाशाही* कभी भी किसी चिरन्तन व्यवस्था-युक्त राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पाई है। स्वाभाविक बात है कि समाज के निर्माता जिन निर्माण-कारी हितों को पहचान सकते हैं, साधारण जनता उन्हें उतनी शीघ्र नहीं पकड़ पाती। जनसाधारण की इसी दीर्घसूत्रता से निराश होकर अनेक महानुभाव सुधारों को जबर्दस्ती लादकर राष्ट्र-निर्माण करने की योजनाएँ बनाते हैं। वे निर्माण का सारा उत्तरदायित्व अपने पर ही लेते हैं। जन-शक्ति पर विश्वास न करके केवल सत्ता के आदेश और शक्ति पर विश्वास करते हैं। ठीक है, होता है निर्माण भी राष्ट्र का इस भाँति से, किन्तु वह बहुत ही अस्थायी और अस्वाभाविक। क्योंकि निर्माण का भार सम्भालने वाली मूल शक्ति जन-मानस हुआ करती है। तानाशाह जन-मानस के जागरण को कोई महत्त्व नहीं देता। उसका निर्माण ऊपर से चलता है। किन्तु यह लादा हुआ भार-स्वरूप निर्माण हो जाता है। सच्चा राष्ट्र-निर्माण

* Dictatorship।

वह है जो जन-मानस की तैयारी पर आधारित रहता है। योजनाएँ शासन और सत्ता बनायें, उन्हें कार्यरूप में परिणत भी करे, किन्तु साथ ही उन्हें चिरस्थायी बनाये रखने एवं पूर्णतया उद्देश्य-पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि जन मानस उन योजनाओं के लिए तैयार हो। स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि सत्ता राष्ट्र-निर्माण रूपी फसल के लिए हल चलाने वाले किसान का कार्य तो कर सकती है, किन्तु उसे भूमि जन-मानस को ही बनाना पड़ेगा। अन्यथा फसल या तो हवाई होगी, या फिर गमलों की फसल होगी, जैसी आजकल 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के प्रमुख कर्णधार भारत के मन्त्रिगण कराया करते हैं। इस फसल को किस-किस बुभुक्षित* के सामने रखेगी शासन-सत्ता? यह प्रश्न मस्तिष्क में चक्कर ही काटा करता है। इस विवेचन से हमने राष्ट्र-निर्माण में जन-मानस की तैयारी का महत्त्व पहचान लिया है। यह जन-मानस किस प्रकार तैयार होता है? इस प्रश्न का उत्तर आपको समाचार-पत्र देगा। निर्माण-काल में यदि समाचार-पत्र सत्समालोचना† से उतर कर ध्वंसात्मक हो गया, तो निश्चित रूप से वह कर्तव्य-च्युत हो जाता है। किन्तु सत्समालोचना निर्माण के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितना निर्माण का समर्थन। जन-मानस को तैयार करने के लिए समाचार-पत्र किस नीति को अपनावें? यह प्रश्न अपने में एक विवाद लिए हुए तो है। क्योंकि भिन्न-भिन्न समाचार-पत्र भिन्न-भिन्न नीतियों को उद्देश्य बनाकर प्रकाशित होते हैं। यहाँ तक कि राष्ट्र-निर्माण की योजनाएँ भी उनके मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके लिए हमारा उत्तर यही हो सकता है कि समाचार-पत्र का मूल कार्य सत्यों को प्रकाशित करना है। इन सत्यों के प्रकाशन में किन्हें लिया जाय, किन्हें छोड़ा जाय यह अवश्य पत्र की नीति पर निर्भर करता है। किन्तु इस नीति में राष्ट्र-हित अवश्य होना चाहिये। यह राष्ट्र-हित प्रगतिशील हो, प्रतिक्रियावादी नहीं। क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर एक है उसी प्रकार सत्य भी एक ही है। राष्ट्र-कल्याण की दिशा एक ही है, मार्ग चाहे भिन्न-भिन्न हों, और जब आप दिशा को ही बदल देंगे, तो

* भूखे, † Fair Criticism।

वह सत्य से विपरीत हो जावेगी। कौन अस्वीकार कर सकता है कि भारत को आर्थिक समानता, सामाजिक स्वतन्त्रता और सांस्कृतिक शिक्षा की आवश्यकता है। अब यदि इस देश के निर्माण के इस उषःकाल में कोई समाचार-पत्र जन-मानस में यह भरना चाहे कि जो कुछ नया कार्य किया जारहा है सब बुरा है, असंस्कृत है और अभारतीय है। तथा जो कुछ पुराना था, वही श्रेष्ठ था, वही संस्कृत था, वही भारतीय, तो हम ऐसे पत्र के लिए यही कहेंगे कि राष्ट्र-निर्माण से तो उसका कोई सम्बन्ध है ही नहीं, अपितु वह तो खुले-आम राष्ट्र-द्रोह कर रहा है।

कभी-कभी प्रचार-भावना* के वश समाचार-पत्रों द्वारा असत्य का आश्रय भी लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि आज के अनेक देशों में यह भावना समाई हुई है कि अपने सिद्धान्तों को प्रचार देने के लिए वे अपनी स्थिति को बहुत अधिक उन्नत बताने की चेष्टा करते हैं। यह बात अच्छी नहीं है। सत्य, सहनशीलता, अहिंसा और प्रगति समाचार-पत्र की नीति के प्रथम गुण होने चाहिएँ। व्यक्तिगत प्रचार भी एक ऐसा प्रलोभन है, जिसके लिए समाचार-पत्र का बहुत बड़ा दुरुपयोग किया जाता है। अधिकांशतया देखा गया है कि अनेक राजनीतिक नेता-गण केवल इसीलिए समाचार-पत्रों को अनुचित बातों की ओर प्रोत्साहित करते हैं कि वे उन्हें व्यक्तिगत प्रचार दें। वैसे तो सच बात यही है कि समाचार-पत्र राजनेताओं के प्राणाधार हैं। किन्तु हमें अपने विषय की ओर लौटना चाहिए, और देखना है कि समाचार-पत्र किस सीमा तक राष्ट्र-निर्माण कर सकते हैं।

जन-मानस का निर्माण एक कार्य है, जो राष्ट्र-निर्माण के लिए अत्यावश्यक है और यही समाचार-पत्र द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त सद्भावना और उदारता का प्रचार जितना समाचार-पत्र द्वारा हो सकता है, उतना अन्य किसी साधन द्वारा नहीं। पत्र चाहे तो किसी विषय पर गम्भीर घृणा फैला सकता है। किन्तु उचित कर्तव्य-पथ पर रहने के लिए

* Propagandaspirit.

पत्रकार को, जो साहित्यकार के सारे उत्तरदायित्व लिए हुए होता है, बहुत बड़ा बलिदान और त्याग करना पड़ता है। क्या भारत के पत्रकार हमारे बालक राष्ट्र के इस निर्माण-काल में इस उत्तरदायित्व को वहन करेंगे ?

विस्तृत रूपरेखा

१—मानव-समाज की विशदता और सम्बन्धों के साधन—i वैज्ञानिक आविष्कार। ii सम्बन्धों के अनेक साधन। रेडियो, टेलीफोन, सिनेमा, बिजली, वायुयान। iii समाचार-पत्र भी एक।

२—समाचार-पत्र, आधुनिक युग का अत्यन्त उत्तरदायी कार्य—i मानसिक भोजन और स्वास्थ्य की वस्तु। ii जन-मानस को आन्दोलित करने की शक्ति। iii प्रकाशदाता।

३—राष्ट्र-निर्माता—जन-मनोवृत्ति का निर्माण।

४—ध्वंस और निर्माण दोनों में समाचार-पत्र का एकसा महत्त्व—i क्रान्ति का मूल साधन। ii ध्वंस का उद्देश्य सत् होना चाहिए। iii निर्माण के लिए तानाशाही अनुपयुक्त। iv जन-मानस की तैयारी आवश्यक v यही समाचार-पत्र का मूल कार्य।

५—उद्देश्य और कर्तव्य—i सत्समालोचना उचित किन्तु प्रतिक्रिया नहीं। ii सत्यों का प्रकाशन। iii प्रचार-भावना के शिकार पत्र। iv व्यक्ति-प्रचार। v सद्भावना : एक प्रमुख कर्तव्य, घृणा : निषेध।

३२—भारत का स्वतन्त्रता संग्राम-और महात्मा गान्धी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—स्वतन्त्रता क्या है ? २—भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रारंभ। ३—गान्धी से पूर्व भारतीय राजनीति। ४—गान्धी का प्रवेश, नवीन

आदर्श, नवीन दिशा। ५—१६२१ का असहयोग और गान्धी जी। ६—'२१ से ३०' तक का काल। ७—३० का सत्याग्रह, गोलमेज-परिषद्। ८—सत्याग्रह का भारतीय राजनीति में महत्त्व। ६—४२ के पूर्व की दशा और ४२ की क्रांति। १०—स्वतन्त्रता-प्राप्ति और गान्धी का आदर्श। ११—एक प्रश्न ?—उपसंहार।

एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक का कथन है कि स्वतन्त्रता कार्य की आत्मा होती है।* इस कथन को यदि थोड़ा परिवर्तित कर दिया जाय, तो स्वतन्त्रता का अर्थ कुछ अधिक स्पष्ट हो सकता है। स्वतन्त्रता आत्मा का कार्य है—"Freedom is deed of the soul" इस प्रकार रखने से हमें मानव-जीवन के उस चिरन्तन$ आदर्श से मिलती-जुलती व्याख्या मिलती है, जिसके लिए, कृष्ण, बुद्ध, ईसा और गांधी ने अपने जीवन का सर्वस्व लगा दिया। वास्तव में दर्शनशास्त्रीय शब्दों में जिस प्रकार चिन्तनता† आत्मा का धर्म है, उसी प्रकार स्वतन्त्रता आत्मा का कार्य है। आध्यात्मिक जीवन में इस स्वतंत्रता का अर्थ माया की शृंखलाओं से मुक्ति पाना भले ही हो किन्तु भौतिक जीवन में तो हम बड़ी आसानी से इसका अर्थ सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक स्वतंत्रता लगा सकते हैं। इस निबन्ध के शीर्षक में 'भारतीय स्वतंत्रता' का अर्थ 'भारतीय राजनीतिक स्वतंत्रता' ही लिया गया है, क्योंकि भारत को अभी आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता नहीं मिल पाई है।

इस राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति में किन शक्तियों का योग रहा ? कहाँ से प्रारम्भ होकर किन परिस्थितियों में से गुजरता हुआ लगभग १०० वर्ष की आयु का भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम अपने उद्देश्य पर किस प्रकार पहुँचा, यह तो एक विस्तृत इतिहास का विषय है। हम यहाँ पर "भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम और उसमें महात्मा गांधी की प्रेरक शक्ति का योग" इसी विषय तक अपने को सीमित रखकर विहंगम-दृष्टि डालते हुए

---

* "Freedom is the soul of deed"—Bishop Grundtirg, $ Eternal, † Conciousness.

अपने देश के जीवन के उन पवित्र क्षणों की एक झांकी देना चाहेंगे, जो किसी भी देश के लिए गौरवपूर्ण हो सकते हैं।

आज भारत का बच्चा-बच्चा और सभ्य संसार का प्रत्येक नागरिक भारतीय स्वातंत्र्य-आन्दोलन और गांधी की राजनीति में भेद नहीं करता; उसके लिए दोनों का एक ही अर्थ है। किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का वास्तविक इतिहास गांधी जी से पूर्व भी प्रारम्भ हो चुका था। वास्तव में सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह* में उन सभी भावनाओं का बीज मिल जाता है, जिनके आधार पर भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के एक अन्य महान् सेनानी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के प्रयत्न और आजाद हिन्द सेना का संगठन हुआ था। और कौन अस्वीकार कर सकता है, कि अप्रत्यक्ष रूप से नेताजी की इस सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी का प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम पर कितना पड़ा।

हाँ तो हम कह रहे थे कि सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह को स्वातंत्र्य-भावना का जन्मदाता कहा जा सकता है, यद्यपि सन् १८८५ में श्री० ए० ओ० ह्यूम† के प्रयत्नों से स्थापित काँग्रेस ने आगे चलकर जिस स्वातंत्र्य-भावना को पकड़ा वह इससे नितान्त भिन्न थी। सिपाही-विद्रोह साम्राज्यशाही द्वारा पददलित अधिकार-च्युत§ सामन्तशाही$ का विद्रोह तो था, किन्तु उसमें जन-विद्रोह की भावना नहीं थी। भारत की राजनीतिक आजादी का श्रेय‡ जन-विद्रोह को ही है। अस्तु, इतना हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सन् ५७ के विद्रोह की स्मृति ने स्वतन्त्रता संग्राम के अत्यन्त निर्बल क्षणों में भी हमारे सेनानियों और विशेषकार स्वातंत्र्य-संग्राम के सैनिकों की रगों में बड़े गर्म रक्त का संचार प्रायः सदा ही किया है। ५७ के विद्रोह ने स्वतन्त्रता की भावना में प्रेरणा दी, और साथ ही अँग्रेजों के हृदय में भारतीयों की शक्ति का सिक्का भी जमा दिया।

---

* १८५७ का प्रसिद्ध भारतीय सैनिक-विद्रोह (Mutiny), † एक अँग्रेज सिविलियन, § Bereft of nights, $ Fuedalism. ‡ Credit।

इसी आतङ्क से व्याकुल अँग्रेज नेताजी सुभाष के नाम से थर-थर काँपते थे।

सन् १८६० से १६०० तक का काल भारतीय हृदय का पुनर्जीवन अथवा पुनर्जागरण का काल* था। इस काल में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनन्दमोहन बोस, फीरोजशाह मेहता, दादाभाई नौरोजी आदि नेताओं ने अनेक संस्थाओं के स्थापन तथा अनेक सामाजिक हलचलों के सचालन द्वारा देश के जीवन में कुछ जागृति लाने की चेष्टा की थी। सन् १८८५ में ह्यूम साहब द्वारा काँग्रेस की भारत में स्थापना कुछ चौंका देने वाली बात है, किन्तु यदि आप इस स्थापना के मूल इतिहास और मनोवृत्ति को देखेंगे, तो आपकी सारी आश्चर्य-भावना दूर हो जायगी। जैसा आचार्य नरेन्द्रदेव ने एक स्थान पर कहा है, "ह्यूम साहब ने काँग्रेस की स्थापना को इंगलैंड के स्वार्थ के लिए ही आवश्यक समझा था।"‡ वे सिपाही-विद्रोह की पुनरावृत्ति को रोकना चाहते थे, और जनता के बढ़ते हुए असन्तोष को सैनिक विद्रोह की ओर न जाने देकर काँग्रेस के पार्लमेण्टरी तौर-तरीकों में उलझाये रखना चाहते थे। आगे चलकर आचार्यजी ने बताया है, कि कांग्रेस की स्थापना के सम्बन्ध में ह्यूम साहब ने लार्ड डफरिन (तत्कालीन वायसराय) से भी सलाह ली थी।$ इस प्रकार सबके आशीर्वाद से यह कार्य प्रारम्भ हुआ।

कांग्रेस का सर्वप्रथम अधिवेशन श्री० उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। संस्था का नाम "इण्डियन नेशनल काँग्रेस" रक्खा गया। आरम्भ में इसका उद्देश्य राजनीतिक नहीं था, किन्तु १८८६ में कांग्रेस-अधिवेशन के सभापति की हैसियत से यह घोषित किया कि काँग्रेस एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है। इस प्रकार धीरे-धीरे भारतीय राजनीति के धूमिल क्षितिज पर काँग्रेस का उदय हुआ। फिर तो सरकार का रुख भी बदला, और १८८८ में प्रयाग-अधिवेशन के समय प्रबन्धकों को सर-

---

* The age of revival and renaissance, ‡ "राष्ट्रीयता और समाजवाद" by आचार्य नरेन्द्रदेव पृष्ठ १५, $ 'राष्ट्रीयता और समाजवाद'—पृष्ठ वही।

कार के इसी विरोधी रुख के फल-स्वरूप बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

१९०५ में बंग-भंग-आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्रीयता को बहुत अधिक उत्तेजना दी। 'वन्दे मातरम्' की गूँज से भारत का वायुमण्डल मुखरित† होने लगा। स्वदेशी और 'बायकाट' की धूम मच गई। इसी समय काँग्रेस में एक नये दल की स्थापना हुई, जो मिस्र के 'इन्तहा पसन्द'$ दल की देखादेखी गरम दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके नेता श्री लोकमान्य तिलक, श्री विपिनचन्द्रपाल, श्री अरविन्द घोष‡ और लाला लाजपतराय प्रमुख थे। इस दल का ध्येय नरम-दल की भाँति औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं, बल्कि पूर्ण स्वतन्त्रता था। ये लोग राष्ट्रीय आन्दोलन को आध्यात्मिक आन्दोलन समझते थे। सन् १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कलकत्ता की काँग्रेस में सर्वप्रथम 'औपनिवेशिक शासन'÷ शब्दों का प्रयोग न करके 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। लोकमान्य तिलक ने कहा, 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।'× इन सब बातों से सरकार सशंक होने लगी; और आन्दोलन को दबाने के लिये अनेक दमनकारी कानून बनाए जाने लगे। फिर धीरे-धीरे दमन भी प्रारम्भ हुआ। १९०७ में लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया। फिर अन्य हलचलें जारी रहीं। मुसलमान भी संगठित होकर राजनीति में आगये। १९१५ में २१ फरवरी को एक ही समय कई स्थानों में विप्लव होना निश्चित हुआ, किन्तु पता चल जाने से योजना असफल रही। १९१५ में 'डिफेन्स आफ इन्डिया एक्ट' पास हुआ। १९१७ में श्रीमती एनी बीसेन्ट* नजरबन्द करली गई। इस समय काँग्रेस और मुस्लिम लीग की ओर से एक संयुक्त माँग पेश की गई। १९१८ में भारत-सचिव मांटेग्यू भारत आये, और उन्होंने सबसे

† गूँजने लगा, $ सीमा को पसन्द करने वाला (Extremist), ‡ प्रसिद्ध योगिराज अरविंद यही थे। पहले काँग्रेस के कट्टर गर्मदली नेता थे। ÷ Dominion status, × Freedom is our birthrith.
* भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की प्रसिद्ध अंग्रेज कार्यकर्त्री महिला।

परामर्श करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इसके आधार पर १९१९ में पार्लमेन्ट ने एक कानून बनाया, जिसने भारत में द्विचक्र शासन (डायरकी)$ स्थापित किया। १८ मार्च १९१९ को व्यवस्थापिका सभा में रौलट बिल पास हो गया। इसके पश्चात् ही महत्मा गान्धी भारतीय राजनीति के स्तंभ होगये।

२० वीं शती के प्रथम दशक में गांधी जी ने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के लिए अनेक प्रशंसनीय कार्य किये थे, और वे वहाँ सत्याग्रही वीर के नाम से विख्यात हो गये थे। युद्ध आरम्भ होते ही वे दक्षिण अफ्रीका से लौट आये थे। किन्तु भारत आकर उन्होंने कुछ दिनों तक यहाँ की राजनीति में क्रियात्मक भाग नहीं लिया। वे परिस्थिति का अध्ययन मात्र करते रहे। यद्यपि कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे, किन्तु वहाँ भी वे अफ्रीका की समस्या को छोड़कर अन्य किसी विषय पर प्रायः नहीं बोलते थे। उस समय भी सरकार उनका बहुत आदर करती थी। सन् १९१५ में उन्हें "कैसर-ए-हिन्द" का स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। १९१८ तक वे सरकार से सहयोग करना अनुचित नहीं समझते थे। सत्याग्रह का प्रयोग वे दक्षिण अफ्रीका में बड़ी सफलता से कर चुके थे। वे टाल्सटाय* और रास्किन† की विचारधारा से प्रभावित हो चुके थे। सत्य और अहिंसा को ही भारतीय सभ्यता का सार समझते थे। पाश्चात्य सभ्यता के विरोधी हो गये थे।

तो जैसा हम कह चुके हैं, रौलट एक्ट के विरोध में ही गान्धीजी ने अपने वास्तविक स्वरूप को भारतीय राजनीति में प्रदर्शित किया। इसमें उन्हें सफलता भी हुई। एक्ट पास करके भी उसे क्रियात्मक स्वरूप देने की हिम्मत सरकार की नहीं हुई। किन्तु गान्धीजी के आदर्श के अनुसार सत्याग्रह का आन्दोलन पूर्ण अहिंसात्मक नहीं रह सका। अहमदाबाद और अमृतसर में बलवे होगये। इसलिए गान्धीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया और शान्ति की स्थापना में सरकार की हर तरह से सहा-

---

$ Diarchy. * प्रसिद्ध अँग्रेजी उपन्यासकार एवं विचारक, † प्रसि॰ अँग्रेज विचारक।

यता की। किन्तु १३ अप्रैल १९१९ को जलियांवाला बाग का प्रसिद्ध हत्याकाण्ड हुआ। फिर तो सरकार ने अमानुषिक दमन का राज्य सारे पंजाब पर फैला दिया। १९२० में इस काण्ड के हत्यारे डायर$ पर काँग्रेस ने मुकद्दमा चलाने का निश्चय किया, और सरकार से अन्य अधिकारियों की जाँच और दण्ड देने की व्यवस्था की माँग की। सरकार ने माँगों पर कोई ध्यान न देकर डायर की निन्दा तक नहीं की। बल्कि अनेक अँग्रेजों ने तो डायर की खुले आम प्रशंसा की। इस पशुत्वमयी प्रवृत्ति को देखकर गान्धीजी का हृदय सरकार से एकदम फिर गया, और उन्होंने कट्टर असहयोग और विरोध की भावना धारण करली। इस समय काँग्रेस के सभी दल गान्धीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन की नीति को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से मान चुके थे। ३०, ३१ मई १९२० को बनारस में निश्चय हुआ कि कलकत्ते में काँग्रेस का एक विशेष अधिवेशन सत्याग्रह की नीति पर विचार करने के लिए बुलाया जाय। सितम्बर १९२० में काँग्रेस के विशेष अधिवेशन ने अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार किया और इस सिद्धान्त के अनुसार अपना एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जिसमें खिताब, नौकरी, सरकारी स्कूल और कालेजों को छोड़ना प्रमुख बातें थीं। पंचायतों की स्थापना, चर्खे का प्रचार आदि अनेक रचनात्मक कार्यक्रमों के फलस्वरूप सत्याग्रह और असहयोग बहुत अधिक लोकप्रिय होगये। ५ नवम्बर १९२१ को अखिल भारतवर्षीय काँग्रेस कमेटी ने प्रान्तों को अपनी-अपनी जिम्मेदारी पर अपनी इच्छा के अनुरूप सत्याग्रह आरम्भ करने की अनुमति दे दी। फिर प्रिंस ऑव वेल्स‡ के भारत आने पर उनके अपूर्व बहिष्कार की सफल आयोजना की गई। इसका प्रभाव हुआ, कि सरकार अत्यन्त भयंकर दमन पर उतर आई। काँग्रेस ने भी सभी प्रकार से सत्याग्रह की तैयारी करली थी। महात्माजी को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के समस्त अधिकार दे दिये गये। उन्होंने बारडोली में सत्याग्रह करना निश्चित किया। किन्तु चौरी-चौरा

$ जलियांवाला बाग में गोली चलाने वाला अँग्रेज कर्नल डायर।

‡ The then Prince of wales।

की घटना के कारण सत्याग्रह का विचार उन्होंने एकदम बन्द कर दिया। इससे उनके अनेक अनुयायी बड़े असन्तुष्ट हुए, किन्तु महात्माजी सत्याग्रह-आन्दोलन के नेता ही नहीं, जन्मदाता, संचालक और सर्वस्व थे, अतः किसी का साहस नहीं हुआ कि विरोध करे। बाद को दिल्ली-अधिवेशन में असहयोग फिर प्रारंभ होने की आशा भी कांग्रेस ने प्रकट की। इसके कुछ दिन बाद ही महात्माजी गिरफ्तार कर लिए गये, और उन्हें छह वर्ष के कारावास का दण्ड दे दिया गया।

सन् १९२१ के आन्दोलन तक के इस इतिहास से हमें विदित होता है कि भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन को गांधी के प्रवेश के साथ एक नवीन आदर्श और नवीन जीवन ही नहीं मिला, बल्कि एक नवीन रणनीति* भी प्राप्त हुई। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि गांधीजी का उद्देश्य केवल भारतीय स्वतन्त्रता नहीं था। भारतीय स्वतन्त्रता को तो वे अपने उस महान् उद्देश्य$ की एक मंजिल समझते थे, जिससे वे मानव-मात्र के कष्टों का निवारण करना चाहते थे। इसीलिये उनका सत्याग्रह केवल राजनीतिक हथियार† नहीं था। कांग्रेस ने सत्याग्रह, अहिंसा और असहयोग को केवल राजनीतिक अस्त्र के रूप में ही ग्रहण किया, किन्तु गांधीजी उसे मानव के सच्चे सुख और शान्ति का आध्यात्मिक अस्त्र‡ भी बनाना चाहते थे, इसी कारण जहाँ कहीं उन्हें उसका दुरुपयोग÷ होता दिखाई देता था, वहीं वे उसका उपयोग स्थगित कर देते थे।

१९२१ में इस महान् रणनीति का प्रारम्भ हुआ, किन्तु इसके पश्चात् १९३० तक का काल कांग्रेस और भारतीय राजनीति के इतिहास में कोई अधिक सक्रियता का काल नहीं रहा। इस समय कौंसिलों में जाने या न जाने के प्रश्न पर राष्ट्रीय नेताओं के दो दल होगये थे। उधर अँग्रेजों की

---

* युद्ध करने की प्रणाली, $ The liberation of humanity. † Political weapon, ‡ Spiritual weapon, ÷ Misuse।

'फूट डालो और राज करो' × की नीति के फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े भी यत्र-तत्र प्रारम्भ हो गये थे। १९२४ में कोहाट और गुलबर्गा के भीषण दंगे हुए। महात्माजी ने २१ दिन का उपवास किया, दिल्ली में एकता सम्मेलन किया गया, किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। इसी समय स्वराज्य-पार्टी से मतभेद हो जाने के कारण काँग्रेस की शक्ति भी कुछ निर्बल हो चली थी। १९२७ के पश्चात् सरकार ने साइमन कमीशन + की नियुक्ति की। इस कमीशन में कोई भारतवासी नहीं रखा गया, अतः लिबरल दल और कांग्रेस सभी ने इससे अप्रसन्नता प्रकट की। काँग्रेस की वर्किंग कमेटी ने १९३० में इसलिए सब राजनीतिक दलों से अपील की कि कमीशन से असहयोग करें। इस असहयोग के काल में स्थान-स्थान पर दमन और अत्याचार हुए। लाहौर में लाला लाजपतराय, लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू और गोविन्द वल्लभ पन्त पर भी लाठी-प्रहार हुए। १९३० के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में काँग्रेस का महत्त्व बढ़ने लगा। १९२९ में काँग्रेस का ध्येय 'पूर्ण स्वाधीनता'$ घोषित किया गया। और २६ जनवरी १९३० को 'स्वतन्त्रता-दिवस'† मनाया गया। फिर फरवरी १९३० में वर्किंग कमेटी की एक बैठक साबरमती ÷ में हुई और उसके प्रस्ताव के अनुसार सरकार के साथ पुनः सत्याग्रह-युद्ध प्रारम्भ हुआ। नमक-कानून तोड़कर यह युद्ध प्रारम्भ किया गया। १२ मार्च १९३० को लगभग ८० सत्याग्रही स्वयंसेवकों के साथ नमक-कानून को भंग करने के लिए गान्धीजी ने डाँडी × की ओर प्रस्थान किया। ६ अप्रेल को समस्त देश को सत्याग्रह करने का अधिकार मिल गया। फिर वही गम्भीर उत्तेजना और पुलिस के भयंकर अत्याचार प्रारम्भ हुए। ५ मई को महात्माजी गिरफ्तार कर लिए गए। फिर तो आर्डिनेन्स और मार्शल ला + का राज्य सारे देश में कायम हो गया।

× divide and rule, + Simon Commission, $ Complete Independence. † Independence day, ÷ महात्मा गांधी का तत्कालीन आश्रम- स्थान, × सूरत जिले में समुद्र तट पर एक स्थान, + फौजी कानून।

१२ नवम्बर को गोलमेज परिषद्$ का उद्घाटन पंचमजार्ज ने किया। इंगलैंड के प्रधान सचिव के आदेश से काँग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी मुक्त करदी गई। करांँची कांग्रेस ने महात्माजी को गोलमेज परिषद् के लिए प्रतिनिधि नियुक्त किया। गान्धी-इर्विन समझौते§ को फिर विचार में लाया गया, और महत्माजी ने लन्दन जाना स्वीकार कर लिया।

किन्तु जैसा इतिहास ने बताया है, यह गोलमेज-परिषद् नितान्त निरर्थक सिद्ध हुई। गांधीजी भारत लौटते ही पुनः गिरफ्तार कर लिए गये, और फिर वही दमन का दौर चलता रहा।

१९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन तक का इतिहास हमने कुछ अधिक जमी हुई दृष्टि से ऊपर देखा है। इस आन्दोलन के पश्चात् भी राष्ट्रीय-संग्राम की बागडोर गांधीजी के हाथों में रही। सत्याग्रह से भारत की आत्मिक शक्ति को अतुलनीय बल मिला है। यही गांधीजी का इष्ट था। सन् १९३९ में युद्ध प्रारम्भ होने तक अन्य कई राजनीतिक घटनाएँ और व्यवस्थाएँ भारत में घटित होती रहीं। इनमें प्रमुख दो थीं, सन् १९३५ का कानून और ३८ के चुनाव। काँग्रेस का अनेक प्रांतों के शासन पर अधिकार हो जाने से सम्पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को बहुत अधिक बल मिला। किन्तु जैसा उस काल के प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञों का कथन था, अंग्रेजों के मजदूर दलीय शासन में साम्राज्यवादी तत्व + विद्यमान थे, और इसी कारण वायदे कर-कर के भी सरकार भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न को उलझाया करती थी। किन्तु चर्चिल के सत्तारूढ़ होते ही पुनः वही साम्राज्यशाही की नीति का उपयोग सरकार की ओर से होने लगा। पाकिस्तान की मांग को जन्म दिलाया गया। क्रिप्स मिशन का ढोंग रचा गया। कटुता बढ़ती ही गई, देश का बच्चा-बच्चा 'अँग्रेजो, भारत छोड़ो' के नारे से मुखर हो उठा। फल यह हुआ कि सन् ४२ के पूर्वार्द्ध में भारतीय राजनीति का संघर्ष अपने चरम की ओर बढ़ने लगा। स्थिति काफी

$ Round Table conferance, § Gandhi Irivin Pact.
+ Imperialistic elements।

गम्भीर होरही थी। बहुत बड़े पैमाने पर असहयोग और अहिंसक युद्ध की तैयारी होने लगी। ८ अगस्त को काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी की बैठक हुई, संघर्ष का प्रस्ताव पास हुआ, और रात को ही गांधीजी तथा सभी वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य गिरफ्तार कर लिए गये। और ६ अगस्त को प्रातःकाल होते ही हिन्दुस्तान एक विशाल जेल खाना बन गया, जिसमें ४० करोड़ मानव दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध होगये थे। फिर अगस्त की वह चिरस्मरणीय ऐतिहासिक क्रान्ति। जनता मार्ग-प्रदर्शन के लिए छटपटा रही थी। उसके सारे सेनानी जेलों में बन्द थे। ऐसे समय में क्रान्ति किधर जाती, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता था। किन्तु काँग्रेस समाजवादी पार्टी के अनेक कर्मठ कार्यकर्ताओं ने छिपे रहकर तथा अनेक अन्य राष्ट्रीय योद्धाओं ने भीतर-भीतर क्रान्ति का संचा-लन किया। फिर भी अनेक स्थानों पर अहिंसा से जनता थोड़ी च्युत हो गई, किन्तु इसका कारण जहाँ एक ओर मार्गनिदर्शन का अभाव और स्वातंत्र्य की अदम्य उत्तेजना थी, वहीं दूसरी ओर अँग्रेज सरकार का भयंकर दमन भी था। इस प्रकार अपने स्वातंत्र्य-संग्राम की अन्तिम मुठभेड़ में भारतीय जनता गान्धीजी के मार्ग को पूर्णतया मानकर भी उस पर सम्पूर्ण अनुशासन से आचरण नहीं कर पाई। इस समय द्वितीय यूरोपीय महायुद्ध अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा था। आजाद हिन्द सेना× का कार्य बड़े जोरों से चल रहा था, किन्तु उसकी कोई खबर भारत में नहीं पहुँच पाती थी।

आखिर युद्ध और क्रांति से अँग्रेज घबरा उठे। यूरोपीय महायुद्ध समाप्त होते ही अँग्रेजी जनता ने चर्चिल को सिंहासन से धकेल दिया। मजदूर-दल पुनः सत्तारूढ़ हुआ। समय की आवश्यकता और भारत-सरकार की विवश परिस्थिति से साधनहीन होकर ब्रिटिश सरकार भारत की माँग को स्वीकार करने पर विवश हो गई। समझौता हुआ, तीन वर्ष सींखचों में बन्द रह कर राष्ट्र का नेतृत्व पुनः जनता में आया। अनेक नेताओं ने बाहर आकर जनता के कार्य की सराहना की। गांधीजी '४२

× Indian National Army।

की घटनाओं से व्यथित तो थे, किन्तु साथ ही वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने और पतित करने में कसर नहीं छोड़ी थी। अस्तु; पोर्थक लारेंस के नेतृत्व में पुनः भारतीय स्वतन्त्रता का नकशा बनाया गया। विवश होते हुए भी सरकार ने अपनी कलाबाजी नहीं छोड़ी। स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश का विभाजन भी अभिशापस्वरूप हमें दिया गया, जिसके फलस्वरूप मानवता के इतिहास को सर्वाधिक कलंकित करने वाले विशाल हत्याकाण्ड* हुए। लाखों की संख्या में शरणार्थियों को विस्थापित† कर दिया गया। यही नहीं अँग्रेजों ने इस देश को केवल हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के दो टुकड़ों में ही नहीं बाँटा, अपितु देशी रियासतों को स्वतन्त्र करके सैकड़ों पाकिस्तान बनाने की बात सोची थी; किन्तु हमने स्वतन्त्रता किसी के आशीर्वाद या वरदान से नहीं पाई थी। हमने अपने आत्म-बल और जन-विद्रोह से स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। गांधीजी ने यही तो हमें सिखाया था। किसी प्रकार पाकिस्तान को अलग कर देश का शेष भाग एक हुआ, और १५ अगस्त १६४७ को भारत का स्वर्ण-दिवस$ आया।

इस सारे संक्षिप्त अनुरेखन ÷ से यह विदित होगा कि गांधीजी भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के सफल उन्नायक रहे। उन्होंने अपनी महान् मानवीय अनुभूतियों के बल पर हमें जो नई दिशा दी थी, वह प्रत्येक दास जनता के लिए बहुत बड़ा वरदान है। हमारी सामाजिक एकता को वे स्वतन्त्रता का मूल आधार मानते थे। इसी कारण दलित जातियों के सामाजिक उन्नयन§ को अपने कार्यक्रम में उन्होंने मुख्य स्थान दे रखा था। मुसलमानों के प्रति उनके हृदय में जो बन्धुत्व की भावना थी, उसने उनके प्राण तक ले लिये, किन्तु उनके बलिदान ने मानवता को एक बार फिर यही सिखाया कि महापुरुष स्वार्थों से बहुत ऊपर होते हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रमुख सेनानी स्वतन्त्रता आते ही चला

---

* Mass massacres, † Disestablished, $ The Golden day of India, ÷ Outlining, § Social upliftingl।

गया। वास्तव में उसे स्वतन्त्रता के उषःकाल में भारतीय मानवता का मार्ग बहुत दूर तक उज्ज्वल दिखाई दे रहा था; किन्तु कितना व्याकुल था वह हमारी निम्न साम्प्रदायिक वृत्तियों को देखकर। और दिल्ली में स्वातन्त्रता की लक्ष्मी झिलमिलाती हुई उतर रही थी, और शान्ति का दूत, स्वतन्त्र्य का संवाहक, मानवता का पुजारी, गांधी नोआखाली‡ में नंगे पैर घूम रहा था। इससे बड़ा आदर्श और त्याग मानव के इतिहास में कहाँ मिलेगा।

भारतीय स्वतन्त्रता के साथ गांधी का नाम कुछ इस प्रकार घुल गया है कि उसे सदियाँ भी पृथक् नहीं कर पायेंगी। किन्तु हम भूल जाते हैं कि गांधी का उद्देश्य केवल यही नहीं था कि अँग्रेजों के स्थान पर उन्हीं स्वर्ण-पीठिकाओं* पर सफेद टोपी-धारी भारतीय जा बैठें, और सब ठीक। यदि यह उद्देश्य होता तो मानव-संसार के इतने बड़े भाग द्वारा दैववत् यह व्यक्ति नग्न फकीर बनकर नहीं रहता, और न कभी यह कहता कि भारत का प्रधानमन्त्री किसान होना चाहिये। वास्तव में वह मानवता का उद्धार करना चाहता था। उसका उद्देश्य राजनीतिक नहीं, मानवीय था, आध्यात्मिक था, और था दैवी।

क्या हम आज उसके मार्ग पर चल रहे हैं?

विस्तृत रूपरेखा

१—स्वतन्त्रता क्या है?—i–Freedom is deed of soul or soul of deed। ii दर्शन शास्त्रीय व्याख्या। iii भौतिक अर्थ। iv स्वतन्त्रता के भेद। v इस निबन्ध में स्वतन्त्रता का अर्थ राजनीतिक स्वतन्त्रता।

२—भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रारम्भ—i विषय का निर्धारण। ii १८५७ का सिपाही-विद्रोह--स्वातन्त्र्य भावना का बीज। iii सिपाही-विद्रोह सामन्ती-भावना का परिणाम था, जन-विद्रोह की

‡ At the dawn of freedom, ‡ बँगाल का एक जिला, * Golden throanes।

भावना का नहीं। iv किन्तु फिर भी एक सबल प्रेरक घटना। v अंग्रेजों पर भारतीय शक्ति की धाक। vi ह्यूम द्वारा काँग्रेस की प्रतिष्ठा।

३—गांधीजी से पूर्व भारतीय राजनीति—i १८६० से १९०० तक का काल—पुनर्जागरण-काल। ii काँग्रेस (Indin National Congress) की स्थापना—ब्रिटिश राजनीति की एक चाल। iii शीघ्र ही ब्रिटिश चाल की पराजय—काँग्रेस की राजनीतिक सत्ता की घोषणा। iv १९०५ का बंग-भंग आन्दोलन। v गरम-दल की स्थापना—'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है'—तिलक। vi द्विचक्र-शासन की स्थापना और रौलट एक्ट।

४—गांधी का प्रवेश : नवीन आदर्श : नवीन दिशा—i गांधीजी का अफ्रीका में कार्य। ii भारत में आकर स्थिति-निरीक्षण। iii सरकार द्वारा सम्मान—'कैसर-ए-हिन्द' का स्वर्ण-पदक। iv १९१८ तक सरकार के सहयोगी। v टाल्स्टाय और रस्किन के आदर्शों का प्रभाव। vi सत्य और अहिंसा के नवीन मार्ग। vii रौलट-एक्ट के विरोधी के रूप में सरकार से प्रथम असहयोग। viii १९१९ में जलियांवाला काण्ड और गांधीजी की मनोवृत्ति पूर्ण असहयोगी की हो गई। ix काँग्रेस द्वारा सत्याग्रह की नीति का अपनाया जाना।

५—१९२१ का असहयोग और गांधीजी—काँग्रेस द्वारा असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तुत। ii प्रान्तों को असहयोग की अनुमति—५ नवम्बर '२१। iii प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार। iv गांधीजी आन्दोलन के एकमात्र कर्णधार। v चौरीचौरा की घटना से विचलित होकर गांधीजी द्वारा आन्दोलन सहसा बन्द। vi दिल्ली अधिवेशन के पश्चात् ६ वर्ष के लिए जेल में डाल दिए गये। vii इस आन्दोलन से गांधीजी का दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया, सत्याग्रह उनके लिए केवल राजनीति ही नहीं, आध्यात्मिक अस्त्र भी था।

६—'२१ से '३० तक का काल—i अधिक सक्रियता का अभाव। ii काँग्रेस में भेद। iii दंगों का प्रारम्भ--गांधीजी का उपवास। iv साइमन कमीशन की नियुक्ति और भारतीयों द्वारा बहिष्कार। v फिर दमन और सत्याग्रह की भूमिका। vi पूर्ण स्वाधीनता-प्रस्ताव स्वीकृत।

७—१६३० का सत्याग्रह; गोलमेज-परिषद्—i साबरमती में वर्किङ्ग कमेटी का निश्चय। ii नमक कानून-भंग का निश्चय। iii डाण्डी-यात्रा। दमन; गांधीजी गिरफ्तार। v गोलमेज-परिषद् प्रारम्भ। vi महात्माजी की मुक्ति; कांग्रेस द्वारा गोलमेज परिषद् के लिए प्रतिनिधि नियुक्त।

८—'४२ के पूर्व की दशा और क्रांति—i दमन; फिर क्रिप्स मिशन का ढोंग। ४२ की क्रांति का सूत्रपात। iii गिरफ्तारियाँ और क्रांति का संचालन। iv आजाद हिन्द सेना का संगठन।

६—स्वतन्त्रता-प्राप्ति की ओर—i महायुद्ध की समाप्ति; मजदूर-दल की विजय। ii भारतीय समस्या पुनः प्रबल। iii लारेंस-मिशन और स्वतन्त्रता का नकशा।

१०—स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा गांधीजी का आदर्श—i स्वतन्त्रता और विभाजन। ii सरकार की कलाबाजी। iii स्वतन्त्रता के उषःकाल में गांधी नोआखाली में नंगे पैर घूम रहे थे। iv साम्प्रदायिकता और अछूत-समस्या पर गांधीजी का आदर्श। v गांधीजी का अपूर्व त्याग, फिर बलिदान। vi भारतीय स्वतन्त्रता, गांधी के पूर्ण आदर्श की एक मंजिल-मात्र है।

११—एक प्रश्न ?—i क्या हम आज उनके मार्ग पर चल रहे हैं ?

३३–ज़मींदारी उन्मूलन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—ज़मींदारी की प्रथा। २—ज़मींदारी और किसान। ३—प्रथा के दोष। ४—उन्मूलन की आवश्यकता और किये गये प्रयत्न। ५—उन्मूलन के कार्य। ६—वर्तमान स्थिति।

निबन्ध—'ज़मींदारी किसी भी देश के लिए अभिशाप है,'* फिर भी यह प्रथा संसार के अनेक देशों में चली आरही है, पिछड़े हुए देशों में नहीं, संसार के सभ्य देशों में भी इस प्रथा का बराबर प्रचलन रहा है। इस प्रथा के मूल में शासन व्यवस्था की सरलता है, कि प्रजा का सम्बन्ध सीधा शासक से न होकर ज़मींदारों से रहे और इस प्रकार एक मध्यस्थ द्वारा शासन परिचालन और राजस्व† प्राप्त करने में सरलता रहे। हमारे देश में ही चक्रवर्ती और मांडलिक$ राजा होते थे, जिनका अनेक छोटे राजाओं पर प्रभुत्व रहता था। राजा लोग अपना उत्तरदायित्व ज़मींदारों पर डाल देते थे और इस प्रकार कृषक और राजा के बीच एक प्रभुत्वशाली समुदाय आ जाता था जो सर्वदा अपने स्वार्थ का साधन और किसानों के हितों का उन्मूलन करता रहा। यह प्रथा भारतवर्ष में ही नहीं, अनेक देशों में प्रचलित रही है। इङ्गलैंड में भी 'फ्यूडल प्रथा'‡ के रूप में यह प्रणाली परिचालित रही, और वहाँ जो कुछ झगड़े रहे वे इतिहासकारों को भलीभाँति विदित हैं।

भारतवर्ष में मालगुजारी प्राप्त करने के अनेक प्रकार हैं, जैसे लम्बरदारी ÷, रैयतवारी × तथा ज़मींदारी। ज़मींदारी प्रथा के अनुसार राज्य अपना सीधा सम्पर्क ज़मींदारों से रखता है, जिनका उत्तरदायित्व होता है कि सरकारी कोष में मालगुजारी की निश्चित निधि नियत समय पर दें।

---

* पंत, † लगान, $ Ovrlords, ‡ Feudal system, ÷ किसानों की ओर से लम्बरदार लगान देता है, × किसानों से सीधी वसूली।

यह प्रबन्ध स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार का हो सकता है। स्थायी प्रबन्ध में मालगुजारी का द्रव्य सर्वदा के लिए निश्चित कर दिया गया है, अस्थायी में यह द्रव्य परिस्थिति, उत्पादकता के अनुसार परिवर्द्धित किया जा सकता है। पहले प्रकार की ज़मींदारी बंगाल, बिहार, उत्तर-पूर्व मद्रास तथा उत्तर प्रदेश के बनारस विभाग में है; दूसरी प्रकार की प्रणाली का उदाहरण अवध है, जहाँ ताल्लुकेदारों की प्रथा है। ज़मींदारों का काम कृषकों से लगान प्राप्त करना है और इस प्राप्ति में जितनी मनमानी और अत्याचार किया जाता है, उसे सब कोई जानते हैं। प्रश्न उठता है कि जब भूमि राज की है और किसान उस पर काम करता है तो फिर किसी मध्यस्थ का अधिकार किसी भी प्रकार क्या हो सकता है। ज़मींदार–पृथ्वीपति है, वह चाहे जो रकम वसूल कर सकता है, किसान को देनी ही होगी। यह प्रथा अब सभ्यता से बहुत पीछे पड़ गई है, अनेक देशों में इसका उन्मूलन हो चुका है और भारतवर्ष में भी इस ओर अनेक प्रयत्न चल रहे हैं।

इस प्रथा में ज़मींदार और किसान दो ही व्यक्ति महत्त्वपूर्ण हैं— ज़मींदार रुपया उघाने वाला और किसान रुपया देने वाला। सरकार की ओर से लगान का द्रव्य निश्चित है, किन्तु ज़मींदार मनमाने लगान वसूल करता है। राजे, नवाब, जागीरदार, ठिकानेदार, मंसबदार, ताल्लुकेदार, ज़मींदार ये सब इसी प्रथा के रूप हैं, जो अपने को भूमि का पति समझते हैं और किसानों को अपनी रियाया। राजा और प्रजा का सम्बन्ध तो बड़ी सहानुभूति और प्रेम का होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता। ज़मींदारों की ओर से अमानुषिक* अत्याचार होते हैं। जितना भी लगान लगाया जाय, देना पड़ता है, उपज न होने पर भी देना पड़ता है। सूखा, दुर्भिक्ष, बीमारी किसी भी अवस्था में माफ नहीं हो सकता, देना ही पड़ेगा। न देने पर बर्बरतापूर्ण$ व्यवहार होता है। चल, अचल सम्पत्ति नीलाम कर दी जाती है, किसानों को निर्दयता से पीटा जाता है, उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों पर अत्याचार किया जाता है और घोर पशुता

* मनुष्यता से हीन, $ जंगलीपन।

का प्रदर्शन होता है। बेचारा किसान निश्चित द्रव्य देने से ही छुटकारा नहीं पाता, उसे अन्य अनेक रूपों में अतिरिक्त द्रव्य देना पड़ता है। अनेक प्रकार की भेंटें, कारिन्दों की सेवा और उनका सम्पूर्ण व्यय, ज़मींदार के यहाँ उत्सव के समय बिना ही मूल्य के अनेक प्रकार की सामग्री, ज़मींदार के मनोविनोद के साधनों को क्रियात्मक करना आदि। ज़मींदार के किसान की इतनी दयनीय दशा है कि वह किसी प्रकार पनप ही नहीं सकता। यदि किसी प्रकार का विरोध भी करता है तो ज़मींदार के लठैत* उसका चाहे जो कुछ कर सकते हैं। दूसरी ओर ज़मींदारों का जीवन देखिये। उन्हें कुछ काम तो करना ही नहीं, भेज कारिन्दे वसूल करते हैं, उनका तो सारा समय आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में जाता है। कभी-कभी शिकार पर भी चले जाते हैं। कोई तो इतने दुष्ट होते हैं कि उनके आगमन का समाचार पाकर बहू-बेटियाँ मकानों से ही नहीं निकलतीं। अपने प्रति अत्यन्त सम्मान एवं श्रद्धा का व्यवहार वे अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझते हैं। उनकी सब प्रकार से सेवा की जाय, उनका सत्कार और सम्मान किया जाय, वे ही क्यों, उनके नौकर-चाकर, यहाँ तक कि कुत्तों का भी स्वागत किया जाय और परिणाम में गालियाँ, लात, घूसे, डण्डे आदि मिलें। इनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में बहुत कुछ साहित्य मिलता है और बँगला में तो अनेक उपन्यासों की रचना हुई है जो इस प्रथा पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।†

स्पष्ट है कि यह प्रथा दोषपूर्ण है और आज के युग में जब सर्वत्र समानता की घोषणा हो चुकी है, इसे कोई भी सभ्य एवं विचारशील समाज सहन नहीं कर सकता। ज़मींदारी का बड़ा रूप भारत के राज्य थे। यद्यपि वे स्वतन्त्र राज्य थे, किन्तु उनमें भी निरंकुशता, एकतन्त्रता थी। आज सभी राज्य समाप्त हो चुके हैं और उनका प्रबन्ध लोकप्रिय मन्त्रि-मण्डलों द्वारा हो रहा है। अनेक संघ बन गये हैं और राजाओं की निजी

* ज़मींदार के पास रहने वाले हृष्ट-पुष्ट हृदय-हीन व्यक्ति जो लाठी रखते हैं, † हिन्दी में अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं, हिन्दी में भी कुछ उपन्यास हैं।

व्यय के लिए कुछ वार्षिक उपवेतन निश्चित कर दिया गया है। वे सारे ही दोष ज़र्मींदारी प्रथा में भी हैं। वही निरंकुशता, एकतन्त्रता*, मनमानी, अत्याचार और कुत्सित व्यवहार चल रहे हैं। अँग्रेजों के समय में ज़मींदार खूब पनपे, क्योंकि वे तो चाहते थे कि जनमत निरन्तर दबा रहे, और इस काम में उनके सहायक इन लोगों से अधिक और कौन हो सकते थे। किन्तु प्रणाली है अत्यन्त दोष-पूर्ण। खून-पसीना कोई बहावें और उसका उपभोग निठल्ले विलासी और चरित्रहीन ज़मींदार करें। भूमि के उत्पादकों को पेटभर अन्न न मिले और ज़मींदारों के यहाँ नाच, रंग और मदिरा का विलास हो। आखिर एक मध्यस्थ की आवश्यकता ही क्या है जो उत्पादन में कुछ भी योग नहीं देता। अब वह बहुत दिन तक नहीं चल सकता, उसे भी काम करना होगा, अपने अधिकार छोड़ना होगा, सच्चे किसान ही भूमि के पति होंगे।

इन सारी बुराइयों को देखकर देश में ज़मींदारी के विरुद्ध यथेष्ट समय से आन्दोलन चला और सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया गया। आज का युग ज़मींदारी प्रथा का किसी भी रूप में समर्थन नहीं कर सकता। समाज ज़मींदार की आवश्यकता ही नहीं समझता, ज़मींदारों के अत्याचारों से न जाने कब का वह ऊब चुका है, चारों ओर जागृति है। देश में अनेक संगठन बन रहे हैं, मजदूर अपने हितों की रक्षा में लगे हुए हैं, सम्पूर्ण संसार में एक लहर व्याप्त हो रही है कि पूँजी का समान वितरण किया जाय। जो कुछ नहीं करता वह समाज का गर्हित और व्यर्थ अङ्ग है, उसे समाप्त कर दिया जाय। बिना राष्ट्रीय कोष में वृद्धि किये कोई भी व्यक्ति धनोपभोग का अधिकारी न समझा जाय, और अब तो विश्व में साम्यवादी विचार-धारा चल रही है। सिद्धान्त रूप में इसे अधिकांश व्यक्ति स्वीकार करते हैं, इसके क्रियात्मक रूप से विरोध भले ही हो।

अँग्रेजों के समय से ही इस ओर बराबर प्रयत्न होते रहे, किन्तु अँग्रेज इस प्रथा का अन्त नहीं चाहते थे। उन्हें इसमें लाभ था, राजा

* Aristocracy।

और ज़मींदार उनकी सत्ता के दृढ़ स्तम्भ थे, वे उनका उन्मूलन किस प्रकार करते। अँग्रेजों के प्रस्थानोपरान्त* जब अपनी सरकार आई तो यह आन्दोलन अधिक वेग से चला। विशेषतः उत्तर-प्रदेश ने इस ओर बहुत कार्य किया और सरकार द्वारा ज़मींदारी के उन्मूलन हेतु बिल उपस्थित किया गया। देशों में सर्वत्र उसका स्वागत हुआ, यद्यपि कुछ स्वार्थी लोगों ने उसका विरोध भी किया। विधान की अनेक अवस्थाओं से निकलता हुआ यह बिल अन्त में राष्ट्रपति के हस्ताक्षर भी प्राप्त कर सका और एक 'ऐक्ट' के रूप में बन गया। किन्तु अभी सर्वोच्च$ न्यायालय ने इसमें वैधानिक त्रुटियाँ निकाल दी हैं और यह क्रियान्वित नहीं हो सका है। अन्य प्रान्तों में प्रयत्न चल रहे हैं। मद्रास में भी इस ओर लोग प्रयत्नशील हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन प्रयत्नों का परिणाम देश के लिए कल्याणकारी होगा।

ज़मींदारी-उन्मूलन देश के लिए अत्यन्त लाभकारी है। जब किसान यह समझेगा कि भूमि उसकी ही है और उसकी उपज उसके ही हित में होगी तो निःसन्देह वह भूमि को अधिक उपजाऊ बनावेगा और इस प्रकार देश की खाद्य समस्या को हल करने में सहायता मिलेगी। राजा और प्रजा ये दो शब्द अब इतने खटकने लगे हैं कि ज़मींदार और किसान तो किसी रूप में सहन किये ही नहीं जा सकते। अब तो समानता का युग है। सभी राष्ट्र के समानाधिकारी सदस्य हैं, ज़मींदारी उन्मूलन देश के सभी नागरिकों को एक स्तर पर लाने की ओर अग्रसर करेगा। जनता और सरकार एक-दूसरे से सीधे सम्बन्धित होंगे। कृषक अपनी कठिनाइयाँ बताकर सरकार का सहयोग प्राप्त कर सकेगा और सरकार भी कृषक-समाज से सम्बन्धित हो अपनी नीति का उत्तम रूप में निर्माण कर सकेगी। जब राजा नष्ट हो गये, तो कोई कारण नहीं कि ज़मींदार, ताल्लुकेदार, नवाब अथवा ठिकानेदार बने रहें। इनके द्वारा राष्ट्र की कितनी सम्पत्ति भोग-विलास आदि में नष्ट होती है। देश का कितना द्रव्य विदेशों को बहाया जाता है। यह सब बचत राष्ट्र के कोष में होगी। जब

* जाने के पश्चात्, $ Federal High Cort।

भगवान् ने सब मनुष्य समान बनाये तो छोटे-बड़े का कृत्रिम रूप राज्य द्वारा क्यों चलाया जाय। योग्यता और उत्पादन शक्ति ही सारी बातों का निश्चय करें।

वर्तमान स्थिति ज़मींदारी प्रथा के प्रति घोर असन्तोष की है और धीरे-धीरे इसका उन्मूलन हो रहा है। यह श्रेणी* सर्वदा के लिए समाप्त कर दी जायगी। कुछ लोगों का विचार है कि आर्थिक और व्यापारिक दृष्टि से इससे पहले कुछ कठिनाई आवेगी, क्योंकि सम्भव है कृषक राष्ट्र के हितों का रक्षण करने में समर्थ न हों और संगठन तथा शिक्षा के अभाव में राष्ट्र के लिए अनेक नवीन समस्याएँ बन जायँ। किन्तु इस बात का भी सामना तो हमें एक न एक दिन अवश्य करना ही है। ऐसा ही राजाओं के विषय में कहा जाता था, किन्तु समय ने सिद्ध कर दिया कि रियासती सचिवालयों† का यह कार्य कितना उचित हुआ। आज का युग मजदूर और किसानों का है—'हथौड़ा और हँसिया' बड़े वेग से लोगों को प्रभावित कर रहे हैं। अभिप्राय यह है कि काम करने वालों को प्रमुखता दी जावेगी। किसी भी रूप में पूँजीपतियों को पनपने देने के विरुद्ध जनमत बन चुका है। यह युग निठल्लेपन का नहीं है, राष्ट्र की सम्पत्ति के साथ खिलवाड़ करने का नहीं है, भूमि उसी की होगी जो उसे जोतेगा, बोयेगा और काटेगा।

विस्तृत रूपरेखा

१—ज़मींदारी की प्रथा—i विनाशकारी प्रथा। ii भारत में ही नहीं अनेक देशों में प्रचलित प्रथा। iii उस समय की कठिनाइयों में ठीक हो, किन्तु आज नहीं। iv लगान वसूल करने के अनेक प्रकार—(a) ज़मींदार द्वारा, (b) लम्बरदार द्वारा, (c) रैयत से। v अत्यन्त दोषयुक्त कृत्रिम प्रथा।

२—ज़मींदार और किसान—i सरकार और किसान के बीच ज़मींदार एक अनावश्यक मध्यस्थ हैं। ii ज़मींदार के अत्याचार। iii किसानों

---

* ज़मींदार आदि की, † State Ministry।

की दयनीय दशा । iv अनेक प्रकार के अतिरिक्त कर, भेंट, सामग्री आदि देने का प्रचलन । v कारिन्दों की मनमानी । vi ज़मींदार का जीवन—आमोद-प्रमोद, भोग-विलास निठल्लेपन का । vii किसान का जीवन—दयनीय, आर्थिक कठिनाई, अत्याचार का शिकार ।

३—प्रथा के दोष—i समानता के युग में अभिशाप । ii ज़मींदारों की निरंकुशता, मनमानी, अत्याचार । iii मेहनत कोई करे, उपभोग अन्य कोई । iv मध्यस्थ की अनावश्यकता । v वर्ग विशेष को अनुचित प्रोत्साहन । vi राष्ट्रीय कोष में क्षति ।

४—उन्मूलन की आवश्यकता—i प्रथा के दोषों के कारण । ii युग की आवाज़ इसके विरुद्ध । iii श्रमिक अपने संगठन आदि बना रहे हैं—उनकी धारणाओं, विचार-माला पर ध्यान ।

५—किये गये प्रयत्न—i आन्दोलन । ii सरकार द्वारा प्रयत्न । iii यू० पी० का प्रयास । iv मद्रास आदि अन्य प्रदेशों का प्रयास । v जनमत ।

६—उन्मूलन के कुछ लाभ—i पृथ्वी की उपज बढ़ सकती है--जब किसान अपने को ही कर्ता समझेगा । उत्पादन में वृद्धि । ii खाद्य समस्या में सरलता । iii सब का समानाधिकार--इस भावना की पुष्टि । iv जनता तथा सरकार का सीधा सम्पर्क । v राष्ट्रीय सम्पत्ति में बचत । vi प्रथा के दोषों का निराकरण ।

७—वर्तमान स्थिति—i जनमत इसके विरुद्ध--अतएव पूर्ण रूपेण उन्मूलन अवश्यम्भावी है । ii राजा समाप्त हो चुके--फिर ये लोग भी । iii साम्यवाद की विचार-धारा का परिणाम । iv भूमि पर भूमिहारों का अधिकार ।

३४—युद्ध की अग्नि में

संक्षिप्त रूपरेखा

१—प्रस्तावना—शीर्षक की उपयुक्तता। २—आज का संसार। ३—परिस्थितियों की भीषणता। ४—आदर्शों का विरोध। ५—वैज्ञानिक प्रसाधन, शक्ति-संचय, आर्थिक स्वार्थ। ६—युद्ध की एक झलक—गत युद्धों से। ७—विश्व शान्ति को भय। ८—रोकने के उपाय - सुरक्षा परिषद्,* प्रमुख राजनीतिज्ञ। ९—सम्भावित भविष्य—युद्ध की अनिवार्यता।

निबन्ध—विश्वाकाश पर आज युद्ध के मेघ मंडरा रहे हैं। कभी भी भीषण स्थिति उत्पन्न हो सकती है। सम्पूर्ण विश्व में युद्ध के कारण जुटते जा रहे हैं, काष्ठ एकत्रित होता जारहा है केवल एक दियासलाई की सींक प्रज्ज्वलित होने भर की देर है। राष्ट्र तैयार बैठे हैं; जो प्रस्तुत नहीं है वे अपनी तैयारियों में जुट रहे हैं। कुछेक युद्ध को रोकने में प्रयत्नशील हैं—किन्तु युद्ध रुक सकेगा या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसी परिस्थिति को देखते हुए प्रस्तुत शीर्षक† वर्तमान स्थिति का दिग्दर्शन कराने में उपयुक्त प्रतीत होता है। आज हम युद्ध की अग्नि में नहीं तो उसके सम्मुख तो अवश्य ही हैं और कभी भी उसमें झोंके जा सकते हैं। यदि कहीं हमारे तथा अन्य देशों के नेता इसे हटाने में समर्थ हो सके तो हमारा अहोभाग्य। सम्भवतः विश्व का कल्याण भी इसी में है।

आज के संसार पर दृष्टिपात कीजिये। चारों ओर विरोध और वैमनस्य$ दिखाई दे रहा है। राष्ट्रों के सिद्धान्तों में घोर विरोध है, मनुष्यों के आदर्श अनेक दिशाओं में जारहे हैं। हमारा सिद्धान्त जीवन में त्याग और विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित था, जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं को कम कर उच्च विचारों की सृष्टि करना था, तो आज का पश्चिमीय संसार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में, अपने स्वार्थ-संरक्षण में पागल होरहा है। कहीं पूँजीवाद× अपना प्रभुत्व जमाये बैठा है और कहीं

---

* Security Council, † युद्ध की अग्नि में, $ द्वेष, × Capitalism।

साम्यवाद + के सिद्धान्तों से उथल पुथल मच रही है। किसी को आर्थिक बल है तो किसी को सैन्य बल। कोई विज्ञान को अपनी विश्व विजय का साधन बनाता है तो कोई अपने आदर्श की उत्कृष्टता पर अभिमान करता है। किसी को अपने राजनैतिक अड्डे बनाने की चिन्ता है तो कोई विश्व को अपने सांचे में ढालना चाहता है। कोई अन्य देशों पर अपना प्रभुत्व जमाने के इच्छुक हैं तो कोई अपने देश की समृद्धि में सभी देशों को निचोड़ना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि आज प्रत्येक देश भीषण गति से अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति में भागा जारहा है। उसे इस बात का ध्यान ही नहीं कि उसकी इस स्वार्थपरायणता में किन्हीं अन्य देशों का भी अहित हो सकता है।

परिस्थिति अत्यन्त भीषण हो चली है। विश्वास एक दम उठ गया है, किसी देश या राष्ट्र को अपने निकटवर्ती देश या राष्ट्र का भी विश्वास नहीं प्रत्युत वही उसका सबसे बड़ा शत्रु हो सकता है। आज हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें कही जाती हैं। दोनों राज्य एक ही राष्ट्र के तो दो विभाग हैं, फिर इतनी कटुता क्यों? कुछ दिन पहले भारतवर्ष के ही ये दोनों अङ्ग थे, किन्तु आज परिस्थिति इतनी बदल गई। उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के युद्ध ने विश्व की शान्ति को एकदम भंग कर दिया, सर्वत्र लोग सजग हो गये। एक ही देश के तो ये दो भाग थे। फिर कितना रक्तपात हुआ है। यह ठीक है कि दो खण्डों को लड़ाने वाली एक अन्य शक्ति है*, लड़ाने वाली ही नहीं प्रत्युत अन्य नाम से स्वयं ही लड़ने वाली शक्ति है, परन्तु है तो यह एक ही देश के दो भागों का घोर कलह। गृह-युद्ध की इस भीषण अग्नि में कोरिया का सर्वस्व स्वाहा होगया। रूस और चीन दो समीपवर्ती राष्ट्र थे, इसी प्रकार चीन और जापान। इनमें जो राजनीतिक चालें चली हैं, घात-प्रतिघात हुए हैं वह इतिहास और राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को विदित हैं। जब पास के राष्ट्रों, और एक ही राष्ट्र के दो भागों में इतनी भयंकर भावनाओं का

+ Communism रूस और लालचीन का वाद, * अमेरिका,

निवास है तो फिर दूर के राष्ट्र तो किसी प्रकार की सहानुभूति रख ही किस प्रकार सकते हैं। यदि हम यह सोचें कि पश्चिमीय राष्ट्र सुदूर पूर्व का ध्यान रखेंगे तो यह किसी भी समय भ्रम के रूप में असत्य सिद्ध हो सकता है। अब तो स्थिति और भी विकट बन चली है, और युद्ध से बचने के लिये बहुत ही नैपुण्य‡ की आवश्यकता है।

इस विश्व व्यापी विरोध का कारण आदर्शों की विभिन्नता है। वैसे तो यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो ये आदर्श आदर्श नहीं स्वार्थ विशेष के रूप मात्र हैं और देश विशेष के दृष्टिकोण से उन्हें ग्रहण किया जाता है। इस युग में दो प्रकार के सिद्धान्तों में भीषण प्रतिरोध चल रहा है और स्थिति 'इस ओर' या 'उस ओर' का-सा बनती जारही है। इनमें से एक प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन साम्यवादी रूस द्वारा हो रहा है और दूसरे का प्रतिनिधित्व अमेरिका कर रहा है। प्रयत्न यह है कि इन दोनों में किसी प्रकार मेल होजाय। यदि यह हो सका तो सम्भव है युद्ध कुछ समय के लिये टल जाय। किन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं। इनके सिद्धान्तों के बीच इतनी चौड़ाई है कि उसे भरा नहीं जा सकता, सब प्रकार के प्रयत्न चल रहे हैं और प्रत्येक उद्योग काम में लाया जारहा है। आज का पूँजी पति श्रमिकों द्वारा सह्य नहीं, राष्ट्र की सम्पत्ति पर सब का ही अधिकार है, वह सबको उचित रूप में प्राप्त होनी चाहिये। उधर जनतन्त्र के आदर्शों को सामने लाया जाता है और उसे शासन तथा व्यवस्था का सर्वोत्कृष्ट रूप बताया जाता है। इन दो प्रधान प्रवृत्तियों के अतिरिक्त संसार में अनेक अन्य विरोधी प्रवृत्तियाँ भी हैं जो युद्ध की सम्भावना को प्रतिदिन निकट-तर ला रही हैं।

युद्ध की भयानकता को गुरुतर बनाने के लिये अनेक साधन एकत्रित किये जारहे हैं। विज्ञान को ही लीजिये। वैज्ञानिक आविष्कारों का ध्येय मनुष्य की प्रसन्नता और उपयोगिता में वृद्धि करना होना चाहिये, किन्तु उससे हमने अनेक प्रकार के बम* प्राप्त किये जिनके ध्यान मात्र से आत्मा सिहर उठता है। अग्निवर्षकों, विस्फोटकों, वायुयानों, पनडुब्बियों के

‡ निपुणता, चतुराई, * जैसे एटम बम।

अनेक रूप अपनी भीषणता के साथ हमारे सामने हैं और इस ओर नित नूतन आविष्कार होते जारहे हैं। प्रत्येक देश अपने वैज्ञानिकों द्वारा क्रूरातिक्रूर विध्वंसक† सामग्री का आविष्कार करा रहा है। वैज्ञानिकों की बुद्धि का परिचय विध्वंसात्मक साधनों की उत्कटता‡ में समझा जाता है। साथ ही शक्ति-संचय का कार्य भी हो रहा है। सैन्य-शक्ति बढ़ाई जारही है, युद्ध-पोतों× का निर्माण अविरल+ गति से चल रहा है, वायुयानों को युद्ध सम्बन्धी सभी साधनों से अधिकाधिक सुसज्जित किया जारहा है। अमेरिका द्वारा सेना में अनिवार्य भर्ती की बात चल रही है। और भी देश अपनी सभी प्रकार की शक्ति का संचय कर रहे हैं। इन सबकी तह में आर्थिक स्वार्थ छुपा हुआ बैठा है। प्रत्येक देश अपने को अधिकाधिक समृद्धिशाली बनाना चाहता है, देश में ऐश्वर्य के साधन जुटाना चाहता है और अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। एक प्रकार से आज की समस्याएँ आर्थिक आधार पर ही अवलम्बित हैं—भौतिकवाद* ही एक मात्र उद्देश्य बन चला है।

यदि हमें इन सबका मूल्य युद्ध के रूप में चुकाना पड़ता है तो यह हमारे स्वार्थ का बहुत अधिक मूल्य है। युद्ध की भीषणता हम अभी भूले नहीं हैं। गत दो महायुद्ध अपनी पूर्ण भयंकरता के साथ हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। पिछले युद्ध की क्रूर स्मृतियाँ हमें ज्यों की त्यों याद हैं—वे अब भी हमारे शरीर में कम्पन उत्पन्न कर देती हैं। हमें याद है जापान में एटम बम का प्रहार, जिसकी प्रचण्ड अग्नि में असंख्य प्राणियों का संहार हुआ और नगर के नगर भस्मीभूत होगये—एक-दो बमों ही द्वारा इतना नर-संहार हुआ कि देश की स्वतन्त्रता और समृद्धि नष्ट होगये। युद्ध के भीषण परिणाम प्रत्येक देश के लिये भयंकर सिद्ध हुए और उनकी विभीषिका§ अब भी प्रताड़णा$ के रूप में विद्यमान है। युद्ध के दुष्परिणाम से देश अब तक भी पनप नहीं सके हैं; कम से कम भारतवर्ष में तो हम यही देख

---

† ध्वंस करने वाली, ‡ ऊँचापन, × जहाज, + बिना रुके, * Materialism आध्यात्मिकता का विरोधी, § क्रूरता, $ अभिशाप, कठोर दण्ड।

रहे हैं। हमारी कठिनाइयाँ बढ़ती सी प्रतीत होरही हैं—युद्ध के पूर्व का जो समय हमने खो दिया वह सम्भवतः कभी वापस नहीं आ सकता। वस्तुओं के मूल्य में जो वृद्धि हुई वह निरन्तर बढ़ती ही जारही है। आवश्यकताओं की कमी पूरी होती दिखाई नहीं देती, कटुता के जिन बीजों का वपन हो गया× उनका उन्मूलन÷ करना सम्भव दिखाई नहीं देता प्रत्युत वे जड़ जमाते दृष्टिगोचर होरहे हैं। सरलतापूर्वक हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि आगामी युद्ध यदि हुआ तो विश्व के लिये कितना घातक सिद्ध होगा, विज्ञान की सहायता से कितना बृहद् असीमित नरसंहार होगा, विध्वंस की ज्वाला कितनी प्रचण्ड उठेगी, सभ्यता और संस्कृति का कितना दलन होगा तथा समस्याएँ कितना उग्र रूप धारण कर लेंगी।

जो कुछ हम देख रहे हैं उससे विश्व-शान्ति के लिए पूरा भय है। दिनों-दिन हमारी यह आशंका बढ़ती ही जारही है—भारत के दरवाजों पर भी कई ओर से खटका है, साथ ही आन्तरिक शान्ति का प्रश्न भी है। पूर्व और पश्चिम, पूँजीवाद और साम्यवाद का वैमनस्य बढ़ता जारहा है। यदि यही अवस्था रही तो युद्ध अनिवार्य हो जावेगा। इससे हमें यह न समझना चाहिए कि विश्व के विचारवान् व्यक्ति इस ओर उदासीन* हैं। गत महायुद्ध के समाप्त होते ही विश्व के अनेक शक्तिशाली राष्ट्रों ने एक महान् परिषद्† की स्थापना की जिसका उद्देश्य युद्ध संबंधी वातावरण को हटा कर विश्व-शान्ति का उद्योग करना है। इस कार्य के लिए एक छोटी परिषद् अलग ही है जिसे सुरक्षा परिषद् कहते हैं। परिषद् इस ओर प्रयत्नशील रहती है कि जितने भी पारस्परिक मतभेद हों वे बातचीत के द्वारा, किसी मध्यस्थ$ के द्वारा तै हो जायँ और युद्ध की आवश्यकता न पड़े। जब कभी ऐसी स्थिति हो जाती है, तो यह परिषद् क्रियात्मक पग बढ़ाती है और स्थिति को सँभालने की चेष्टा करती है। काश्मीर और कोरिया के प्रश्नों की ओर इसने अपना ध्यान दिया है, पैलेस्टाइन की समस्या को भी हल करना चाहा है, चीन की नव जागृति

× बो दिये गये, ÷ उखाड़ना, * चुप, † U. N. O. $ किन्हीं दो का बीच-बचाव करने वाला।

और साम्यवाद की ओर भी इसकी निगाह है—किन्तु अपने कार्यों में इसे कितनी सफलता मिली या मिल सकेगी यह प्रसंग अधिक उत्साहवर्द्धक प्रतीत नहीं होता। परिषद् के अतिरिक्त राष्ट्रों के प्रमुख नेता भी इस ओर प्रयत्नशील हैं। अभी हाल में ही लन्दन में राष्ट्रमण्डल के प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ था। उसका भी वही उद्देश्य था कि शान्ति की रक्षा की जाय और परिस्थिति जो बिगड़ चली है उसे संभाला जाय। प्रमुख राष्ट्रों के नेताओं की व्यक्तिगत बातचीत का आयोजन किया जाता है—विश्व-शान्ति के नाम में आज यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि अमेरिका और रूस खुले दिल से बातें करलें और संसार को युद्ध की इस भीषण अग्नि में स्वाहा होने से बचावें।

परिस्थितियाँ जैसा घुमाव लेरही हैं, समस्याओं की जटिलता जो अधिकाधिक होती जारही है, तथा पारस्परिक समझौते की बातचीत को जिस प्रकार पीछे धकेला जारहा है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि युद्ध होना अनिवार्य है—एक प्रकार से आरम्भ तो हो ही गया है, आहुतियों द्वारा उसकी ज्वालाओं को और प्रचण्ड बनाना है। देखना है कि कोई ऐसी शक्ति है जो विश्व को युद्ध की इस भीषण ज्वाला से बचावे और संसार में सुख-शान्ति का स्वप्न सत्य करके दिखादे।

विस्तृत रूपरेखा

१—शीर्षक की उपयुक्तता—i युद्ध की इतनी अधिक सम्भावना। ii अनेक स्थलों में युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था। iii प्रयत्नों में असफलता।

२—आज का संसार—i भौतिकवादी, आर्थिक समस्याएँ, व्यापारिक प्रश्न और आवश्यकताओं की पूर्ति। ii पूँजीवाद और साम्यवाद के विरोधी सिद्धान्त। iii देशों के अनेक प्रकार के उद्देश्य—स्वार्थ-सिद्धि—उद्देश्य की पूर्ति के साधन।

३—परिस्थितियों की भीषणता—i विश्वास विहीनता। ii निकटवर्ती देशों का वैमनस्य तथा मनोमालिन्य। iii पाकिस्तान, हिन्दुस्तान;

उत्तरी दक्षिणी कोरिया; चीन का पुराना युद्ध। iv पूर्व और पश्चिम के राष्ट्र—पश्चिमीय राष्ट्रों की पूर्वी देशों के प्रति नीति और धारणा।

४—आदर्शों का विरोध—i वैमनस्य का प्रधान कारण आदर्शों का विरोध है। ii विभिन्न देशों और राष्ट्रों के सिद्धान्तों में भेद हैं और अपने आदर्श का प्रसार करने के लिए युद्ध की आवश्यकता आ पड़ी है। iii सिद्धान्तों में विरोध की मात्रा बहुत अधिक है जिसे मिटाना अति कठिन है। iv आज के दो प्रधान सिद्धान्तों का विरोधी रूप और अमेरिका के आदर्श।

५—युद्ध की तैयारियाँ—i वैज्ञानिक प्रसाधन—बम, वायुयान, युद्ध-पोत, अग्निवर्षक, विस्फोटक आदि। ii सैन्य शक्ति—जल, थल और आकाश की शक्तियों का संकलन। iii आर्थिक दृष्टिकोण से प्रेरित क्रिया-कलाप। iv भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति-स्वार्थमय मनोवृत्ति।

६—युद्ध की एक झलक—i प्रथम महायुद्ध १९१४-१८। ii द्वितीय महा-युद्ध—एटम बम प्रहार, जापान की स्वतन्त्रता-समृद्धि का अपहरण। iii युद्ध के परिणाम। iv इस समय तक युद्ध के दुष्परिणाम हमें नहीं छोड़ रहे हैं। v युद्ध की वर्तमान घातकता—भीषण संहार—संस्कृति का विध्वंस—अगणित कठिनाइयाँ।

७—विश्व-शान्ति को भय और उसके उपाय—आशंका i परिस्थिति को देखते हुए विश्वशान्ति के भंग होने की पूर्ण आशंका है। ii आरम्भ तो हो भी गया है। iii वैमनस्य बढ़ता ही जारहा है। प्रयत्न—i यू० एन० ओ० के अन्तर्गत सुरक्षा-परिषद् के प्रयत्न। ii मुख्य नेताओं के उद्योग। iii स्टालिन और ट्रूमैन की सम्मिलित वार्ता का आयोजन।

८—उपसंहार—i युद्ध होने के लक्षण। ii कुछ लोग स्थिति का अध्ययन कर युद्ध होना अनिवार्य समझते हैं। iii विश्व का हित युद्ध के टलने में है।

३४—भारत में आर्थिक समानता

संक्षिप्त रूपरेखा

१—"Liberty, equality and fraternity" का सिद्धान्त। २—समता के विभिन्न स्वरूप। ३—असमानता की उत्पत्ति तथा मार्क्स की व्याख्या। ४—भारतीय आर्थिक असमानता के निर्मूलन की विभिन्न प्रणालियाँ। ५—भारत की आर्थिक स्थिति का निदर्शन। ६—उपसंहार।

निबन्ध—"Liberty, equality and fratersnity" अर्थात् स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व ये तीन मानव-सभ्यता की वे भावनाएँ हैं, जिनके विकासक्रम के परिणाम* से ही किसी समाज की सभ्यता नापी जा सकती है। भारतीय गणराज्य† के विधान की घोषणा में भी उक्त तीन सुविधाओं का वचन दिया गया है। इनमें से तीनों अपने-अपने अर्थ में बहुत अधिक उदार हैं। किन्तु स्वतन्त्रता का अर्थ न तो उदार होकर अराजकता + ही हो सकता है, और न संकीर्ण होकर क्रियात्मक दासता × ही हो सकता है। वास्तव में उसकी एक निश्चित सीमा है, जो संकीर्ण नहीं। बन्धुत्व (Fratenity) मानव-मात्र का व्यापक गुण है। अन्य सामाजिक सम्बन्धों के साथ इसमें ममता का अंश बहुत अधिक है। प्राच्य-संस्कृति + अनादिकाल से बन्धुत्व-प्रधान रही है। समानता (Equelity) न तो कोई वैयक्तिक व्यवस्था है, न सामाजिक ममता, वह तो एक व्यापक सामाजिक स्थापना है। जिस प्रकार एक सीमा तक वैयक्तिक स्वतन्त्रता का मानव-मात्र अधिकारी है, अथवा एक समुचित ममता का प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है, उसी प्रकार प्रत्येक मानव-प्राणी को अधिकार है कि वह अपने समाज में आर्थिक दृष्टि से अन्य लोगों के

---

* Proportion,† Indian Republic, + Anarchy, × Practical Slavery, + Oriental culture.

ही समान हो। इस समानता का अर्थ साधनों और अवसरों की समानता$ से ही अधिक लिया जाता है।

वैसे समता का एक अपना विस्तृत क्षेत्र है, जिसमें उसके स्वयं के विभिन्न स्वरूप समाहित हैं। इनमें मुख्य ये हैं, १—सामाजिक समानता। २—राजनीतिक समानता। ३—धार्मिक समानता। ४—आर्थिक समानता। अन्य स्वरूपों पर विचार न करके हम केवल आर्थिक समानता के ही कुछ पहलुओं को दृष्टिगत करेंगे।

मानव-समाज में जब असमानता की वृद्धि हुई, तब समानता की पुकार ने जड़ पकड़ी। इस असमानता के मूल में जहाँ एक ओर मानव-स्वभाव और मानव-शक्ति का प्राकृतिक वैभिन्य† है, वहाँ साथ ही मानव-जीवन की कुछ दयनीय विवशताएँ+ भी हैं। अधिक गहरे न जाकर हम यह देखना चाहेंगे, कि भारतीय समाज में आर्थिक असमानता को नष्ट करने के लिए किन विचारों का प्रदर्शन यहाँ के मनीषी कर रहे हैं। इतिहास की आर्थिक व्याख्या ÷ करते हुए मार्क्स ने बताया है कि वर्तमान समय में आर्थिक असमानता अपने चरम× पर है, क्योंकि मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद अपने सम्पूर्ण उत्कर्ष की स्थिति पर पहुँच चुका है। इसका प्रमाण यह है कि एक देश में ही संसार का सबसे बड़ा धनी व्यक्ति विद्यमान है, तो उसी में संसार का सर्वाधिक निर्धन भी विद्यमान है।

भारत में औद्योगिक उन्नति* उतनी नहीं हुई, जितनी यूरोप में। अतः यह पूँजीवादी विषमता के साथ-साथ सामन्तवादी विषमता भी विकट रूप में प्रचलित है। किन्तु भारतीय स्वतन्त्रता के साथ सामन्तवाद की मौत का घण्टा बज गया है। मार्क्स के अनुसार तो सामन्तवाद के पश्चात् पूँजीवाद का आगमन निश्चित है, किन्तु उसका प्रभाव-काल कब तक रहेगा, यह देश विशेष की परिस्थितियों पर निर्भर है। भारत में अँग्रेजी

$ Equality of Sources and oppertunitias.
† Natural differences, + Pitiable compulson,
÷ Economic Interpretation of History, × Climax,
* Industrial developement.

राज्य के समय से ही सामन्तशाही के साथ-साथ पूँजीशाही का प्रभाव भी बढ़ता रहा। अतः यहाँ पर पूँजीवादी विषमता भी कम नहीं है। इस पूँजीवादी विषमता अर्थात् आर्थिक असमानता को समाप्त करने के लिए जिन प्रणालियों का आधार भारत के मनीषी राजनीतिज्ञ लेना चाहते हैं, वे हैं (१) समाजवादी अर्थप्रणाली (२) गान्धीवादी अर्थप्रणाली (३) मार्क्सवादी अर्थप्रणाली। इनमें हम प्रथम गान्धीवादी अर्थ-नीति पर दृष्टि डालेंगे:—

गांधीजी कहते हैं, "आर्थिक समानता के हुए बिना अहिंसा असम्भव है। और जो समाजोपयोगी श्रम नहीं करता वह रोटी का हकदार नहीं है।" इसी शक्ति से समाज और व्यक्ति के जीवन में सत्य और अहिंसा की स्थापना को ही गांधीजी समाजवाद कहते थे। उनके बुनियादी आर्थिक विचार थे:

१—व्यक्ति का हित समाज के हित से अलग नहीं, उसके अन्तर्गत है।

२—वकील और नाई के कार्य का समान महत्व है और समान मूल्य। दोनों को अपनी रोजी अपने काम से कमाने का हक़ है।

३—श्रम का जीवन अर्थात् खेतिहर और कारीगर का जीवन सबसे श्रेष्ठ है।

४—हर व्यक्ति को जीने का अधिकार है, इसलिए जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने का अधिकार है। अतः हर एक को इतना काम मिलना चाहिए कि वह अपनी कमाई से अपना भरण-पोषण कर सके। यह तभी हो सकता है जबकि उत्पत्ति के साधन जनता के हाथ में रहें। उत्पत्ति के साधनों को शोषण का साधन नहीं बनने देना चाहिये। आज ऐसा नहीं है इसलिए इतना शोषण और अन्याय और अहिंसा है।×

५—जो अर्थशास्त्र नैतिक मूल्यों$ से अलग है वह सच्चा अर्थशास्त्र

× यंग-इण्डिया १५-११, २८, पृष्ठ ३८१, $ Moral values।

नहीं है। सच्चे अर्थशास्त्र और सच्चे नीतिशास्त्र में कोई विरोध नहीं है। सच्चे अर्थशास्त्र का आधार सदैव सामाजिक न्याय ÷ है।

इसी प्रकार गांधी जी भारत में आर्थिक समानता के लिए प्रयत्नशील थे, और इसके लिए वे इस देश के ग्रामीण समाज को आत्मावलम्बी§ बनाना चाहते थे, जैसा उन्होंने एक स्थान पर कहा है, कि:—

"मैं भारत का औद्योगीकरण + चाहता हूँ, लेकिन मेरी योजना का आधार गाँव और उसमें रहने वाली असंख्य जनता है।"

आर्थिक समानता की गान्धीवादी क्रांति नीचे से उठती है। ग्राम उसका मूलाधार है†। गांधी जी सत्ता के विकेन्द्रीकरण* के पक्षपाती थे, सामाजिक न्याय के बहुत बड़े समर्थक। अतः वे ग्राम-पंचायतों द्वारा देश के आर्थिक जीवन को सुव्यवस्थित और सम बनाना चाहते थे। उन्होंने आर्थिक समानता के उद्देश्य को समझा था, इसीलिए विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। आर्थिक समानता का उद्देश्य है मानव-कल्याण, और एक-एक व्यक्ति का पूरा बौद्धिक और नैतिक विकास। यह स्वावलम्बी विकेन्द्रित व्यवस्था + में ही सम्भव है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है:—

"ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यथा-सम्भव प्रत्येक गाँव भोजन, वस्त्र आदि अपनी मूल आवश्यकताओं के लिए स्वावलम्बी, आत्म-निर्भर हो, दूसरों के भरोसे न जिए।"

इस ग्राम-स्वराज के लिए उन्होंने आर्थिक समानता को स्पष्ट शब्दों में अपना आदर्श माना।

"आर्थिक समानता मेरा आदर्श है, लेकिन ऐसा कभी हो सकेगा इसमें मुझे सन्देह है। इसलिए मैं न्यायपूर्ण बटवारे के लिए प्रयत्न करता हूँ।"

यह है वह आर्थिक समानता, जिसके बिना गांधी जी के अहिंसक

÷ Social Justice, § अपने ऊपर निर्भर रहने वाला, + Indusetrialisation, † मुख्य आधार, *Decentralisation of power.
+ Self-dependent decentralised Society.

स्वराज की कल्पना भी नहीं हो सकती। चाहे जो सरकार आवे, यदि उसे भारत में अहिंसक स्वराज की स्थापना करनी है, पहले तो आर्थिक समानता स्थापित करनी होगी।

आर्थिक समानता की दूसरी प्रणाली है, मार्क्सवादी प्रणाली। भारत के लिए इस प्रणाली की कोई स्पष्ट रूपरेखा सामने नहीं आई है। भारतीय समाजवादी पार्टी जिस मार्क्सवादी प्रणाली को लेकर चलती है, वह एक प्रकार से "व्यावहारिक गांधीवादी प्रणाली × राष्ट्रीयकरण + वर्ग-संघर्ष— ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त" है। अतः हम केवल रूस पर दृष्टि डाल कर ही यह देख सकते हैं कि क्या रूसी मार्क्सवादी अथवा स्टालिनवादी क्रांति और अर्थ-व्यवस्था भारत में सफल हो सकती हैं। मेरा अनुमान है, नहीं। इसके कारण हैं। हिंसक क्रांति के लिए भारतीय मस्तिष्क को तैयार करने में सदियाँ खर्च हो जावेंगी। और ग्राम-स्वराज को केन्द्र से कसकर बाँध लेने से भारतीय जीवन की ममता और उदारता को बहुत बड़ा धक्का लगेगा।

फिर भी चूँकि मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था का आदर्श नितान्त वैज्ञानिक और सर्व-सम्मत है, अतः उसे प्राप्त करने का यत्न न करना भारतीय जीवन की बहुत बड़ी अकर्मण्यता होगी। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए मार्ग गांधीवादी हो, यह एक अनिवार्य आवश्यकता भारत में बनती जा रही है। अतएव जब हम भारतीय राजनीतिक दलों के आदर्शों और कार्य-प्रणाली पर दृष्टि डालते हैं, तो भारतीय समाजवादी पार्टी को कर्मठ देखकर हर्ष होता है।

अब हम भारत की आर्थिक स्थिति पर विचार करेंगे। क्योंकि आज के संसार में आर्थिक समानता का तब तक कोई सफल महत्त्व नहीं, जब तक आर्थिक आत्मनिर्भरता न हो। पहले उत्पादन-शक्ति को लीजिये। भारत की उत्पादन-शक्ति प्रति व्यक्ति प्रति घण्टे के हिसाब से अमरीका की केवल ८ प्रतिशत, ब्रिटेन की १६ प्रतिशत तथा रूस और जापान की केवल ४० प्रतिशत है। यों आर्थिक दृष्टि से भारत चीन से कुछ अधिक समृद्ध है। कुछ दिन पूर्व १९५० की जनगणना के आधार पर यहाँ की राष्ट्रीय

आय का हिसाब ६५) वार्षिक प्रति व्यक्ति आया था। वर्तमान महँगी की दृष्टि से यह १५०) हो सकता है। किन्तु तब से इस औसत में ह्रास ही हुआ है। सन् १६३०-२ में हिन्दुस्तान की कुल राष्ट्रीय आमदनी २२०० करोड़ रुपये थी, जो वर्तमान मुद्रास्थिति के अनुसार ५००० करोड़ रुपये तक हो सकती है। आजकल कीमतों में ३०० प्रतिशत वृद्धि हुई है अतः आय में कोई वास्तविक वृद्धि नहीं हुई है। इसी कारण हमारे अर्थशास्त्री कुछ निराश से हो रहे हैं। किन्तु अर्थशास्त्रियों ने जो योजना बनाई है उसके अनुसार १५, २० वर्ष सौ प्रतिशत आय बढ़ाने में लग जायेंगे। इसके लिए ४० हजार करोड़ पूँजी की आवश्यकता होगी।*

व्यक्तिगत रूप से उद्योगपति न तो विदेशों से पूँजी का आयात ही करने को तैयार हैं न स्वयं पूँजी लगाकर इस उत्पादन-वृद्धि का उत्तर-दायित्व लेने को। अतः राज ही एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण रख सकता है। और उसके लिए राज समाजवादी होना चाहिये, व्यक्तिगत पूँजीवादी नहीं। सारी सम्पत्ति समाज की हो, तभी राज उसे उचित ढंग से विनियुक्त करके उत्पादन-वृद्धि कर सकता है।

उत्पादन और आर्थिक स्थिति पर विचार करने के पश्चात् केवल बँटवारे का प्रश्न रह जाता है। बस ठीक यहीं गांधीजी के ग्रामीण स्वराज का आश्रय लेना लाभदायक होगा। प्रत्येक गाँव के उत्पादन को बढ़ाकर आत्मनिर्भर बनाया जाय, और वहीं वितरण की समुचित व्यवस्था विकेन्द्रित रूप में हो। इतना होने के पश्चात् गांधीजी और मार्क्स दोनों युग-चिन्तकों द्वारा कल्पित राज-हीन अवस्था आजाती है। अन्तर यही है कि मार्क्स द्वार कल्पित अवस्था बहुत दिनों पश्चात् लाने की बात भारतीय समाजवादी सोच रहा है, जबकि गांधीजी आर्थिक उत्पादन और वितरण की समानता की ओर प्रथम चरण रखते ही ग्राम स्वराज स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु यह अव्यावहारिक है।

इस अर्थशास्त्रीय विवेचन के साथ भारतीय समाज में आर्थिक समानता की आवश्यकता, महत्त्व और साधनों पर यथेष्ट प्रकाश डाला जा

---

* डा० ए० के० दासगुप्ता के एक भाषण के आधार पर।

चुका है। उपसंहार रूप में हम यही कहना चाहते हैं, कि आज के मानव के सामने अर्थ-समस्या सर्व-प्रमुख है। प्रत्येक जीवित व्यक्ति इस युग की घोर आर्थिक विषमता से पीड़ित है, और प्रत्येक मननशील बुद्धिजीवी इस पर सोचता है, हल निकालने को व्याकुल है। उच्च वर्ग अचेतन\$ होता जारहा है, मध्यमवर्ग पिसता जारहा है और निम्नवर्ग का स्तर और जीवन दिन प्रतिदिन विद्रोह से भरता जारहा है। ऐसी दशा में भारत के समाज के कर्णधारों का यह प्रमुख कर्तव्य हो जाता है कि देश के अर्थ-उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को शीघ्र समानता-पूर्ण बनाने की ओर कदम बढ़ावें।

विस्तृत रूपरेखा

१—"Liberty, equalily and fraternity" का सिद्धान्त—i मानव-सभ्यता की तीन चिरन्तन कसौटियाँ। ii भारतीय-गणराज्य-विधान में भी वचन दिया गया है। iii स्वतन्त्रता की सीमाएँ। iv समानता की व्याख्या और स्वरूप निर्देश। v साधनों और अवसरों की समानता।

२—समता के विभिन्न स्वरूप—i सामाजिक समानता। ii राजनीतिक समानता। iii धार्मिक समानता। iv आर्थिक समानता।

३—असमानता की उत्पत्ति तथा मार्क्स की व्याख्या—i असमानता के मूल में मानव-स्वभाव और मानवी शक्ति का प्राकृतिक वैभिन्न्य। ii कुछ दयनीय विवशताएँ भी। iii भारतीय समाज की आर्थिक असमानता। iv उसके निर्मूलन के लिए भिन्न-भिन्न प्रयत्न। v मार्क्स का वर्तमान समाज पर दृष्टिकोण।

४—भारतीय आर्थिक असमानता के निर्मूलन की विभिन्न प्रणालियाँ—i वर्तमान दशा पर दृष्टि। ii तीन प्रमुख प्रणालियाँ। (a) गांधीवादी, (b) मार्क्सवादी, (c) समाजवादी। iii गांधीवादी अर्थ-नीति पर संक्षिप्त दृष्टि। iv गांधी के विचार। v सत्ता का विकेन्द्री-

\$ Unconcious.

करण और सामाजिक न्याय। vi अहिंसक स्वराज और आर्थिक समानता। vii मार्क्सवादी प्रणाली—भारत में अस्पष्ट एवं अप्रतिपादित। viii समाजवादी अर्थ-प्रणाली। ix मार्क्सवादी प्रणाली की असफलता की आशंका।

५—भारत की आर्थिक स्थिति का निदर्शन—i उत्पादन शक्ति—कुछ आँकड़े। ii आय का हिसाब और व्यक्तिगत पूँजी। iii वितरण की समस्या। iv भारतीय समाजवाद—एक हल।

६—उपसंहार—

३६—स्वतन्त्र-भारत में व्यक्ति की स्वाधीनता

संक्षिप्त रूपरेखा

१—व्यक्ति और समाज व्याख्या तथा सम्बन्ध। २—प्रारम्भिक मानव जीवन में व्यक्ति और समाज। ३—भारत की स्वतन्त्रता—एक समाज की स्वतन्त्रता। ४—भारतीय गणराज्य के विधान में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का विवेचन इनकी आलोचना। ५—व्यक्ति-स्वाधीनता के बिना राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता का कोई मानवी मूल्य नहीं—हिटलर, रूस। ६—भारतीय समाज में व्यक्ति का भविष्य और उस पर विश्व-शान्ति का उत्तरदायित्व। ७—उपसंहार।

निबन्ध—"Man is a Social animal"—अँग्रेजी का यह कथन व्यक्ति* और समाज† के आपस के सम्बन्ध की ओर बहुत कुछ संकेत कर देता है। व्यक्ति और समाज की व्याख्या पर सोचना बहुत अधिक परिश्रमसाध्य$ नहीं है; क्योंकि एक दूसरे का सम्बन्ध कारण और कार्य का है। यों तो प्रायः सभी मानवीय स्थापनाओं§ की भाँति समाज और व्यक्ति की व्याख्याएँ भी राजनीतिक, सामाजिक और दार्शनिक कई प्रकार की हो सकती हैं; किन्तु एक सीधी सादी और सर्वमान्य व्याख्या इन शब्दों

---

* Individual, † Society, $ श्रम द्वारा साधन किया जाने योग्य, § Human establishments।

की यही है कि 'व्यक्ति' उस चैतन्य × इकाई को कहते हैं, जिसका अस्तित्व एक मानव-शरीर में सीमित है। 'समाज' इन इकाइयों के एक समूह को कहते हैं, जिसकी कोई निश्चित सांख्यिक ÷ सीमा नहीं। यह व्याख्या वैयाकरणिक + भाषागत अथवा शाब्दिक चाहे जो कही जा सकती है। मैं इस सबसे अलग इसे व्यक्ति और समाज की जीवन-गत व्याख्या कहता हूँ। तो आप मुझसे व्याख्या-मात्र जानने की अपेक्षा कर रहे होंगे। यह बड़ा असम्भव है, कम से कम इस छोटे से निबन्ध में। क्योंकि जब राजनीतिक व्याख्या करूँगा, तो एक व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से क्या होता है, यह खोजना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि दार्शनिक व्याख्या की जावे तो अणुओं परमाणुओं के वैयक्तिक संघटन, आत्मा के विस्तार आदि न जाने कितनी ऐसी बातों में प्रवेश करना पड़ेगा, जहाँ मेरी लेखनी पर सेरों भार चढ़ जायगा, और आपकी आँखें दुखने लगेंगी। अस्तु,

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये मैं आपको मानव-जीवन के उषःकाल* की सैर कराना चाहूँगा। कल्पना कीजिये उस युग की जब मादा मानवी अफ्रीका के काँगरू† पशु की भाँति अपनी छाती से अपने बच्चे को चिपका कर जंगलों में घूमती होगी। जब माँ और सन्तान के अतिरिक्त व्यक्ति की अन्य इकाइयाँ सम्भवतः १५ मिनट से अधिक एकत्र नहीं रह पाती होंगी। वह युग सर्वाधिक व्यक्ति-प्रधान युग था। मैं इस बात की कल्पना करने में अपने आपको असमर्थ पाता हूँ कि कभी माता की इकाई और बालक (नवजात तथा साधनहीन शिशु) की इकाई भी १५ मिनट से अधिक एकत्र नहीं रहती हो। इसीलिये मैंने अत्यन्त आरम्भिक सामाजिकता$ बालक और माता की इकाइयों के एकत्र रहने में देखी है। इसका कारण स्पष्ट है। मानवी नवजात शिशु माता के आधार के बिना जीवित नहीं रह सकता, और माता चाहे सिंहनी ही क्यों न हो, अपने बच्चे का प्राण-पण से पोषण करती है। इसीलिये मैं उस

× Full of Conciousness, ÷ Numerical, + Grammatical, * Dawn of human life, † एक पशु विशेष, $ Primitive Society।

आरम्भिक युग की कल्पना कर लेता हूँ, जब मानव-समाज एक माता और एक बालक के अनेक पृथक्-पृथक् विभागों में बँटा होगा। आज मैं उसे समाज कह रहा हूँ, किन्तु वास्तव में उस युग के समाज की इन दो इकाइयों को यह अनुभव नहीं हो पाता होगा कि पिता रूपी वह तीसरा नर मानव× जो कभी-कभी १५ मिनट के लिये ही उनके समाज का प्राणी हो जाता है; वह भी एक तीसरी इकाई है; उस पर भी उनके जीवन और समाज का बहुत दूर तक अधिकार है।

काफी गम्भीर हो चला है मेरा विवेचन। और आपका कोमल मस्तिष्क फिर दुखने लगेगा, इसलिये आइये आपको मैं उस कल्पना—सुदूर कल्पना—के युग से बाहर ले आता हूँ। आइये, आगे बढ़कर इस युग में आइये जब वह पिता रूपी तृतीय मानव इकाई भी उस लघु समाज का एक प्राणी हो गया, फिर एक कुटुम्ब बन गया है। जीवित रहने की कला में सर्वाधिक निपुण मानव-प्राणी ने प्रकृति से संघर्ष करते-करते अपने समाज को विस्तृत बनाने में ही अपना हित देखा है, क्योंकि वह जानने लगा है कि दो निर्बल-सी भुजाएँ लेकर वह प्रकृति के भयानक जीवों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। उसने समूह बना कर रहना सीख लिया है। एक दूसरी इकाइयों की सहायता से अनेक साधन प्रसाधन* वह अपने जीवन के लिये जुटाने लगा है। कुछ मुखर† मानव इसे 'संस्कृति' और सभ्यता का नाम देकर पुकारने लगे हैं।

कल्पना की गाड़ी को कुछ और तेज कीजिये। हाँ, अब मानव-समाज की ओर देखिये। प्रकृति से संघर्ष करते-करते उसने सभ्यता सीखी, ठीक उसी प्रकार आपसी संघर्ष में वह राजनीति सीख गया है। उसने छोटे-छोटे राज्य कायम कर लिये हैं। अब वह पहले जैसा नितान्त स्वतन्त्र प्राणी नहीं रह गया है। अब उसका कुटुम्ब कुछ अधिक बड़ा होगया है। अब उसे बहुतों के लिये अपनी एक इकाई का हित छोड़ना पड़ रहा है। वह समाज के नियमों से बँध गया है। बस यहीं व्यक्ति और समाज का संघर्ष

× male human being, * सामग्रियाँ, † अधिक बोलने वाले (वाचाल)।

दृश्य‡ हो गया है। यहीं पर समाज में व्यक्ति की स्वाधीनता की बात पर विचार किया जाने लगा है। फिर आगे की ओर देख लीजिये—सभ्यता कितनी बढ़ गई कि आकाश, जल, थल सभी मानव के दास बन गये हैं। समाज कितना संगठित होगया कि सारे मानव-विश्व का एक राज्य बनाने की बात हो रही है; किन्तु यह व्यक्ति की स्वाधीनता का प्रश्न जो राज्य-संस्था* कायम होते समय छिड़ा था, आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है।

कुछ दिन पहले भारत में लोग व्यक्ति की स्वाधीनता की बात एकाध बार तभी करते हुए सुनाई पड़ते थे, जब किसी राजनीतिक कैदी को हैबियस कॉर्पस† द्वारा छुड़ाने की चेष्टा करनी होती थी। उस समय जो एक समाज—समूचे भारत—की स्वाधीनता की बात ही सुनाई पड़ती थी। किन्तु १५ अगस्त ४७ को यह सामाजिक स्वाधीनता राजनीतिक स्वतन्त्रता के रूप में आगई। और अब प्रश्न उठाया जा रहा है कि स्वतन्त्र भारत के समाज में व्यक्ति की इकाई की स्वाधीनता की क्या स्थिति होगी?

२६ जनवरी ५० को भारतीय गणराज्य की विधान-सभा ने स्वतन्त्र भारत का विधान घोषित कर दिया है। एक स्वतन्त्र मानव-समाज के विधान की भाँति इस विधान में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों$ की बात की गई है। ये अधिकार निम्नलिखित माने गये हैं—

१—समानता का अधिकार (Right to Equality)
(Constitution of India Art. 14 to Art. 18)
(भारत का विधान नियम १४ से नियम १८ तक)

२—स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)
—वही-नियम १९ से २३ तक

३—धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)
—वही-नियम २५ से २८ तक

---

‡ Visible, * Institution of the State, † पुलिस द्वारा गिरफ्तारी के विरोध में उचित विचार के लिये न्यायालय में प्रस्तुत की गई प्रार्थना, $ Fundamental rights।

४—सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार (Cultural and educational Rights)

—वही-नियम २६

५—साम्पत्तिक अधिकार (Rights to Property)

—वही-नियम ३१

६—वैधानिक उपायों के अधिकार (Rights to Constitution and Remedies)

—वही-नियम ३२

इन अधिकारों की मांग की बात १६२८ में ऑल पार्टीज कान्फ्रेन्स ने अपनी विधान-योजना में तथा १६३६ में काँग्रेस के एक प्रस्ताव में की गई थी। उस समय काँग्रेस ने इन्हें भारतीय विधान के मूलभूत आधार बनाने पर जोर दिया था। स्वतन्त्र भारत के विधान में इन मौलिक अधिकारों की पूर्ण व्याख्या की गई है और यथास्थान उन्हें अधिक व्यापक बनाने की भी चेष्टा की गई है। किन्तु इन अधिकारों को इतना दृढ़ नहीं किया गया है कि व्यक्ति अथवा अल्पमत व्यवस्थापिका के बहुमत की धाँधली को चुनौती दे सके। यों तो नागरिक अधिकारों की बड़ी लम्बी-चौड़ी व्याख्या और तस्वीर सामने रखी गई है, किन्तु उन सभी पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि प्रोफेसर के० टी० शाह के शब्दों में कहना पड़ता है कि "आखिर कौन से नागरिक अधिकारों की गारण्टी दी गई है, उसे जानने के लिये बहुत शक्तिशाली दूरबीन की जरूरत है।"

इन सभी अधिकारों की विस्तृत आलोचना तो बहुत अधिक समय और स्थान की अपेक्षा रखती है किन्तु साधारण ढंग से हम कह सकते हैं कि मौलिक अधिकारों के विषय में हमारा विधान काफी उदार तो है, किन्तु साथ ही अनुदार भी इतना है कि सारे दिये हुए अधिकार को एक पंक्ति द्वारा छीन लेता है। जैसे विधान-परिषद् ने एक बार निश्चित किया था कि "उचित कानूनी तरीके* के बिना कोई व्यक्ति भी अपनी जिन्दगी या स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकता।" पर बाद को मसविदा

* Due process of law ।

कमेटी ने यह संशोधन कराया कि "उचित कानूनी तरीके" के स्थान पर "कानून द्वारा निश्चित विधि"† शब्दों का प्रयोग किया जाय। इस परिवर्तन से सारी फसल पर पाला गिर जाता है। "उचित कानूनी तरीके" (Due process of Law) के रहने से किसी कानून के अनौचित्य पर भी न्यायालय विचार कर सकता था। अमरीका के विधान में यही है किन्तु "कानून द्वारा निश्चित विधि" (Prscedure laid down by law) कर देने से भारतीय विधान ने न्यायालय का वह अधिकार छीन लिया है। इस प्रकार शासन चाहे जैसे कानून बना कर न्यायालय से उसका पालन करा सकता है और फलतः व्यक्ति स्वातन्त्र्य को बहुत बड़ी हानि हो सकती है। इसी प्रकार 'हैवियस कार्पस' के विषय में तथा धर्म और जाति-सम्बन्धी असमर्थता के विषय में हमारे विधान द्वारा प्रदत्त† अधिकार बड़े निर्बल हैं।

भारतीय विधान में व्यक्ति की इस चर्चा को मैंने इसलिए आपके सामने रखा है कि भविष्य में स्वतन्त्र भारत एक सर्व-सम्पन्न* गणराज्य की भाँति रहेगा, जिसमें मानवी समानता, बन्धुत्व और स्वतंत्रता† का मूल्य किसी भी वस्तु से अधिक है। यदि गांधी जैसे फकीर बादशाह द्वारा जगाया हुआ यह देश अपने जिस विधान में मानवीय भावों की कद्र नहीं कर सकता, तो निश्चित है कि वह विधान अपूर्ण है। भारत का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि व्यक्ति-स्वतन्त्र्य जितनी उदारता के साथ प्रयुक्त किया जाता है, देश के नागरिक उतनी अधिक उत्तरदायित्व की भावना लेकर अपनी संस्कृति और सभ्यता का निर्माण और उन्नयन करते हैं।

बिना व्यक्ति-स्वाधीनता के राजनीतिक ही नहीं आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता का भी कोई मानवी मूल्य नहीं। इतना कहा जा सकता है कि इस व्यक्ति-स्वाधीनता का अर्थ यदि कोई अराजकता अथवा परपीड़न का अधिकार लेना चाहे, तो अवश्य ही उसका प्रतिरोध समाज

---

† Prscedure laid dowr by law, † दिये गये, * Fullfledged, † Equality, fraternity and Liberty।

और राज्य को करना पड़ेगा। किन्तु यदि कोई राज्य अथवा राज्यारूढ़ दल राजनीतिक और आर्थिक उन्नति के लोभ दिखाकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अपहरण करता जाये, तो उस समाज से मानवता का तो कोई कल्याण होना असम्भव ही है; अपितु वह समाज अथवा राज्य स्वयं भी अवश्यमेव विनाश्य है। जर्मनी के फासिज्म का सद्यतम× उदाहरण हमारे सामने है। और अब वर्तमान कालीन राजनीति में एक नये युग का, नवीन समाज-व्यवस्था का सूत्रधार होते हुए भी रूस को भी ऐसे ही दुर्भाग्य का सामना करना पड़ रहा है। जिसके कारण विश्व की प्रायः सभी प्रगतिशील शक्तियाँ उसे सन्देहास्पद दृष्टि से देख रही हैं। यदि अमरीकी साम्राज्यवाद का भयानक पिशाच मानव-समाज के सामने न होता, तो निश्चित है कि रूस को विश्व की ईमानदार प्रगतिशील शक्तियों का खुला विरोध सहना पड़ता। हम देख रहे हैं कि आज एक ओर साम्राज्यवाद मानव-सभ्यता और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को निगलने को बैठा है, दूसरी ओर साम्यवाद का चोला पहनकर रूसी साम्यवादी साम्राज्यवाद।

जैसा भारत के समाजवादी नेता डा० राममनोहर लोहिया ने कहा है कि 'ये दोनों शक्तियाँ एक मनोवृत्ति के दो पहलू बनते जारहे हैं।' इनका एकमात्र ध्येय रह गया है कि पाश्चात्य सभ्यता की विरासत† किसके हाथ रहे। ये उस सभ्यता का पल्ला पकड़े बैठे हैं, जिसमें ममता नहीं। क्या भारत का स्वतन्त्र गणराज्य अपनी मानवी ममतामयी आत्मिक परम्परा को भूलकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अपहरण करके इन दो शक्तियों में से किसी एक को अपना सर्वस्व समर्पित कर देगा? ऐसा हो जाने से क्या हम पुनः अपनी स्वाधीनता खो देने के खतरे में नहीं पड़ जायेंगे?

वास्तव में तथ्य यह है कि संसार के सारे युद्ध व्यक्ति की स्वाधीनता की भित्ति पर टिके होते रहे हैं। एक समाज दूसरे समाज के व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए ही युद्ध करता है। तो क्या हम यह भी कह सकते हैं कि यदि भारत अपनी आन्तरिक व्यवस्था में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में अत्यन्त उदार बनकर बाह्य परिस्थिति को भी उसके महत्त्व से

× हाल का ही, † Heritage of the westrn Culture.

आक्रान्त करने की चेष्टा करके अपने आदर्शों के अनुकूल एक तृतीय विश्व-शक्ति का संगठन करे तो हमारा मानवी लक्ष्य पूरा हो सकता है।

मैंने आपको यह बताने की चेष्टा की है कि व्यक्ति और समाज की स्वतन्त्रता की उलझन, बढ़ते-बढ़ते विश्व-युद्धों तक पहुँच लेती है। भारत अपनी अहिंसक परम्परा द्वारा इस उलझन की वर्तमान परिस्थिति को बहुत कुछ सुलझा सकता है। अब उपसंहार स्वरूप मैं आपको इतना और कहना चाहता हूँ, कि स्वतन्त्र भारत में व्यक्ति की स्वाधीनता का अर्थ समाज-द्रोह और देश-द्रोह कभी नहीं होगा। चाहे आज का विधान ही लागू रहे, चाहें आगे आने वाले दलों द्वारा यह संशोधित और परिवर्तित हो जावे। यह तो निश्चित है कि आज भारत दो संस्कृतियों के लम्बे जीवन-अनुभव के संधि-स्थल* पर खड़ा है। अपनी परम्परा के अनुकूल वह व्यक्ति के महत्त्व और उसकी स्वाधीनता का प्रसाधन शक्तिभर करेगा, किन्तु साथ ही उसे इतना नहीं बढ़ने देगा कि उसकी चरम किसी हिटलर को जन्म दे डाले और 'बहुजन हिताय'$ का ध्येय अपूर्ण रह जाये।

स्वाधीन भारत का व्यक्ति भविष्य में समाज-रूपी वृक्ष का एक ऐसा लहलहाता हुआ पत्ता बनकर रहेगा, जो अपनी इच्छानुसार हिल डुल सकता है, किन्तु अपना जीवन-रस वृक्ष की समाजीकृत† जड़ों से ही ग्रहण करे; तथा समूचे वृक्ष की संगठित छाया शक्ति में अपना उचित योग दे।

विस्तृत रूपरेखा

१—व्यक्ति और समाज : व्याख्या तथा सम्बन्ध—i व्यक्ति चैतन्य की एक इकाई, समाज ऐसी अनेक इकाइयों का समूह। ii यह जीवन-गत व्याख्या है।

२—प्रारम्भिक मानव-जीवन में व्यक्ति और समाज—i माता मानवी और बालक तक समाज की सीमा। ii फिर पिता भी सम्मिलित। iii धीरे-धीरे कुटुम्ब-प्रथा का स्थापन। iv प्रकृति से संघर्ष और समूह-

* Cross road, $ बहुमत के हित के लिए, † Socialised।

जीविता का बीजारोपण । v राज्य का स्थापन : आपसी संघर्ष । vi सभ्यता का उत्कर्ष, प्रकृति पर अधिकार ।

३--भारत की स्वतन्त्रता और व्यक्ति-स्वाधीनता—i एक सामूहिक स्वतन्त्रता । ii गणराज्य का विधान और मौलिक अधिकार । iii आलोचना–उदार किन्तु क्रियात्मक अनुदारता ।

४—व्यक्ति-स्वाधीनता के अभाव में समाज—i मानवी मूल्यों से हीन । ii विनाश्य–जर्मनी । iii सोवियट रूस का दुर्भाग्य ।

५—भारतीय समाज में व्यक्ति का भविष्य और विश्व-शान्ति—i विश्व-शान्ति की समस्या । ii भारतीय ममतामयी और आत्मिक सभ्यता । iii पाश्चात्य समाज से भिन्नता । iv व्यक्ति के उचित अधिकार ही विश्व-शान्ति के मूल ।

६—उपसंहार—i व्यक्ति-स्वाधीनता का अर्थ देश-द्रोह और समाज-द्रोह नहीं होगा । ii 'बहुजनहिताय' का आदर्श ।

३७–आदर्श नेता

विस्तृत रूपरेखा

१—आदर्श नेता का तात्पर्य—i वास्तविक नेतृत्व करने वाला । ii उन्नत करने की ओर । iii दोषों से रहित, बुरा प्रभाव न पड़े । iv नेतृत्व का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करने वाला–अन्य अच्छे नेता क्षेत्र में आवें ।

२—नेता की आवश्यकता—i प्रत्येक क्षेत्र (राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, शिक्षा, व्यापार, साहित्य) में नेता की आवश्यकता । ii एक या कुछेक व्यक्ति ही पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, अन्य उनका अनुसरण करेंगे । iii संगठन, विकास, अभिवृद्धि, उन्नति के लिए नेता की आवश्यकता । iv विचार विशेष के प्रदर्शन हेतु, निर्णय कराने के हेतु, दृष्टिकोण उपस्थित करने के लिए (शिष्ट-मण्डल आदि में नेता गण) ।

३—आदर्श नेता के गुण—i चिन्तनशील- नेता का कार्य पथ-प्रदर्शन का है, यदि गलत मार्ग निर्धारित होगया तो बहुत बुराई की सम्भावना है। ii पक्षपात रहित, पार्टीबाजी से मुक्त, त्यागी। iii कर्मठ, लगन का पक्का, आत्म-प्रशंसा से दूर रहने वाला। iv अपने सिद्धान्त पर दृढ़, दृष्टिकोण को दृढ़ता और स्पष्टता से उपस्थित करने वाला। v चारित्रिक गुण--अनुयायियों के सम्मान के उपयुक्त। vi विशाल हृदय, विस्तृत दृष्टिकोण, भविष्यद्रष्टा। vii जीवन का स्तर, रहन-सहन की प्रणाली आदि में कुछ विशिष्टता। viii कठिनाइयों में दृढ़, अत्याचार का सामना करने को प्रस्तुत, त्याग, बलिदान की भावना।

४—कार्यक्षेत्र—i नेता का क्षेत्र विशेष होता है--समाजवादी, मार्क्सवादी, रहस्यवादी कवि, आर्यसमाजी नेता। ii अपने क्षेत्र में लगन और सचाई के साथ काम करे। iii नेता का कार्य मार्ग-प्रदर्शन कर देना है, उसको क्रियान्वित करने के लिए अनुयायियों की आवश्यकता है। iv नीति-निर्माण, अपने सिद्धान्तों के संघर्ष, महत्त्वपूर्ण निर्णय कराने आदि में अग्रसर।

५—आदर्श नेताओं के उदाहरण जैसे—i अब्राहम लिंकन--अमेरिका में महत्त्वपूर्ण कार्य। ii लेनिन--साम्यवाद का स्तंभ। iii प्रसाद--आधुनिक रहस्यवाद का हिन्दी में प्रचारक। iv गांधी--भारतीय स्वतन्त्रता का निर्माता। v शंकराचार्य--हिन्दू-धर्म का अधिष्ठाता। vi जयप्रकाश नारायण--समाजवाद के नेता। vii स्वामी दयानन्द--आर्यसमाज के संस्थापक। इनके चरित्रों की एक-एक विशेषताओं के उदाहरण। कुछ अन्य जैसे जवाहर, पटेल, सुभाष आदि। अन्य क्षेत्रों के भी।

६—भारत के नेता—i प्रायः धार्मिक नेताओं का प्रभुत्व रहा था। ii कुछ सामाजिक नेता--आधुनिक कालीन--दयानन्द, राममोहन प्रभृति। iii आज के राजनैतिक नेता--कांग्रेस, समाजवाद, राष्ट्र-संघ, हिन्दू-सभा, साम्यवाद। iv आदर्श नेताओं की परिकोटि में--अनेक।

v कुछ गुण--लगन के सच्चे रहें, राजनीतिक नेताओं पर अत्याचार, उनके द्वारा किये गये त्याग और बलिदान, जेलों के कष्ट, समाज में विद्रोह, जनता के विरोध, सरकार का टेढ़ा रुख, प्रतिपक्षी की कठोरता आदि में सिद्धान्तों पर दृढ़ रहना।

७—हमारे नेता कैसे हों—i आदर्श नेता के गुणों से परिपूर्ण। ii कर्मण्य--हमारे साथ आगे चलने वाले। iii हमारे जीवन में एकीकरण; समदृष्टि। iv गांधीजी के सिद्धान्तों और प्रणालियों से अनेक गुण ग्रहण करने वाले। v हमारी सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा के उन्नायक।

३८-गांधीवाद और हम

विस्तृत रूपरेखा

१—वादों का युग—साहित्य में, राजनीति में, आर्थिक क्षेत्र में--रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, साम्यवाद, समाजवाद, एकतन्त्रवाद, पूँजीवाद, मार्क्सवाद आदि।

२—गांधीवाद—हमारे देश के आदर्शों का संकलन—i विश्व-प्रेम की भावना--अहिंसा। ii राजनीति और आध्यात्मिक तत्त्वों का समन्वय--आत्मा की शुद्धि, साम्प्रदायिकता का परित्याग। iii आर्थिक--घरेलू-धन्धे, खादी, मशीनों के प्रतिकूल। iv मौलिक शिक्षा (Basic Education)--शिक्षा को आत्म-निर्भर बनाना, भविष्य की तैयारी। v सुन्दर भावनाएँ--सत्य, सेवा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, विश्वास—'अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह'। vi अहिंसा और सत्य मेरुदण्ड--मनसा, वाचा, कर्मणा इनका परिपालन।

३—हमारी समस्याओं को हल करने की क्षमता—i भारतीय स्वतन्त्रता गांधीवाद की देन, (a) विश्व की सद्‌भावनाएँ देश के प्रति, (b) अहिंसा-पूर्वक असहयोग--हमारे साधन और आदर्शों के अनुकूल, (c) समन्वय की भावना। ii शैक्षणिक--बुनियादी तालीम,

मौलिक शिक्षा- अविद्या और दरिद्रता को भगाने का साधन । इसमें अधिक प्रगति नहीं हुई, अन्य रूप सामने आरहे हैं ! iii आर्थिक—खादी और चर्खा—पूँजीवाद के विरुद्ध, घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन—जीवित मशीनों का पोषण, उन्नति का मूल ग्रामोद्योग ही हैं। iv सामाजिक—हरिजन आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण सर्वत्र प्रेम और समानता, स्त्री और पुरुषों को उन्नति की समान सुविधाएँ, साम्प्रदायिकता का अन्त, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य । v धार्मिक—भारतीय परम्परा के अनुकूल, ईश्वर में अटल विश्वासमय नियमों का पालन, परम वैष्णव भावना, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे' संकीर्तन का आधिक्य—रामधुन 'ईश्वर-अल्लाह' ।

४—हमारी कुछ नवीन समस्याएँ—i अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ, युद्ध के बादल । ii आर्थिक समस्याएँ—खाद्यान्न, वस्त्र, अन्न । iii विज्ञान की ओर—अन्य राष्ट्रों की तरह । iv नवीन विचारधारा—पूँजीवाद के विरुद्ध, साम्यवादी विचार । v भौतिकता प्रधान सभ्यता के द्वारा प्रभावित जन-समुदाय । vi सभ्यता का बाह्य भड़कीला रूप, विचार-संघर्ष तथा नवीन विचारधाराएँ ।

५—हम—i नवीन समस्याओं के कारण अनेक कठिनाइयों में । ii गांधीवाद के लिए उच्च आदर्शों की आवश्यकता, हम उस स्तर तक नहीं उठ सकते हैं । iii नवीन विचार हमें अत्यधिक प्रभावित कर रहे हैं तथा उनका दबाव भी हमारे ऊपर आरहा है । iv गांधीजी के सिद्धान्तों को भुलाकर स्वार्थ-साधन में लगे हुए कार्यकर्ताओं द्वारा लोगों में असन्तोष । v केवल सिद्धान्त के रूप में छोड़कर क्रियात्मक रूप अलग बना लिया है—यम, नियमों का पालन केवल कल्पना की बात । vi गांधी की सेवा भावना को छोड़ हम स्वार्थ की ओर अग्रसर हैं । vii आध्यात्मिकता को छोड़ भौतिकता की ओर जा रहे हैं ।

६—उपसंहार—i गांधीवाद और विश्व समस्याएँ । ii गांधीजी की

महत्ता, उनका सन्देश और उसके पालन में हमारी क्षमता। iii गांधीवाद तथा साम्यवाद का संघर्ष, (a) गांधीवाद–प्राचीन के प्रति सद्भावना, सम्मान, मानव के प्रति सहानुभूति, हृदय-तत्त्व, (b) साम्यवाद–प्राचीन के प्रति उपेक्षा, असम्मान, वर्तमान रूप-विज्ञान से प्रेम, बौद्धिक तत्त्व। iv व्यावहारिक रूप में गांधीवाद। v हम और हमारा देश किस ओर ?

३६–हिन्दुस्तान-पाकिस्तान

विस्तृत रूपरेखा

१—मूल में भावना—i हिन्दू-मुस्लिम द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त। ii अँग्रेजों की विभाजित कर शासन करने की नीति। iii साम्प्रदायिक भावनाएँ। iv अँग्रेज विचारकों द्वारा जन्म—हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का उपाय। v स्वतन्त्र सभ्यता, संस्कृति, भाषा आदि के विकास की भावना। vi हिन्दुओं के बहुमत से भय (इस्लाम खतरे में)। vii अँग्रेजों की राजनीति का परिणाम।

२—विभाजन की घोषणा और दुष्परिणाम—i अराजकता–संक्रान्ति-काल के भीषण चित्र। ii शरणार्थी और पुनर्निवास-समस्याएँ। iii कठोरतम साम्प्रदायिकता की भावनाएँ, जनसंख्या का इधर-उधर होना। v सर्वदा के लिए शत्रुता का बीजारोपण। vi दोनों देशों में अनेक प्रश्नों पर खींच-तान।

३—दोनों की समस्याएँ—i निष्कासन, पुनर्निवास की गम्भीरतम बात। ii सम्पत्ति-विभाजन-सम्बन्धी। iii रक्षा-समस्याएँ–आन्तरिक और बाह्य, फौज का खर्चा। iv अन्य देशों से सम्पर्क और उनमें अपना स्थान। v काश्मीर आदि के प्रश्न। vi अनेक बातों का पुनः स्वतन्त्र विकास करना।

४—पाकिस्तान-हिन्दुस्तान की अलग-अलग कठिनाइयाँ—i सम्पूर्ण देश

का एकीभूत विकास हुआ था, अब अलग-अलग करना । ii विभाजन अवास्तविक हुआ है । iii पाकिस्तान—कपड़ा, कोयला, लोहा, कल-कारखाने आदि के लिए असहाय । iv हिन्दुस्तान—रुई, जूट, अन्न की भारी कमी । v मध्यम-वर्ग के लिए अत्यधिक कठिनाइयाँ ।

५—समस्याओं का हल—i दोनों देश के नेताओं द्वारा अनेक सुझाव, (a) निष्क्रान्त सम्पत्ति सम्बन्धी, (b) कच्चे और बने माल सम्बन्धी, (c) खाद्य-वस्तु सम्बन्धी, (d) आवागमन सम्बन्धी । ii काश्मीर आदि प्रश्नों को निपटारे के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ के प्रयत्न; पारस्परिक सम्मेलन । iii पारस्परिक आदान-प्रदान, ईमानदारी के साथ भले पड़ोसियों का-सा व्यवहार । iv विदेशी सत्ताओं के बहकावे में न आना, विशेषतः रूस तथा अमेरिका के प्रभावों से दूर । v शुद्ध हृदय से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार आवश्यक ।

६—अनेक विचार—i अखण्ड भारत की भावना—प्रकृति ने भारत एक सम्पूर्ण रूप में बनाया, उसके टुकड़े करना प्रकृति के विरुद्ध कार्य हुआ । भारत का विकास सम्पूर्ण रूप से हुआ अब अलग-अलग होना है । ii दोनों देशों का एकीकरण अति कठिन है, अपनी-अपनी समस्याओं को सुलझाना चाहिये । उदाहरण के लिए भारत खाद्यान्न, रुई, जूट आदि का प्रबन्ध करे और पाकिस्तान कपड़ा, कल-कारखानों आदि की ओर जावे । iii सम्पूर्ण मुस्लिम प्रान्त एक हो जाय—ऐसा सम्भव दिखाई नहीं देता । पख्तूनिस्तान का कठिन प्रश्न सामने है । iv हिन्दी, उर्दू, दोनों संस्कृतियों के विकास की अधिक सम्भावना-यह बात भी विचारणीय है ।

७—उपसंहार—पारस्परिक सद्भावना की परम आवश्यकता ।

४०–समाजवाद तथा साम्यवाद

विस्तृत रूपरेखा

१—इन वादों की आवश्यकता— i पूँजीवाद के दोष, (a) व्यक्ति विशेष की (पूँजीपति की) स्वार्थपरता, (b) लूट, मजदूरों पर अत्याचार, (c) अन्तःकलह, श्रमिकों और धनिकों में, (d) साम्राज्यवाद, (e) देश के विद्रोह की भावना, (f) दासता, गरीबी, बेकारी आदि। ii वर्तमान वातावरण, (a) समानाधिकार की भावना, (b) पूँजीवाद के प्रति विद्रोह, (c) मजदूर श्रमिकों का संगठन, (d) औद्योगीकरण की वृद्धि। iii अनेक प्रस्तुत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दोषों का निराकरण।

२—अन्य वाद—i लोकतन्त्र, ब्रिटेन और अमेरिका के पूँजीपतियों द्वारा, शासन जनसाधारण की इच्छानुसार निर्वाचन आदि द्वारा। साम्राज्य-वाद की भावना। वास्तविक रूप में उत्तम है। ii फासिस्टवाद—अधिनायकशाही, निरंकुशता (इटली)। iii नाजीवाद—झुकाव राष्ट्रीयता तथा समाजवाद की ओर, किन्तु साधारण हितों को घातक। iv आज के युग में जनमत इनके विरुद्ध जारहा है।

३—समाजवाद—i उत्पादन और विभाजन व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय के लिए। ii समाजीकरण का सिद्धान्त। iii उत्पादन के अनुसार बटवारा, आवश्यकतानुसार किया जाना। iv कुछ गुण—उत्पादन बाहुल्य, बटवारे की समानता स्वार्थपरता के स्थान पर सच्चाई, दरिद्रता का अन्त, बेकारी का अन्त, वास्तविक लोकतन्त्र, सबको समान अवसर। v कुछ दोष—कल्पना का आधिक्य, वस्तु-विषय से अपरिचय, बौद्धिक विकास में बाधा, कलात्मक ज्ञान के विकास में बाधा, चरित्र-निर्माण में, मशीनों के प्रयोग में वृद्धि, संगठन दोषपूर्ण आदि। vi प्रमुख नेता—जयप्रकाश नारायण (म० गांधी के अनुसार समाजवाद को सच्चे रूप में जानने वाले) राम मनोहर लोहिया,

आदि । vii भारत में प्रचार--नगरों में शाखाएँ, पत्र, देश में विचारधारा की लहर ।

४—साम्यवाद—i रूस का प्रभाव--मार्क्स, लेनिन आदि की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था । ii संसार में प्रभाव--रूस, चीन आदि देशों में विचारधारा सर्वत्र । अमेरिका, ब्रिटेन आदि की चिन्ता । iii साम्य-वाद समाजवाद की तीव्र प्रगति है इसमें बोलशेविज़्म और हिंसा भी अपनाये जा सकते हैं । iv व्यक्ति का राष्ट्र में एकीभूत होना--कठोरता । v प्रचीनता के प्रति--उपेक्षा, असम्मान, नवीनता में विश्वास । vi जनता की रुचि किस ओर ?

५—भारत में समाज, गांधी, साम्य आदि वादों के रूप - i गांधीवाद--सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त, वर्तमान रूप, ii समाजवाद--समाजीकरण का सिद्धान्त, भारत में प्रचार, नेताओं के निश्चित कार्यक्रम में कमी । iii साम्यवाद--भारतीय संस्कृति के विरुद्ध, आधुनिक समाज के प्रतिकूल पड़ता है, किन्तु नवीन विचारों में व्याप्त है ।

६—भारत की समस्याओं को हल करने का उपयुक्त मार्ग निकालना है और जो कार्यक्रम इसे पूरा करता है, वही वाञ्छनीय रूप ग्रहण करने योग्य है ।

३१—प्रान्तीयता

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रान्तीयता का अभिप्राय—i प्रान्त विशेष के प्रति प्रेम--बंगाली, गुजराती, मदरासी, स्कॉच, आइरिश आदि । ii वेश, भूषा, वाणी, भोजन, भाषा की रुचिविशेष और उनके प्रति प्रेम तथा अन्य के प्रति कुत्सित भावना । iii प्रान्त-विशेष में कुछ अन्तर, (a) बोलने के लहजे में, (b) भाषा के प्रयोग में, (c) सामाजिक, पारिवारिक, रहन-सहन, आचार-विचार में । iv सहानुभूति का संकुचित क्षेत्र ।

२—प्रान्तीयता की भावना—i भारत में ही नहीं संसार के अन्य देशों में भी पाई जाती है। इङ्गलिश स्कॉच का सर्वदा मज़ाक बनाते रहे हैं। ii प्रान्तीय भावना के कारण, (a) प्रान्त विशेष के लोगों का एक-सा जीवन, भाषा, विचार आदि, (b) पारस्परिक सम्बन्ध की घनिष्ठता; (c) अनेक अवसरों पर सम्प्रदाय विशेष के लिए लाभकारी। iii भारतवर्ष में इसका रूप, (a) बँगाली, मदरासी आदि में प्रान्तीयता, (b) हमारे तीर्थ-स्थान इसको कम करने के लिए थे। (c) भाषा की एकता भी इधर सहायक होगी, (d) भाषा के अनुसार प्रान्त विभाजन, (e) कुछ कटुता अवश्य है।

३—प्रान्तीयता के कुछ रूपों का दिग्दर्शन—i दूसरे प्रान्त वालों की बुराई, उनके व्यवहार, भाषा, बोली की त्रुटियाँ, 'सकूल का एक सटूडेन्ट सटेशन पर सटेशन मास्टर से बातें कर रहा था'; 'इसकूल, इसटूडेन्ट' तामिल भाषा बोलने के लिए एक लोटे में कंकड़ डालकर हिलाओ, बँगाली मोशा आदि। ii अपनी भाषा का प्रयोग--उन सभी स्थानों पर जहाँ वह समझी जा सकती है। iii प्रान्त विशेष की वेशभूषा--विशेष अवसरों पर पारसी टोपी, राजस्थानी साफा, पंजाबी सलवार, मदरासी पगड़ी। iv सामाजिक रीति-रिवाज द्वारा।

४—प्रान्तीय भावना की हानियाँ—i राष्ट्रीयता में रुकावट। ii संगठन का अभाव, प्रान्त के व्यक्ति अलग-अलग। iii देश की रक्षा, संस्कृति के विकास, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में प्रान्तीयता से हानि। योग्य व्यक्तियों की उन्नति में बाधक। v भाषा आदि के प्रश्नों में जटिलता, राष्ट्रभाषा का प्रश्न कठिनाई से हल हो पाया। vi एक राष्ट्र में अनेक प्रान्तीय भावनाएँ होने से राष्ट्र का विकृत रूप।

५—कुछ दलीलें—i प्रान्तीयता से वैयक्तिक तथा सामूहिक विकास होने में सुगमता होती है। ii प्रान्त के प्रति बहुत कुछ भलाई हो सकती है, यदि प्रान्त विशेष उन्नत होंगे तो राष्ट्र भी उन्नत हो जायगा। iii मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक गुण है—इस भावना का उन्मूलन कठिन है।

३—भावना का वाञ्छनीय रूप—i प्रान्त विशेष सब प्रकार से उन्नति करें। ii सामान्य प्रश्नों पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण हो—जैसे भाषा का प्रश्न, व्यापार का प्रश्न, नियुक्तियों के प्रश्न। iii सरकार द्वारा उच्च कर्मचारियों द्वारा प्रान्तीयता की भावना बिलकुल प्रयुक्त न हो। iv हमारा संयुक्त संगठन, एक आवाज, एक शक्ति और एक आदर्श हों।

साहित्यिक तथा शैक्षणिक निबन्ध

४२—हिन्दी प्रचार के साधन

संक्षिप्त रूपरेखा

१—हिन्दी का वर्तमान स्तर और प्रचार की आवश्यकता।

२—प्रचार के साधन।

(a) प्रस्तुत साधन—i संस्थाएँ। ii पत्र-पत्रिकाएँ। iii अन्य सामयिक साहित्य। iv परीक्षाएँ। v चित्रपट। vi वाचनालय, पुस्तकालय, आदि।

(b) वांछनीय साधन—i प्रोत्साहन। ii नित्य प्रति के व्यवहार में। iii चित्रपट, रेडिओ, सरकारी कार्यप्रणाली में हिन्दी का वास्तविक रूप। iv कुछ सुधार।

३—भविष्य।

निबन्ध—स्वतन्त्र भारत में हिन्दी का स्थान, विधान-परिषद्* द्वारा, सर्वदा के लिये निश्चित हो चुका है। एक समय था जब हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के पक्ष में अनेक तर्कों की आवश्यकता होती थी, और फिर भी यह प्रश्न विचारणीय-सा ही रहता था। राजकीय भाषा के रूप में हिन्दी का भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय था, विदेशी सरकार अपनी भाषा का परित्याग किस प्रकार करती, और अन्य भाषा भाषी समुदाय भी अपने-अपने मतों का प्रतिपादन+ करते थे। वे सम्पूर्ण बातें अब समाप्त हो गईं—हिन्दी ही हमारे राष्ट्र की भाषा है और इसी भाषा में सम्पूर्ण राज-

* वह संस्था जिसके द्वारा भारत का विधान प्रस्तुत हुआ, + समर्थन।

काज होगा; हाँ, कुछ समय के लिये एकमात्र रूप में यह पिछड़ा दी गई है किन्तु हम देखते हैं कि दिन-प्रतिदिन हिन्दी का प्रचार बढ़ता जारहा है और राज्य के अनेक कार्यालयों तथा कर्मचारियों द्वारा हिन्दी का प्रयोग किया जारहा है। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक हो जाता है कि यथा-सम्भव हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार हो जिससे यह भाषा लोगों के अत्यन्त निकट पहुँच सके और हिन्दी-भाषी प्रान्त ही नहीं अन्य प्रान्त भी सुख-पूर्वक इस भाषा का उपयोग कर सकें‡। एक प्रकार से यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो हमें अधिक विचार उन्हीं लोगों में करना है जिनका सम्पर्क* हिन्दी से अब तक 'न' के बराबर रहा है। इन प्रान्त के लोगों में हिन्दी के अधिकाधिक प्रचार की आवश्यकता है और वे सभी साधन उपलब्ध† करने हैं जिनके द्वारा वे लोग यह न कह सकें कि कोई भाषा बलात्$ उनके ऊपर लादी गई है। हिन्दी का पक्ष समर्थन करते समय पहले कहा जाता था कि हिन्दी-भाषा के बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है अतएव यही भाषा राष्ट्र-भाषा होने की अधिकारिणी है—किन्तु अब तो हमें इस बात पर ध्यान देना है कि अधिक लोगों की नहीं वरन् सभी लोगों की भाषा हिन्दी बने। प्रान्तीय भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र में अपने रूप-स्वरूप का विकास कर सकती हैं। किन्तु इस बात को सभी लोग हृदय से, एक स्वर में कह सकें कि हिन्दी ही हमारी राष्ट्र-भाषा है। साथ ही हिन्दी के द्वारा किया गया राज्य-कार्य सुविधापूर्वक चल सके। अँग्रेजी काल में प्रान्तीय भाषाएँ तो थीं ही किन्तु अँग्रेजी एक ऐसी भाषा थी जो भारत में सर्वत्र व्यवहृत§ थी और इसके द्वारा सम्पूर्ण देश एक सूत्र में बँधा हुआ था। वही कार्य हिन्दी को भी करना है। इतना ही नहीं, हिन्दी तो यहाँ के जनसमुदाय की भाषा है, केवल राज-भाषा ही नहीं अतएव इसका प्रचार और प्रसार अपेक्षाकृत कहीं अधिक होना है।

हिन्दी-प्रचार के हेतु अनेक साधन तो प्रस्तुत हैं—किन्तु वे जिस रूप में हैं उसमें अनेक परिवर्तन करने की आवश्यकता है तथा उन्हें अधिका-

---

‡ काम में ला सकें, * सम्बन्ध, † प्राप्त, $ बलपूर्वक, जबरदस्ती, § काम में आना।

धिक विस्तृत बनाना है। हिन्दी-प्रचार का कार्य अनेक संस्थाएँ कर रही हैं और पिछले दिनों जिस संलग्नता एवं कार्यकुशलता से इन संस्थाओं ने हिन्दी की सेवा की उसी के परिणामस्वरूप हिन्दी को आज यह स्थान प्राप्त हुआ है। इनमें सब से प्रमुख 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' है जिसने अपना दीर्घकालीन‡ जीवन हिन्दी के प्रचार में व्यतीत किया। साथ ही इसके पीछे की 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' नाम की संस्था है जिसने प्रचार-कार्य बड़ी द्रुत-गति‡ से किया। सम्मेलन की अनेक शाखाएँ भी हैं, और हिन्दी के प्रचार हेतु इस संस्था का नाम सुवर्णाक्षरों में अंकित होना चाहिये। दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार समिति ने दक्षिण में हिन्दी की ज्योति प्रदीप्त की जिसके प्रकाश में दक्षिण भारत के लोग हिन्दी का रूप देख उसे अपना सके। दक्षिण के लोगों को जहाँ हिन्दी सीखने में कठिनाई पड़ती है वहाँ उनका हिन्दी-प्रेम भी श्लाघ्य× है। अनेक लोगों ने केवल राष्ट्रीय विचार से हिन्दी सीखी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त और अनेक नगरों में हिन्दी-प्रचार के हेतु कर्तव्य-परायण संस्थाएँ हैं जिनके द्वारा बहुत कुछ कार्य हुआ है। एक वह भी समय था जब इन हिन्दी संस्थाओं की ओर अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्वानों का ध्यान तनक भी न जाता था, परन्तु आज इन्हें सभी का सहयोग प्राप्त है।

किसी भी भाषा के प्रचार में सामयिक साहित्य+ का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस दृष्टि से जब हम देखते हैं तो हमें परम सन्तोष होता है क्योंकि सामयिक साहित्य में हिन्दी अग्रगण्य+ ही है। अनेक दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों द्वारा हिन्दी के प्रचार को सहयोग मिल रहा है। प्रायः सभी कोटि* के पत्र प्रकाशित होरहे हैं। प्रचार की दृष्टि से कहानी मासिक तथा चित्रपट सम्बन्धी पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इस प्रकार का साहित्य अधिक लोगों द्वारा पढ़ा जाता है और भाषा विशेष से उनका सम्बन्ध दृढ़तर† होता है। इस प्रकार के पत्रों की

‡ लम्बे, ‡ तेजी, × प्रशंसा के योग्य, + किसी समय विशेष पर प्रकाशित होने वाला साहित्य, आजकल का साहित्य, + आगे गिनी जाने वाली, * प्रकार, † अधिक दृढ़।

प्रतिदिन वृद्धि होरही है और रेलवे के पुस्तक-कक्षों$ पर बड़ी तन्मयता के साथ लोग अपना चुनाव करते देखे जाते हैं। हो सकता है यह वेग सत्साहित्य की वृद्धि में अधिक सहायक न हो किन्तु प्रचार की दृष्टि से इसकी अवहेलना§ नहीं की जा सकती।

इनके अतिरिक्त अन्य साहित्य भी प्रकाशित हो ही रहा है। पिछले दिनों उपन्यास तथा कहानी-साहित्य का बड़ा जोर था, किन्तु इधर यह प्रवृत्ति मन्द हो चली है और साहित्य के सभी अंगों पर लेखकों का ध्यान गया है। साहित्यिक कृतियाँ यथेष्ट मात्रा में प्रस्तुत हुई हैं यद्यपि यह विचारणीय है कि साहित्यिक-अध्ययन को वे कितना आगे बढ़ा सकीं। नाटक, एकांकी, जीवन चरित, यात्राएँ, आलोचना, कविता, निबन्ध, प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य सभी में एक गति देखी जारही है और इनके द्वारा उच्च श्रेणी के लोगों को हिन्दी के अधिकाधिक निकट लाया जारहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों प्रकार के वर्गों को सामग्री प्राप्त हो रही है, और इसके द्वारा हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है।

हिन्दी की परीक्षाओं ने हिन्दी के प्रचार में बहुत सहायता की है। इन परीक्षाओं को स्त्री-पुरुष सबने अपनाया है। विशेष रूप से स्त्री वर्ग में इन परीक्षाओं के कारण हिन्दी का बहुत प्रचार हुआ है। पंजाब की हिन्दी परीक्षाएँ तो लड़कियों को बहुत ही प्रिय रही हैं। रत्न, भूषण और प्रभाकर ये ऐसे नाम हो गये हैं जो प्रत्येक शिक्षित गृह में सम्मान के साथ लिये जाते हैं। अपेक्षाकृत उच्चकोटि का साहित्य-प्रचार करने में सम्मेलन परीक्षाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—अब तो इन परीक्षाओं में इतने अधिक परीक्षार्थी बैठते हैं कि किसी भी हिन्दी-प्रेमी को अत्यन्त अभिमान हो सकता है। बोर्ड और यूनिवर्सिटीज़ ने हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्तियों के लिये जो सुविधाएँ दीं हैं उनसे इन परीक्षाओं का प्रसार बहुत अधिक हुआ और साहित्य-अभिरुचि से प्रेरित होकर भी इन परीक्षाओं को अपनाया गया। इन दो परीक्षा-संस्थाओं के अतिरिक्त अनेक अन्य

$ बुक स्टॉल, § ध्यान न देना।

संस्थाएँ भी हैं और इनके द्वारा भाषा और साहित्य दोनों के प्रचार में बहुत कुछ काम हुआ है।

प्रचार की दृष्टि से चित्रपटों × का उपकार भी हमें मानना पड़ेगा। यह ठीक है कि उनके द्वारा साहित्यिक प्रचार + अथवा अच्छी हिन्दी के प्रचार में अधिक सहायता नहीं मिली, फिर भी व्यावहारिक हिन्दी का जितना प्रचार इनके द्वारा हुआ है वह उल्लेखनीय है। हिन्दी-भाषी प्रान्तों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में अनेक लोगों ने चित्रपटों के लिये ही हिन्दी सीखी। सुदूर दक्षिण के द्रविड़-भाषा भाषी प्रान्त बड़े उत्साह और तन्मयता ÷ के साथ हिन्दी के चित्रपटों को देखते हैं और इस प्रकार हिन्दी के साथ उनका सम्पर्क बढ़ता है। देश भर में सर्वत्र चित्रालय* हैं और उनमें प्रतिदिन चित्रों को प्रदर्शित किया जाता है जिन्हें देखने सभी प्रकार का समाज आता है। साथ ही इनसे सम्बन्धित अन्य साहित्य भी प्रकाशित होता है जिसे बड़ी रुचि के साथ पढ़ा जाता है। इस बात को देखकर भविष्य के लिये अच्छी आशा होती है कि अब दिग्दर्शक तथा निर्माताओं का ध्यान इस ओर भी है कि वे अच्छी हिन्दी का ही प्रयोग करावें। निर्देशकों† तो सर्वदा इसी पक्ष के रहे हैं—इनमें से हमें उन व्यक्तियों को निकाल देना चाहिये जिन्हें हिन्दी के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम नहीं हैं। कुछ चित्र, विशेषतः धार्मिक, इस प्रकार के निर्मित हुए भी हैं।

हिन्दी के वाचनालय एवं पुस्तकालय बहुत समय से इस ओर प्रयत्नशील हैं और उनकी बढ़ती हुई सदस्य-संख्या इस ओर किये गये उनके प्रयत्न का प्रमाण है। एक बात अवश्य माननी पड़ेगी कि इन संस्थाओं में अधिक उत्साह दृष्टिगोचर नहीं होता। न तो पुस्तकों की संख्या ही वेग से बढ़ती है और न सदस्य-संख्या ही—गतिशीलता की कमी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। इसके अनेक कारणों में एक यह भी है कि आजकल सार्वजनिक संस्थाओं के स्थान में व्यक्तिगत पुस्तक-संग्रह की ओर लोगों का ध्यान अधिक है। समाचार-पत्र भी अलग मँगवा लिये जाते हैं। हाँ,

---

× सिनेमा, + इस प्रसंग में चित्रपट से सम्बन्धित अन्य निबन्ध देखिये। ÷ ध्यान, * पिक्चर पैलेस, † डाइरेक्टर।

परीक्षार्थी इन संस्थाओं से अधिक लाभान्वित$ होते हैं। जनसाधारण इतने अधिक नहीं। कुछ अन्य संस्थाएँ भी हैं जैसे नाट्य समितियाँ, कवि-गोष्ठियाँ, साहित्य समाज आदि और इनकी समय-समय पर की गई सेवाओं से अवश्य ही हिन्दी को कुछ लाभ होता है।

ऊपर जो साधन बताए गए वे व्यवहार की दृष्टि से यथेष्ट प्रतीत होते हैं। यदि उनमें कुछ परिवर्तन एवं सुधार कर दिये जावें तो उनके द्वारा और भी अधिक कार्य हो सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से उतने सफल नहीं रहते जितने अन्य। यद्यपि उनका स्थान अवश्य स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु व्यावहारिक रूप में हिन्दी-परीक्षा में उत्तीर्ण युवक अपना भविष्य उतना उज्ज्वल नहीं देख पाता। इस ओर सरकार को दत्तचित्त हो कार्य करने की आवश्यकता है। जब राज्य की भाषा हिन्दी स्वीकृत हो चुकी है तब इन परीक्षाओं में पास व्यक्तियों को उच्च से उच्च स्थान का अधिकारी समझना चाहिए। इसके साथ ही एक त्रुटि जो पढ़े-लिखे लोगों की ओर से हो रही है वह यह है कि हम लोग अपने नित्य प्रति के व्यवहार में केवल हिन्दी का ही प्रयोग नहीं करते। पत्र-व्यवहार, निजी कार्य, सभी हिन्दी में ही होने चाहिएं। अब भी कुछ लोग अँग्रेजी के रूप-लावण्य से इतने मोहित हैं कि उसे छोड़े नहीं बनता। जहाँ कार्य न चले वहाँ असमर्थता है, किन्तु अधि-काधिक मात्रा में हिन्दी का ही उपयोग होना चाहिए। रेडिओ, चित्रपट सरकारी कार्य प्रणाली में हिन्दी का सच्चा रूप व्यवहृत करें। यदि इन स्थानों से हिन्दी का रूप सुधारा जायगा तो वास्तव में उसका परिणाम बड़ा व्यापक* होगा। रेडिओ पर जो प्रोग्राम जिस भाव में आते हैं उसमें अधिक से अधिक सुधार होना चाहिये। चित्रपटों के निर्माता भी हिन्दी के प्रति अपना कर्तव्य न भूलें। सरकारी कार्यालयों में ध्यानपूर्वक इस ओर प्रयत्नशील हुआ जाय और केवल लिपि ही नहीं वरन् भाषा भी हिन्दी ही होनी चाहिये। कुछ लिपि सम्बन्धी सुधार भी आवश्यक प्रतीत होते हैं। ऐसे सुधार जिनसे हिन्दी शीघ्रतापूर्वक सीखी जा सके तथा

$ लाभ पाना, * विस्तृत, फैला हुआ।

लिखने और टाइप करने में सरलता हो बहुत ही आवश्यक हैं। लिपि-विशेषज्ञ इस ओर प्रयत्नशील हैं और यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में ही उनकी व्यावहारिक योजनाएँ† इस कमी को पूरा कर देंगी। भाषा का रूप लगभग स्थिर हो चुका है—जो भी प्रवृत्तियाँ इस रूप को विकृत* करना चाहें उन्हें रोकना चाहिये।

सभी प्रकार से हिन्दी का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई देता है और ऐसी आशा होती है कि हिन्दी का प्रचार स्वतः ही द्रुतगति$ से होगा। प्रत्येक क्षेत्र में कार्य हो रहा है और वह समय दूर प्रतीत नहीं होता जब हम एक स्वर से हिन्दी को अपने देश की एकमात्र सार्वजनिक भाषा कह सकेंगे।

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दी का वर्तमान स्तर—i राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल हो चुका। ii राज्य भाषा स्वीकार की जा चुकी। iii भारत की सभी भाषाओं में अग्रणी। प्रचार की आवश्यकता—i राष्ट्रीय दृष्टि से। ii व्यावहारिक दृष्टि से। iii हिन्दी को उसके स्थान की सच्ची अधिकारिणी प्रमाणित करने की आवश्यकता। iv हिन्दी के अत्यधिक महत्त्व की रक्षा करने के लिए।

२—प्रचार के साधन—i संस्थाएँ—(a) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस की बहुत काल से की गई सेवाएँ। (b) हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा उसकी शाखाओं द्वारा किया गया प्रचार, प्रकाशन तथा परीक्षाएँ। (c) दक्षिण भारत की हिन्दी संस्था और द्रविड़-भाषा भाषी प्रान्तों में प्रचार। (d) अन्य प्रान्तीय तथा नगर की संस्थाएँ और उनका प्रचार-कार्य। ii पत्र-पत्रिकाएँ—(a) दैनिक-समाचारों के हेतु। (b) साप्ताहिक तथा मासिक--साहित्यिक कहानी

---

† वे योजनाएँ जो काम में आ सकें, * विरूप, खराब, $ शीघ्रता से।

तथा चित्रपट सम्बन्धी, अन्य विषयों से सम्बन्धित। प्रत्येक विषय का प्रतिपादन। iii सामयिक साहित्य—(a) पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त अन्य उपन्यास, कहानी, कविता, यात्रा, जीवनचरित, आलोचना, नाटक आदि। (b) स्थायी साहित्य तथा दैनिक पत्र। iv परीक्षाएँ—(a) पंजाब--रत्न, भूषण, प्रभाकर। (b) साहित्य सम्मेलन—विशारद, साहित्य रत्न तथा अन्य। (c) अन्य प्रान्तों की शिक्षा-संस्थाएँ। (d) बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों द्वारा उनकी मान्यता। (e) साहित्य प्रेम से तथा परीक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के कारण लोगों का आकर्षण। v चित्रपट --(a) प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नगरों में चित्रालय। (b) हिंदी के चित्रपटों का निर्माण। (c) सभी वर्गों को आकर्षण। (d) हिंदी के संबंध—अन्य प्रान्तों में चित्रों को देखने की लालसा—हिंदी-प्रचार। (e) इनमें प्रयुक्त हिन्दी का रूप परिष्कृत होने की आवश्यकता। (f) व्यावहारिक हिन्दी का प्रसार। vi वाचनालय पुस्तकालय—(a) अपेक्षा कृत गतिहीनता। (b) परीक्षार्थियों को लाभ। (c) जन-साधारण की रुचि स्वतंत्र व्यक्तिगत पुस्तकालय बनाने की ओर। (d) समाचार पत्रों को व्यक्तिगत मँगाना। (e) उन्हें आकर्षक तथा संग्रह अधिक मूल्यवान बनाने की आवश्यकता। वाञ्छनीय साधन—i हिन्दी का स्थान किसी भी भाषा से नीचा न रहे। ii हिन्दी परीक्षा पास विद्यार्थी सभी सुविधाएँ प्राप्त करें। iii आर्थिक दृष्टि से हिन्दी की परीक्षायें किसी भी व्यक्ति को निरुत्साहित न करें। iv परीक्षाएँ सर्वत्र मान्य हों। v नित्यप्रति के व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग हो। अँग्रेजी का प्रयोग कम किया जाय—केवल तभी जब आवश्यकता हो। vi चित्रपट निर्माता वास्तविक हिन्दी का प्रचार करें। vii रेडियो द्वारा अच्छी हिन्दी का प्रचार हो, किसी भी अवस्था में हिंदी का अहित न हो। viii सरकारी कार्यालयों में यथासाध्य अधिकाधिक हिन्दी का प्रयोग हो। उसका रूप सुस्थिर रहे।

३—भविष्य—हिन्दी का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है और निकटतम भविष्य

में सच्चे रूप में वास्तविक स्थान की अधिकारिणी होगी। इस ओर संलग्नता एवं अध्यवसाय की अत्यन्त आवश्यकता है।

४३—हिन्दी के राष्ट्र-कवि और उनकी कविता

संक्षिप्त रूपरेखा

१—राष्ट्र-कवि की परिभाषा। २—हिन्दी के राष्ट्र-कवि का निर्णय—गुप्तजी। ३—गुप्तजी की राष्ट्रीयता तथा अन्य प्रवृत्तियाँ। ४—उनके काव्य की दिशाएँ—विश्लेषण। ५—उनके काव्य के बाह्य उपादान। ६—अमरता। ७—शैली—अलंकार और भाषा।

किसी भाषा का 'राष्ट्र कवि'* किस कवि को कहा जाय, इसके लिए विशेष दृष्टियों की आवश्यकता होती है, उन दृष्टियों को हिन्दी पर आरोपित करने के पूर्व उन पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है।

प्रत्येक महाकवि अथवा श्रेष्ठतम कवि उसी प्रकार 'राष्ट्र-कवि' नहीं कहा जा सकता, जैसे प्रत्येक नेता अथवा श्रेष्ठतम राजनेता 'राष्ट्रपिता' नहीं कहला सकता। जिस प्रकार राष्ट्र-पिता बनने के लिए केवल राज-नेतृत्व की शक्ति की नहीं, एक ऐसी वात्सल्य और उदार ममता की आवश्यकता होती है, जो सारे राष्ट्र के निवासियों पर एक सी फैले। ठीक उसी प्रकार राष्ट्र-कवि बनने के लिए केवल श्रेष्ठ काव्य-प्रतिभा ही नहीं, एक ऐसी साधना और ऐसे सन्देश की आवश्यकता है, जो राष्ट्र की आत्मा का स्वर हो, जिसके बल पर राष्ट्र की संस्कृति मुखर हो सके। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी-अपनी अलग नैतिक, आध्यात्मिक और भौतिक मान्यताएँ होती हैं। अमरीका में तीन पत्नियों को तलाक देने वाला व्यक्ति भले ही राष्ट्रपति हो सकता हो, ब्रिटेन में देवताओं का-सा जीवन व्यतीत करने वाला चर्चिल भले ही भाग्य-विधाता प्रधान बन सकता हो, किन्तु भारत जैसे आत्म-प्रधान देश की जनता किसी योगी और विरागी को ही राष्ट्रपिता बना सकती है जिसने मानवता और चरित्र के लिये सब कुछ त्याग दिया हो

* Poet of the nation।

यह वह देश है जहाँ बिरागी गौतम बुद्ध समस्त राजवंशों पर शासन करते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस देश की परम्पराएँ और मान्यताएँ पूर्णतया निराली हैं। यही बात काव्य-क्षेत्र में भी है। कविता में यह देश साधना को जितना महत्त्व देता है, उतना वैभव और शान को नहीं। यहाँ का राष्ट्र-कवि वही हो सकता है, जिसकी साधना मानवता की साधना हो। जिसके साथ चरित्र और संस्कार का आध्यात्मिक बल$ हो, जिसकी प्रतिभा राष्ट्र की आत्मा में प्रवेश कर गई हो। ऐसे कवि के काव्य-गुण और काव्य प्रतिभा और कवियों से श्रेष्ठ भले ही न हो।

राष्ट्र-पिता और राष्ट्र-कवि का इस प्रकार का निर्णय भारत और हिन्दी के लिए कभी कठिन नहीं रहा है। एक स्वर से गान्धी को सारे देश ने राष्ट्र-पिता मान लिया है। सारा विश्व उन्हें भारत के राष्ट्र-पिता के नाम से जानता है। वे ४० करोड़ भारतीयों को पुत्रवत् प्यार करते थे, यही पिता की विशेषता होती है। हिन्दी को भी राष्ट्र-कवि का निर्णय करने में किसी विवाद-ग्रस्त विचार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। महाकवि तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त निर्विवाद रूप से हमारे राष्ट्र-कवि हैं। यद्यपि काव्य-गुणों और काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से उनसे श्रेष्ठ कवि हिन्दी में विद्यमान हैं, और रहे हैं, किन्तु राष्ट्र-कवि की जो कसौटी है उस पर वीरगाथा काल से लेकर आजतक की हिन्दी-कविता में महात्मा तुलसीदास और महाकवि मैथिलीशरण को छोड़कर अन्य कोई कवि नहीं खरा उतरता। यदि आप यह झगड़ा करें कि राष्ट्र-कवि एक भाषा के दो कैसे हो सकते हैं ? तो मैं पुनः आपको अपनी निवेदित कसौटी की ओर ले जाना चाहूँगा। मैंने कहा है, कि जिस कवि की कविता, साधना और सन्देश† राष्ट्र-जीवन का समग्र रूप से मुखरित प्रतिनिधि हो, वही राष्ट्र-कवि है। ऐसे कवि एक समय में भी दो हो सकते हैं। हम इतने सौभाग्यशाली तो नहीं हुए कि हमारे यहाँ एक समय में एक से अधिक राष्ट्र-कवि हो सकते, किन्तु यह हमारे सौभाग्य का विषय है कि हमने

$ Spiritual efficiency. † Message.

हिन्दी के भक्तिकाल और आधुनिक काल में इन दो कवियों की रचना में वे तत्त्व पाये हैं, जिनसे उन्हें राष्ट्र-कवि कहा जा सकता है। यदि आप यह कहें कि तुलसी के युग में भारत एक राष्ट्र में उतना संगठित नहीं था, जितना आज का भारत, और न हिन्दी उस समय राष्ट्र-भाषा ही थी। अतएव तुलसी को युग विशेष के प्रतिनिधि कवि कहना ही उचित है, राष्ट्र-कवि नहीं। न उतनी राष्ट्रीय भावनाएँ उनके काव्य में मिलती हैं। उसमें तो सामन्ती सभ्यता का चरम विकास अवश्य चित्रित मिलता है। इन कथनों में मैं आपसे सहमत हूँ। ठीक इन्हीं कारणों से इस निबन्ध का विषय मैं तुलसी की कविता को नहीं बना पारहा हूँ और स्पष्टतया कहा जा सकता है कि तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि भले ही हों, राष्ट्र-कवि की दृष्टि से वे मैथिलीशरण की समता नहीं कर पाते हैं। अन्य आधुनिक कवियों से इस विषय में स्पर्धा करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि सभी आधुनिक महाकवियों से अधिक स्पष्ट और उदार सन्देश और संस्कृति-चित्र तथा राष्ट्र का जीवन मैथिलीशरण ने ही उतारा है।

भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्र्य-संग्राम में उनकी लेखनी ने जितना कार्य किया है, भारत-भारती ने जो चिनगारी नवयुवकों के हृदयों में उत्पन्न की थी, उससे उसी समय उनका राष्ट्र-कवि का भविष्य निर्मित हो चुका था, और फिर स्वतन्त्रता-संग्राम के अन्तिम संघर्ष में जेल-यात्रा ने रही-सही कसर पूरी कर दी। आज वे हिन्दी के निर्विवाद राष्ट्र-कवि हैं।

गुप्तजी की कविता पर विचार करने के लिए तो यह अवसर बहुत ही अपर्याप्त है। गुप्तजी का साहित्य इतना विस्तृत और मार्मिक है कि उनका अध्ययन तो शोध का विषय है। इस छोटे से निबन्ध में मैं उनकी कविता की केवल उन्हीं प्रवृत्तियों की ओर संकेत करूँगा, जिनके फल-स्वरूप वे अपने को राष्ट्र-कवि की गौरवास्पद पदवी पर आसीन कर सके हैं। गुप्तजी को देखने पर जो सर्व प्रथम विचार मस्तिष्क में आता है, वह है उनकी ग्रामीणता और भारतीयता। भारत की प्राचीन संस्कृति का ऐसा नवयुगीन मसीहा गांधी भी था। कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसे गुप्तजी गांधीजी के साहित्यिक संस्करण हों। ठीक वैसी ही मानवता जो गांधी में थी, गुप्तजी

में भी दिखाई देगी। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी उनकी मानवता को 'आश्रमवासिनी मानवता' कहते हैं। वास्तव में 'आश्रमवासिनी मानवता' तो गान्धी की मानवता थी। गुप्तजी की मानवता तो 'ग्रामवासिनी मानवता' है। गान्धी का दार्शनिक और सामाजिक आदर्श था:—'रघुपति राघव राजा राम। सबको सन्मति दे भगवान्।' गुप्तजी का साहित्यिक आदर्श था।'

> 'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
> कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।'*

अथवा—

> 'राम, तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या ?‡

गुप्तजी के काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन यदि विस्तृत रूप में किया जावे, तो समय और स्थान की अधिक आवश्यकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं, कि उनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति तो मानवता का आदर्श, और संस्कृति की उपासना रही है। 'भारत-भारती' के जागरण-छन्दों में उनकी राष्ट्रीय और सामाजिक प्रवृत्तियों का अच्छा आभास मिलता है। वे प्रारंभ से ही दैववादी हैं, किन्तु उनका प्रेम दैव से भी अधिक मानव से है। दैव से तो प्रार्थना ही कर सकते हैं—

> "मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती,
> भगवान्! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।'$

किन्तु मानव से वे पुरजोश शब्दों में कह सकते हैं।

'हे ब्राह्मणो! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।' आदि—

—भारत भारती

या फिर बड़ी ही उत्तेजना में मानव के आत्मसम्मान को जगाते भी हैं—

> "अपनी प्रयोजन-पूर्ति क्या हम आप कर सकते नहीं।
> क्या तीस कोटि मनुष्य अपना ताप हर सकते नहीं ?

*-‡ साकेत से उद्धृत, $ भारतभारती से।

क्या हम सभी मानव नहीं, किंवा हमारे कर नहीं।
रो भी उठें हम तो बने क्या अन्य रत्नाकर नहीं।†

यदि श्री सत्येन्द्रजी के अध्ययन पर विश्वास करें, तो गुप्तजी के काव्य की छह दिशाएँ मानी जा सकती हैं —

(१) राष्ट्रीय (२) महाभारत सम्बन्धिनी (३) रामचरित सम्बन्धिनी (४) बौद्धकालीन (५) सिक्ख तथा अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित (६) पौराणिक।

भारत-भारती राष्ट्रीय उत्तेजना का अपूर्व काव्य है। बड़े सुन्दर व्यंग्यों द्वारा और प्रतारणा द्वारा सोये हुए राष्ट्र को जगाने की चेष्टा गुप्तजी ने इस रचना द्वारा की है। अतीत का स्वर्ण-गौरव दिखला कर वर्तमान की दुर्दशा का जो चित्र कवि ने दिया है, वह बहुत अधिक उत्तेजक है। भविष्य की कल्पना गुप्तजी नहीं कर पाये। सम्भवतः उनकी कल्पना समाज की निर्मात्री कल्पना नहीं है। जैसा एक लेखक ने कहा भी है, कि गुप्तजी समाज की उत्पत्ति हैं, निर्माता नहीं।' भारत-भारती में स्वर्ण-भविष्य के चित्र का अभाव इस कथन की सचाई को प्रकट करता है।

इसके पश्चात् उनकी राष्ट्रीय उत्तेजना का काव्य जयद्रथ-वध है। इस काव्य में ओज एवं दृढ़ता अधिक है। यद्यपि इस काव्य को हम राष्ट्रीय दिशा का काव्य नहीं कह पायेंगे, यह महाभारत से सम्बन्धित एक प्रबन्ध-काव्य है। 'अनघ' एक ऐसा काव्य है, जो गीति-नाट्य के ढंग पर विश्व-विचारिणी प्रवृत्ति का प्रभाव बतलाता है। इस काव्य की प्रेरणा तो राष्ट्रीय ही है, लक्ष्य अवश्य सार्वभौम × हो गया है। सत्येन्द्रजी के अनुसार इसमें 'गान्धीजी का एक बौना चित्र (Miniature picture) उपस्थित किया गया है:—

न तन-सेवा, न मन-सेवा, न जीवन और धन-सेवा।
मुझे है इष्ट जन-सेवा, वही सच्ची भुवन-सेवा॥

इसके उपरान्त किसान, काबा और कर्बला आदि रचनाएँ भी राष्ट्रीय प्रेरणा से ही उद्भूत हैं।

---

† भारत-भारती से, × Cosmopolitan.

महाभारत-सम्बन्धिनी अनेक कथाएँ गुप्तजी ने अनुलिखित की हैं। जयद्रथ-वध, द्वापर मुख्य है। द्वापर में कोई विशेष कथा-क्रम नहीं है। व्यक्तियों का कोई प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं है। सब अपने-अपने विचार सामने रखते जाते हैं। लम्बे संवाद द्वारा दार्शनिकता का निरूपण प्रत्येक पक्ष करता। इस काव्य में कई स्थल बड़े ही मार्मिक हैं। यह शैली भी गुप्तजी की नवीन शैली है, जिसका श्रेय ही उन्हें है।

रामचरित-सम्बन्धिनी कृतियाँ गुप्तजी की अमर कृतियाँ हैं। 'पंचवटी' की कला और साकेत का महाकाव्यत्व हिन्दी के गौरव की वस्तु हैं। 'पंचवटी' में वातावरण का चित्रण हिन्दी-खड़ीबोली-कविता की बहुत बड़ी सफलता है।

"चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रहीं हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर तल में॥"$

'साकेत' में गुप्तजी की कला अपने चरम पर पहुँची है। 'साकेत' हिन्दी के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में से है। इसमें प्रबन्धात्मकता को गीतात्मकता ने दबा दिया है। छायावादी युग का प्रभाव गुप्तजी की इस रचना पर स्पष्ट है। यह काव्य वास्तव में 'उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रहे' इस उद्देश्य को लेकर प्रारम्भ किया गया था, किन्तु 'साकेत मेरी अन्तिम कृति हो' ऐसी आशा लेकर चलने वाले कवि ने साकेत में अपनी सारी कला का उच्चतम वैभव संजो देने का प्रयत्न किया है। फलतः बड़ी उच्चकोटि की कला-भूमि है इस काव्य की।

बौद्धकालीन साहित्य गुप्तजी का प्रौढ़तम साहित्य है। 'यशोधरा' काव्य-कला की दृष्टि से उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। यशोधरा की शैली और कला की उच्चता के साथ-साथ उसमें जिन भावनाओं का चित्रण किया गया है, वे इतनी मार्मिक हैं कि 'यशोधरा' एक शाश्वत काव्य* होगया है नारी के विरह का घनतम चित्र साकेत में मिल जाता है। उर्मिला के आँसुओं से साकेत की प्रत्येक पंक्ति गीली है, किन्तु नारी में आत्म-सम्मान भी है, "अर्द्ध-विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।" कहने वाली

$ पंचवटी से, * Etenal"poem, I

भारतीय गौरवशीला पतिव्रता राहुल-जननी बुद्ध की भगवत्शक्ति का भी तिरस्कार कर सकती है। वह पुरुष की चेरी तो अपने को कह लेती है, किन्तु अपने सम्मान को ठेस नहीं लगने देती। बुद्ध का स्वागत करने को अपने कक्ष से बाहर न निकलना एक नवीन जीवन का सञ्चार दिखाई पड़ता है नारी की रगों में। जिस कक्ष में बुद्ध छोड़ गये थे, उसी में आकर यशोधरा को मनावें, यह मानिनी का हट था और उसकी तपस्या और साधना के फलस्वरूप "शुद्ध बुद्ध भगवान्" ने आकर उसके सामने झोली पसारी, और मानिनी का मान छुड़वाया। 'यशोधरा' के चरित्र को बहुत अधिक ऊँचा उठा दिया है गुप्तजी ने। बुद्ध की झोली में राहुल का दान देकर उसने नारी के सच्चे गौरव का प्रमाण दिया है।

ऐतिहासिक कथानकों को लेकर जितने काव्य गुप्तजी ने लिखे हैं, उन सभी में कुणाल का स्थान बहुत ऊँचा है। बड़ी मार्मिकता है इनकी पंक्तियों में। पौराणिक घटनाओं में 'द्वापर' तो श्रेष्ठ है ही, नहुष और सिद्धराज की भी कीमत कम नहीं।

इन सबके अतिरिक्त एक अन्य दिशा भी है गुप्तजी की कविताओं की। वह उनकी अपनी दिशा तो नहीं है, किन्तु दूसरों का प्रभाव होते हुए भी उसमें मौलिकता काफी है। वह दिशा है 'झंकार' के गीतों की दिशा। सम्भवतः छायावाद के प्रभाव से कुछ गीत गुप्तजी ने लिखे।

एक संक्षिप्त दृष्टि उनके काव्य-भाण्डार पर डाल कर हम उनके काव्य के बाह्य उपादानों पर भी एक दृष्टि डाल लेना चाहते हैं। गुप्तजी स्पष्ट रूप से आदर्शवादी हैं, कला को कला के लिये कभी नहीं मानते। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि कला जीवन के लिये है। साकेत में अपना मन्तव्य उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकट भी किया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये—

"मानते हैं जो कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही॥
होरहा है जो जहाँ वह होरहा।
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?

किन्तु होना चाहिये कब क्या कहाँ ?
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ ॥"*

इस मान्यता की छाप उनके सारे साहित्य पर है। 'झंकार' के कुछ गीतों को छोड़कर उन्होंने आत्म-व्यंजक कविताएँ कहीं नहीं लिखीं। सर्वत्र जीवन के बीच में खड़े होकर उसके एक-एक छिपे हुए अंश को उठा-उठा कर बताते गये हैं।

अमरता की दृष्टि से गुप्तजी के काव्य में बहुत कुछ मिलता है। उनकी समस्याओं में से अधिकांश शाश्वत हैं। एक बार मैंने अपने एक मित्र को कहते सुना था कि "यदि मैथिलीशरण केवल इन्हीं दो पंक्तियों को लिखते,

"अबला-जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"†

तो सम्भवतः उतने ही अमर कवि होते, जितने वे आज हैं। इस कथन की अतिशयोक्ति पर तो नहीं, किन्तु प्रेरक आत्मा पर अवश्य मैं सहमत हूँ। कुछ ऐसी पंक्तियाँ गुप्तजी के काव्य में मिलती हैं, जो बहुत संक्षिप्त में बड़े मार्मिक ढंग से जीवन के किसी बहुत बड़े सत्य को व्यंजित करती हैं। ये दो पंक्तियाँ भी उन्हीं में से हैं। साकेत में और विशेषकर यशोधरा में ऐसी अनेक पंक्तियाँ मिलती हैं जैसे

"तू परिवर्तनशील उन्होंने कितनी बार कहा है।
फूला दिन किस अन्धकार में डूबा और बहा है॥"

आदि।

गुप्तजी की शैली इतिवृत्तात्मक रही है। साकेत में आकर अवश्य गीतात्मकता की प्रवृत्ति उनमें जागी, और वह फिर बढ़ती ही गई। किन्तु वे कभी भी विशुद्ध गीति-कवि नहीं हो सके, काव्य की प्रणाली की ही दृष्टि से नहीं, शैली की दृष्टि से भी।

अलंकारों का उपयोग गुप्तजी ने भरपूर किया है। उन्हें वैसे अधिक साज-सज्जा और गहनता अपने काव्य में पसन्द नहीं है, इसीलिये प्रसाद और पन्त की अपेक्षा उनकी कविता में अलंकार बहुत ही कम मिलते हैं।

* साकेत से, † यशोधरा से।

किन्तु व्यंजना-प्रधान-सा है उनका व्यक्तित्व और ठीक वैसा ही होगया है काव्य। अत्यन्त सीधी-सादी भाषा में बड़ी गम्भीर व्यंजना गुप्तजी के काव्य की विशेषता है।

कहीं-कहीं चित्र इतने सम्पूर्ण और आकस्मिक हैं, कि कवि की कल्पना और वाणी के सामंजस्य पर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है; उदाहरणार्थ—

"पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी।"\$

कितना सजीव और गतिपूर्ण चित्र है।

गुप्तजी की भाषा सदैव ही सशक्त रहती है। अनेक शैलियों में सफलता के साथ रचना उनकी इस शक्ति की द्योतक है। किन्तु एक बहुत बड़ी कमी जो इतने बड़े कवि में खटकती है, वह है तुक मिलाने का अस्वाभाविक प्रयत्न। यशोधरा के 'ओ क्षणभंगुर भव राम राम!' कविता में अनेक तुकें बड़ी ही भद्दे ढग से मिलाई गई हैं, जिनसे भाषा की कर्कशता का आघात होता है।

विस्तृत रूपरेखा

१—राष्ट्र-कवि की परिभाषा—i राष्ट्र-पिता की भाँति राष्ट्र-कवि के लिए भी केवल प्रतिभा नहीं, राष्ट्र की आत्मा के स्वर की आवश्यकता। ii कला का सन्देश। iii साधना मानवता की साधना हो, यह भारत के राष्ट्रवादी के लिए आवश्यक। iv काव्य-गुण की गौणता।

२—हिन्दी के राष्ट्र-कवि का निर्णय—गुप्तजी—i तुलसी और मैथिलीशरण गुप्त का राष्ट्र-कवित्व। ii तुलसी युग के प्रतिनिधि, राष्ट्रीयता उतनी नहीं जितनी गुप्तजी की। iii आधुनिक कवियों का प्रश्न भी नहीं।

३—गुप्तजी की राष्ट्रीयता तथा अन्य प्रवृत्तियाँ—i भारत-भारती का दान—जल-जीवन। ii ग्रामीणता और भारतीयता। iii 'आश्रम वासिनी मानवता' नहीं 'ग्रामवासिनी मानवता'। iv मानवता का आदर्श

\$ साकेत से।

और संस्कृति की उपासना। v ईश्वरवादी, किन्तु मानव के जागरण के लिए सर्वदा ललकार।

४—गुप्तजी के काव्य की दिशाएँ—(a) राष्ट्रीयता की दिशा। (b) महाभारत-सम्बन्धिनी रचनाओं की दिशा। (c) रामचरित-सम्बन्धिनी रचनाओं की दिशा। (d) बौद्धकालीन रचनाओं की दिशा। (e) सिक्ख तथा अन्य ऐतिहासिक रचनाओं की दिशा। (f) पौराणिक रचनाओं की दिशा। (g) झंकार के गीतों की दिशा।

५—काव्यात्मा के बाह्य उपादान—i आदर्शवाद। ii कला-जीवन के लिए। iii आत्म-व्यंजक कविताओं का अभाव।

६—अमरता—i शाश्वत समस्यायें। ii शाश्वत व्यंजना उदाहरण।

७—शैली--अलंकार, भाषा आदि—i शैली इतिवृत्तात्मक। ii गीतात्मकता भी। iii अलंकारों का प्रयोग--व्यंजना अधिक। iv चित्रों की सम्पूर्णता। v भाषा सशक्त। vi तुकों की कठोरता।

४४—हिन्दी का एक परीक्षार्थी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—हिन्दी की कुछ परीक्षाएँ। २—परीक्षार्थी को उपलब्ध सामग्री। ३—परीक्षार्थी और परीक्षक। ४ कुछ कठिनाइयाँ तथा सुविधाएँ। ५—परीक्षा के उपरान्त। ६—वर्तमान परिस्थिति। ७—उपसंहार—हिन्दी-परीक्षार्थी का भविष्य।

हिन्दी-प्रसार के साथ-साथ हिन्दी के परीक्षार्थियों की संख्या में भी बहुत वृद्धि हुई है। जहाँ पहले हिन्दी की परीक्षाएँ देने के लिए बहुत प्रोत्साहन की आवश्यकता होती थी, अब जिधर देखिए उधर ही इन परीक्षाओं की धूम है। अनेक शिक्षक इसके द्वारा अपनी जीविका प्राप्त करते हैं; अनेक विद्यार्थी स्कूलों की झंझटों से मुक्ति पाते हैं; अनेक प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता अपना व्यवसाय बढ़ाते हैं और अनेक परीक्षक

तथा कमिटी के सदस्य अपने को प्रकाश में ला पाते हैं। यह सब समय की गति के साथ हुआ है और द्रुतगति से परिस्थितियाँ अनेक रूप धारण कर रही हैं। ऐसी अवस्था में हमें हिन्दी के परीक्षार्थी पर एक दृष्टि डालनी है—वह कहाँ है, क्या करता है, उसे क्या सामग्री उपलब्ध है, कौनसा अभाव* उसे खटकता है; उसका भविष्य किस प्रकार का समझा जाता है तथा वर्तमान समय में उसका और उसकी परीक्षा का क्या मूल्य है।

भारतवर्ष में कई एक संस्थाओं द्वारा हिन्दी-परीक्षाओं का कार्य हो रहा है। वैसे तो उत्तरी भारत की प्रत्येक शैक्षणिक संस्था† में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन$ होता है तथा बोर्ड और विश्वविद्यालयों द्वारा परीक्षाओं की योजनाएँ हैं, किन्तु इस स्थान पर हम उन्हीं परीक्षाओं को लेंगे जो केवल हिन्दी प्रचार करने वाली संस्थाओं से आयोजित हैं। उदाहरणार्थ साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ, विद्यापीठ की परीक्षाएँ, पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी-परीक्षाएँ तथा अन्य संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों की हिन्दी परीक्षाएँ।

परीक्षा के लिए उपयुक्त सामग्री अत्यन्त आवश्यक है। यह सामग्री पुस्तकों के रूप में हो सकती है, शिक्षण का स्वरूप ले सकती है अथवा पारस्परिक सहायता में लक्षित हो सकती है। हम देखते हैं कि हिन्दी के परीक्षार्थी को इन तीनों प्रकार की सामग्री का प्राय: अभाव ही रहता है। हिन्दी में परीक्षा सम्बन्धी पुस्तकों की सर्वदा कमी रही है। अब कुछ प्रकाशक सस्ती पुस्तकें लिखवा कर इस ओर प्रयत्नशील हैं, किन्तु वह सामग्री अच्छे विद्यार्थियों को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। प्रथम तो पुस्तकों को अनधिकारियों‡ द्वारा लिखाया जाता है तिस पर भी छपने की जल्दी उन्हें अपने कार्य को शीघ्र ही समाप्त करने के लिए बाध्य कर देती है—उपयुक्त, स्पष्ट सामग्री आ ही नहीं पाती। सहायक पुस्तकों के अतिरिक्त पाठ्य पुस्तकों में भी हिन्दी का परीक्षार्थी बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। कभी-

* कमी, † शिक्षा सम्बन्धी संस्था, $ पढ़ाना, ‡ जो व्यक्ति अधिकार नहीं रखते।

कभी तो कोई पुस्तक प्रस्तावित हो जाती है और परीक्षा होने के समय तक प्रकाशित ही नहीं हो पाती। कभी कोई पुस्तक यदि बीच में समाप्त हो जाती है तो उसका अग्रिम संस्करण नहीं होता। पुस्तकों का आकार भद्दा किन्तु मूल्य कहीं अधिक—खराब से खराब कागज और सस्ती से सस्ती छपाई यहाँ सम्भवतः हिन्दी-पुस्तकों के बाँट में आया है। एक दूसरी बात और है—जितनी शीघ्रता से हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें परिवर्तित होती हैं† उतनी शीघ्रता से सम्भवतः उनके परीक्षक नहीं ÷। बेचारा परीक्षार्थी कहाँ से उन सब पुस्तकों को प्राप्त करे, और यदि अनुत्तीर्ण हो गया तो और भी कठिनाई होगई।

शिक्षण के विचार से हिन्दी का विद्यार्थी कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं करता। हिन्दी के शिक्षण का स्तर§ बहुत निम्न कोटि का है, उसके अध्यापन को कोई विशेष महत्त्व दिया ही नहीं जाता। वह तो हमारी मातृभाषा है इसलिए परीक्षार्थी अपनी परीक्षाएँ देकर उनमें पास हो जाते हैं, शिक्षण कार्य द्वारा उन्हें परितोष नहीं होता। अनेक संस्थाओं द्वारा शिक्षण का कार्य कराया जाता है किन्तु उसमें जितना जो कुछ होता है उसे सभी जानते हैं। परीक्षार्थी को प्रायः स्वावलम्बन ही ग्रहण करना पड़ता है। कुछ स्थानों को छोड़कर ऐसे कौनसे शिक्षणालय हैं जहाँ हिन्दी की परीक्षाओं का शिक्षण नियमपूर्वक कराया जाता है। परिणाम इसका यह होता है कि विद्यार्थी का ज्ञान अधूरा तथा अपरिपक्व$ रहता है और उसमें मानसिक साम्प्रदायिकता* का बीज अंकुरित हो जाता है। पुस्तकें, सामयिक साहित्य तथा शिक्षण के अतिरिक्त पारस्परिक सहायता भी उपयोगी सिद्ध होती है। किन्तु इस ओर भी कोई विशेष गति नहीं देखी जाती। कुछ साप्ताहिक पत्रों का इस ओर प्रयास स्तुत्य× है, और दो एक मासिक भी परीक्षार्थियों की सहायता के लिए प्रयत्नशील हैं। हम

---

† बदलती हैं, ÷ परीक्षक प्रायः तीन वर्ष में बदलते हैं—पुस्तकें प्रति वर्ष, § Level, $ कच्चा, * मन में बसी द्वेष भावना जो अन्य भाषाओं के प्रति होती है, × प्रशंसनीय।

चाहते हैं कि इनके द्वारा परीक्षार्थी को ठोस सामग्री प्राप्त हो जिससे उसके मस्तिष्क का विकास और ज्ञान की अभिवृद्धि हो।

उपर्युक्त अपर्याप्त एवं अनुपयुक्त सामग्री के आधार पर विनिर्मित परीक्षार्थी का रूप सरलता से समझा जा सकता है। न तो उसे पुस्तकों का ज्ञान होता है और न सामयिक साहित्य तथा उनकी गतिविधियों* से परिचय। लेखन का अभ्यास तो उसे होता ही नहीं और मातृभाषा समझ कर लेखन† तथा व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर वह किंचित् भी ध्यान नहीं देता। उसके द्वारा लिखित उत्तर पुस्तिका को देखकर अनुमान होता है कि किसी चींटे को स्याही में डुबो कर उत्तरपुस्तिका के पृष्ठों पर छोड़ दिया हो$। न तो अक्षर ही पूरे बनते हैं और न उनकी मात्राएँ ही। ई और 'इ' की मात्रा में 'उ' और 'ऊ' की मात्रा में भेद न करना, अनुस्वार न लगाना; 'ब' और 'व' को इच्छानुसार लिखना—ये तो बिल्कुल साधारण बातें हैं। उत्तरों के आन्तरिक रूप को रहने दीजिये, बाह्य रूप ही परीक्षक को इतना क्षुब्ध कर देता है कि अधिक आशा के लिये स्थान नहीं रहता। अब तनक परीक्षक महोदय को भी देखिये। हिन्दी-उत्तर-पुस्तकों को लिखने में परीक्षार्थी जितनी अन्यमनस्कता† दिखलाता है, उन्हें देखने में परीक्षक भी लगभग उतनी ही प्रदर्शित करता है। कभी-कभी तो परीक्षक का जैसा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भी अन्य के द्वारा कराया जाता है। सम्भवतः जितना भी कम समय हो सकता है वह इन उत्तर-पुस्तिकाओं को दिया जाता है—और बेचारे परीक्षक भी क्या करें जब परीक्षा-संस्थाओं की ओर से भी उन्हें विशेष प्रोत्साहन नहीं मिलता।

इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्ति पहले तो प्रायः उपेक्षा की ही दृष्टि से देखा जाता था। न तो उसे जीविकोपार्जन सम्बन्धी सुविधायें मिलती थीं और न उसे समाज में ही विशेष आदर का स्थान प्राप्त था। पढ़ने के समय जितनी कठिनाइयाँ होती थीं परीक्षा के उपरान्त उससे भी अधिक। तभी तो इन परीक्षाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं जाता था। आज परिस्थिति बदल चुकी है। हिन्दी-परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्ति अनेक सुवि-

* प्रवृत्तियाँ, † स्पेलिंग, $ चींटे के खोज, † उदासीनता।

भाओं के अधिकारी हैं। बहुत-सी सुविधाएँ विश्व विद्यालयों ने दे रखी हैं और अनेक मिलने जा रही हैं। हाँ, जीविकोपार्जन की दृष्टि से अभी यह कार्य इतना उपयोगी नहीं बन सका है। हिन्दी की परीक्षा के उपरान्त किसी भी युवक को अपना भविष्य कार्यक्रम निश्चित करने में बड़ी कठिनाई होती है उसके सभी मार्ग प्रायः रुके रहते हैं। न वह विज्ञान पढ़ सकता है न कला‡, न वह कानून की उपाधि ले सकता है और न इंजीनियर ही बन सकता है। उसे केवल दो मार्ग ही रह जाते हैं। या तो उन परीक्षाओं के आधार पर किन्हीं अँग्रेजी की परीक्षाओं में बैठे और अर्द्ध स्नातकों† के रूप में इधर-उधर भटकता रहे; अथवा कुछ निम्नकोटि के साधनों द्वारा अपनी उदरपूर्ति करे। उच्च शिक्षा के लिये हिन्दी के परीक्षार्थी को बहुत ही कम क्षेत्र है। इसका कारण यही है कि हमारे देश में इतने वर्षों से शिक्षा का माध्यम$ अँग्रेजी भाषा रही और प्रायः सभी प्रकार की शिक्षा इसी माध्यम द्वारा दी जाती रही। आज भी कला विभाग को छोड़ कर तथा व्यापार§ के कुछ अंगों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी ही है और बिना इसके किसी भी शिक्षार्थी का निर्वाह नहीं हो सकता। हमारे देश के लिये भारत के होनहार नवयुवकों के लिये—यह बहुत बड़ा अभाव है और इसकी पूर्ति देश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में अग्रगण्य‡ है।

भविष्य के लिये कुछ उज्ज्वल आशाएँ अवश्य हैं। विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त शिक्षा के कुछ विभागों में तो हिन्दी माध्यम आरम्भ कर दिया गया है और बहुतों में होने जा रहा है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई उपयुक्त पुस्तकों की है; क्योंकि जब तक पुस्तकें उपलब्ध न होंगी तब तक माध्यम बनाने से भी क्या लाभ होगा। विचारपूर्वक देखा जाय तो यह बड़ा ही गम्भीर प्रश्न है और विद्वानों को इस ओर अत्यन्त ध्यान देने की आवश्यकता है तथा मातृभाषा के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करने का अभूत पूर्व अवसर है। विचारशील विद्वान् इस ओर प्रयत्नशील हैं और

---

‡ Arts, † आधा ग्रेजुएट $ medium, § कॉमर्स, ‡ प्रमुख।

आशा है कि आगामी पन्द्रह वर्ष हिन्दी परीक्षार्थी के लिये बड़े महत्त्वपूर्ण होंगे।

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दी की कुछ परीक्षाएँ—i वर्तमान परिस्थिति में हिन्दी का रूप। ii परीक्षा-संस्थाएँ--हिन्दी साहित्य सम्मेलन, विद्यापीठ, पंजाब यूनीवर्सिटी आदि।

२—परीक्षार्थी को उपलब्ध सामग्री—i सामग्री की अनुपयुक्तता। ii पुस्तकें अनुपयुक्त, अधिक मूल्य, बिना छपी, संग्रह बीत जाना, बदल जाना। iii शिक्षण-निम्नस्तर, शिक्षक का ध्यान न होना, कोई सन्तोषजनक योजना नहीं। iv अन्य सहायताएँ-सामाजिक साहित्य, सहायक पुस्तकें, पारस्परिक विचार विमर्श, ठोस सामग्री का अभाव।

३—परीक्षार्थी और परीक्षक—i परीक्षार्थी (a) अपर्याप्त सामग्री, (b) सामयिक साहित्य से परिचय हीनता, (c) लेखन की अशुद्धता, (d) उदासीनता, (e) अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ। ii परीक्षक (a) अन्यमनस्क, (b) उत्तरदायित्व में कमी, (c) उपेक्षा, (d) असन्तुष्ट—परीक्षार्थियों से, परीक्षा संस्था से।

४—कुछ कठिनाइयाँ तथा सुविधाएँ—i कठिनाइयाँ–ऊपर वर्णित, जीवकोपार्जन में अनुपयुक्तता, नीचे की श्रेणी का समझा जाना। ii सुविधाएँ--विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में मातृभाषा होने के कारण आधुनिक मनोवृत्ति।

५—परीक्षा के उपरान्त—i केवल दो मार्ग—(a) अँग्रेजी परीक्षा पास कर अर्द्ध स्नातक, (b) उदरपूर्ति। ii उच्च शिक्षा के द्वार बन्द--विज्ञान, कानून, डाक्टरी, कृषि आदि सभी। iii कठिनाई का कारण अँग्रेजी का अन्त तक माध्यम रहना। iv मार्ग चुनने में कठिनाई। v परीक्षार्थी और उसकी पढ़ाई, भविष्य का अनिश्चित कार्यक्रम।

६—वर्तमान-परिस्थिति—i हिन्दी का स्थान। ii हिन्दी-परीक्षाओं की

मान्यता। iii सरकार तथा विश्वविद्यालय द्वारा उचित कार्यवाही। iv उज्ज्वल भविष्य का द्योतक।

७—उपसंहार—i हिन्दी परीक्षार्थी का उज्ज्वल भविष्य। ii हिन्दी का माध्यम हिन्दी होने के साथ-साथ उपयुक्त पुस्तकों का सृजन। iii देश के विद्वानों के सामने एक आवश्यक कार्य—सभी विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें होना। iv आगामी पन्द्रह वर्ष।

४५—विश्वविद्यालयों में हिन्दी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—विश्वविद्यालयों में हिन्दी के स्थान का विकास। २—आजकल हिन्दी का स्थान। ३—हिन्दी-परीक्षाएँ। ४—शिक्षण का माध्यम*। ५—विश्वविद्यालयों में किये गये इस ओर प्रयत्न। ६—कठिनाइयाँ। ७—हिन्दी के प्रति कर्तव्य। ८—पन्द्रह वर्ष पश्चात्।

मुझे स्मरण है कि हिन्दी को विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाओं में स्थान नहीं दिया जाता था। हिन्दी पढ़ाने के लिए शिक्षक उपलब्ध नहीं होते थे। हिन्दी के अध्यापकों का स्तर† अन्य भाषा के अध्यापकों की अपेक्षा निम्न समझा जाता था। सरकार की ओर से भी इस ओर पूर्ण उपरामता‡ थी, और कोई व्यक्ति इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि हिन्दी को वह स्थान प्राप्त हो सकेगा जो उसे आज मिला है। किन्तु साधुवाद है उन हिन्दी-प्रेमियों को जो इस ओर तन-मन-धन से जुट गये और सम्पूर्ण शक्ति के द्वारा हिन्दी को आगे बढ़ाया।

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'

नामक सिद्धान्त परिचालित हुआ और 'नागरी गुणागरी' की कीर्ति का 'दिन दूना रात चौगुना' प्रचार बढ़ने लगा। विद्वानों ने अनेक साधनों का आश्रय लिया। संस्थाओं की स्थापना हुई, सरकार से शिष्ट-

* medium, † level स्थान, ‡ अन्य मनस्कता।

मण्डल$ मिले, स्थायी तथा सामायिक साहित्य का सृजन हुआ, परीक्षाएँ प्रचलित हुईं और द्रुतगति से इस ओर कार्य हुआ। शीघ्र ही विश्वविद्यालयों में उच्चरित उच्च-शिक्षा§ के लिए यह विषय भी स्वीकार कर लिया गया और अध्ययन तथा अध्यापन के कार्य में वृद्धि हुई। अध्यापकों का स्तर भी ऊँचा हुआ और उन्हें अन्य विषयों के समकक्ष स्थान प्राप्त हुआ। अब यह प्रश्न भी चल पड़ा कि देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही बनाया जाय। बहुत दिनों तक यह एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा, किन्तु अँग्रेजों के जाते-जाते इस पर एक प्रकार से निर्णय-सा होगया था। नवनिर्मित भारतीय संसद‡ में तो यह प्रश्न अन्तिम रूप से निर्णय कर दिया गया कि भारत की राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' ही रहेगी। देश में, विशेषतः उत्तर-भारत में हिन्दी का जो प्रचार रहा उसके साथ-साथ विश्वविद्यालयों में भी इसका विकास होता चला गया, क्योंकि हिन्दी-प्रेमियों की एक योजना यह भी थी कि शिक्षालयों में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रचार हो, और यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी-प्रचार में विश्वविद्यालयों के स्नातकों* का भारी हाथ रहा है।

हिन्दी-प्रचार के साथ-साथ शिक्षा के माध्यम का प्रश्न भी चलता रहा। विदेशी सरकार ने अँग्रेजी भाषा को हमारे शिक्षण का माध्यम बना दिया था। सभी विषयों की शिक्षा इसी माध्यम के द्वारा होती है। छठी कक्षा से ही अँग्रेजी माध्यम द्वारा पढ़ाई आरम्भ हो जाती थी और फिर अन्तिम कक्षा की पढ़ाई तक चलती थी। लेखक ने भी छठी कक्षा से ही इस माध्यम द्वारा शिक्षा पाई, और बड़ा आश्चर्य होता था जब प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी का शिक्षण अँग्रेजी माध्यम द्वारा होता था। कभी-कभी तो कक्षा में एक भी शब्द हिन्दी का सुनाई नहीं पड़ता था। माध्यम की ओर शिक्षाप्रेमियों का ध्यान बराबर लगा हुआ था। यह एक ऐसी कठिनाई थी जिसे विद्यार्थी वर्ग पग-पग पर अनुभव करता था, विदेशी भाषा का माध्यम उसके लिए एक 'अजीब कठिनाई' थी जो

$ डेपूटेशन, § एम० ए० तथा डाक्ट्रेट तक, ‡ पार्लियामेंट, * ग्रेजुएट।

उसके समय तथा शक्ति का व्यर्थ ह्रास करती थी। धीरे-धीरे प्रयत्नों में सफलता मिलने लगी। पहले मिडिल तक, फिर मैट्रिक तक इसके पश्चात् इन्टर और तब बी० ए० का नम्बर आया। और विश्वविद्यालयों ने इस बात की अनुमति देदी कि शिक्षालयों में हिन्दी माध्यम स्वीकार किया जाय।

इन परिस्थितियों के बीच और इन प्रयत्नों से विश्व विद्यालयों में हिन्दी को अति उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। न केवल हिन्दी उच्चाति उच्च शिक्षा के लिये स्वीकृत विषय है, अपितु आज तो यह एक अनिवार्य विषय बन गया था। अब तक विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में अँग्रेजी अनिवार्य विषय था, किन्तु अब उत्तर भारत तथा मध्य भारत के विश्वविद्यालयों में हिन्दी भी एक अनिवार्य विषय है। यद्यपि अँग्रेजी भी अभी तक अनिवार्य विषय के रूप में चल रही है किन्तु उसका समय अब सीमित ही रह गया है और निकट भविष्य में ही यह एक वैकल्पिक* विषय मात्र रह जायगा। हमारा अभिप्राय अँग्रेजी-विरोधी नहीं है, हमें तो इस बात को बताना है कि इस देश की बहुसंख्या द्वारा बोले जाने वाली भाषा को कितनी कठिनाई के पश्चात् उसका उचित स्थान मिल पाया है। यह अवश्य है कि हिन्दी अनिवार्य विषय हो गया है किन्तु उसके प्रति उदासीनता अवश्य है। क्या कारण है कि इस अनिवार्य विषय के पठन-पाठन का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है†। इस विषय में पास होना भी आवश्यक नहीं है, और न प्राप्तांकों का कोई भी प्रभाव परीक्षोत्तीर्णता पर ही पड़ता है। कहा जाता है कि यह सब कार्य भी शनैः-शनैः सम्पन्न हो जायेगा, और हिन्दी को वही स्थान मिल सकेगा जिस पर आज तक अँग्रेजी आसीन रही। इसमें समय लग सकता है क्योंकि भारतीय संसद ने ही इसकी अवधि १५ वर्ष निश्चित की है, और सम्भव है विश्वविद्यालयों में भी इससे कम समय न लगे।

हिन्दी परीक्षाओं की ओर जनता तथा विद्यार्थी वर्ग की बहुत ही अभिरुचि है। प्रत्येक विश्वविद्यालय तो उच्चाति उच्च परीक्षा इस विषय में लेता

* optional, † नियमित पढ़ाई नहीं होती।

ही है, साथ कई ऐसी शिक्षासंस्थायें और भी हैं जो हिन्दी परीक्षाओं को सुचारु रूप से चला रही हैं। हिन्दी परीक्षाओं का स्तर दिनों दिन ऊंचा होता जारहा है। अब यह समय तो है नहीं जब विद्यार्थी वर्ग को प्रोत्साहित करने के लिये हिन्दी के परीक्षाफल अच्छे रखे जायं, अब तो परीक्षाएँ अच्छे रूप में ली जाती हैं और उच्चकोटि के विद्वान् उनका निर्णय करते हैं। अनेक प्रान्तों में हिन्दी परीक्षाओं के लिये विश्वविद्यालयों ने अलग विभाग बना दिये हैं* जो परीक्षण-कार्य करते रहें; बहुत जगह शिक्षण की सुविधा भी दी जाती है।

अनेक वर्षों से विश्व-विद्यालयों ने हिन्दी को शिक्षण का माध्यम बना दिया है। पहले यह सुविधा छोटी परीक्षाओं के लिये थी, अब तो बी० ए० बी० कॉम आदि के लिये हिन्दी माध्यम स्वीकार कर लिया गया है, और कालान्तर में एम० ए० परीक्षा के लिये भी हिन्दी माध्यम स्वीकृत हो सकेगा। समय तो वह भी आवेगा जब अँग्रेजी की एम० ए० परीक्षा भी हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जा सकेगी, जैसा कुछ समय पूर्व हिन्दी, संस्कृत+ आदि की परीक्षाओं के लिये अँग्रेजी माध्यम था। एक बात देखी गई है कि जैसे ही विश्व-विद्यालय माध्यम सम्बन्धी सुविधा-हिन्दी स्वीकृति द्वारा-बढ़ाता है वैसे ही विद्यार्थी वर्ग द्वारा उसका स्वागत होता है। मैं अपने ही महाविद्यालय की बात कहता हूँ। बी० ए० परीक्षा के लिये जैसे ही हिन्दी माध्यम स्वीकार किया गया, बिना किसी अपवाद$ के सभी छात्रों ने अपना माध्यम हिन्दी ही चुना और अध्यापकों को भी अध्यापन के हेतु वही माध्यम लेना पड़ा। विद्यार्थियों की यह मनोवृत्ति इस बात की परिचायका‡ है कि विदेशी भाषा का माध्यम उनके ऊपर घोर अत्याचार था और परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने में एक भारी कठिनाई थी। कुछ लोग अब भी हिन्दी माध्यम के विरोध में कहते हैं और उनका कहना केवल इस एक बात पर आधारित है कि हिन्दी में अभी तक सर्व स्वीकृत विषय-विशेष सम्बन्धी शब्दावलि की न्यूनता है। उनका यह कहना ठीक हो सकता है

---

* जैसे पंजाब, + संस्कृत में अब भी चलता है, $ Exception, ‡ बताने वाली।

किन्तु इसका दोष भी तो उन्हीं के सिर पर है कि वे न तो अपने विद्यार्थियों की सुविधा का ही ध्यान देते हैं और न अपने विषय के विकास की ओर ही क्रियाशील हैं। यदि वे ऐसा करें तो शीघ्र ही यह कठिनाई स्वतः दूर हो जावे।

हिन्दी को शिक्षा का माध्यम घोषित कर विश्व-विद्यालय भी नितान्त शान्त नहीं बैठे हैं। वे इस ओर प्रयत्नशील हैं कि विषय का सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने वाली उपयुक्त पुस्तकें उपलब्ध हों जो किसी भी अँग्रेजी या अन्य भाषा की पुस्तकों के समकक्ष होने की अधिकारिणी हो सकें। देशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की ओर जो प्रयत्न उसमानियाँ विश्व-विद्यालय* द्वारा किया गया वह वास्तव में स्तुत्य है। वहाँ तो सम्पूर्ण योजना ही विश्व-विद्यालय द्वारा परिचालित की गई थी और विषय सम्बन्धी उच्चकोटि के विद्वानों तथा अनुवादकों को आमन्त्रित कर संगठित रूप में पुस्तकें संकलन करने का कार्य हाथ में लिया गया था। विश्व-विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय पर पाठ्य पुस्तकों एवं अतिरिक्त पुस्तकों का सम्पादन एवं सृजन किया गया, सर्व स्वीकृत शब्दकोषों की रचना हुई और ऊँची से ऊँची कक्षा में उर्दू के माध्यम द्वारा पढ़ाई हुई। इस सम्बन्ध में उदारता के साथ धनराशि व्यय की गई और इस बात का एक आदर्श उपस्थित किया गया कि किस प्रकार एक देश-भाषा सफलता-पूर्वक उच्च शिक्षा का सम्यक् माध्यम बन सकती है। हिन्दी वाले विश्व-विद्यालय तथा अध्यापक इस ओर इतना प्रयत्न नहीं कर पाये हैं। एक बात हम और देखते हैं। जो भी पुस्तकें लिखी जाती हैं अथवा संकलित की जाती हैं उनका स्तर उच्चकोटि का नहीं होता, विश्व-विद्यालय इस प्रकार की पुस्तकों की खोज में रहते हैं किन्तु उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें नहीं मिल पातीं। इसका एक मात्र कारण यह है कि हम पुस्तक के लिखने में इतने प्रयत्नशील नहीं होते जितना होना चाहिये। लेखकों के सामने आर्थिक दृष्टिकोण इतना महत्त्वपूर्ण बन चुका है कि पुस्तक की उपयुक्तता उससे गौण† पड़ जाती है। उच्चकक्षाओं के लिये तो हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का अभाव

---

* जहाँ उर्दू माध्यम सम्बन्धी कार्य हुआ, † अप्रधान।

रहा है। विज्ञान के विषय नितान्त अछूते रखे हैं, उस ओर तो हिन्दी माध्यम की बात भी कुछ हास्यास्पद प्रतीत होती है। जब कोई पाठ्य पुस्तक ही नहीं तो फिर माध्यम का प्रश्न ही नहीं उठता। इस ओर अध्यापकों को बहुत कुछ करना है। वे अपने विषयों के विशेषज्ञ हैं, सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक सभी प्रकार से वे अपने विषयों के पंडित हैं। हिन्दी का शब्द-कोष उनके सामने है, संस्कृत का बृहत् शब्दसंचय भी उनके पास है, साथ ही जो कुछ थोड़ा कार्य उस विषय पर हुआ है वह भी उन्हें उपलब्ध हो सकता है। तब फिर क्यों न वे इस कठिनाई से विद्यार्थियों तथा विद्यालयों को मुक्ति दिला दें और राष्ट्र-भाषा के प्रति अपने प्रेम का परिचय देते हुए अपने कर्तव्य-पालन पर कटिबद्ध हो जायं। सम्बन्धित विषयों के विद्वानों द्वारा यदि यह कार्य हाथ में लिया जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तकों सम्बन्धी कोई भी शिकायत न रह जाय और न किसी को यह कहने का अवसर ही मिले कि हिन्दी में अमुक विषय सम्बन्धी साहित्य ही नहीं है। आवश्यकता है वास्तविक प्रेम तथा कर्तव्यशीलता की।

इसमें सन्देह नहीं कि इस मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। सर्व प्रथम तो कठिनाई है सर्व-स्वीकृत पाठ्य पुस्तकों की रचना। जब तक ऐसी पुस्तकें न होंगी तब तक काम नहीं चल सकेगा। यह कार्य एकाकी करने का नहीं है। प्रत्येक विषय से सम्बन्धित संस्थाएँ हैं, उनके सदस्य भी हैं और उन्हें मान्यता भी है। तब क्या यह सम्भव नहीं कि ये संस्थाएँ सर्वमान्य§ साहित्य का सृजन कराने में सफल न हो सकें। अवश्य हो सकती हैं, आवश्यकता सच्ची लगन की है। शब्दों, पारिभाषिक शब्द-समूहों का रूप तो हल करना ही पड़ेगा, कब तक "झूठी पत्तल को चाटकर" रहा जा सकता है। जब उर्दू में अरबी और फारसी की सहायता से बहुत-सी कठिनाइयाँ हल की जा सकती हैं तो क्या कारण है कि हिन्दी में यह कठिनाई उन भाषाओं से कहीं अधिक समृद्ध संस्कृत द्वारा हल न की जा सके। संस्कृत के उपसर्ग और प्रत्यय तो इतने शक्तिशाली हैं कि किसी भी भाव को प्रकाशन करने में कठिनाई नहीं हो सकती। लोगों का कहना है कि

---

§ जिसे सब मानें।

और संस्कृत शब्दों का प्रयोग भाषा को दुरूह बना देगा, प्रचार में कठिनाई होगी और विलम्ब भी लगेगा। इस बात से हम छुटकारा नहीं पा सकते। यह कोई नहीं कहता कि जब प्रचलित सामान्य शब्द भावों को प्रकाशित करने के लिये उपलब्ध हों तब भी संस्कृतगर्भित शब्द बनाये जायें। प्रचलित शब्द तो निःसंकोच स्वीकार करने चाहियें किन्तु नवीन शब्दों की रचना में भी पीछे न रहना चाहिये। पारिभाषिक शब्द तो अनेक भाषाओं में कठिनाई लिये हुए होते हैं, अँग्रेजी में भी लैटिन और ग्रीक के शब्द प्रस्तुत हैं, फिर संस्कृत से लाभ उठाने में हमें क्यों आपत्ति होनी चाहिये। एक कठिनाई विदेशों में पठन-पाठन सम्बन्धी बताई जाती है। यह कठिनाई केवल हमको ही नहीं है, सभी देशों में है, इसके लिये उस भाषा का जानना आवश्यक होगा जहाँ कोई व्यक्ति अध्ययन करना चाहता है और उच्चशिक्षा के लिये दो या अधिक भाषाओं का जानना अनिवार्य भी है।

ये सब कठिनाइयाँ और इनके अतिरिक्त अनेक अन्य कठिनाइयाँ तो हैं ही, किन्तु ये कुछ हमारे देश के लिये ही नई नहीं हैं, सभी जगह ये कठिनाइयाँ आती हैं, कहीं पहले कहीं पीछे। हम लोग बहुत समय से एक भाषा विशेष के* माध्यम द्वारा पढ़ते-पढ़ाते चले आये हैं अतएव हमें कठिनाई प्रतीत होती है। सम्भवतः अध्यापकों की कठिनाई विद्यार्थियों से कुछ अधिक है, क्योंकि उन्हें अँग्रेजी पुस्तकों का अध्ययन कर हिन्दी के माध्यम द्वारा पढ़ाना पड़ता है। उनके पास सामग्री भी अँग्रेजी में ही प्रस्तुत है, ऐसी अवस्था में उन्हें अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है। इससे नहीं बचा जा सकता। देश और भाषा के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है। हमें विद्यार्थियों की सुविधा को भी देखना है। अपने देश के साहित्य की उन्नति करनी है, उसका भांडार परिपूरित करना है। जो विषय अब तक उसके द्वारा प्रतिपादित नहीं हो पाये हैं उन्हें प्रदान करना है। अपनी थोड़ी-सी असुविधा का विचार कर उच्च शिक्षा प्रदान करने वाला कोई भी अध्यापक अपने कर्तव्य की इस प्रकार अवहेलना नहीं कर सकता।

* अँग्रेजी।

देखा जारहा है कि शनैः-शनैः अध्यापक वर्ग इस दिशा में प्रयत्नशील हो रहा है। पहले कक्षाध्यापन के समय उनकी भाषा विचित्र मिश्रण होती थी. अब कुछ साफ होने लगी है, और कोई-कोई उद्योगशील अध्यापक तो सुन्दर प्रवाह एवं प्रभाव युक्त भाषा का प्रयोग करते हैं।

संसद ने जो पन्द्रह वर्ष का समय सीमित किया है वह हिन्दी के लिये बड़े महत्त्व का समय है। इन वर्षों में हिन्दी के माध्यम द्वारा सभी विषयों की पूरी तैयारी कर लेनी होगी। कोई भी विषय छूटने देना हमें लज्जा का कारण होगा। पुस्तक-प्रणयन का कार्य द्रुतगति से होना चाहिये परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि संख्या के साथ-साथ विषयों की गुरुता और उनके उपयुक्त विवेचन का भी ध्यान रहे। आशा तो यह की जाती है कि इन पन्द्रह वर्षों में हिन्दी को वही स्थान प्राप्त होना चाहिये जो अब तक अँग्रेजी को मिलता रहा है। किन्तु इस कार्य के सम्पन्न होने में हिन्दी के प्रेमियों को सच्ची लगन तथा कर्तव्यशीलता का पूर्ण परिचय देना है, तथा विषयों के विद्वानों को पूर्ण सहयोग।

विस्तृत रूपरेखा

१—विश्वविद्यालयों में हिन्दी का विकास—i पहली बात–हिन्दी का नगण्य स्थान। ii हिन्दी प्रेमियों के उद्योग। iii संस्थाओं की स्थापना, साहित्य का सृजन, प्रचार, शिष्ट-मण्डल। iv विश्वविद्यालयों में स्थान। v राष्ट्र-भाषा का विवादग्रस्त प्रश्न। vi माध्यम के रूप में। vii अँग्रेजों के जाने पर हिन्दी का स्थान।

२—आज हिन्दी का स्थान—i भारत की राष्ट्र-भाषा–१५ वर्ष पश्चात् एक मात्र। ii उच्चातिउच्च परीक्षा के लिए स्वीकृत। iii अनिवार्य विषय (अँग्रेजी के सदृश)। iv उच्च कक्षाओं में हिन्दी माध्यम।

३—परीक्षाएँ—i उच्च परीक्षाएँ। ii उच्चस्तर–कड़ी परीक्षाएँ। iii अलग विभाग। iv अन्य परीक्षाएँ।

† पुस्तक-प्रणयन।

४—माध्यम—i पहले अँग्रेजी माध्यम था अब हिन्दी। ii विद्यार्थियों द्वारा स्वागत। iii अध्यापकों का कर्तव्य। iv लेखकों का कार्य। v विश्वविद्यालयों का योगदान।

५—विश्वविद्यालय के प्रयत्न—i हिन्दी के अलग आधे विभाग। ii पुस्तकों का प्रणयन और प्रोत्साहन। iii अध्यापकों के प्रयत्न।

६—कठिनाइयाँ—i पाठ्य पुस्तकें। ii पारिभाषिक शब्द। iii सर्व मान्यता। iv संस्कृत गर्भित शब्द। v विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने की तैयारी।

७—हिन्दी के प्रति कर्तव्य—i अध्यापकों द्वारा—राष्ट्र-भाषा, विषय तथा विद्यार्थी वर्ग के प्रति कर्तव्य। ii अपनी व्यक्तिगत असुविधा का परित्याग। iii प्रयत्नशीलता।

८—पन्द्रह वर्ष पश्चात्—i प्रत्येक विषय के उपयुक्त। ii सर्वमान्य पुस्तकें तथा शब्द कोष। iii अँग्रेजी के स्थान की अधिकारिणी। iv बहुत कार्य करने की आवश्यकता।

४६—खड़ी बोली में हिन्दी-कविता

संक्षिप्त रूपरेखा

१—खड़ी बोली का जन्म : कविता का प्रारम्भ। २—आधुनिक खड़ी बोली में कविता की रचना, उसके प्रारम्भिक लेखक। ३—इतिवृत्त-युग और भक्ति-कविता : शुष्कता। ४—छायावाद : रसात्मकता। ५—प्रगतिवाद : शक्ति और गत्यात्मकता। ६—व्यंग्य-शक्तिपूर्ण कविता और महाकाव्य। ७—आधुनिक-तम प्रवृत्ति।

खड़ी बोली के जन्मकाल के विषय में भले ही विद्वानों में मतभेद हो, किन्तु उसके जन्म स्थान और प्रारम्भिक प्रयोग की शोधों में कोई विवादास्पद स्थल नहीं रह गया है। यों तो गोरखनाथ* और फिर महात्मा

* योगी (निर्गुनिए)।

कबीरदास की मधुक्कड़ी भाषा में खड़ी बोली के अनेक शुद्ध प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

जो देखा सो दुखिया देखा, सुखिया कोउ न देखा। इत्यादि

किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने यह मान लिया है कि विशुद्ध खड़ी बोली में कविता सर्वप्रथम अमीर खुसरो की मिलती है उनकी अनेक पहेलियाँ और मुकरियाँ विशुद्ध खड़ी बोली में हैं। जैसे—

'एक नार ने अचरज किया,
साँप मार पिंजरे में दिया।'

इस प्रकार खड़ी बोली में रचना १४ वीं सदी के आसपास ही मिलती है, किन्तु इसका तात्पर्य यह कभी नहीं लेना चाहिये कि खड़ी बोली उस काल में काव्य की भाषा थी। वास्तविक बात यह है कि खड़ी बोली मेरठ और दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली उर्दू-मिश्रित भाषा थी। कबीर तो फक्कड़ थे, उनकी काव्य-भाषा में तो महाराष्ट्री, पंजाबी, गुजराती, ब्रजभाषा, खड़ी बोली सभी की अद्‌भुत खिचड़ी है। अतः उन्होंने यदि कहीं खड़ी बोली के कुछ प्रयोग अपनी कविता में कर दिये, तो इसका अर्थ यह कभी नहीं लेना चाहिये कि खड़ी बोली में कविता का प्रारम्भ उनसे हुआ। अमीर खुसरो मुसलमान होने के साथ-साथ फारसी के बहुत अच्छे कवि थे। अतः उन्होंने जो पहेलियाँ लिखीं, उनमें से कई फारसी-मिश्रित बोल-चाल की भाषा में लिखीं। इस सबसे अधिक से अधिक यही तथ्य निकाला जा सकता है कि चौदहवीं शती में खड़ी बोली मेरठ और दिल्ली के आस-पास के प्रदेश की बोल-चाल की भाषा थी।

हिन्दी कविता का प्रतिनिधिस्वरूप इसके पश्चात् ही ब्रजभाषा और अवधी में रचा जाने लगा था। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कबीर और खुसरो ने खड़ी बोली के कुछ प्रयोग तो किये किन्तु वे खड़ी बोली की कविता की कोई परम्परा निर्मित करने में सफल नहीं हुए। उन्होंने प्रयत्न भी नहीं किया। भक्तिकाल और रीतिकाल में हिन्दी-काव्य की भाषा प्रमुखतया ब्रज और अवधी ही रहीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खड़ी बोली में गद्य के जन्मदाता अवश्य कहे जाते हैं, किन्तु अपने पद्य की भाषा

उन्होंने भी भक्ति-कालीन पदों की ब्रजभाषा ही रखी। भारतेन्दु-काल के किसी लेखक ने खड़ी बोली में रचना नहीं की।

खड़ी बोली की आधुनिक कविता के वाल्मीकि होने का श्रेय पं० श्रीधर पाठक को प्राप्त है। इन्होंने अपनी अनेक मौलिक और अनुवाद रचनाओं में विशुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया और हिन्दी में खड़ी बोली कविता की परम्परा डाली। उदाहरणार्थ—

'अटन का समय था,
रजनि का उदय था,
प्रकृति मुख शान्त था।'*
आदि।

इस काल में खड़ी बोली में कविता लिखने की भावना बहुत कुछ उत्पन्न हो चली थी। बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री जैसे कुछ भाषा-सेवी महानुभाव खड़ी बोली में काव्य-रचना के लिए बड़े जोरों से आन्दोलन कर रहे थे। पाठकजी के काल में और उनके पश्चात् अनेक कवियों ने इस ओर प्रयत्न करने प्रारम्भ किये; किन्तु पाठकजी के पश्चात् खड़ी बोली को सफलता से काव्यासन पर आसीन करने वाले महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' थे। खड़ी बोली का सर्व प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' रच करके आपने खड़ी बोली को बहुत बड़ी शक्ति प्रदान की। हरिऔध जी का यह महाकाव्य अतुकान्त संस्कृत छन्दों में लिखी हुई १८ सर्गों में सीमित रचना है। इस काव्य में छन्दों की नवीनता और भाषा की नवीनता के साथ-साथ आदर्श और विचार भी नवीन दिये गये हैं। कृष्ण के भगवान्स्वरूप को महापुरुष के स्वरूप में बदल दिया गया है। इस प्रकार प्रिय-प्रवास हिन्दी-कविता में क्या भाषा, क्या शैली और क्या विचार सभी दृष्टियों से युगान्तर-काव्य है। प्रकृति के बड़े सुन्दर चित्र इस महाकाव्य में दिये गये हैं। उदाहरणार्थ प्रारम्भ का ही एक छन्द देखिये—

"दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।

* सांध्य अटन नामक कविता से उद्धृत।

तरु-शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ।।"

सन् १९०० के पश्चात् सरस्वती द्वारा हिन्दी की खड़ी बोली-कविता में भी एक नये युग का सूत्रपात हुआ। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जब सरस्वती के सम्पादक हुए, तो उन्होंने अनेक नये कवियों को खड़ी बोली में कविता लिखने के लिए प्रोत्साहित किया, और स्वयं उनकी भाषा और भावों को संशोधित करके उन्हें प्रकाशित भी किया। द्विवेदीजी ने स्वयं भी खड़ी बोली में संस्कृत के कुछ काव्यों के अनुवाद प्रस्तुत किये, जिनमें 'कुमार सम्भवसार'* प्रमुख है। किन्तु स्वयं रचना के अतिरिक्त द्विवेदीजी ने जो महान् कार्य हिन्दी खड़ी बोली-काव्य के लिए किया वह था अनेक नवीन कवियों का उत्पादन। उनके इस उत्पादन ने हिन्दी को मैथिलीशरण गुप्त जैसी प्रतिभा प्रदान की। पं० मुकुटधर पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय आदि अनेक कवि उनकी देखरेख में प्रस्फुटित हुए। इन सभी तथा इनके अतिरिक्त कुछ और लेखकों का मिलकर एक द्विवेदी-मण्डल जैसा बन गया था। द्विवेदीजी की इतिवृत्तात्मक शैली की सभी पर एक-सी छाप थी। प्राचीन आख्यानों और इतिहासों को लेकर अनेक प्रबन्ध काव्य इस इतिवृत्त शैली में लिखे गये। श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ इस युग की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। 'भारत-भारती' की रचना ने यह सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली में जटिल से जटिल भावों को व्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि भाषा में कर्कशता थी, काव्योचित मृदुलता का अभाव था। जैसे—

"पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता ।।†

किन्तु फिर भी गुप्तजी खड़ी बोली में काफी सादगी और शक्ति लेकर उदित हुए। थोड़े दिनों पश्चात् उनके जयद्रथ-बध, पंचवटी आदि काव्यों में काफी काव्योचित मृदुलता भी आने लगी थी। पंचवटी में तो वातावरण का चित्रण बड़ी ही शक्तिशाली लेखनी से किया गया है, जिसकी

* महाकवि कालिदास की प्रसिद्ध रचना, † भारत-भारती से।

टक्कर किसी भी समुन्नत भाषा और काव्य से ली जा सकती है। उदाहरणार्थ एक चित्र देखिये—

'कटि के नीचे चिकुर-जाल में,
उलझ रहा था बांया हाथ।'$

आदि।

रामचरित उपाध्याय ने अतुकान्त छन्द में रामचरित-चिन्तामणि की रचना की। यह रचना यमक आदि अलंकारों और काव्य-गुणों की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ है। इसके अलंकारों ने खड़ी बोली को निश्चित रूप से काव्योचित भाषा ठहरा दिया।

मुकुटधर पाण्डेय ने कुछ बड़े सुन्दर गीत खड़ी बोली को दिये। उनका प्रसिद्ध गीत—

"मेरे जीवन की लघु तरनी,
आँखों के पानी में तर जा।"

आज भी अपराजेय है।

द्विवेदी-मण्डल के इन कवियों के अतिरिक्त इस काल में कुछ अन्य कवि भी खड़ी बोली में काव्य-रचना कर रहे थे, जिनमें गयाप्रसाद शुक्ल, जगदम्बाप्रसाद हितैषी, अनूप शर्मा, श्यामनारायण पाण्डे आदि प्रमुख हैं।

इति वृत्तात्मक-युग के समाप्त होते-होते हिन्दी में छायावाद युग का प्रारम्भ हुआ। अँग्रेजी की छायाभास (Phentamism) की रचनाएँ और बँगला की रवीन्द्र की रहस्यवादिनी रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी जा रही थीं। फलतः इतिवृत्तात्मकता की अति स्थूलता से ऊबकर हिन्दी-कवि का मस्तिष्क सूक्ष्म की ओर झुका। उसे कल्पना की रंगीनी ने मोहित किया, और इन मानसिक छायाभास और रहस्याभास की रचनाओं से प्रभावित होकर उसने आत्मलीन काव्य की रचना प्रारम्भ की। युद्ध-वर्णनों और राजनीतिक चरित्रों के चित्रण से कविता ऊब चुकी थी। अतः अनन्त को प्रियतम मानकर मानसिक रोमांस और प्रकृति में चेतना का

$ पंचवटी में सूर्पणखा का चित्र।

आरोप हिन्दी कवि की प्रधान भावनाएँ होने लगीं। छायावादी महाकवि प्रसाद, पन्त और निराला ने इस क्रान्ति का नेतृत्व ग्रहण किया। भावों और कल्पना में सूक्ष्मता के साथ-साथ इस युग में भाषा में अधिक मृदुता और सरसता आई। अनेक नये कोमल शब्दों का सृजन हुआ। अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव-स्वरूप नवीन अभिव्यंजनाएँ* आरोपित की गईं। विशेषण विपर्यय, मानवीकरण आदि अँग्रेजी के अलंकारों का प्रयोग किया जाने लगा। बँगला की मधुरता ने हिन्दी को भी प्रभावित किया और पंतजी ने 'स्वप्निल', 'फेनिल', 'धूमिल' आदि अनेक नवीन मधुर शब्दों का आविष्कार कर डाला।

इस युग के प्रारम्भ में इन तीन कवियों ने ही विशेष आकर्षित किया। प्रसाद की भावुकता 'आँसू' में इतनी पिघल पड़ी कि करुणा का स्रोत बह निकला। प्रसादजी ने उस वृत्ति का भी प्रतिनिधित्व किया, जो जीवन-संघर्ष से ऊबकर किसी कल्पना के मादक संसार में रमाये रखने को प्रेरित करती है। उन्होंने लिखा—

ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी।
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे॥

प्रकृति के छायावादी चित्रों के लिए भी आप प्रसादजी को उस युग का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। उनका प्रसिद्ध गीत—

'बीती विभावरी जाग री,
अम्बर-पनघट में डुबो रही;
तारा-घट ऊषा नागरी।'

प्रकृति-सौंदर्य का कितना सजीव चित्र है।

---

* Expressions, † पलायनवाद (Escapism)।

निराला छायावादी युग के दार्शनिक कवि हैं। उनकी 'जूही की कली' आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों का कितना सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करती है। कुल मिलाकर उनकी कविता में सजीवता है। निरालाजी ही ऐसे एक-मात्र कवि हैं, जो छायावाद के छलकते हुए यौवन में भी 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिखारी' आदि नितान्त यथार्थवादी और प्रगतिवादी रचना कर सके थे।

पन्त छायावादी युग के मधुर कवि हैं। सूरदास के पश्चात् हिन्दी में इतना समर्थ गीति-कवि कोई नहीं हुआ था। पन्त में हमें जहाँ छायावाद का चरम उत्कर्ष मिलता है, वहीं उनकी कविता में गीति-काव्य के तत्त्व भी चरम उत्कर्ष पर मिलते हैं। उनके प्रकृति-चित्र अपराजेय हैं। प्रकृति के तो वे सुकुमार कवि हैं। हिन्दी-कविता में पन्त के बराबर प्रकृति-चित्रण किसी कवि ने नहीं किया। कितना उल्लास है पन्त की प्रकृति में—

लाई हूँ फूलों का हार, लोगी मोल लोगी मोल।
तरल तुहिन वनका उल्लास, लोगी मोल लोगी मोल॥

छायावाद के उत्तरार्द्ध में कुछ अन्य महाकवियों का उदय भी हुआ। श्रीमती महादेवी वर्मा के जिक्र बिना खड़ी बोली का आधुनिक कविता का एक सम्पूर्ण कल अधूरा रह जायेगा। बौद्ध दर्शन का दुःखवाद लेकर महादेवीजी ने मानव-हृदय की ऐसी भावनाओं को छुआ है, जो छाया-वादी काव्य को युगों तक अमर बनाये रखेंगी। इनके पश्चात् रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने भी छायावाद को सुशोभित किया। इसी काल में श्यामनारायण पाण्डे, गुरुभक्तसिंह आदि महानुभाव इतिवृत्तात्मक शैली पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते रहे। श्री सियाराम-शरण गुप्त ने अनेक खण्ड-काव्य प्रस्तुत किये। किन्तु बाबू मैथिलीशरण की इतिवृत्तात्मकता में छायावाद के प्रभाव-स्वरूप बहुत बड़ा परिवर्तन आया। छायावाद की गीति-प्रवृत्ति ने गुप्तजी को प्रभावित किया। फलतः उन्होंने साकेत और यशोधरा की रचना में गीति शैली का बहुत आश्रय लिया। यहाँ तक कि 'झंकार' नामक कविता-पुस्तक में उन्होंने अपने कुछ छाया-वादी गीतों को संगृहीत किया।

इस प्रकार हिन्दी खड़ी बोली कविता का मादक यौवन प्रारम्भ हो गया। दुर्भाग्य कहिए या सौभाग्य; यौवन के प्रारम्भ-काल में ही खड़ी बोली-काव्य को छायावाद की मधुर, सरस कल्पनाओं में रमना पड़ा। 'अखिल विस्मयाकार' अप्सराओं के साथ विहार करना पड़ा और फिर थोड़ा आगे चलकर तो सरे आम 'बच्चन' जी की मधुशाला की रंगीन मदिरा के घूँट लेने पड़े।

उमर खैयाम* की 'खाओ, पिओ, मौज करो' के सिद्धान्त से प्रभावित नवयुवक बच्चन ने हिन्दी में अपनी मधुशाला की धूम मचा दी। किन्तु बच्चन नितान्त ऐहिकतावादी† नहीं सिद्ध हुए। उन्हें भय बना ही रहा, कि—

"इस पार प्रिये, मधु है तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा ?"

और—

....
....

जब इस लम्बे चौड़े जग का,
अस्तित्व न रहने पायेगा।
तो मेरा तेरा नन्हा-सा;
संसार न जाने क्या होगा ?

एक ओर बच्चनजी मदिरा-प्रसादन में तल्लीन थे, किन्तु दूसरी ओर उन्हीं के जैसे नवयुवक कवि समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को स्मरण करके राष्ट्रीय आन्दोलन में योग दे रहे थे; शोषण और अन्याय के विरुद्ध 'विपथगा' की पायल को झनझना रहे थे। बड़ी मर्दमी से 'दिनकर' क्रान्ति का आह्वान कर रहे थे—

"मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में।
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुँकारों में ॥$

---

* प्रसिद्ध दार्शनिक, † इस लोक को ही सत्य मानने वाले, $ 'पिथगाव' नामक कविता से।

और 'नवीन' अपने कवि से कह रहे थे —

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए॥
प्राणों के लाले पड़ जाएँ,
त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए।"

छायावाद के अन्तिम युग में इन दो धाराओं में खड़ी बोली कविता विभाजित होती जा रही थी, कि प्रगतिवाद ने प्रवेश किया। यों तो मैं दिनकर को प्रारम्भ में ही प्रगतिवादी कहने की हिम्मत करना चाहता हूँ; किन्तु खैर, प्रगतिवाद जब शाब्दिक रूप में प्रारम्भ हुआ तब भी हिन्दी के कुछ कवि वैसी ही क्रांति, वैसी ही समानता की भावना को लेकर बहुत कुछ लिख चुके थे।

अस्तु; छायावाद के आचार्य पंत ने प्रगतिवाद का भी नेतृत्व ग्रहण किया। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या के प्रकाशन द्वारा प्रगतिवाद को सिद्धान्त मिले और मिली मुखरता। फिर तो किसान, मजदूर और क्रांति सैकड़ों कविताएँ लिखी गईं। सर्वश्री अंचल, नरेन्द्र, दिनकर' पंत, सुमन गिरिजाकुमार माथुर आदि कवियों ने प्रगतिवाद को सुपुष्ट किया। यद्यपि कुछ कवियों ने रूस का गुणगान ही प्रगतिवाद समझा था, किन्तु खैर इस बहाने दलितों पर बहुत कुछ लिखा गया। विषय बदलते ही कविता का स्वर, माध्यम और शैली भी बदली। कल्पना से उतर कर कवि वास्तविक भूमि पर आया था। यह सब कुछ दिनों चला, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् कवि-गण अनेक दिशाओं में चले गये। जो केवल रूस के वाक्य को ही भगवद्वाक्य समझते थे वे तो 'गन्दी नाला'*, 'चितकबरा कुत्ता' आदि पर कविताएँ लिखते रहे। उन्होंने धीरे-धीरे कला का तिरस्कार भी कर दिया। कुछ राष्ट्रीय समाजवाद के पक्षपाती होकर कलापूर्ण प्रगति-

---

* 'केदार' की एक कविता।

वाद लिखने में लग गये, और कुछ वेदान्त और उपनिषदों की ओर लौट गये।

इसके पूर्व कि मैं हिन्दी खड़ी बोली कविता की वर्तमान झाँकी आपको दिखाऊँ, मैं खड़ी बोली के महाकाव्यों के विषय में बात कर लेना चाहता हूँ। 'हरिऔध' जी के प्रसंग में मैंने बताया है कि 'प्रियप्रवास' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग में कुछ महाकाव्य लिखे गये। जिनमें 'रामचरित-चिन्तामणि', 'हल्दी घाटी', 'आर्यावर्त', साकेत आदि प्रमुख हैं। छायावादी युग ने एक ही महाकाव्य हमें दिया—'कामायनी', यद्यपि वह अकेला ही सबसे अधिक मूल्यवान् है। छायावाद के पश्चात् हिन्दी कविता में गीतित्व बढ़ता गया और प्रगतिवाद में भी एक-मात्र 'कुरुक्षेत्र' ही महाकाव्य बन सका। इस प्रकार खड़ी बोली गीति-प्रधान कविता की भाषा हो गई है।

अब हम वर्तमान-कालीन हिन्दी कविता पर कुछ विचार करके निबन्ध को समाप्त करेंगे। प्रगतिवाद जिस अर्थ में चला था, उसमें अब जीर्ण हो गया है, किन्तु अपने चिन्तन प्रभाव हिन्दी-कविता पर छोड़ गया है। जब थोड़े दिनों पश्चात् प्रगतिवाद की यह धारा नितान्त अप्रभावशील हो जायगी तब हम देखेंगे कि जिस प्रकार छायावाद ने हिन्दी कविता को अद्भुत व्यंजना-शक्ति दी थी; उसी प्रकार प्रगतिवाद ने भी उसे अद्भुत यथार्थता दी है। मैं अनुमान कर रहा हूँ कि अब हिन्दी कविता का भविष्य कलापूर्ण यथार्थवाद के हाथों में जायगा। इस यथार्थवाद के दो स्वरूप ढलते हुए दिखाई देते हैं, एक तो उन कवियों का, जो राजनीति-प्रधान हैं। वर्तमान-कालीन आर्थिक और सामाजिक समस्या पर उसी प्रकार लिखते हैं, जिस प्रकार प्रगतिवाद के प्रारम्भ-कालीन कवियों ने लिखा था। ये अपनी कला का तिरस्कार करना चाहते। इन कवियों में मुख्य श्री दिनकर, अंचल, शिवमंगलसिंह सुमन, रांगेय राघव, शंभूनाथसिंह, भवानीप्रसाद मिश्र, छोटेलाल भारद्वाज, महेन्द्र भटनागर आदि हैं। दूसरे कवि स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद* भी एक नवीन धारा को लेकर चल

* Romantic Realism।

रहे हैं, जिसे नेपाली, अंचल आदि ने स्वर दिया था। इन कवियों में श्री शम्भूनाथसिंह, सुमन, भारद्वाज, नीरज, रामनाथ अवस्थी आदि कवि हैं।

इस प्रकार हिन्दी खड़ी बोली की कविता उस अवस्था पर पहुँचती जा रही है, जहाँ वह विश्व-साहित्य के सामने गर्व से सिर ऊँचा कर सके। प्रकृति-चित्रण आज भी हिन्दी कविता में अत्यन्त मनोमोहक हो रहा है। यों तो पंत, नेपाली, अज्ञेय आदि ने प्रकृति का चित्रण बहुत ही उच्चकोटि का किया है, किन्तु आज भी कुछ कवि बड़ा सुन्दर यथार्थ चित्र दे रहे हैं। केदारनाथ अग्रवाल की एक कविता 'सरसों का ब्याह' ऐसी ही है।

व्यंग्य की दृष्टि से निरालाजी ने हिन्दी को बहुत धनी बना दिया है। उनका 'कुकुरमुत्ता', 'नये यज्ञ' आदि में बड़े मार्मिक व्यंग्य हैं। एक उदाहरण—

'झाड़ी से सिर उठाकर ऐंठकर
बोला कुकुरमुत्ता
अबे ओबे गुलाब! ऐंठता क्या
पाके खुशबू रंगो आब!
खून चूँसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा 'कैपिटलिस्ट'।

विस्तृत रूपरेखा

१—खड़ी बोली का जन्म—i गोरखनाथ, कबीर, अमीर खुसरो की कविता। ii चौदहवीं शती में प्रारम्भ। iii भक्तिकाल और रीतिकाल में ब्रजभाषा।

२—आधुनिक खड़ी बोली में काव्य-रचना का प्रारम्भ—i श्रीधर पाठक; कार्तिकप्रसाद खत्री का आंदोलन। ii हरिऔध का प्रियप्रवास। iii सरस्वती का प्रकाशन, महावीरप्रसाद द्विवेदी।

३—इतिवृत्त युग—i द्विवेदी युगीन शुष्कता--मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि। ii द्विवेदी-मण्डल के बाहर की काव्य-भूमि।

४—छायावादी युग : रसात्मकता—i यूरोपीय छायाभास और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव। ii शुष्क इतिवृत्त से ऊबी हुई कल्पना सूक्ष्म की ओर। iii प्रसाद, पंत और निराला। iv कोमल भाव, मृदुल भाषा, रंगीन कल्पना, आँसू, पल्लव, गीतिका। v पलायनवाद--प्रसाद। vi दार्शनिकता--निराला। vii प्रकृति-चित्रण--पंत। viii यथार्थवादी रचनाएँ भी--निराला। ix गीति-काव्य की प्रधानता--पंत। x महादेवी, रामकुमार वर्मा का उदय। xi गुप्त पर गीतित्व का प्रभाव और साकेत तथा यशोधरा की रचना। xii अन्य प्रबन्ध काव्य-कार--गुरुभक्तसिंह, श्यामनारायण पाण्डे आदि। xiii बच्चन का हाला वाद—नवीन, माखनलाल और दिनकर का राष्ट्रीयतावाद।

५—प्रगतिवाद—i दिनकर : पंत ने नेतृत्व किया। ii मार्क्सवादी विचार-धारा--अंचल, पंत, सुमन आदि। iii धीरे-धीरे कला का ह्रास। iv प्रगतिवाद का पतन--कवियों का विभाजन।

६—व्यंग्य और महाकाव्य—i निराला--कुकुरमुत्ता। ii प्रसाद की कामायनी, दिनकर का कुरुक्षेत्र आदि।

७—आधुनिकतम कविता—i राजनीतिक यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद। ii नये कवि। iii प्रकृति-चित्रण।

४७—"उघरहिं अन्त न होहि निबाहू"

संक्षिप्त रूपरेखा

१—गोस्वामीजी की अनेक अनुभव प्रपूरित चौपाइयों में से एक—

उघरहिं अन्त न होहि निबाहू।
कालनेमि जिमि रावण राहू॥

२—पंक्ति का अर्थ—तीनों उदाहरणों का स्पष्टीकरण। ३—जीवन की गहनता और कपट का व्यवहार। ४—'सच्चाई सर्वोत्कृष्ट नीति'। ५—

आचरण की निर्मलता, निष्कपटता। ६—उपसंहार—जीवन में सत्य की उपयुक्तता और उसका ग्रहण।

निबन्ध—रामचरित मानस के बालकाण्ड में कथा आरम्भ करने के पूर्व पूज्यपाद गोस्वामीजी ने सन्त, असन्त तथा सत्संग का वर्णन किया है—वेश का प्रभाव भी दिखाया है किन्तु अन्त में निर्वाह होता नहीं बताया और इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है—

'सत्यमेव जयते नानृतम्'*

सत्संग का प्रभाव बड़ा व्यापक है और दुष्ट व्यक्ति भी उत्तम संग पाकर भलाई करते हैं—यह अवश्य है कि कभी भंग न होने वाला मलिन स्वभाव सर्वदा के लिए नहीं मिटता। यह हो सकता है—

लखि सुवेष जग वंचक जेऊ।
वेश प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥

किन्तु

उघरहिं अंत न होहि निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥

जो वेशधारी ठग हैं, उन्हें भी अच्छा, साधु का सा वेश बनाये देखकर वेश के प्रताप से जगत पूजता है। किन्तु, एक-न-एक दिन वे चौड़े आ ही जाते हैं,† अन्त तक उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु$ का हाल हुआ। इसी से मिलता हुआ नीति का यह एक दोहा भी है—

फेरि न ह्वै है कपट सों जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार॥

काठ की हाँडी दूसरी बार नहीं चढ़ती—इसी प्रकार कपट का व्यवहार बार-बार फलीभूत नहीं होता, एक-न-एक दिन वास्तविकता का पता लग ही जाता है।

गोस्वामी जी ने 'मानस' में अपने अनुभव का निचोड़ दिया है। जहाँ

---

* सत्य की जय होती है असत्य की नहीं, † भंडाफोड़ हो जाता है, $ तीन दुष्ट व्यक्ति जिनका कपट अन्त में खुल गया। आगे देखें।

ज्ञान, वैराग्य, उपासना और कर्मकाण्ड की अनेक बातें बताई हैं वहाँ व्यावहारिक ज्ञान भी उचित मात्रा में कराया है—लौकिक व्यवहार सम्बन्धी सुन्दर उक्तियाँ दी हैं। इनके अनुभव, व्यवहारकुशलता और इनकी पंक्तियों में वर्णित सत्य का पता इसी बात से लग जाता है कि अनेक अवसरों पर इनकी चौपाइयों का प्रयोग होता है और उन्हें शास्त्रोक्त‡ जैसा माना जाता है। अनेक प्रेमी तो इन चौपाइयों को वेदमंत्र कहते हैं और बहुत से व्यक्ति इस रूप में इनका जाप भी करते हैं। हमें इस स्थान पर केवल इतना ही बताना है कि स्थान स्थान पर गोस्वामीजी ने व्यवहार में आने योग्य अनुभव से प्रपूरित$ चौपाइयाँ कहीं हैं—प्रस्तुत अंश भी उनमें से एक है जिसमें बताया गया है कि अंत में वास्तविकता सामने आजाती है और निर्वाह नहीं होता। सम्भव है बहुत समय तक कपट-पूर्ण व्यवहार चलता रहे किन्तु अंत में एक न एक दिन उस कपट का उद्घाटन× हो ही जावेगा और फिर किसी भी प्रकार बात न बन सकेगी। इस उक्ति के प्रमाण-स्वरूप गोस्वामीजी ने एक नहीं तीन उदाहरण दिए हैं और तीनों विभिन्न परिस्थितियों के, किन्तु तीनों में कपटपूर्ण व्यवहार को निभाने की चेष्टा की गई थी—अन्त में कपट खुल गया और दुष्टों को अपने किये का फल मिला।

जिस समय हनुमानजी संजीवनी बूँटी लेने के हेतु द्रोणगिरि पर्वत की ओर जारहे थे, कालनेमि नाम का एक राक्षस मुनि का वेश बनाकर बैठ गया और उसने हनुमानजी को वहाँ रोकने तथा मारने की चेष्टा की—किन्तु भेद खुल गया। एक अप्सरा जो शाप-वश मछली हो गई थी अपना उद्धार पाते समय सारा रहस्य÷ बतागई। कालनेमि का बध कर दिया गया। रावण का कपट भी अधिक दिन नहीं चला, अन्त में रामचन्द्रजी के बाणों द्वारा उसको प्राणों का परित्याग करना पड़ा। देवताओं का रूप बनाकर अमृत-पान करता हुआ राहु भी अपने किए की छाँह बैठा+। अभी अमृत गले से नीचे भी न उतरने पाया था कि उसका

‡ शास्त्रों में कहा गया, $ भरी हुई, × खुलजाना, ÷ भेद, + फल भोगा।

भेद मालूम होगया और उसके दो टुकड़े§ कर दिये गये—सिर अलग और धड़ अलग। कपटियों का यही हाल होता है। वे अपने मन में भले ही समझलें कि उनकी धूर्तता पहँचानी न जा सकेगी, परन्तु प्रायः ऐसा होता नहीं।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि जीवन में कपटपूर्ण व्यवहार की आवश्यकता क्यों पड़ती है। जब सब कोई जानते हैं कि कपट करना ठीक नहीं और एक न एक दिन कलई खुल जायगी$ फिर इस प्रकार का व्यवहार क्यों किया जाता है! जब हम प्राचीन और अर्वाचीन† समयों पर दृष्टिपात करते हैं तो यह भी प्रतीत होता है कि आज के युग में कपट का व्यवहार अनेक गुना बढ़ गया है। आज तो व्यवहार ही नहीं हमारा खाना-पीना, वस्त्र-आभूषण, बोलना-चालना, देखना-सुनना, उठना-बैठना सभी कपटपूर्ण होरहा है। कहने को हम कट्टर शाकाहारी हैं किन्तु सोसाइटी में सभी प्रकार के भोजन का रस ले लेते हैं, पार्टियों में मदिरा-पान से भी नहीं बचा जाता, क्या करें लोग बहुत जोर डालते हैं; घर पर तो बड़ों का थोड़ा ध्यान रखना पड़ता है, आँख बचा कर धूम्रपान भी कर लेते हैं। वस्त्र और आभूषण देखने में भले जान पड़ें, चाहें उनमें कितनी ही कमी क्यों न हो—हमारा गला घुट जाता हो किन्तु नेकटाई लगावेंगे, शीत से सारा शरीर कम्पित होरहा हो किन्तु वस्त्र के ऊपर बटन न लगावेंगे, सिर खुला हुआ ही रखेंगे; आभूषण देखने में सुवर्ण और मणियों के मालूम हों, चाहे वे मुलम्मे के होकर काँचों से ही क्यों न जड़े गए हों। हृदय में छुरियाँ चल रही हैं‡ किन्तु बातें बड़ी सहानुभूति और प्रेम से करते दृष्टिगोचर होते हैं। इसे राजनीति कहा जाता है, व्यवहार-कुशलता बताया जाता है। हमारी चाल बहुत कुछ बनावटी होने लगी है, शरीर में त्वचा, अस्थि मात्र हैं किन्तु चलेंगे राममूर्ति के छोटे भाई जैसे। हम देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते—आँखें चुरा लेते हैं, कानों पर ठीकरी रख लेते हैं×। उठना, बैठना, सोना,

§ राहु और केतु, $ भेद मालूम हो जायगा, † वर्तमान, ‡ घातक भावनायें विद्यमान हैं, × सुनते नहीं।

जागना सभी ओर तो कपटपूर्ण दिखाई दे रहा है, कोई भी स्थल या व्यवहार-क्षेत्र ऐसा नहीं जो इस प्रवृत्ति से बचा हुआ हो।

इस सबका कारण हमारे जीवन की जटिलता* है। जैसे जैसे हमारे जीवन की जटिलता बढ़ती गई, वह अधिकाधिक गहनतर होता गया, उसी अनुपात में कपटपूर्ण व्यवहार भी बढ़ा और आज जब हमारा जीवन गहनतम हो चुका है हमें अधिकाधिक कपट की आवश्यकता पड़ रही है। किसी भी क्षेत्र को ले लीजिये, बिना इसके निर्वाह होता दिखाई नहीं देता। राजनीति का कुछ वर्णन ऊपर हुआ था वैसे ही इसे तो गन्दा खेल कहा जाता है किन्तु इसका जो भी रूप हम देखते हैं उसमें सचाई तो कहीं दृष्टि-गोचर नहीं होती। 'पोलिसी' कपट, धूर्तता, भेदगोपन और रहस्यमय व्यवहार का ही दूसरा नाम है। बिना इसके आज की राजनीति में काम नहीं चलता। आर्थिक, वाणिज्य और व्यापार सम्बन्धी बातों में बिना इसके गुजर नहीं होती। अपनी कमियों को छुपाना, बाह्य रूप आकर्षक बनाना, प्रकाशन का ढोंग रचना, असत्य प्रशंसा प्रशस्ति करना और इन साधनों से अपना 'पोजीशन बनाना'† बहुत ही गर्व की बात समझा जाता है। व्यवहारकुशल होने के लिये तो इसकी आवश्यकता है ही। 'टैक्ट'\$ एक प्रकार से इसी के अन्तर्गत आता प्रतीत होता है। व्यवहार में जो व्यक्ति कुशल नहीं होते उन्हें जीवन में सफलता नहीं मिलती। सफलता के लिये हमें अपना एक कृत्रिम रूप बनाना पड़ेगा। अपने व्यक्तित्व में द्वित्व§ लाना पड़ेगा। जनता के सामने हम उस रूप में न आवेंगे जो हमारा असली रूप है, हमें तो उस रूप में आना चाहिये जो अपना प्रभाव डाल सके, अपना स्वार्थ सिद्ध कर सके। हो सकता है यह चीज अधिक दिन न चल सके परन्तु हम सब कोई प्रयास ऐसा ही करते हैं। इस स्थान पर हमें अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक स्टीवेन्सन की 'डाक्टर जीकल और मिस्टर हाइड' नाम की कहानी का स्मरण हो आता है। डाक्टर जीकल एक व्यवहार-कुशल, अच्छा डाक्टर है जिसके सुन्दर व्यवहार से लोग प्रभावित होते हैं

* गहनता, उलझावट, † निश्चित स्थान रखना, \$ Tact, § दो प्रकार के होने का भाव।

किन्तु उसका ही दूसरा रूप मिस्टर हाइड है जो प्रत्येक प्रकार का गर्हित$ कार्य कर सकता है। इस कहानी में आश्चर्य की बात यह है कि डाक्टर जीकल ही स्वयं मिस्टर हाइड का रूप धारण कर सकता था और इसके लिये उसने कुछ दवाओं का आविष्कार किया था। एक विशेष प्रकार का मिक्सचर पीने से डाक्टर न केवल अपना रूप ही परिवर्तित कर लेता था वरन् उसकी मनोवृत्ति भी बदल जाती थी और मिस्टर हाइड के रूप में वह कोई भी जघन्य कृत्य‡ कर सकता था। जब उसकी यह दूषित मनोवृत्ति शान्त हो जाती तो पुनः एक अन्य प्रकार का मिक्सचर पीकर वह डाक्टर बन जाता था। होते-होते ऐसा हुआ कि उसकी इस दूषित मनोवृत्ति ने उसके ऊपर अत्यधिक अधिकार जमा लिया और वह किसी भी प्रकार अपने मिस्टर हाइड वाले रूप को बदल कर डाक्टर न बन सका। उसके रहस्य का उद्घाटन होगया और लोगों को उसकी वास्तविकता का पता लग गया। अपने हृदय में हम थोड़ा विचार कर देखें। हम में से कितने इस द्वि व्यक्तित्व × की भावना को पूरा कर रहे हैं। हम हैं कुछ, और अपने को अन्य ही दिखाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक कुभावनाओं का हमारे अन्दर निवास है, हम दिखाते अपने को अन्य रूप में हैं। ऐसा प्रतीत होता है, समाज की व्यवस्था को ठीक रखने के लिये हमें अपना वाञ्छनीय रूप ही सामने लाना चाहिये। यदि एकदम वास्तविकता सामने आ जावेगी तो सम्भव है समाज का कुछ अहित हो। इसी सिद्धान्त के आधार पर तो यथार्थवाद + के स्थान में आदर्शवाद ÷ का प्रतिपादन किया जाता है। समाज के कलंकित, दूषित हीन रूप को दिखाने से क्या लाभ, हम तो वह रूप दिखायें जिसे देखना हम और अन्य पसन्द करेंगे।

कहा गया है 'सचाई सर्वोत्कृष्ट नीति है।'* हमारे यहाँ सत्य का आदर्श रूप 'मनसा, वाचा, कर्मणा' सत्य माना गया है। हमारे मन, वचन और कर्म सत्य की ओर प्रेरित हों, जो हमारे मन में हो वही कहें और उसी के अनुसार कार्य करें। इतना तो मानना पड़ेगा कि आज के सत्य का

$ घृणित, ‡ नीच कार्य, × Dual personality, +, ÷ साहित्य के दो प्रसिद्ध वाद, * Honesty is the best policy।

आदर्श 'मनसा' नहीं रहा है। 'वाचा' और 'कर्मणा' को अब भी अच्छा समझा जाता है, मन में कोई भी बात हो सकती है। तब क्या 'मन' को हम असत्य रूप में रख सकते हैं। भारतीय आदर्श तो, कम से कम, ऐसा है नहीं। मानसिक पाप को बहुत ही बुरा समझा जाता है। और इसीलिये हमारे यहाँ त्रिविधि सत्य† की परिपाटी$ रही है। आज की दुनिया में इसका निर्वाह होता दिखाई नहीं देता परन्तु है आवश्यकता इसी रूप की।

अब इस उक्ति के सामान्य व्यावहारिक रूप पर विचार करलें। कहा जाता है "सचाई छुप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से"। अनेक अवसरों पर देखा गया है कि अपने स्वार्थ की सिद्धि के हेतु बहुत से लोग कपट-पूर्ण आचरण करते हैं। यूनिवर्सिटी के कोई स्नातक× अपनी उत्तीर्ण श्रेणी असत्य बता देते हैं, धनमान का प्रश्न आने पर लोग मनचाही असत्य बात कह देते हैं, बातचीत के प्रसंग में असत्य बातें बता देते हैं, अपने आचरण में अवास्तविकता ले आते हैं। किन्तु ये बातें अधिक नहीं चलतीं। किसी दिन सचाई खुल जाती है और फिर इन असत्यभाषियों को न केवल घोर लज्जा ही उठानी पड़ती है प्रत्युत अनेक प्रकार की हानियाँ भी सहन करनी पड़ती हैं। यह सब जानकर भी हम अपना आचरण निष्कपट और निर्मल क्यों नहीं रखते? तथ्य तो यह है कि इस प्रकार के आचरण के लिये चरित्र-बल की आवश्यकता है। आजकल जीवन ही कुछ ऐसा बन चला है, समाज का रूप इतना विकृत÷ हो गया है कि अनेक अवसरों पर हमें कपटपूर्ण व्यवहार का प्रलोभन होता है; क्योंकि ऐसा करने से हमें बहुत कुछ तात्कालिक लाभ होता हुआ प्रतीत होता है। सम्भव है यह हमारी केवल मिथ्या धारणा हो परन्तु जो बात प्रत्यक्ष सी दिखाई देती है उससे लाभ उठाने की मनोवृत्ति उधर ही चल पड़ती है, और हम समझते हैं जीवन में इस प्रकार की दो एक बातें हो जाना कोई विशेष अपराध नहीं है। किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रममूलक है। कपट अधिक दिन तक नहीं चलता और विदित होने पर उसका परिणाम बहुत कुछ भयंकर हो सकता है।

---

† मन, वचन और कर्म से, $ प्रचलन, × ग्रेजुएट, ÷ दूषित।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में सत्य का बहुत ऊँचा स्थान है और उसी के आधार पर हमें अपने जीवन का आदर्श स्थापित कर उस पर कार्य करना चाहिये। सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हमारी नीति होनी चाहिये। तात्कालिक लाभ† भले ही कुछ होता दिखाई दे परन्तु हमें अपना दृष्टिकोण विस्तृत रखना चाहिये और अपने शास्त्र-प्रतिपादित भारतीय आदर्श का ही अनुगमन करना चाहिये।$

विस्तृत रूपरेखा

१—गोस्वामीजी की अनुभव पूर्ण उक्तियाँ—i 'मानस' इन उक्तियों की निधि है। ii इस उक्ति का स्थान—सत्य का प्रतिपादन, असत्य का विरोध। iii इस प्रकार की अन्य उक्तियाँ।

२—अर्थ तथा उदाहरण—i कपट का व्यवहार अन्त तक नहीं चलता। ii कालनेमि, रावण और राहु का भेद अन्त में खुल ही गया। भेद खुलने पर उन्हें अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ा, मृत्यु स्वीकार करनी पड़ी। iii अनुभव का निचोड़। iv व्यवहार में आने योग्य सुन्दर उक्ति। v व्यावहारिकता।

३ जीवन की गहनता—i हमारा जीवन जटिल हो गया है। ii हमें बाह्य व्यवहार अन्य कुछ रखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। iii राजनीति, वाणिज्य, नित्य प्रति के व्यवहार में इसके बिना काम चलता दिखाई नहीं देता। iv व्यक्तित्व में द्वित्व की भावना आवश्यक-सी प्रतीत होती है। v स्टीवेन्सन की कहानी का उदाहरण। vi किन्तु कपट खुल अवश्य जाना है, फिर इसे हम क्यों धारण करें ?

४—सर्वोत्कृष्ट नीति—i सचाई ही सर्वोत्कृष्ट नीति है। ii भारतीय आदर्श—मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का व्यवहार। iii आधुनिक

† उसी समय होने वाला लाभ, $ मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य।

रूप--'मनसा सत्य' की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वाणी और कर्म के सत्य को तो अब भी आवश्यक गुण समझा जाता है।

५—आचरण में निर्मलता—i उक्ति का व्यावहारिक रूप। ii ज्ञान के सत्य में चरित्र-बल की अत्यधिक आवश्यकता। iii कपट व्यवहार एक मिथ्याधारणा है जिसका परित्याग श्रेयस्कर है।

६—जीवन में—सत्य की उपयुक्तता है। उसको ग्रहण करना चाहिये। iii भारतीय आदर्श के अनुरूप बनना चाहिये यही शाश्वत सुन्दर मार्ग है।

४८—भारत की नाटकीय परम्परा

संक्षिप्त रूपरेखा

१—काव्य-वर्गीकरण और उसमें नाटक का स्थान। २—भारतीय नाटक के प्रधान तत्व। ३—नाटकों के भेद–पश्चिमीय नाटक। ४—हिंदी के पूर्व नाट्य साहित्य। ५—हिन्दी के नाटक--भरतेन्दु, प्रसाद और उनके उपरान्त। ६—एकांकी का प्रचलन। ७—रंगमंच, सिनेमा आदि।

निबन्ध—भारतीय परम्परा के अनुसार जो काव्य अभिनीत होकर देखा जाय वह दृश्य काव्य है और जो कानों से सुना जाय उसे श्रव्य काव्य कहेंगे। हमारे यहाँ नाटकों को आरम्भ से ही कुछ अधिक प्रधानता मिली है क्योंकि उसमें न केवल अधिक आकर्षण है वरन् वह जनसाधारण को भी देखने द्वारा आनन्द दे सकता है। उसमें गद्य-पद्य दोनों का योग होता है, नेत्र, श्रवण दोनों इन्द्रियां तृप्त होती हैं और प्रभाव अधिक स्थायी होता है। जो चित्र नाटकों द्वारा उपस्थित किये जाते हैं वे अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक होते हैं, केवल कल्पना का आश्रय ही नहीं रहता। अनेक कलाओं के सम्मिश्रण* द्वारा इसमें जीवन की अधिक छटा स्थापित हो जाती है। संगीत, नृत्य, काव्य, इतिहास चित्रकला, स्थापत्य,× समाजशास्त्र, वेशभूषा, अनेक शिल्प प्रयुक्त होते हैं। तभी तो कहागया है—

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' ÷

हमारे यहाँ नाटक का अत्यन्त शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

* मेल, × भवननिर्माण कला, ÷ काव्य में नाटक रम्य होता है(भरत)।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र तो अति प्रसिद्ध है ही, साथ ही अन्य अनेक नाट्यशास्त्री हुये हैं। नाट्य-शास्त्र के अनुकूल नाटक के चार तत्व होते हैं—वस्तु, नेता (पात्र), रस और अभिनय। कथोपकथन और चरित्र-चित्रण अभिनय वस्तु और पात्र के अन्तर्गत आजाते हैं। इसी प्रकार रस में उद्देश्य भी सम्मिलित हो जाता है। भरतमुनि ने तो इसी में कह डाला—"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः।" अभिनय चार प्रकार का बताया गया है—कायिक, वाचिक, आहार्य† और सात्विक$। वस्तु, पात्र आदि का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया गया है और नाटक के अनेक तत्वों को शास्त्रीय पद्धति के अनुसार समझाया गया है। नाटकों में रस को प्रधानता दी गई है। एक प्रकार से नाटकों के प्रसंग से ही हमारे देश में रस का विवेचन आरम्भ हुआ जो कालान्तर में काव्यशास्त्र का इतना महत्व-पूर्ण अंग बनगया।

नाटकों का शास्त्रीय नाम रूपक है, नाटक तो रूपक का एक भेद मात्र है। मुख्य भेद होने के कारण इसी ने रूपक का स्थान ले लिया, और अब रूपक का प्रयोग केवल शास्त्रीय विवेचन में ही होता है। रूपकों का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है। रूपक के १० भेद बताये गये हैं तथा उपरूपक के अठारह। रूपकों में रस की प्रधानता होती है और उपरूपकों में नृत्य, भाव आदि की। रूपक के १० भेद—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, वीथी, डिम, प्रहसन, ईहामृग और अंक हैं। उपरूपक के अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, सट्टक, गोष्ठी, प्रस्थानक, नाट्य-रासक, काव्य, उल्लाप्य, रासक, प्रेंखण, श्रीगदित, सलापक, शिल्पक, विलासिका, भाणिका, हल्लीश, प्रकरणिका तथा दुर्मल्लिका। ये भेद केवल भेदों के ही रूप में रहे इनका प्रयोग अधिक नहीं हुआ और आज कल हिन्दी में तो इनका कोई उपयोग होता ही नहीं। पश्चिम में नाटकों का विभाजन दुःखान्त और सुखान्त दो प्रकार से किया जाता है और इनके कुछ भेद-प्रभेद भी होते हैं जो दोनों के सम्मिश्रण से बनते हैं। आजकल दुःखान्त* तथा सुखान्त§ नाटकों को उनके एकांकी रूप में स्थान

† वेशभूषा द्वारा, $ स्वेद, काय आदि, * Tragedy, § Comedy.

नहीं मिलता क्योंकि यह जीवन के प्रतिकूल है। भारत में दुःखान्त नाटकों का अभाव रहा। इसका कारण यह है कि हमारे यहाँ मृत्यु आदि दृश्य वर्ज्य माने गये हैं और उनको देखने से आनन्द में बाधा आती है, साथ ही सहानुभूति को वेग के साथ कृत्रिम रूप से जगाने में उसकी अनुभूति तीव्रता कम हो जाती है। ईश्वरीय न्याय की भावना में भी ठेस पहुँचती है। इसी कारण से हमारे यहाँ यद्यपि करुणापूर्ण नाटक हैं किन्तु वियोगान्त नहीं।

हिन्दी में नाटक आरम्भ होने से पूर्व एक बहुत लम्बा समय ऐसा मिलता है जिसमें कोई नाटक नहीं लिखे गये कुछेक केवल बिहार में लिखे गये। संस्कृत का नाट्य भांडार तो बड़ा ही मूल्यवान था। जिस भाषा में शकुन्तला, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार, मृच्छकटिक, मालतीमाधव आदि अनेक उत्कृष्ट नाटक हों उसके भांडार का क्या कहना। 'शकुन्तला' विश्वसाहित्य में गणित है, उत्तररामचरित का करुण अनोखी सृष्टि है, मृच्छकटिक एक नवीन भावना ही प्रदाता है, आदि प्राकृत में ही अनेक नाटकों की सृष्टि हुई, और संस्कृत नाटकों में भी प्राकृत का प्रयोग बहुत कुछ पात्रविशेष के कारण होता था। खेद है कि कालिदास, भवभूति, हर्ष और शूद्रक की नाट्य प्रतिभा का देश बहुत दिनों तक नाटकों से वंचित रहा। इसके मूल में राजनैतिक कारण थे। हिन्दी का आरम्भिक काल मारकाट का समय था। मुसलमान इस देश के साहित्य की ओर उस समय कैसे आकर्षित हो सकते थे। इनका धर्म† नाट्यकला की तो अनुमति देता ही न था। अतएव नाटक को पनपने नहीं दिया गया। एक प्रकार से भारतीय इतिहास के मध्य युग में नाट्य-कला उठ-सी गई। बिहार की ओर कुछ प्रयत्न अवश्य हुआ जैसे विद्यापति का 'रुक्मिणी हरण', उमापति का 'पारिजात हरण।'

हिन्दी में नाटक का उत्थान भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने किया। इनसे पहले जो नाटक मिलते हैं वे संस्कृत के नाटकों के अनुवाद थे और उनमें पद्यात्मकता का बाहुल्य था। नेवाज का 'शकुन्तला' नाटक, ब्रजवासी

† नाटक-कुरान के प्रतिकूल।

दास का 'प्रबोध चन्द्रोदय', विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' तथा मञ्जु का 'हनुमान नाटक' इसी प्रकार की कृतियाँ हैं। भारतेन्दु ने अपने पिता बा० गोपालचन्द्र$ कृत 'नहुष' नामक नाटक सर्व प्रथम हिन्दी-नाटक बताया है। इसके उपरान्त राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला' नाटक प्रस्तुत किया। भारतेन्दुजी ने मौलिक तथा अनुवादित दोनों प्रकार के नाटक हिन्दी को प्रदान किए। चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, वैदिकीहिंसा···, नीलदेवी, अन्धेर नगरी प्रभृति उनके मौलिक नाटक हैं तथा विद्यासुन्दर, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र आदि अनुवादित। नाटकों की रचना-शैली में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया, प्राचीन भारतीय शैली के साथ पश्चिमीय नाटकों की पद्धति का सम्मिश्रण किया। लगभग चौदह नाटकों के प्रणेता भारतेन्दुजी ने भाषा शैली आदि सभी की ओर ध्यान दिया और साथ ही समकालीन अन्य विद्वानों को भी प्रोत्साहित किया। इसी समय बाबू तोताराम राय ने 'केटोकृतांत' लिखा। बद्री-नारायण चौधरी ने 'भारत सौभाग्य', प्रतापनारायण मिश्र ने, 'त्रिया तेल······', राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप', श्रीनिवासदास ने 'रणधीर प्रेममोहिनी', आदि नाटकों की रचना की। इस समय के नाटकों में हास्य और व्यंग्य का बहुत समावेश होता था। भाषा यद्यपि खड़ी बोली हो गई थी किन्तु कहीं-कहीं व्रजभाषा के रूप मिल जाते थे और उर्दू शब्दों का भी प्रयोग होता था। इन नाटकों के उद्देश्य धार्मिक, सामाजिक सुधार तथा देश-प्रेम होते थे। एक ओर धार्मिक नाटक चलते थे तो दूसरी ओर इन्द्रसभा, गुलबकावली जैसे नाटक। पारसी नाटक कम्पनियों ने अपना कार्य शुरू कर ही दिया था।

हिन्दी में नाटकों का आरम्भ अनूदित नाटकों से हुआ और इस ओर संस्कृत तथा बँगला के नाटकों पर अधिक ध्यान दिया गया। कालान्तर में अँग्रेजी नाटकों के भी अनुवाद किये गये। सत्यनारायणजी का 'उत्तर-रामचरित', लक्ष्मणसिंह का 'शकुन्तला'* तथा पं० रूपनारायण पाण्डे द्वारा द्विजेन्द्र लालराय के नाटकां† ख्याति को प्राप्त हुए। शेक्सपियर के

$ उपनाम गिरधरदास, * संस्कृत नाटकों के अनुवाद, † बँगला नाटक।

भी कुछ नाटकों का अनुवाद हुआ। इस ओर डा० सीतारामजी ने काफी कार्य किया। साथ ही कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गये। बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती', मैथिलीशरण गुप्त का 'चन्द्रहास', पन्तजी का 'चन्द्रकला-भानुकुमार' तथा माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' मौलिक नाटकों में गिने जा सकते हैं। रंगमंच के लिये, विशेषतः पारसी कम्पनियों द्वारा खेले जाने योग्य नाटक प्रस्तुत करने में पं० राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद बेताब, हरेकृष्ण जौहर, आगा हश्र तथा जेबा के नाम प्रमुख हैं। यद्यपि ये हिन्दी के नाटक थे किन्तु भाषा तथा शैली और वाक्यविन्यास में उर्दूपन था।

इनके उपरान्त 'प्रसाद' जी का युग आता है। ये अपने युग के स्वयं ही एक मात्र प्रतीक हैं। बाबू जयशंकरप्रसादजी ने भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के सुन्दर चित्र उपस्थित किये, इतिहास तथा पुरातत्व* पर सुन्दर सामग्री एकत्रित की और हिन्दी के नाट्य साहित्य में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। दार्शनिकता, कर्मण्यता, नियति‡ और आदर्श सभी का सुन्दर चित्रण इनके नाटकों में मिलता है। नाट्य शास्त्र के रूढ़िवाद× को प्रसादजी ने समाप्त कर दिया। प्रसादजी के नाटक बौद्धकालीन भारत की सुन्दर झाँकियाँ देते हुए बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मों का सुन्दर समन्वय कराते हैं। इनके अजात शत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ आदि नाटकों में अग्रगण्य हैं। उनके द्वारा रचित स्त्री पात्र ममता, दृढ़ता और त्याग के सुन्दर स्वरूप हैं। अन्तर्द्वन्द्व तथा जीवन मीमांसा के अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

प्रसादजी के उपरान्त नाट्य क्षेत्र में अनेक नाटककार दिखाई पड़ते हैं। आजकल के नाटकों में विषय भेद रहता है और इसी के आधार पर नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक होते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में बौद्ध तथा हिन्दू कालीन सभ्यता से सम्बन्धित प्रसादजी के नाटक हैं। मुस्लिम काल की झाँकियाँ कुछ तो बँगला नाटकों के अनुवाद से मिलती हैं और कुछ हरेकृष्णजी प्रेमी के नाटकों से जैसे "रक्षाबन्धन"

---

* प्राचीन सभ्यता सम्बन्धी, ‡ भाग्यवाद, × प्राचीन परिपाटी।

में। प्रहसनों के सम्बन्ध में जी० पी० श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है। गोविन्द वल्लभ पन्त की 'वरमाला', मिलिन्दजी का 'प्रताप प्रतिज्ञा' अच्छे नाटक हैं। सेठ गोविन्ददासजी ने भी अच्छे नाटक लिखे हैं जैसे 'कर्तव्य'; 'स्पर्द्धा' आदि। उदयशंकर भट्ट के गीति-नाटक, जैसे 'मत्स्य गन्धा' सुन्दर कृति है। लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'संन्यासी' बद्रीनाथ भट्ट की 'दुर्गावती', उग्र का 'महात्मा ईसा' आदि अन्य उल्लेखनीय नाम हैं। वर्तमान हिन्दी नाटकों पर पश्चिमीय यथार्थवाद का प्रभाव पड़ रहा है और साथ ही साम्यवाद की ओर भी प्रवृत्ति झुकी हुई है। यथार्थवाद साहित्य का कितना हित कर सकेगा यह एक विचारणीय विषय है। साहित्य की दृष्टि से तो 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद‡ को ही स्थान दिया जा सकता है। आजकल के नाटकों में सजीव चित्रण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, गीतों के माधुर्य, अभिनय की कुशलता, और कथानक की उपयुक्तता की ओर ध्यान है।

आजकल हिन्दी में एकांकी नाटकों का प्रचलन बढ़ने लगा है। वैसे तो भारतीय साहित्य में एकांकी कोई नवीन वस्तु नहीं हैं, क्योंकि हमारे उपरूपकों के भेद में वे सम्मिलित हैं। 'अंक' और 'वीथी'† में भी एक ही अंक होता था, किन्तु इनका आधुनिक रूप पश्चिमीय साहित्य से प्रभावित है। समय की बचत और अभिनय की सुलभता के कारण इसे बहुत अपनाया जा रहा है। डाक्टर रामकुमार, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, भगवतीचरण वर्मा आदि इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। प्रायः स्कूल, कालेजों के छात्रों द्वारा एकांकियों के प्रदर्शन होते रहते हैं। अनेक 'एकांकी नाटकों' के संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

नाटक का अत्यधिक सम्बन्ध अब सिनेमा से स्थापित होगया है। हिन्दी में कोई सुन्दर रंगमंच* तो था ही नहीं, जो कुछ भी था वह उसके रूप को यथार्थता प्रदान करने वाला नहीं था। सिनेमा का सुयोग पाकर हिन्दी के नाटकों को क्षेत्र तो विस्तृत मिल गया है और हरे कृष्ण प्रेमी, सुदर्शन, नरेन्द्र शर्मा आदि इस ओर कार्य भी कर रहे हैं, किन्तु हिन्दी का

‡ प्रेमचन्द का कथन, † रूपक के भेद, * रंगमंच नामक निबन्ध देखें।

कितना उपकार चित्रपटों द्वारा होरहा है इस सम्बन्ध में हिन्दी-प्रेमी संतुष्ट नहीं। सिनेमा वालों की अपनी कठिनाइयाँ अलग हैं और जनरुचि में बहुत परिवर्तन के पश्चात् ही इनके द्वारा हम हिन्दी के प्रति कर्तव्यपालन की बात देख सकेंगे। रंगमंच की ओर भी कभी-कभी कोई अच्छे प्रयास हो जाते हैं। इस ओर प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेता 'पृथ्वीराज' का नाम उल्लेखनीय है। वे अपनी मण्डली द्वारा बम्बई में अनेक नाटकों का सफल प्रदर्शन कर भारत के प्रसिद्ध नगरों में पर्यटन कर रहे हैं। अब भारतीय सरकार ने उन्हें आमन्त्रण दिया है कि रूस और चीन में जाकर अभिनय कला द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क स्थापन की ओर प्रयत्नशील हों।*

विस्तृत रूपरेखा

१—वर्गीकरण और नाटक का स्थान—i काव्य के दो भेद—श्रव्य, दृश्य। ii काव्य का स्थान—(a) अनेक कलाओं का प्रयोग, (b) ऋग्वेद से कथोपकथन, साम से गायन, अथर्व से रस तथा यजु से अभिनय लेकर पंचम वेद नाट्य बनाया। (c) प्रभावोत्पादक, स्पष्ट एवं आकर्षक।

२ प्रधान तत्त्व—i वस्तु—कथानक। ii नेता—पात्र एवं उनका चरित्र-चित्रण। iii रस—उद्देश्य आदि का योग। iv अभिनय—चार प्रकार का अभिनय कायिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक। v कथोपकथन—अभिनय के अन्तर्गत आ जाता है।

३—नाटकों का वर्गीकरण—प्राचीन-भारतीय—i रूपक—१० भेद। ii उपरूपक—१८ भेद।

पश्चिमीय—i सुखान्त। ii दुःखान्त।

आधुनिक—i सामाजिक। ii धार्मिक तथा पौराणिक। iii ऐतिहासिक। iv समस्या मूलक।

४—हिन्दी के पूर्व का नाट्य साहित्य—i संस्कृत के सुन्दर नाटक—शाकुन्तला, उत्तररामचरित, वेणीसंहार, मृच्छकटिक, मालती माधव।

* मई, १९५१ का सरकारी आदेश।

ii मुसलमानी काल में नाटकों का ह्रास । iii बिहार की ओर कुछ नाटक । iv कुछ प्राचीन राजधानियों में इस ओर ध्यान ।

५—हिन्दी का युग –

१—i भारतेन्दु—अनेक नाटक अनुवादित तथा मौलिक । ii अन्य—तोताराम, श्री निवासदास, बद्रीनारायण, राधाकृष्णदास । i भारतेन्दु के पश्चात् अनुवाद—(a) बँगला नाटकों के अनुवाद—रूपनारायण पांडे । (b) संस्कृत नाटकों के अनुवाद--सत्य नारायण, लक्ष्मणसिंह । (c) अँग्रेजी नाटकों के अनुवाद--ला० सीताराम । ii मौलिक--(a) बदरी नारायण भट्ट, माखनलाल, रायदेवी प्रसाद पूर्ण । (b) रंगमंच को--राधेश्याम, बेताब, जेबा, जौहर ।

२—प्रसाद--इनकी विशेषता--भाषा, विषय, प्रणाली, प्रसिद्ध नाटक - चन्द्रगुप्त, स्कन्द गुप्त, अजातशत्रु ।

३—अन्य अनेक--प्रेमी, जे० पी० श्रीवास्तव, मिलिंद, गोविन्ददास, मिश्र, उदयशंकर, बद्रीनाथ, उग्र ।

६—एकांकी—i भारतीय नाटक-भेद ! ii पश्चिमीयता से प्रभावित । iii अनेक एकांकीकार--राजकुमार, भट्ट, अश्क आदि ।

७—रंगमंच तथा सिनेमा--दोनों का संयोग । ii हिन्दी की ओर प्रयास । iii अभिनय कला । iv भविष्य ।

४६--हिन्दी में समालोचना

संक्षिप्त रूपरेखा

प्रस्तावना—i आलोचना की आवश्यकता । ii आलोचना के गुण । iii प्रकार । २—हिन्दी में आलोचना की प्राचीन परिपाटी । ३—समालोचना का नवारम्भ । ४—हिन्दी समालोचना का विभाजन । ५—समालोचना के साधन । ६—समालोचना-सिद्धान्त एवं कृतियों की आलोचना । ७—समालोचना में वृद्धि ।

"समालोचना रूपी सूर्य साहित्य की अनन्त बिखरी हुई विभूतियों की सुन्दरता को प्रकाशित करता है, उनके गुणों का अनुभव कराता है, उनकी विशेषताओं का देदीप्यमान चित्र नेत्रों के सम्मुख खींच देता है।"* समालोचना साहित्य का प्रधान अंग है। साहित्य का सौन्दर्य खोज से ही निकलता है और यह कार्य समालोचना करती है। बिना समालोचना के हम कृतिकार की कृतियों का न रसास्वादन कर सकते हैं और न उसके अन्तस्तल में प्रवेश कर सकते हैं। किसी भी साहित्य की उन्नति, विकास और प्रसार के लिए सत्समालोचना+ का होना आवश्यक है, और आज के युग में तो यह अनिवार्य होगया है। लेखक तथा पाठक दोनों की दृष्टि से समालोचना एक आवश्यक वस्तु है—लेखक के गुण प्रकाश में आते हैं और पढ़ने वाले को कृति की विशेषताओं का पता लगता है।

इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए आलोचक में भी अनेक गुण अपेक्षित हैं। गम्भीर शास्त्रीय अध्ययन, गहरी पैठ, आलोच्य× विषय में जानकारी, सहृदयता, ईमानदारी, सत्य-निर्वाह, सुरुचि, प्रभावोत्पादकता, आदि अनेक गुण आलोचक में होने चाहियें। उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि लेखक अथवा कवि के प्रति अन्याय न करे साथ ही जनता में भ्रमात्मक प्रचार भी न हो। उसे छिपी हुई विशेषताओं को प्रकाश में लाना है और जनता के सामने उन्हें उपस्थित कर देना है।

आलोचना के अनेक प्रकार हो सकते हैं। ये आलोचना-प्रणाली पर निर्भर हैं। हिन्दी में मुख्यतः ४-५ प्रकार की प्रणालियाँ मिलती हैं। निर्णयात्मक÷ आलोचना—इसमें शास्त्रीय आधार पर काव्य के गुण दोषों का विवेचन किया जाता है। व्याख्यात्मक$ आलोचना के अन्तर्गत आलोचक कृतिकार की अन्तरात्मा में प्रवेश कर उसके भावों को हृदयंगम कराने में सहायक होता है। यह आधुनिक प्रणाली है। शुक्लजी द्वारा

---

* पीयूष से, + सच्ची आलोचना, × जिसकी आलोचना की जा रही है, ÷ Judicial, $ Inductive।

यह प्रणाली हिन्दी में प्रयुक्त हुई। ऐतिहासिक$—इसमें मूल स्रोत और सामाजिक परिस्थितियों को खोजा जाता है। डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा उनका समुदाय इसके अनुकूल हैं। मनोवैज्ञानिक आलोचना+ में कवि के स्वभाव, उसकी आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों को समझा जाता है। डा० नगेन्द्र इस ओर प्रयत्नशील हैं। तुलनात्मक आलोचना†—इसमें विभिन्न कवियों की तुलना द्वारा समालोचना होती है। इसका श्रीगणेश पं० पद्मसिंह शर्मा ने किया। इसके अतिरिक्त प्रभावात्मक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, प्रतिवर्तनात्मक‡ आदि अन्य प्रणालियाँ भी हैं।

भारतीय साहित्य में आलोचना की परिपाटी नवीन नहीं। संस्कृत-आचार्य एवं साहित्य मीमांसकों ने आलोचना के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किए और अपने विचार भी कवि विशेष के सम्बन्ध में प्रकट किए। उनकी आलोचना निर्णयात्मक थी। "उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ गौरवम्···" इसी प्रकार हिन्दी में -"तुलसी गंग दुवो भये सुकविन के सरदार···।" संस्कृत तथा हिन्दी में पाई जाने वाली टीकाएँ भी एक प्रकार से आलोचना का रूप ही हैं। बहुत दिनों तक गुण-दोष-विवेचन की प्रणाली चली। टीका, भाष्य, दोहों पर कुण्डलियाँ आदि व्याख्यात्मक आलोचना के भी उदाहरण मिलते हैं। 'नाभाजी का भक्तमाल' आदि ग्रन्थ निर्णयात्मक आलोचना के उदाहरण कहे जा सकते हैं। कवियों के सम्बन्ध में अनेक उक्तियाँ तो बराबर चलती रहीं।

आधुनिक समालोचना का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों ने इस ओर बहुत कुछ योग दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में उसका प्रारम्भ हुआ। 'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में 'नोट' समालोचना के रूप में निकला करते थे। लेखों के रूप में पुस्तकों की विस्तृत समालोचना पंडित बदरी नारायण चौधरी* ने अपनी 'आनन्द कादम्बिनी' नामक से पत्रिका आरम्भ की।

$ Historical, + Psychological, † Comparative, ‡ Reactionary, * "प्रेमघन"।

हिन्दी में प्राप्त आलोचना को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं (१) प्रारम्भिक काल (२) मध्यकाल (३) नवीन पद्धति। हरिश्चन्द्र जी ने उपलब्ध सामग्री की परीक्षा कर समालोचना के क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन का कार्य किया। भारतेन्दु ने जिस समालोचना का श्रीगणेश किया उसका विकसित रूप हमें बालकृष्ण भट्ट और बदरीनारायण चौधरी के लेखों में मिलता है। "संयोगिता स्वयंवर"* आलोचना का प्रिय विषय बना था और भाषा, प्रबन्ध, अँग्रेजी प्रभाव, शास्त्रीय नियम तथा सिद्धान्तों का परिपालन करते हुए आलोचनाएँ की गई थीं। इनके पश्चात् पत्र-पत्रिकाओं में समालोचनाएँ निकलती रहीं। कुछ आलोचनाएँ पुस्तक परिचय के रूप में भी होती थीं। गुण-दोष-दर्शन वाली प्रणाली काफी समय तक चलती रही। इसके साथ ही द्विवेदी जी§ की आलोचना-पद्धति आजाती है। लेखकों की रचना में खोज-खोज कर दोष निकाले जाने लगे। साथ ही महावीरप्रसादजी ने कुछ प्राचीन ग्रन्थों की परिचयात्मक आलोचना भी की। मिश्र बन्धुओं ने भी आलोचना के इसी रूप को जारी रखा किन्तु पाठकों का ध्यान कवियों की विषयगत और भाषा सम्बन्धी विशेषताओं की ओर भी आकर्षित किया। उनका 'हिन्दी नवरत्न' इस ओर प्रशंसनीय प्रयास है। इन्हीं के समय में 'देव बिहारी' 'बिहारी देव' नामक झगड़े चल पड़े और आलोचना न होकर विवाद का सा रूप दिखाई देने लगा। "नागरी प्रचारिणी पत्रिका"$ भी इसी काल में आरम्भ होगई थी किन्तु उसका प्रकाशन निरन्तर उन्नत होता गया। कुछ समय ही पश्चात् तुलनात्मक आलोचना भी आरम्भ हुई। पण्डित पद्मसिंह शर्मा की 'बिहारी सतसई'+ और कृष्णबिहारी मिश्र की 'देव बिहारी' पुस्तकें अच्छे उदाहरण हैं।

पं० रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दर दास प्रौढ़ आलोचना के स्रष्टा हैं। इस काल में निर्णयात्मक आलोचना के स्थान पर व्याख्यात्मक आलोचना आई। शुक्लजी की तुलसी, सूर और जायसी विषय व्याख्या-

---

* श्रीनिवासदास कृत, § सरस्वती पत्रिका द्वारा, $ १८९७ में प्रकाशित, + भूमिका के रूप में।

त्मक आलोचनाएँ हिन्दी की मूल्यवान् निधि हैं। ऐतिहासिक आलोचना की ओर डा० श्यामसुन्दरदासजी अधिक आकर्षित हुए। 'पत्रिका' द्वारा बाबू सा० ने आलोचना की यथेष्ट सेवा की। इस काल में गुण-दोष विवेचन प्रणाली को छोड़कर लेखक के आविर्भाव काल, जीवन, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों आदि का अध्ययन कर उसकी अन्तः प्रवृत्ति का विश्लेषण किया गया। पश्चिमीय और पूर्वीय सिद्धान्तों का सुन्दर सामञ्जस्य दिखाई देने लगा। आलोचकों के लिए एक मार्ग का निर्देश हो गया और बहुत से. विद्वान् इस ओर प्रयत्नशील हुए। आजकल जो आलोचनाएँ चल रही हैं उनमें इसी मार्ग का अनुकरण किया जारहा है।

आलोचना की नवीन पद्धति में भाव, कला तथा लोक तीनों पक्षों पर ध्यान दिया जाता है। यह हो सकता है कि आलोचक विशेष किसी विशेष पक्ष पर अधिक ध्यान देते हों। आजकल के आलोचकों में विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ती जारही है। इन्हें तीन वर्गों में रखा जा सकता है। एक वे जो भाव-सौंदर्य के साथ कला को यथोचित स्थान देते हैं, जैसे डाक्टर रामकुमार, पं० हजारी प्रसाद, बाबू गुलाबराय, डा० नगेन्द्र, शिलीमुखां आदि। दूसरा वर्ग प्रगतिवादी आलोचकों का है जो भौतिक मूल्यों पर अधिक ध्यान देते हैं, जैसे अज्ञेय, डा० रामविलास। डा० धीरेन्द्र, डा० रामरतन, डा० माताप्रसाद आदि खोज और इतिहास को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार इस समय आलोचना की सर्वतोमुखी उन्नति हो रही है।

हिन्दी में समालोचना प्रकाशित करने के अनेक साधन उपलब्ध हो गये हैं। वैसे तो आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों द्वारा हुआ था, और बहुत समय तक आलोचना का यही एकमात्र रूप चलता रहा। आज भी आलोचना प्रकाशन का बहुत कुछ कार्य इस साधन के द्वारा सम्पन्न होरहा है। प्रत्येक साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक में समालोचना-स्तम्भ होता है और उसमें प्राप्ति-स्वीकार के अन्तर्गत लेखक और उसकी कृति

† पं० रामकृष्ण शुक्ल।

की आलोचना मिल जाती है। उच्चकोटि के साहित्यिक मासिक जैसे— हंस, साहित्य सन्देश आदि तो आलोचना को ही प्रमुख स्थान देते हैं। खोजपूर्ण लेखों को प्रकाशित करने वाली नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि हैं। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप में भी पुस्तकें लिखी जाने लगी हैं। यद्यपि इस कार्य की ओर मिश्र बन्धुओं ने ही गति उत्पन्न करदी थी, किन्तु अधिक विकास नहीं हो पाया। अब प्राय: सभी कवियों और उच्चकोटि के लेखकों के अध्ययन निकल गए हैं। इस दिशा में श्री रामरतन भटनागर का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। आलोचना का एक अन्य साधन पुस्तकों की भूमिका के रूप में उपलब्ध होना है। शुक्ल जी द्वारा सूर, तुलसी और जायसी की आलोचना इसी कोटि में आनी चाहिये। सम्पादक या टीकाकार किसी ग्रन्थ को आरम्भ करने के पूर्व परिचयात्मक तथा आलोचनात्मक टिप्पणियाँ बढ़ा देता है। अनेक स्थलों पर लेखक या कवि द्वारा अपनी कृति की आलोचना स्वयं की होती है जैसा 'हरिऔध जी' ने प्रिय प्रवास लिखते समय किया था। इनके अतिरिक्त भाषा, क्लास टिप्पणियाँ,* आदि अन्य साधन और भी हैं। अब इन साधनों की दिनों-दिन वृद्धि होरही है। साहित्य-इतिहासों में भी आलोचना मिल जाती है।

आलोचना के सैद्धान्तिक$ ग्रन्थ भी निकाले गए हैं। डाक्टर श्यामसुन्दर ने इस ओर पथ प्रदर्शन किया। वैसे तो हमारे भारतीय साहित्य में सिद्धान्त ग्रन्थों की कमी नहीं। प्रत्येक छोटी बात का सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचन हुआ है अनेक स्वतन्त्र कृतियाँ भी हैं जैसे मम्मट का काव्य प्रकाश, विश्वनाथ का साहित्य दर्पण, जगन्नाथ का रस गंगाधर, किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमीय सिद्धान्तों का अध्ययन किया गया। आलोचना के विषय पर पश्चिम में बहुत कुछ कार्य हो चुका है और यह आवश्यक समझा गया कि उस साहित्य का लाभ हिन्दी-प्रेमियों को भी दिया जाय। हडसन† आदि आलोचकों का अध्ययन कर श्यामसुन्दरदासजी

---

* Clas Notes. $ Theoretical. † W. H. Hudsan.

ने अपना 'साहित्यालोचन' प्रकाशित कराया। रिचार्ड्स,§ वर्सफील्ड आदि के सिद्धान्तों को लेकर शुक्ल जी ने अपने साहित्य में कुछ उत्तम बातें लिखीं। डाक्टर सूर्यकान्त का साहित्य-मीमांसा तथा पं० रामदहिन मिश्र का काव्यालोक आलोचना-सिद्धान्तों के अच्छे ग्रन्थ हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद का वाङ्मय विमर्श, डा० रमाशंकर रसाल का आलोचनादर्श, बाबू गुलाबराय के सिद्धान्त और अध्ययन इस ओर अनेक प्रयास हैं। विषय विशेष को लेकर लिखी गईं अन्य पुस्तकें भी हैं जैसे शुक्ल का 'काव्य में रहस्य वाद' सुधांशु का 'काव्य में अभिव्यञ्जनावाद' पुरुषोत्तम जी का 'आदर्श और यथार्थ' गंगा प्रसाद पांडेय का 'रहस्यवाद और छायावाद'। इनके साथ ही नाटक, कहानी, उपन्यास, काव्य, आदि पर आलोचना-सिद्धान्तों की दृष्टि से पुस्तकें लिखी गईं।* इस प्रकार आलोचना-साहित्य की यथेष्ट श्रीवृद्धि होरही है।

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रस्तावना—i आलोचना की आवश्यकता, साहित्य का प्रधान अङ्ग, लेखक की विशेषताओं का बोध कराने हेतु पाठकों का पथ प्रदर्शन। ii आलोचना के गुण—अध्ययन, सचाई, पैठ- सहृदयता, सुरुचि, प्रभावोत्पादकता आदि। iii प्रकार—(a) निर्णयात्मक, (b) व्याख्यात्मक, (c) तुलनात्मक, (d) ऐतिहासिक, (e) मनोवैज्ञानिक, प्रभावात्मक, पतिवर्तनात्मक, बौद्धिक आदि।

२—प्राचीन परिपाटी—i साहित्यशास्त्रियों द्वारा आलोचना के सिद्धान्त। ii निर्णयात्मक। iii प्रचलित कवि सम्बन्धी उक्तियाँ। iv टीकाएँ, भाष्य आदि। v बाह्य रूप से सम्बन्धित। vi विश्लेषणात्मक प्रणाली का अभाव।

३—नवारम्भ—i पत्र-पत्रिकाओं द्वारा। ii भारतेन्दुजी का योग, 'प्रेमघन' जी का कार्य।

---

§ I. A. Richards. * डाक्ट्रेट के लिए दिए गए थीसिस भी इस ओर सफल प्रयत्न है।

४—काल-विभाजन—i आरम्भिक--भारतेन्दु, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, द्विवेदी, पद्मसिंह, मिश्रबन्धु । ii मध्य (प्रौढ़) पश्चिमीय तथा पूर्वीय सिद्धान्तों का मिश्रण, शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी पत्रिका । iii नवीन पद्धति के तीन वर्ग—(a) भाव सौंदर्य--द्विवेदी, नगेन्द्र, शिलीमुख, (b) प्रगतिवादी--अज्ञेय, रामविलास, (c) ऐतिहासिक--धीरेन्द्र, रामरतन ।

५—प्रकाशित करने के साधन—i पत्र-पत्रिकाएँ--आलोचना-स्तम्भ । ii स्वतन्त्र पुस्तकें । iii भूमिका के रूप में । iv टिप्पणियाँ आदि । v साहित्य के इतिहासों में ।

६—सैद्धान्तिक ग्रन्थ—i साहित्यालोचन, साहित्य मीमांसा, साहित्य विमर्श, काव्यालोक, वाङ्मय विमर्श, आलोचना सिद्धि । ii अलग-अलग विषयों पर । iii साहित्य के विभिन्न अङ्गों पर ।

७—वृद्धि—i वृद्धि के लक्षण चारों ओर हैं । ii आलोचना की ओर यथेष्ट ध्यान है ।

५०—हिन्दी मुसलमान कवि

संक्षिप्त रूपरेखा

१—प्रस्तावना—भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा भावनाओं का प्रभाव । २—मुसलमानों द्वारा हिन्दी सेवा—हिन्दी के चारों काल में । ३—कवि और कवियित्रियाँ । ४—हिन्दी के प्रति भाव । ५—वर्तमान अवस्था हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान । ६—साहित्य और साम्प्रदायिकता ।

निबन्ध—भारतेन्दुजी ने ठीक ही कहा था—

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये ।' क्योंकि प्रारम्भिक काल से ही मुसलमानों ने हिन्दी की अमूल्य सेवा की । राजनैतिक क्षेत्र में* कुछ भी बात हो, किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में तो मुसलमानों ने एकदम अपने को भुला दिया और उसी सच्ची भावना के साथ साहित्यिक कृतियों के

---

* मुसलमानी राज्य होते हुए भी ।

सृजन में भाग लिया जैसे कोई भी उच्च कोटि का हिन्दू भाग लेता। भारत की सभ्यता और संस्कृति से वे पूर्णतः प्रभावित हुए, यहाँ का धार्मिक चिन्तन भी उन्हें रुचिकर हुआ और सबसे अधिक तो वे कृष्ण-भक्ति से प्रभावित हुए। भक्ति की पावन सरिता में अवगाहन§ कर न केवल मुसलमान पुरुष ही प्रत्युत स्त्रियाँ भी अपने को धन्य मानने लगीं। कृष्ण के रूप, उनकी क्रीड़ाओं आदि का उन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने सुन्दर भावमय रचनाएँ कीं। जब हम यह देखते हैं कि यह समय मुसलमानी सत्ता का था और अनेक क्षेत्रों में घोर कट्टुता का प्रदर्शन‡ हो रहा था तो हमें बहुत ही आश्चर्य होता है कि किस प्रकार मुसलमानों के हृदयों में हिन्दू-संस्कृति के इन अमर प्रतीकों ने स्थान बना लिया। क्या भाव, क्या भाषा, क्या विषय सभी प्रकार से ये कवि हिन्दुओं से घटकर नहीं थे।

हिन्दी के आदि काल से लेकर बहुत समय तक मुसलमानों द्वारा हिन्दी की अमूल्य सेवा हुई। वीरगाथा काल में ही हम देखते हैं कि खुसरो नाम के विद्वान् ने हिन्दी भाषा को बहुत कुछ साहित्य प्रदान किया। पहेलियाँ और मुकरियाँ जो खुसरो द्वारा हिन्दी को मिलीं उन की समानता आज तक कोई न कर सका। खुसरो द्वारा हिन्दी तथा उर्दू में सुन्दर भाव लाने का जो कार्य हुआ वह आज भी श्लाघ्यनीय* ही समझा जावेगा। प्रत्येक व्यक्ति की जबान पर उनकी पहेलियाँ पाई जाती हैं। ये बड़े विनोदी जीव थे। इनका सांसारिक वैभव भी बढ़ा-चढ़ा था, साथ ही सुन्दर हास्यमयी प्रकृति थी। देखिए—चार स्त्रियों को एक साथ प्रसन्न करने की कला—

खीर पकाई जतन से, चरखा दिया जलाय।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय॥

और फिर 'ला, पानी पिला।'†

भक्ति काल के अन्तर्गत प्रधानतः चार शाखायें हैं। दो निर्गुण के अन्तर्गत तथा दो सगुण के। निर्गुण मतावलम्बी दोनों शाखाओं में मुसल-

§ स्नान, ‡ धर्म परिवर्तन आदि, * प्रशंसा के योग्य, † कुएं पर पानी पीते समय की एक घटना।

मान कवियों का योग बहुत मूल्यवान् है। प्रेमाश्रयी सूफीधारा तो एकमात्र मुसलमान कवियों की ही है। जायसी, कुतबन, नूरमुहम्मद, उसमान, मंझन आदि कवियों ने सुन्दर प्रेम-गाथाएँ लिखीं। जायसी का पद्मावत तो पूज्य-पाद गोस्वामीजी महाराज के 'मानस' का एक प्रकार अग्रदूत$ हुआ। प्रबन्ध काव्यों का आरम्भ वास्तविक रूप में इन मुसलमान सूफियों द्वारा ही हुआ। न केवल भाषा वरन वस्तु विषय भी हिन्दुओं के घरों का ही लिया, उन्हीं की प्रेम कहानियों द्वारा अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। काव्य की दृष्टि से जायसी के पद्मावत का एक उच्च स्थान है।

ज्ञानाश्रयी शाखा में कबीर, द्वारा नेतृत्व हुआ। कबीर सन्त कवियों में अग्रगण्य हैं, रहस्यवाद के सच्चे स्रष्टा हैं। जायसी का रहस्यवाद यदि प्रेममूलक था तो कबीर का ज्ञानात्मक। सुन्दर, सरल किन्तु स्पष्ट उक्तियों द्वारा गहन भावों को हृदयंगम§ कराया गया है। आत्मा, परमात्मा और माया के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाली उक्ति देखिये—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना* यह तत कथौ गियानी ॥

'नैया बिच नदिया' डुबा कर अनेक उलट बासियों† द्वारा भी गम्भीर तथ्यों को बताने की चेष्टा की गई है। इनका अनुगमन अनेक सन्त कवियों ने किया। प्रतीत होता है कि संतों की कोई जाति नहीं होती थी क्योंकि 'हरि को भजै सो हरि का होई'। जन्मतः कबीर एक मुसलमान जुलाहे थे।

रामाश्रयी सगुण धारा के अन्तर्गत कोई विशेष प्रसिद्धि का मुसलमान कवि उपलब्ध नहीं होता है, किन्तु कृष्ण-भक्ति ने तो उन्हें बहुत ही अधिक प्रभावित किया। विशुद्ध कृष्ण-भक्ति का अति उज्ज्वल स्वरूप रसखान में प्राप्त होता है। उनके—

"मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन" आदि सवैये बड़े प्रेम के साथ ध्वनित होते सुने जाते हैं। अथवा इनका—

$ Fore-rummer, ‡ जन्म से ब्राह्मण, किन्तु मुसलमान जुलाहे द्वारा परिपोषित, § समझाना, * आत्मा परमात्मा का सम्मिलन, † प्रत्यक्ष में उल्टी लगने वाली।

"या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारों"

प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' छोटी किन्तु सुन्दर पुस्तकें हैं। इसी समय में 'आलम' कवि भी हुए जिनका 'शेख' के साथ प्रणय प्रसिद्ध है और साथ ही 'कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन' वाला अनुप्रास से युक्त दोहे का अर्द्धांश। इस दोहे की पूर्ति§ पर ही आलम 'आलम' बन गये। कादिर, मुबारिक आदि और भी कई कवि हुए।

कृष्ण की भक्ति, नंदलाल की बांसुरी और भक्ति का माधुर्य स्त्रियों को और भी प्रभावित कर सका। जिस छवि पर मीरा रीझी, रसखान निछावर हुए उसी पर 'ताज' नाम की एक भक्त महिला भी अपना सर्वस्व खो बैठी। यह परम वैष्णव थी और इसका भाव था—

'नन्द के कुमार, कुरबान ताणी सूरत पर,
हौं तो तुरकानी, हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मैं।'

शेख की कृष्ण-भक्ति कुछ अधिक शृंगारिकता लिये हुए थी। राधा कृष्ण को इसने नायिका-नायक के रूप में ही देखा।

इसी काल में अब्दुर्रहीम खानखाना हुए जो हिन्दी काव्य में 'रहीम' के नाम से विख्यात हैं। हिन्दी समाज इस नाम से इतना अधिक परिचित होगया है कि इन्हें मुसलमान समझने में भी संकोच सा होता है। इनकी सतसई, रीति ग्रन्थ और रास पंचाध्यायी सुन्दर कृतियाँ हैं। ब्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है। बरवै नामक सुन्दर, छोटे, अवधी छन्द के तो ये जन्मदाता ही हैं। इनके नीति के दोहे प्रचलित हैं—

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत 'नाहिं'॥

बरवै का प्रारम्भिक छन्द—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा चल्यौ लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो मुरझि न जाय॥

---

§ "कटि को कंचन काटि कै कुचन मध्य धरि दीन", ‡ आलम पहले ब्राह्मण थे।

कवियों के प्रति इनका बड़ा उदार भाव था। गंग कवि को ही एक बार में ३६ लाख रुपया दे डाला था। तुलसीदासजी से इनका परिचय प्रतीत होता है।

हिन्दी के रीति काल को भी मुसलमान कवियों का योग प्राप्त हुआ। अभी अभी कविवर रहीम का नाम आया था जिनके द्वारा कई रीति-ग्रन्थ लिखे गये*। इनके अतिरिक्त पठान सुलतान ने बिहारी की सतसई पर कुण्डलियाँ लिखीं। इस युग में रसलीन भी एक प्रसिद्ध कवि हुए जिनका वर्णन इतना चमत्कारपूर्ण होता था कि इनका लिखा—

अमी हलाहल, मद भरे, सेत स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवन इक बार॥

नामक दोहा जनसाधारण द्वारा बिहारी कृत समझा जाता है। मुसलमान कवियों की भावुकता रीति-काल में भले प्रकार प्रस्फुटित हो सकी और अनेक मुसलमान स्त्री-पुरुषों ने इस ओर अपना योग दिया।

आधुनिक काल में इस मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन होगया। मुसलमान कवियों की कमी होने लगी और उनका ध्यान उर्दू कविता की ओर गया। अब तो ऐसी भी कविता नहीं मिलती जो खड़ी बोली में उर्दू छन्दों के द्वारा उपस्थित की गई हो, जैसे नजीर अकबरावादी की जो—

यारो सुनो ये दधि के लुटैया का बालपन।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥

हाथों में लोहे के पतले कड़े पहन कर छड़ी घुमाते हुए फकीर गाते सुने जाते हैं। साम्प्रदायिकता अधिक बलवती होगई है।

कविता के अतिरिक्त यदि हम हिन्दी गद्य को भी देखें तो मुसलमानों का ऋण स्वीकार करना पड़ता है। पद्य के रूप में तो खड़ी बोली का आरम्भ खुसरो ने ही कर दिया था -

"टट्टी तोड़ के घर में आया"

---

* जैसे नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक।

आधुनिक काल के गद्य उन्नायकों में इन्शाअल्लाखाँ का नाम भी महत्त्वपूर्ण है जिनकी 'रानी केतकी की कहानी' 'हिन्दी' को छोड़ और किसी बोली का पुट नहीं रखती। कविता के क्षेत्र में भारी उदासीनता रही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमान कवि और कवियित्रियों ने अच्छा भाग लिया। यदि हिन्दुओं में प्रसिद्ध प्रबन्धकार तुलसी हैं तो प्रबन्ध काव्य के अग्रदूत रूप में हमारे सामने जायसी आदि अनेक प्रेम-गाथाकार हैं। यदि सूर ने कृष्ण की लीला गा माधुर्य और कोमलता का संचार किया तो रसखान ने 'कालिंदीकूल कदम्ब की डारों में' अपनी कविता की रसमयी सरिता प्रवाहित की। कृष्ण-प्रेम में मतवाली मीरां का रूप 'हिन्दुवानी' हो रहने वाली ताज में मिलता है। सन्त कवियों में तो कबीर पथदप्रर्शक हुए ही। बिहारी जैसी सुन्दर उक्तियाँ कहने वाला रसलीन मुसलमान कवि प्रस्तुत है। रीति ग्रन्थों की रचना करने में रहीम ने सुन्दर योग दिया और शृङ्गार की धारा आलम, शेख, आदि द्वारा प्रवाहित हुई।

मुसलमान कवियों के इस परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाव क्षेत्र* किसी जाति या वर्ग विशेष का नहीं होता। भाषा, भाव और संस्कृति से सब कोई प्रभावित हो सकते हैं। हमारे शरीर अलग-अलग धर्म स्वीकार कर सकते हैं, मस्तिष्क पर भी प्रभाव पड़ जाय, किन्तु हृदय के विषय वे ही रहते हैं। इन कवियों का हिन्दी के प्रति सुन्दर भाव रहा और परिणाम यह हुआ कि इनके द्वारा अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना हुई और इस प्रकार हिन्दी का साहित्य बढ़ा। अनेक क्षेत्रों में तो इनके द्वारा पथ-प्रदर्शन का कार्य हुआ।†

वर्तमान अवस्था इस रूप में अत्यन्त शोचनीय है। मुसलमान कवि हिन्दी को अपनाने की बात सोच ही नहीं सकते। हिन्दी-उर्दू विषयक जो विवाद शुरू हुआ था और जो कटुता बढ़ी उससे मार्ग अलग-अलग होगये। पहिले सब साहित्यिक होते थे चाहे हिन्दू हो अथवा मुसलमान। जिसकी

* कविता का क्षेत्र, † जैसे प्रेम-मार्ग, ज्ञान-मार्ग।

जिस भाषा से रुचि होती थी वह उसी को ग्रहण कर लेता था। अनेक हिन्दुओं ने न केवल उर्दू प्रत्युत अरबी-फारसी में सुन्दर रचनाएँ कीं और उर्दू साहित्य में उनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। यही दृष्टिकोण मुसलमानों का था और आज तक उनका हिन्दी के ऊपर ऋण समझा जाता है। परन्तु यह मुन्दर अवस्था अब केवल कल्पना का विषय रह गई। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान दो विभिन्न राज्य बन जाने से तो इस साहित्यिक मनोवृत्ति पर और भी कुठाराघात हुआ। दोनों देश अपनी-अपनी भाषा की उन्नति तथा प्रसार* में लगे। साहित्य के लिये यह कोई अच्छी बात नहीं हुई। किन्तु क्या किया जाय, साम्प्रदायिकता तो अब प्रत्येक क्षेत्र में अवतरित हो चुकी है। उचित तो यह होता कि साहित्य सृजन और साम्प्रदायिकता अलग-अलग रहते और प्राचीन साहित्यकारों के सिद्धान्तों का अनुगमन किया जाता जिससे देश में एकता, अखण्डता और प्रेम से युक्त हो सुख शान्ति का वातावरण उपस्थित होता।

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रस्तावना i भारतेन्दु की उक्ति। ii भारत की भूमि से प्रभावित—सभ्यता, संस्कृति तथा वातावरण का प्रभाव। iii कृष्ण का आकर्षक रूप। iv भाव, भाषा तथा विषय सभी दृष्टि से।

२—इनकी सेवा चारों कालों में—i आदिकाल (a) खुसरो की पहेली, मुकरी, खड़ी बोली, (b) हिन्दी-उर्दू मिलाने के प्रयत्न। ii भक्तिकाल—(a) प्रेमाश्रयी—सूफी कवि जायसी, कुतबन आदि, (b) ज्ञानाश्रयी—कबीर आदि सन्त कवि, धार्मिक कटुता को दूर करने का सतत् उद्योग, (c) कृष्णाश्रयी रसखान--इसके सदृश, आलम, मुबारिक, कादर, अन्य; शेख ताज-स्त्री; (d) अन्य रहीम- नीति, बरवै आदि। iii रीतिकाल (a) रहीम द्वारा रीति-ग्रन्थों का प्रणयन, (b) रसलीन 'अमी हलाहल……', (c) नजीर। iv आधुनिक काल--कवियों का अभाव गद्य की ओर प्रयास।

* बढ़ाना।

३—कवि और कवियित्रियाँ - i हिन्दी के कवि कवियित्रियों से समानता। ii प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व। iii अनेक रूपों में मार्ग प्रदर्शन का कार्य। iv स्त्री, पुरुष दोनों के द्वारा साहित्य सृजन का कार्य।

४—हिन्दी के प्रति भाव—i मुसलमान कवियों का हिन्दी-प्रेम। ii हृदय की स्वच्छन्दता। iii काव्य के भावों की ओर अनुरक्ति।

५—उपसंहार—i वर्तमान अवस्था--हिन्दी-उर्दू के विवाद-ग्रस्त प्रश्न, विद्वानों द्वारा घोर विरोध, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान का स्थापन। ii साहित्य और साम्प्रदायिता--दोनों मिलकर साहित्य का अहित कर रही हैं, साम्प्रदायिकता दूर रहनी चाहिये, साहित्य का क्षेत्र उज्ज्वल, भावयुक्त तथा स्वच्छ रहे।

५१—"कविता रही सो कबिरा कहिगा,
सूरे कही अनूठी।
रही सही कठमलिया कहिगा,
और कही सब झूँठी॥"

संक्षिप्त रूपरेखा

१—इस प्रकार के अन्य प्रचलित पद्य और उनका मूल्य। २—पद्य का तात्पर्य, कठमलिया का स्पष्टीकरण। ३—कवियों के वर्गीकरण। ४—तुलसी, कबीर और सूर की कविता। ५—कविता के अनुसार कवियों के स्थान। ६—प्रस्तुत पद्य भ्रमात्मक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण।

इस प्रकार के अनेक पद्य हिन्दी में प्रचलित हैं और उनके द्वारा कवि विशेष का मूल्यांकन* करने की चेष्टा वैयक्तिक† दृष्टिकोण से की गई है। कवियों सम्बन्धी निम्न उक्ति अति प्रसिद्ध है—

---

* मूल्य जांचना, † निजी।

सूर सूर तुलसी शशी उडगण केशवदास ।
अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करत प्रकास ॥

कुछ लोग इससे सन्तुष्ट न हो कहने लगे—

तुलसी रवि सूरज शशी—आदि ।

प्राय: लोगों ने तुलसी को ही सर्वोत्कृष्ट कवि ठहराया है, और सूर को द्वितीय स्थान दिया है। दो-एक उक्तियाँ और भी देखिए—

तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार ।
इनकी कविता में मिली भाषा विविध प्रकार ॥'

सम्भव है यह उक्ति भाषा के दृष्टिकोण से हो, भाव-पक्ष न लिया गया हो, किन्तु इसको क्या कहेंगे—

"और बराती सकल कवि दूलह दूलह राय$ ।"

और इस मापदण्ड¶ को भी देखिए—

तत्त्व-तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठ ।
कछू-कछू कबिरा कही, और कही सो झूठ ॥

यह स्पष्ट है कि संसार में रुचि-वैचित्र्य है और लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ही कवियों का मूल्यांकन करते हैं। किसी को शृङ्गार प्रिय है तो किसी को वीर, कोई शान्त का उपासक है तो कोई हास्य का भक्त। रुचि-वैचित्र्य संसार का अटल नियम है और इसका मूलोच्छेद नहीं हो सकता।

इस समय हमारे सामने जो पद्य है, वह विचित्र ही है। 'कविता रही सो कबिरा कहिगा'—कविता की इतिश्री* तो कबीरजी ने ही करदी, बाकी कुछ बचा ही नहीं अतएव बिचारे अन्य कवि क्या करते, वे कविता के अधिकारी किस प्रकार हो सकते थे। अथवा यों कहिये अन्य किसी कवि की कविता इतनी उत्कृष्ट हुई ही नहीं कि 'कविता' नाम से सम्बोधित की जा सके। कबीरजी के साथ ही कविता सर्वदा के लिए चली गई। हाँ, सूरजी के लिए कुछ 'रिआयत' की गई है। उनकी कविता को 'अनूठी'

$ दूलह नाम का रीतिकालीन कवि, ¶ measure,
* समाप्ति ।

कहा है। यहाँ 'अनूठा' शब्द से 'उक्ति वैचित्र्य' का ही तात्पर्य लिया जा सकता है। कविता की आत्मा के सम्बन्ध में यह अनूठा शब्द नहीं पहुँचता। फिर भी इन पंक्तियों का रचयिता मानता है कि सूरदासजी की कविता यदि वास्तविक नहीं तो अनूठी अवश्य है, जिसके पढ़ने से यदि रस का उद्रेक नहीं होता है तो 'उसके वैचित्र्य' का आनन्द तो प्राप्त होता ही है। अब रह गये 'कठमलिया'। वैसे तो कविता में बचा ही क्या था, किन्तु जो भी बचा वह इन्होंने समाप्त कर डाला।

यह 'कठमलिया' कौन है? वह व्यक्ति जो गले में काठ की माला धारण करे—बैरागी हो—ऐसा व्यक्ति बाबा तुलसीदास के अतिरिक्त और कौन हो सकता है। किन्तु इस शब्द का प्रयोग बड़ी धृष्टतापूर्वक किया गया प्रतीत होता है, तुलसी को अति निम्न स्थान दिया गया है। वैसे तो बाबा ने अपने सम्बन्ध में एक स्थान पर स्वयं कहा है—

कर्मठ कठमलिया कहैं,
ज्ञानी—ज्ञान विहीन।*

अब हमें इस पद्य की सार्थकता पर विचार करना है कि किस प्रकार कबीर सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और सूर उनके द्वितीय, तथा तुलसी प्रभृति कवियों का स्थान बहुत नीचा है।

हिन्दी साहित्य में यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि तुलसी और सूर हिन्दी के सर्वोत्तम कवि हैं—अब चाहे तुलसी को बड़ा मानें अथवा सूर को अपनी-अपनी प्रतिभा और क्षेत्र के अनुसार दोनों ही बड़े हैं। मिश्र बन्धुओं ने अपने 'नवरत्न में पहले तुलसी को और फिर सूर को स्थान दिया है और अन्य विद्वानों का भी प्रायः यही मत है। इन दो कवियों के बाद तीसरे कवि का स्थान भरने का प्रश्न विवादग्रस्त है—इस स्थान का अधिकारी कोई देव को बताते हैं तो कोई बिहारी को, कोई कबीर को और कोई केशव को। इस स्थान का एक प्रकार से निर्णय ही नहीं हो सका है। सूर और तुलसी की वह प्रतिभा तो किसी में है नहीं।

* किन्तु बाबाजी इसकी परवाह नहीं करते थे।

यदि देव ने दर्जनों ग्रन्थों की रचना की है तो बिहारी ने ७०० दोहों में ही कमाल कर दिया है; यदि कबीर की कविता ध्वनिपूर्ण है तो केशव की भाषा और अलंकार अनूठे हैं। मिश्र बन्धुओं के 'देव' को तृतीय स्थान पर प्रतिष्ठित करने के उपरान्त हिन्दी में काफी विवाद चला* और असंयत तथा अशिष्ट भाषा तक का व्यवहार हुआ।

कबीर को सर्व प्रथम स्थान देने के कारणों पर भी विचार करना चाहिये। कविता की आत्मा क्या है? इस विषय में लगभग पाँच मत हैं—(१) 'रस' मत, (२) 'अलंकार' मत, (३) 'रमणीय' मत, (४) 'ध्वनि' मत तथा (५) 'वक्रोक्ति' मत। यदि ध्वनि और वक्रोक्ति मत को प्रधानता दी जाय तो हमें कबीर को इस स्थान पर प्रतिष्ठित करने के सम्बन्ध में सामग्री मिल जाती है।

कबीरजी की कविता व्यंग्यों से परिपूर्ण है, मुल्लाओं और पण्डितों को उन्होंने खूब सुनाई—

'मूँड़ मुड़ाये जे सिधि होई।
मूँड़ी भेड़ सिद्ध क्यों न होई॥'

मुल्लाओं से कहते हैं—

'कंकर पत्थर जोर के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दें क्या बहरा हुआ खुदाय॥'

मूर्ति-पूजकों से कहते हैं—

'दुनिया ऐसी बावरी, पत्थर पूजन जाय।
घर की चकिया कोइ न पूजै जा का पीसा खाय॥'

मांसाहारियों के प्रति—

'बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे बकरी को खात हैं तिनका कौन हवाल॥'

ब्राह्मण तुर्क दोनों से कहते हैं—

जो तू बाम्हन बम्हनी जाया आन मारग है······
जो तू तुरक तुरकनी जायी अन्दर खतना······

---

* 'देव-बिहारी' नामक।

इस प्रकार की पंक्तियों से कबीर की कृतियाँ भरी पड़ी हैं। कबीर ने खरी वक्रोक्तियाँ कही हैं जिनका तत्काल स्पष्ट प्रभाव हो। कबीर की यह खरी-खोटी सुनाना बहुत प्रभावोत्पादक प्रतीत होता है और उस काल में इसकी आवश्यकता भी थी।

कबीर की कविता में एक और भी गुण है और वह है संकेत-वादिता। उनकी कविता में अनेक गूढ़ बातों की ओर संकेत किया गया है जो एक सच्चे रहस्यवादी के लिए उचित है। उनकी इस इङ्गितमयी कविता को, जिसमें रहस्य भरा पड़ा है, निःसन्देह उच्चकोटि का कहा जा सकता है। उनकी कविता के इस गुण से आकृष्ट होकर बँगला के उत्कृष्ट कवि, नोबेल पुरस्कार विजेता 'कवीन्द्र रवीन्द्र' ने भी कबीर के सौ दोहों का अनुवाद* किया। जीव और ब्रह्म के अभेद की ओर संकेत—

लाली तेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन हौं गई मैं भी हो गई लाल॥

आत्मा-परमात्मा के सुन्दर सम्मिलन का उत्कृष्ट वर्णन—

'दूल्हा दुलहिन मिल गये फीकी परी बरात।'

माया का आवरण हटने और आत्मा-परमात्मा के एक स्वरूप की सीधी व्याख्या—

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल, है बाहर भीतर पानी।
टूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना, यह तथ कथौ गियानी॥'

अतएव वक्रोक्तियों एवं संकेत-ध्वनिपूर्ण रहस्यवाद के कारण कबीर को हम एक उच्च स्थान का अधिकारी कह सकते हैं।

अब सूर को लीजिए। हिन्दी साहित्य में सूर के क्षेत्र में सूर की समता करने वाला कोई कवि नहीं। तुलसी के क्षेत्र की अपेक्षा सूर का क्षेत्र परिमित अवश्य है, किन्तु अजीब सुन्दर और भावपूर्ण। ब्रजभाषा में सूर ने जो रस-धारा प्रवाहित की उसमें अवगाहन कर प्रत्येक काव्य-प्रेमी प्रफुल्लित होता। इससे लबालब भरी सूर की-सी कविता अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। नीरस स्थल तो दृष्टिकूटों को छोड़ कहीं प्राप्त ही नहीं होते।

---

* Humdred Complets of Kabir।

कबीर में उद्दण्डता है, सुधारक होने की आकांक्षा है, ठोंक-पीट कर वैद्यराज* बनाने की प्रवृत्ति है; किन्तु सूर को कविता-कामिनी पर बलिहार होने का चाव है, सरस राग गाने की लालसा है, और है कृष्ण की बाल-लीलाओं में मग्न होने की उत्कंठा।

तुलसी ने सभी रसों का सुन्दर प्रतिपादन किया। सूर ने प्रधानतः शृङ्गार का—वात्सल्य और विप्रलंभ का। कृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन में जो स्वाभाविक प्रतिभा का दर्शन होता है, वह साहित्य में अनूठा है—

मैया! मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल कौ लीयो तू जसुमति कब जायो।

अथवा—

मैयारी! हौं नाहीं दधि खायो।
मद की माती मस्त ग्वालिनी झूँठो नाम लगायो॥

और भी—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?

अनेक उदाहरण मिलेंगे। ऐसा प्रतीत होता है, कोई बच्चा अपनी 'तोतली' भाषा में 'माँ' की अदालत में अपनी 'पैरवी' कर रहा है।

दूसरी ओर उनका विप्रलंभ शृङ्गार भी अद्भुत है। ऊधो से गोपियों का जो वाद-विवाद होता है और गोपियाँ अपनी जिस दशा का वर्णन करती हैं उसे सुनकर प्रत्येक व्यक्ति द्रवीभूत हो जाता है—

'सँदेसन मधुबन कूप भरे।'

कोई संदेस पहुँचता ही नहीं—

'मधुबन! तुम कत रहत हरे?
बिरह-बियोग श्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे?

श्याम की पत्रिका पढ़ें तो क्योंकर—

'लोचन जल कागद मसि मिलिकें,
ह्वै गई श्याम श्याम की पाती।'

---

* जबरदस्ती कोई काम कराना।

इन पंक्तियों को पढ़कर अश्रु-प्रवाह रोकना कठिन है। साथ उद्धव के प्रति व्यंग्य भी देखिए—मथुरा के तो सब काले ही हैं—

वा मथुरा काजर की कोठरि जे आवें ते कारे।
तुम + कारे सुफलक सुत × कारे कारे मधुप‡ भमारे।

निर्गुण के सम्बन्ध में उक्तियाँ—

आयो घोष* बड़ो व्यौपारी।
'फाटक$ दैकर हाटक† मांगत, जानत निपट अनारी ॥'

अथवा—

'निर्गुण कौन देस के बासी।
मधुकर हँसि समुझाय; सौंह दै बूझत साँच, न हाँसी।'

सूर के सम्मुख कबीर का स्थान फीका-सा जँचता है। एक प्रकार से तो कबीर में काव्य की प्रतिभा भी नहीं—वे तो एक अच्छे उपदेशक, सुधारक सन्त थे। उनके लिए कविता साधन-मात्र थी, साध्य नहीं। कबीर ने कविता की दृष्टि से नहीं उपदेश देने की इच्छा से पद्य-रचना की। वास्तविक कवित्व का दर्शन सूर में ही होता है।

इस विश्लेषण द्वारा सूर को कबीर से नीचा स्थान नहीं दिया जा सकता। कोई निर्गुण सन्त यदि गोस्वामी तुलसीदासजी को 'कठमलिया' कहता हुआ उनकी कविता की उपेक्षा करे तो इसमें कोई तथ्य नहीं कहा जा सकता। किसी प्रसंग विशेष में ऐसी बात कह दी होगी। तुलसी की प्रतिभा तो सर्वथा प्रत्यक्ष है। अतः उनके सम्बन्ध में किन्हीं तर्क एवं युक्तियों की आवश्यकता नहीं।

निश्चय ही तुलसी और सूर पहले तथा दूसरे स्थान के अधिकारी हैं और यदि कबीर की कविता के अन्तःस्वरूप के गुणों पर दृष्टि डालते हुए दोषों पर दृष्टिपात न करें तो उन्हें तीसरा स्थान दिया जा सकता है। कबीर की भाषा में दोष, भावों में अव्यवस्था तथा रस का अभाव है और छन्द, अलंकार आदि की तो कोई बात ही नहीं। उनका गुण काव्य की

+ उद्धव, × अक्रूर, ‡ भ्रमर गीत का स्रष्टा, * ग्वालों की बस्ती, $ निर्गुण, † सगुण।

अन्तरात्मा का स्वरूप है जो अभिव्यंजना* के अभाव में स्पष्ट नहीं हो पाया। एक ऊँचे रहस्यवादी के नाते ही वे उच्च कवियों में गिने जा सकते हैं, काव्य शिल्पी के [illegible] में नहीं।

विस्तृत रूपरेखा

१—अनेक अन्य उक्तियाँ— i रुचि वैचित्र्य के कारण। ii मत प्रतिपादन के हेतु।

२—पद्य का तात्पर्य—i कबीर सर्वश्रेष्ठ हैं—कविता सब उनके द्वारा हो चुकी। ii सूर में उक्ति वैचित्र्य है। iii कठमलिया—अर्थात् तुलसी ने कुछ बचा खुचा कहा। iv भ्रमात्मक पद्य।

३—कवियों का वर्गीकरण—i 'नवरत्न' के अनुसार बृहत्त्रयी में तुलसी सूर तथा देव। ii अन्य विद्वानों के अनुसार तुलसी, सूर सर्वश्रेष्ठ। iii तीसरे स्थान का अधिकारी विवाद-ग्रस्त।

४—कबीर, सूर तथा तुलसी की कविता—i कबीर--वक्रोक्तियाँ, सुधार, उपदेश की प्रवृत्ति, संकेतमयी भाषा--रहस्यात्मकता। ii सूर--वात्सल्य और विप्रलंभ-शृङ्गार अत्यन्त उत्कृष्ट प्रतिपादन, हिन्दी काव्य की अमूल्य कृतियाँ रस, भावुकता से परिपूर्ण। iii तुलसी--निश्चय रूप से अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान के अधिकारी।

५—कविता की दृष्टि से कवियों का स्थान—i तुलसी। ii सूर। iii कबीर--यदि दोषों पर ध्यान न दें, अन्यथा निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता।

६—प्रस्तुत पद्य भ्रमात्मक किसी निर्गुण सन्त ने भाव-धारा विशेष में प्रवाहित हो कह दिया है।

---

* प्रकाशित करना।

५२—आदर्श और यथार्थ

संक्षिप्त रूपरेखा

१—उपक्रम । २—आदर्श और यथार्थ तथा 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' । ३—आदर्श और यथार्थ, व्याख्या । ४—पारस्परिक सम्बन्ध । ५—समालोचना । ६—नैतिकता और सौन्दर्य । ७—दोनों मतों का संघर्ष । ८—निष्कर्ष ।

अरस्तू* ने कहा था कि कला अनुकरण है ।† सम्भवतः अनुकरण से उनका तात्पर्य जीवन के अनुकरण से है । कला जीवन का अनुकरण है । जो कुछ कलाकार के मन पर जीवन की प्रतिक्रिया होती है, वही तो कला का स्वरूप धारण कर व्यक्त होती है । अरस्तू के पश्चात् अनेक अन्य विद्वानों ने भी कला और जीवन का सम्बन्ध बताने के लिए भिन्न-भिन्न सिद्धान्त स्थिर किये । मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा, 'कला जीवन की आलोचना है ।'$ आदि-आदि ।

इन विद्वानों के विचार-तत्त्व हमें इसी तथ्य पर ले पहुँचते हैं कि कला और जीवन का आधेय-आधार-सम्बन्ध है । जीवन की भूमि पर ही कला पल्लवित होती है । और जैसा बाद को प्रचलित किया गया 'कला जीवन के लिए है, कला कला के लिए नहीं' । श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में:—

> "मानते हैं जो कला के अर्थ ही ।
> स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही ॥"

आदर्श और यथार्थ की समस्या को 'कला कला के लिए' अथवा 'कला जीवन के लिए' की समस्या नहीं समझना चाहिये । वास्तव में 'कला कला के लिए' की रचना न आदर्शवादी हो सकती है न यथार्थवादी । और 'कला जीवन के लिए' वाली रचना यथार्थवादी अथवा आदर्शवादी दोनों में से एक हो सकती है । जीवन के लिए कला की

---

* Aristotle, † Art is immitation, $ Mathew Arnold— 'Art is Criticism of Life." ।

सार्थकता मानने वाले आलोचक और कलाकार दो भागों में बंटे हुए हैं—एक वे हैं जो यह मानते हैं कि कलाकार का कर्तव्य उपदेश देना नहीं है। उसका तो एक मात्र कर्तव्य यही है कि जीवन का वास्तविक चित्र उतार कर रखदे। जीवन जैसा है वैसा ही चित्रण करना यथार्थवाद है। कुछ लोगों के मतानुसार यथार्थवाद 'कला कला के लिए'‡ के सिद्धान्त का पोषण करता है। उनका कहना है कि यथार्थ-चित्रण का उद्देश्य केवल कला है, और कुछ नहीं। यथार्थ के पीछे सुधार अथवा क्रान्ति की कोई भावना नहीं होती।' किन्तु यह बात नितान्त भ्रामक है। यथार्थ के लेखक का उद्देश्य उद्देश्य-हीन कला नहीं हुआ करता। उसका स्पष्ट उद्देश्य चाहे न हो, किन्तु यथार्थ के चित्रण की निश्चित प्रतिक्रिया सुधार अथवा क्रांति हुआ करती है। जीवन की नग्नता के चित्रण से उसके वास्तविक रूप के प्रति हमारी कोई धारणा निर्मित होती है और वह धारणा कोई उद्देश्य भी सिद्ध करती है। कला के लिए जो कला होती है उसके उपयोग से पाठक अथवा दर्शक के मन में कोई निश्चित धारणा उत्पन्न नहीं होती। अतः यथार्थ का 'कला के लिए कला' से कोई सम्बन्ध नहीं। यथार्थ के स्वरूप की व्याख्या समझने के पश्चात् हमें आदर्श की व्याख्या भी समझ लेना चाहिये। कलाकारों और चिन्तकों का दूसरा दल भी है जो यह मानता है, कि जीवन जैसा है वैसा ही यदि चित्रित कर दिया तो वह कला नहीं है। कला का तो एकमात्र उद्देश्य यह है कि वह यह बतावे कि जीवन कैसा होना चाहिये। जैसा श्री मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं:—

> हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा।
> यदि वही हमने कहा, तो क्या कहा?
> किन्तु होना चाहिये कब क्या कहाँ?
> व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ॥

यही सिद्धान्त आदर्शवाद कहलाता है। यह भी स्पष्टतया कला जीवन के लिए का पोषक है, जो उपदेश देकर जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित

---

‡ Art for art's Sake.

करना चाहता है। कला उसकी दृष्टि में आदर्श स्थापित करने का माध्यम मात्र है।

आदर्श और यथार्थ की इस व्याख्या के पश्चात् हम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध और गुण-दोष विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

"आदर्श जीवन के निरपेक्ष सत्य का बालक है। यथार्थ जीवन की सापेक्ष§ सीमा का जनक।" अर्थात् आदर्श में जीवन के सत्य की कोई सीमा नहीं होती। वह सत्य-सापेक्ष होता भी नहीं। उसमें अनुल्लिखित सत्य जीवन के सत्य से बहुत अधिक असम्बद्ध हो सकता है। यथार्थ जीवन के सत्य की सीमाओं से बँधा हुआ है। उसमें वही चित्रित किया जा सकता है जो कटु सत्य है, जीवन का स्वरूप है।

श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार 'आदर्श व्यक्ति-विशेष की अखण्ड-भावना को रूप देकर उसी रूप की रेखाओं के यथार्थ के संकेत व्यक्त करता है।' यही वास्तव में आदर्श और यथार्थ का आपसी सम्बन्ध है। यथार्थ के रंग लेकर आदर्श अपने मन के चित्र बनाता है। उसका उपकरण तो भौतिक और इहलौकिक होता है, किन्तु चित्र पूर्णतया आध्यात्मिक और अतिलौकिक। आदर्श यदि सीमित और प्रतिबद्ध रहता है तो केवल बाह्य जगत् की व्यापक रेखाओं से। अन्तर्जगत् में वह पूर्णतया मुक्त होता है। यथार्थ भावना के, अन्तर्जगत् के भीतर भी सीमित और बन्दी रहता है, बाह्य जगत् की स्थूलता के प्रांगण में भी। आदर्श लेखक अथवा कलाकार के मन की अपनी वस्तु हुआ करता है, उस पर पर का अधिकार नहीं होता। यथार्थ उसकी अपनी वस्तु नहीं हो पाता। वास्तव में उस यथार्थ का चित्रण अत्यन्त कठिन है जो इस प्रकार व्यक्त किया गया हो कि वह हमारा भी रहे और अपनापन भी न खोये। ऐसा यथार्थ ही सच्चा यथार्थ है, स्वस्थ भी।

आदर्श को कहा जा सकता है कि वह अवचेतन की सचेतन अभिव्यक्ति है, किन्तु यथार्थ केवल जड़ की सचेतन अभिव्यक्ति होता है। जो

§ Relative.

कुछ स्वप्न द्रष्टा के मन में अवस्थित होता है, वह उसके अवचेतन का भाण्डार है, उसी के आधार पर स्वप्न-द्रष्टा कलाकार अपने आदर्श का निर्माण करता है। कला का सृजन सतत ही सचेतन अभिव्यक्ति मानना पड़ेगा। अतः जो कुछ आदर्श-द्रष्टा के अवचेतन में सुप्त आदर्श भावना है वही कला का रूप पाकर आदर्शवादी कला हो जाती है। यथार्थ में भी कला तो सचेतन अभिव्यक्ति होकर ही आती है, किन्तु वह जड़ जगत् का प्रतिबिम्ब होकर आती है, क्योंकि मानसिक जगत् अवचेतन होता है, भौतिक जगत् अचेतन।

आदर्श और यथार्थ का यह दार्शनिक सा सम्बन्ध साधारण रूप से अभौतिक-सा है। भौतिक दृष्टि से यथार्थ और आदर्श का ऐसा कोई सम्बन्ध-स्थापन उन दोनों के ही गुण-दोष-विवेचन से अधिक नहीं हो सकता।

आदर्श और यथार्थ दोनों एक दूसरे के विरोधी सिद्धान्त हैं, अतः एक का मानने वाला दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करे यह अत्यन्त ही दुर्लभ बात है। फिर भी प्रेमचन्द जैसे कुछ लेखक ऐसे हैं, जो 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद'* के नाम से अपना एक नवीन सिद्धान्त स्थिर करने की चेष्टा में आदर्श और यथार्थ दोनों की आलोचना कर सकते हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिये:—

"यथार्थवाद हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। किन्तु जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों, जिनमें जीवन न हो।

"इसीलिए वही उपन्यास उच्चकोटि का समझा जायेगा, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश होगया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं।"

अँग्रेजी कवि कीट्स सत्य (यथार्थ) और शिव (आदर्श) को एक मानते हुए कहता है—

---

* Idealist realism.

Beauty is truth, truth is beauty,
That is all you know on earth,
And all you need to know!

इन दो उद्धरणों से जो धारणा हमारे मन में उत्पन्न होती है, वह यही है कि कुछ लोग जहाँ आदर्श और यथार्थ को भिन्न-भिन्न मानकर उनका सामंजस्य कला में चाहते हैं, वहाँ कुछ लोग उन्हें भिन्न मानते ही नहीं। और इस प्रकार उनका सामंजस्य उनकी कला का एक अनिवार्य तत्व हो जाता है। प्रेमचन्द और कीट्स क्रमशः इन दोनों सिद्धान्तों के परिपोषक हैं। तो क्या हम यह मानकर चलें कि काव्य सत्य जीवन की घटनाएँ ही हैं, वे स्वयं ही आदर्श और शिव बन जाती हैं। किन्तु इतिहास इस बात में हमारा साथ नहीं देता। हमने देखा है कि साहित्यकार ने प्रायः सदा ही अपने मनोनुकूल संसार का निर्माण किया है।

'यथास्मै रोचते विश्वं तदिदं परिवर्तते।'*

किन्तु साथ ही यह भी देखा है कि साहित्यकार किसी भी युग में यथार्थ से अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ पाया है। इससे कुछ ऐसी धारणा बनानी पड़ती है, कि वास्तव में कला का वर्ण्य तो यथार्थ ही है, उसे कलाकार किसी विशेष प्रयास से आदर्श का रूप नहीं देता। कला का स्वाभाविक गुण है कि यथार्थ भी वहाँ पहुँच कर आदर्श हो जाता है। एक उदाहरण मेरी बात को अधिक स्पष्ट कर देगा। किसी सड़क के किनारे कुछ रोग से पीड़ित अन्धा भिखारी 'पैसा-पैसा' कराह रहा है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। देखते ही घोर घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह जीवन का सत्य है, यथार्थ है। जब कलाकार इसे अपनी कला द्वारा प्रकट करेगा, तो निश्चित बात है कि उसमें घृणा न रहकर करुणा का आविर्भाव होगा। और उसका चित्र पाठक अथवा दर्शक के हृदय में घृणा उत्पन्न न करके गम्भीर करुणा के बीज बो देगा। कला की यही विशेषता है कि उसमें 'बीभत्स' भी रस होता है। इस प्रकार यथार्थ कला में परिणत होकर आदर्श हो जाता है। यही दोनों का सामंजस्य है। फिर विशेष रूप

---

* जैसा चाहता है वह संसार को वैसा ही परिवर्तित कर लेता है।

से यथार्थ की अवहेलना करके किसी वायवीय आदर्श की खोज में निकलना कला वर्म और जीवन से पलायन है। संसार के किसी अमर-कलाकार की भावुकता जीवन से पलायन नहीं कर पाई है।

एक लेखक पूछता है,

Is there any moral Shut
within the bosom of a bud ?"†

इस प्रश्न की भावना यह है कि कला में नैतिकता अग्राह्य है, मात्र सौन्दर्य ग्राह्य है। इस नैतिकता और सौन्दर्य का विषय हमें अपने वर्ण्य विषय से दूर ले जा सकता है। अतः उस पर अधिक विवेचन हमारे विषय के लिये स्वास्थ्यकर नहीं है। किन्तु इस उद्धरण से यह लगता है कि यथार्थ यथार्थ है, उसमें किसी आदर्श का आरोप उतना ही अस्वास्थ्यकर है जितना नैतिकता का आरोप सौन्दर्य में करना।

आदर्श के परिपोषक महानुभावों का कथन है कि यथार्थवाद हमें निराश बना देता है। हम जीवन में चारों ओर कटुता, घृणा और सवर्ष ही तो देखते हैं। उसे जैसा का तैसा कला में ले आने से हमारी मनोवृत्ति पर बहुत आघात पहुँचता है। हम जीवन की उच्चता और उन्नति के प्रति आशावादी नहीं हो सकते। कला का कार्य है आनन्द और रसानुभव प्रदान करना। यथार्थवाद क्या कला के इस कार्य को पूरा करता है? नहीं। वह आनन्द और रसानुभव न देकर हमें जीवन के प्रति क्षोभ, घृणा और निराशा आदि भावों की प्रेरणा देता है। जब कटुता और संघर्ष से लड़ता-लड़ता मानव-मन घायल हो जाता है, थक जाता है तब उसे शान्ति और आनन्द की आवश्यकता होती है। कला यही करती है। किन्तु जब वहाँ भी संघर्ष और कटुता ही मिलेगी तो आखिर मानव-मन कहाँ शान्ति पायेगा। वह निराशावादी हो जायेगा और धीरे-धीरे उसकी कला-रुचि को धक्का लगेगा, फलतः कला और संस्कृति का पतन हो सकता है।

यह एक पक्षीय दृष्टि है, दूसरे पक्ष के लोगों का कथन है कि कला का उद्देश्य मनोरंजन कभी नहीं है, उसका स्पष्ट उद्देश्य है मानव-मन का

† "कली के अन्तराल में सुप्त, नीति का है क्या कोई तत्व।"

संस्कार। आदर्शवाद मन का संस्कार कभी नहीं कर सकता। क्योंकि यथार्थ और सत्य पर आधारित न रहने के कारण उसमें प्राण नहीं होता। निष्प्राण होने के कारण उसका कभी कोई प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता। न जाने कितने आदर्श राजा रानियों की कथाएँ साहित्य में भरी पड़ी हैं, किन्तु पाठक के मन पर प्रभाव डाले रहने वाले और उसके हृदय को संस्कृत करने वाले कुछ ही चरित्र उसके मस्तिष्क में स्थान बना पाये हैं। आदर्शवादी की सृष्टि सिद्धान्तों की कठपुतली हुआ करती है, जिसके विषय में प्रत्येक कला-सेवी के हृदय में यह भावना समाई रहती है, कि यह सृष्टि पारलौकिक सृष्टि है, और इसी कारण वह उसे हृदय की किन्हीं कोमल और आभ्यंतरिक वृत्तियों के सहारे अपनी चेतना में नहीं उतारता। वह उसे केवल मनोरंजन की दृष्टि से देखता या पढ़ता है। इस प्रकार अपने चरम पर पहुँच कर आदर्शवाद मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह जाता है। उस समय उसके चरित्र अभिमानवीय* होते हैं, अतः मानव-मन उन्हें गम्भीरता से कभी नहीं लेता। इस प्रकार आदर्शवाद में यह शक्ति नहीं है कि वह मन का संस्कार कर सके और कला के उद्देश्य को पूरा कर सके।

आदर्श और यथार्थ दोनों के भिन्न-भिन्न पक्षीय मतों को देख लेने के पश्चात् यह आवश्यकता शेष रह जाती है कि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के जिस स्वरूप को प्रेमचन्दजी गढ़ना चाहते थे, अथवा उन्होंने गढ़ा है वह कहाँ तक उपादेय है तथा Beauty (सौन्दर्य) और सत्य (Truth) की जिस अभिन्नता को कीट्स स्थापित करना चाहता था, वह कहाँ तक उपादेय है।

प्रेमचन्द ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के प्रचारक होते हुए भी कुछ नितान्त प्राणहीन आदर्श पात्रों की सृष्टि की है और कुछ कटु भौतिक यथार्थ पात्रों की चेष्टा की है। इस प्रकार वे अपनी सारी सृष्टि को तो आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सृष्टि नहीं बना सके, किन्तु कुछ कृतियों के कथानकों में और चरित्रों में उन्होंने इसका बहुत ही सफल सामंजस्य किया है।

* Super human.

उदाहरणार्थ गोदान का होरी। जहाँ एक ओर वह अत्यन्त निर्बल मनोवृत्ति वाला साधारण कृषक है, वहीं इतना बड़ा नैतिक भी कि अपनी गाय के हत्यारे भाई के बच्चों का पालन-पोषण करने के लिये अपूर्व त्याग करता है। यहाँ आदर्श और यथार्थ की भिन्नता का सम्मिलन है।

गोदान इसी विशेषता के कारण कला की दृष्टि से प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

शरच्चन्द्र के यथार्थवाद में वातावरण की यथार्थता तो प्रधान थी ही चरित्रों की गहन दुर्बलता भी मिलती है, किन्तु उनके इस चित्रण के पीछे जो व्यंग्य है, वही उस आदर्श की याद दिलाना चाहता है जिसे शरच्चन्द्र अपनी कला का मूल उद्देश्य बनाना चाहते थे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कला न केवल यथार्थवादिनी रह सकती है, न केवल आदर्शवादिनी। दोनों का कुछ न कुछ अंश उसमें मिश्रित रहता ही है। केवल यथार्थ या केवल आदर्श कला को जन्म नहीं दे सकता। कोई भी कलाकार जो केवल यथार्थ या केवल आदर्श के बल पर अपनी कला की महत्ता स्थापित करना चाहता है, कला का केवल दम्भ भर सकता है।

विस्तृत रूपरेखा

१—उपक्रम—i अरस्तू का सिद्धान्त। जीवन का अनुकरण कला। iii मैथ्यूआर्नल्ड का सिद्धान्त, 'कला जीवन की आलोचना।' iv कला और जीवन : आधार-आधेय का सम्बन्ध।

२—आदर्श और यथार्थ : कला और जीवन—i दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की बातें। ii 'कला कला के लिए' अथवा 'कला जीवन के लिए' एक बिल्कुल भिन्न समस्या।

३—आदर्श और यथार्थ : व्याख्या—i यथार्थ : जीवन का यथावत् चित्रण। ii आदर्श : जीवन का लेखक के मनोनुकूल चित्रण। iii आदर्शवादी और यथार्थवादी।

४—पारस्परिक सम्बन्ध—i महादेवी के विचार। ii अन्तर्जगत् और बाह्य

जगत में आदर्श और यथार्थ। iii भौतिक दृष्टि से आदर्श और यथार्थ।

५—समालोचना—i प्रेमचन्द, कॉट्स आदि के विचार। ii इतिहास का मत। iii वास्तविकता।

६—नैतिकता और सौंदर्य—i यथास्मै रोचते विश्वं तदिदं परिवर्तते। ii अंग्रेज लेखक का प्रसिद्ध प्रश्न—

Is there any moral shut,
Within the bosom of a bud,

iii नैतिकता और सौंदर्य का आदर्श और यथार्थ से सम्बन्ध।

७—दोनों मतवादियों का संघर्ष—i यथार्थ के दोष और आदर्शवादी। ii आदर्शवाद के दोष और यथार्थवादी। iii प्रेमचन्द की सामंजस्य-वृत्ति। iv आदर्शोन्मुख यथार्थवाद।

८—निष्कर्ष—i कला न केवल आदर्श से सम्बन्ध रखती है न केवल यथार्थ से। उसमें दोनों का मिश्रण आवश्यक तत्व है। अन्यथा वह कला नहीं।

५३—कला के लिए कला

संक्षिप्त रूपरेखा

१—कला का अभिप्राय। २—कला और जीवन। ३—कला के विभिन्न अर्थ। ४—कला सम्बन्धी अनेक सिद्धान्त। ५—भारतीय आदर्श। ६—पश्चिमीय विचारधारा। ७—वाञ्छनीय रूप।

निबन्ध—"कला कलाकार के आनन्द की श्रेय और प्रेय तथा यथार्थ और आदर्श को समन्वित करने वाली प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है"* बाबू गुलाबराय की यह परिभाषा कला के बाह्य एवं आन्तरिक रूपों का स्पष्टीकरण करती है उसके सूक्ष्म एवं मूर्त दोनों आधारों का उद्घाटन करती

* सिद्धान्त और अध्ययन से।

है। हमारे यहाँ ६४ कलाएँ मानी गई हैं जिनमें तैरना, नाचना, माला बनाना, समस्या पूर्ति आदि सम्मिलित हैं। काव्य को कला के साथ आत्यन्तिक सम्बन्धित किया गया है। भारत की अपेक्षा पश्चिमी देशों में कला का सैद्धान्तिक विवेचन अधिक हुआ है। और 'कला के लिए कला' 'जीवन के लिये कला' आदि उक्तियाँ उधर की ही हैं। अरस्तू$ के समय से ही पश्चिम में कला का विश्लेषण होता आया है। डाक्टर श्यामसुन्दर दास ने अपने साहित्यालोचन में कला के दो भेद बताये हैं—उपयोगी और ललित। उपयोगी कलाएँ भौतिक‡ पदार्थों से सम्बन्धित हैं अतएव आनन्द प्रदान करने वाली कलाएं ललित कला के अन्तर्गत आती हैं। मुख्य ललित कलाएँ पाँच हैं—वास्तुकला†, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं काव्य। और जिस कला में मूर्त आधार जितना कम रहता है उतनी ही उच्चकोटि की वह कला समझी जाती है। उदाहरण के लिये काव्य-कला में मूर्तआधार नगण्य ही है, अतएव 'काव्य' सर्वोत्कृष्ट कला है।

कला और जीवन वाले दो सिद्धान्त चल पड़े हैं। कुछ कहते हैं 'कला-कला के लिये है', कुछ कहते हैं 'कला जीवन के लिये है' इससे मिलती कुछ और भी उक्तियाँ हैं, जैसे—कला उपयोगिता के लिये, कला विनोद के लिये कला सृजनात्मकता के लिये, कला आत्मानन्द के लिये, कला सेवा के लिये आदि। इन सब उक्तियों को मिलाने पर भी 'कला' और 'जीवन' दो ही प्रसंग सामने आते हैं। किन्तु यदि हम विचारपूर्वक देखें तो कला और जीवन में कोई अन्तर नहीं है। कला जीवन का ही अंग है और कला के द्वारा जीवन की परिपुष्टि होती है। कला और जीवन को हम अलग-अलग नहीं कर सकते। कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण काव्य भी जीवन का ही प्रतिरूप है। कहा गया है, 'कविता जीवन से, जीवन की, जीवन के लिये है।'* इसी प्रकार हम कला को सम्बन्धित कर सकते हैं।

कला का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। आनन्द की पूर्ति करने वाले साधन तो इसके अन्तर्गत हैं ही, साथ ही किसी भी काम में चतु-

---

$ Aristotle, ‡ Material, † भवन निर्माण की, * हडसन की उक्ति।

राई कला का ही रूप है। बढ़ई, लुहार, कुम्हार, छीपी, जुलाहे सब से उनके काम में कलात्मकता की आशा की जाती है। कला शब्द में चतुराई के साथ सूक्ष्मता, तीव्रता, लाघवता आदि गुण भी सम्मिलित हैं। नट के द्वारा 'कला खाना' देखकर हम लोग सब प्रसन्न होते हैं। गले की 'कलाबाजियाँ' ही किसी गायक को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती हैं। 'कन्द' को 'कला' के साथ मिश्रित करने पर ही सुस्वादु 'कलाकन्द' बनता है। कला से प्रभावित हो बहुत-सी लड़कियों को 'कला' नाम दिया जाता है। किन्तु सभी अर्थों में हम एक बात अवश्य देखते हैं कि कोई विशेषता नैपुण्य† अथवा सुरुचिपूर्णता अवश्य होती है।

विभिन्न समयों पर कला सम्बन्धी अनेक सिद्धान्त प्रचलित हुए। अति प्रचलित 'कला के लिये कला' वाला सिद्धान्त फ्रांस में उत्पन्न हुआ। घोर 'कलावादी' नीति की उपेक्षा करते हैं‡ और जीवन से उसका कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि कला का क्षेत्र कला ही है उसमें नीति, सत्य आदि को न ढूँढना चाहिये। एक 'कलावादी'§ ने कहा है कि "शुद्ध काव्य के भीतर सदाचार-दुराचार ढूँढना ऐसा ही है जैसे समबाहु त्रिभुज को सदाचारपूर्ण और विषमबाहु त्रिभुज को दुराचारपूर्ण कहना।" आस्कर वाइल्ड, ब्रेडले* आदि विद्वानों ने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कला को कला के ही मापदण्ड से नापना चाहिए, उसके लिए और किसी माप की आवश्यकता नहीं है। 'काव्य काव्य के लिए ही है।' क्रोचे का मत भी इसीसे मिलता-जुलता है। दूसरी ओर रिचर्ड्स, रस्किन आदि काव्य का नीति से सम्बन्ध मानते हैं। वे काव्य की बाह्य एवं आन्तरिक दोनों आकृतियों को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार काव्य और जीवन दो समानान्तर दिशाओं में चलते हैं। हमारे यहाँ भी दूसरा ही सिद्धान्त अधिक मान्य है। दो-एक और भी सिद्धान्त हैं जैसे अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त। हर्बर्ट स्पेंसर ने बताया कि 'कला अतिरिक्त शक्ति अथवा अवशिष्ट उमंग के प्रसार का फल है।' फ्राइड इसे वासनाओं

---

† चतुराई, ‡ नहीं मानते, § Spingarn, * In 'Poetry for Poetry's Sake'।

का पर्युत्थान† मानता है। गुप्तजी ने भी कला को कुशल अभिव्यक्ति का साधन बताया है। क्रोचे ने कला और कलाकृतियों में अन्तर माना है। असली कला आन्तरिक ही है, कलाकृतियाँ तो उस आन्तरिक प्रकाश की अभिव्यक्ति मात्र हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने "स्वान्तः सुखाय" वाला सिद्धान्त स्वीकार किया है। किन्तु वे कोरे कलावाद पर नहीं जाते थे. वे विश्व.कल्याण की भावना से प्रेरित थे।

भारतीय आदर्श कला द्वारा जीवन की अभ्युन्नति का है। गुप्तजी ने लिखा है$ कि जो कला को कला के लिए ही मानते हैं वे उस पर व्यर्थ दोष लगाते हैं---जीवन और कला एक दूसरे के लिए ही है उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

हिन्दी के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि प्रायः प्रत्येक काल में कला और नीति का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ। वीरगाथा-काल में कला की उपयोगिता पहले थी कलात्मकता पीछे। युद्ध के लिए प्रोत्साहित करना, देश और राष्ट्र के लिये शक्ति का संचार करना। अपने वचनों का निर्वाह करने में तत्पर रहना और सभी प्रकार से वीरोचित भावों को धारण करना कविता के मुख्य विषय थे। भक्तिकाल में कविता सुन्दर उद्देश्यों को ग्रहण करती थी। सूर के 'सागर' और तुलसी के 'मानस' का पारायण अत्यन्त भक्तिभाव से कल्याण-कामना के हेतु किया जाता है। सूर के पद प्रभात और सायंकाल के समय अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम के साथ पढ़े जाते हैं। सन्त कवियों ने सुधार-भावना से प्रेरित होकर काव्य सृजन किया और अनेक सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों की ओर संकेत करते हुए साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावनाओं को दूर करने का उद्योग किया। सूफियों ने भी अपनी विशेष प्रणाली द्वारा अनेक रहस्यात्मक उद्घाटन किए और प्रेम की पीर का रूप बताया। शृंगार-काल में यह प्रणाली अवश्य विकृत* होगई। कवियों के सम्मुख कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं था और उनका उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं को उनकी कामुक भावनाओं को प्रबल कर मनोरंजन मात्र कर देना ही रह गया। विद्वानों की

† Sublimation, $ साकेत में, * बुरे रूप वाली।

दृष्टि से हिन्दी का यह काल अच्छा नहीं समझा जाता। इस समय कला की कलात्मकता को स्थिर रखने के लिये जहाँ यथेष्ट उद्योग है वहाँ इस बात की चेष्टा है कि कला हमारे जीवन से दूर न चली जाय। ऐसा होने पर काव्य और जीवन दूर होते चले जावेंगे और एक समय आ सकता है जब काव्य को कोई सामग्री न मिल सकेगी और उसका कुछ भी उपयोग नहीं होगा।

हिन्दी में प्रगतिवादिता के आने से कला का रूप और भी स्पष्ट हो गया है। अब बनावट से काम नहीं चल रहा है, वास्तविकता की ओर वेग से गमन हो रहा है। कलाकार को वास्तविकता खोजनी पड़ेगी और उसी में उसकी उपयोगिता सिद्ध होगी। कला का उपयोग देश, समाज और व्यक्ति के लिये करना पड़ेगा। यथार्थवादिनी प्रवृत्ति वस्तुओं का वास्तविक रूप सामने रखती है—हल चलाता किसान, पत्थर तोड़ता मजदूर और जीवन की कठोरता से लड़ती असहाय स्त्री उसके विषय बन रहे हैं, कर्मण्यता का पाठ पढ़ाना आवश्यक हो गया है। ऐसी अवस्था में कला केवल कला ही बनकर किस प्रकार रह सकती है।

कला के पश्चिमीय विवेचन ने हमारे कलाकारों पर थोड़े समय के लिए प्रभाव डाला और कुछ कलावादी लोग उत्पन्न हो गये—परन्तु जीवन की वास्तविकता हमें उस ओर से हटा रही है और जीवन तथा उपयोगिता की ओर आकृष्ट कर रही है। इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिम के शास्त्रीय सिद्धान्तों ने कला के रूप को बहुत कुछ स्पष्ट किया और आलोचक उसके विभिन्न अङ्गों को समझने लगे, किन्तु कुछ लोग सिद्धान्तों का अपूर्ण अर्थ लगाकर एक ओर बह गए। पश्चिम में भी दो प्रकार के सिद्धान्त बराबर चले और अब तो जीवन की गहनता ने वहाँ भी दृष्टिकोण निश्चित कर देने की आवश्यकता बताई है। यह अवश्य है कि सभी कलाकार इस स्तर पर कार्य न कर सकेंगे। उनका स्तर कुछ ऊँचा होगा और वे कला के द्वारा ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द की प्राप्ति करेंगे।

हमारे यहाँ का वास्तविक सिद्धान्त तो सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का

है और इसी में कला की वाहवाही है। हमारे आचार्यों ने इस बात की चेष्टा की है कि साहित्य का सृजन जहाँ सत्य हो वहाँ कल्याणकारी भी हो और साथ ही उसमें मनमोहकता का गुण हो। सम्भवतः इससे उत्तम अन्य कोई भी कला के रूप की परिभाषा नहीं हो सकती। इसमें उपादेयता ×, विशुद्ध कला ÷ और वास्तविकता + सभी कुछ मिले हुए हैं।

विस्तृत रूपरेखा

१— कला का अभिप्राय—i कलाकार के आनन्द की प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति। ii हमारे यहाँ की ६४ कलायें। iii उपयोगी तथा ललित कला। iv ललित कला के ५ भेद–वस्तु, मूर्ति, चित्र, सङ्गीत, काव्य।

२—कला और जीवन—i दो सिद्धान्त–कला कला के लिये, कला जीवन के लिए। ii अनेक अन्य सिद्धान्त। iii प्रायः सिद्धान्तों में कला और जीवन का सम्बन्ध। iv हडसन का सिद्धान्त।

३—विभिन्न अर्थ—i उपयोगी कलाएँ। ii ललित कलाएँ। iii कार्य कुशलता, निपुणता, लाघवता। iv कलाबाजियाँ, कला खाना, कलाकन्द, कला।

४—अनेक सिद्धान्त—i कलावादी सिद्धान्त–फ्रान्स का, ब्रैडले। ii जीवनवादी सिद्धान्त--रिचर्ड्स, भारतीय। iii अतिरिक्त शक्ति वाला--स्पेंसर। iv वासनाओं का पर्युत्थान--फ्राइड। v स्वांतः सुखाय--'तुलसी'। vi जीवन और कला एक दूसरे के लिये--'शुक्ल'।

५—भारतीय आदर्श—i वीरगाथा-काल--उपयोगिता पहले। ii भक्तिकाल--भगवद्भक्ति, सुधार, प्रेम का स्वरूप। iii रीतिकाल--निम्नकोटि का काव्य। iv प्रगतिवादी काल--जीवन की वास्तविकता की ओर किसान, मजदूर, विधवा कविता के विषय।

× शिवं, ÷ सुन्दरम्, + सत्यं।

६—पश्चिमीय विचार धारा—i पश्चिम के सिद्धान्त। ii भारतीय कलाकारों पर प्रभाव। iii पश्चिम की कला-विवेचना। iv उच्च कलाकार—ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द की प्राप्ति।

७—वाञ्छनीय रूप—कला के लिये 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' वाली उक्ति नितान्त उपयुक्त है।

५९—प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्यार्थी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—प्रस्तावना—विद्याध्ययन की आवश्यकता। २—प्राचीन विद्यार्थी—शिक्षक और शिक्षार्थी, अध्ययन और अध्यापन की विशेषताएँ। ३—अर्वाचीन* विद्यार्थी—बदली हुई प्रवृत्तियाँ, सामान्य मनोवृत्तियों का प्रभाव ४—दोनों पर विचार। ५—आधुनिक काल में प्राचीन आदर्शों का समावेश। ६—वाञ्छनीय रूप—उपसंहार।

निबन्ध—गम्भीर चिन्तन के पश्चात् हमारे ऋषियों ने मनुष्य जीवन को चार भागों† में विभाजित किया था। जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य के नाम से विद्योपार्जन के लिये नियुक्त किया गया था, जब सभी प्रकार का शारीरिक और मानसिक शक्ति संचय कर जीवन के लिये पूर्णरूप से प्रस्तुत हुआ जाय। यह वह समय था जब हम अपने को सभी प्रकार से योग्य बना कर जीवन की गम्भीरताओं का सामना करने के लिये यथेष्ट शक्तिशाली बन जावें। मानवी इतिहास के प्रत्येक काल में, जब से किसी भी प्रकार की सभ्यता ने पदार्पण किया है$। विद्याध्ययन की आवश्यकता रही है, बिना इसके आगामी जीवन सफलतापूर्वक निर्वाह करना अति कठिन हो जाता है। वैसे तो ऐसे व्यक्ति भी यथेष्ट मात्रा में मिलेंगे जिन्हें अपने जीवन में अध्ययन जैसे विषयों से कोई सरोकार‡ नहीं किन्तु हम तो

* आधुनिक, आजकल का, † ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यास, $ आई है, ‡ प्रयोजन।

उन व्यक्तियों पर विचार कर रहे हैं जो सभ्यता के प्रसंग में अपना नामोल्लेख चाहते हैं। सभ्य कहलाये जाने वाले देश और वर्गों में विद्योपार्जन अनिवार्य रहा है, यद्यपि देश और काल के अनुसार इसकी पद्धति में अन्तर होता रहा है, किन्तु किसी न किसी रूप में यह धारा प्रवाहित अवश्य होती रही है। इस स्थान पर हमारा ध्यान प्रायः भारतीय शिक्षा-पद्धति और भारतीय विद्यार्थी पर ही विशेष रूप से रहेगा।

प्राचीन काल के शिक्षक और शिक्षार्थी× दोनों ही उच्चकोटि के होते थे। अपने-अपने कर्तव्य की पूर्ति करते हुए अपने-अपने आदर्श की रक्षा करते हुए पारस्परिक सम्पर्क इतना सुरुचिपूर्ण और भव्य रखते थे कि आज भी उनके आचरण हमारे लिये उदाहरण का कार्य करते हैं। उस समय की शिक्षा-प्रणाली आज की प्रणाली से नितान्त भिन्न थी। अनेक वर्षों तक कठोर नियमों के साथ ब्रह्मचारी गुरुओं के निकट रहकर विद्याध्ययन करते थे। किसी एक विषय में विशेष योग्यता प्राप्त करने की परिपाटी* सामान्यतः प्रचलित थी। गुरुकुल और विश्व-विद्यालय दोनों ही प्रकार की संस्थाएँ परिचालित थीं†। विद्यार्थियों में उच्च नीच का भाव किसी प्रकार रहने ही नहीं दिया जाता था, उनके भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध समान रूप से होता था और सभी को शिक्षालय के नियमों का पालन करना पड़ता था। सम्भव है शिक्षण कार्य में इतनी वैज्ञानिकता न हो जितनी अब कही जाती है, अथवा अनेक विषयों का निरूपण उतना विश्लेषणात्मक न हो पाया हो जितना अन्वेषण द्वारा विद्वान अब कर पाये हों, परन्तु यह बात निर्विवाद है कि शिक्षण का जो वातावरण उस समय था उसका अब दर्शन भी नहीं होता, और आज जो इतनी विषम समस्याएँ अपना घर किये हुए हैं उनका कारण भी पद्धति परिवर्तन ही है। ब्रह्मचारी का जीवन बड़े संयम और नियम का होता था, उसका सम्पूर्ण समय शारीरिक और मस्तिष्क के विकास में ही जाता था। गुरु के प्रति परम श्रद्धा थी उसे उच्चातिउच्च सत्ता के समकक्ष$ समझा जाता था। विद्यार्थी काल में जीवन

× शिक्षा प्राप्त करने वाला, * प्रणाली, † प्रयोग में थीं, $ समान।

अत्यन्त सरल और अकृत्रिम होता था; अनेक शास्त्रों का पठन-पाठन होता था, मौखिक पद्धति का विशेष प्रचलन × था, पुस्तकों का अभाव रहता था। पढ़ाई के हेतु विदेश जाने की भी प्रथा थी, विद्यार्थियों की अनेक प्रतियोगिताएँ ÷ भी हुआ करती थीं, वाद-विवाद + को प्रोत्साहित किया जाता था तथा सम्पूर्ण कार्य नियमित रूप से होता था।

आज का विद्यार्थी सृष्टि का एक विचित्र प्राणी है। अनुशासन* उसकी रुचि के प्रतिकूल है और नियमित जीवन का उससे निर्वाह नहीं हो पाता। ब्रह्मचर्य और उसके नियमों का पालन उसके लिये सम्भव नहीं, गृहस्थ और विद्याध्ययन दोनों ही एक साथ चल सकते हैं और बहुत समय तक विद्यार्थी जीवन भी चलाया जा सकता है। शृंगार के साधन उसे रुचिकर हैं और इन्द्रियों को उनके अनुकूल वस्तु प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करना उसके अनियमित जीवन का अंग है। कला से उसे प्रेम है, किन्तु उसमें वासना† का प्राधान्य है; आधुनिक चित्रपट उसके जीवन में एकरस स्थायित्व रखता है और कल्पना के रंगीन क्षेत्र में अकर्मण्य भाव से वह विचरण करता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि आज के युग में योग्य, अध्ययनशील विद्यार्थियों का अभाव है। उपर्युक्त पंक्तियों में तो वर्तमान कालीन सामान्य मनोवृत्ति पर कुछ प्रकाश डाला गया है। वैसे अर्वाचीन विद्यार्थी को अधिकाधिक साधन उपलब्ध हैं। विज्ञान का पठन-पाठन कहीं अधिक विस्तृत और विवेचनात्मक रूप में होता है, अनेक शास्त्रों का शास्त्रीय विवेचन और परिशीलन हो चुका है, उसका सम्पूर्ण भांडार उसके सम्मुख उपस्थित है। अन्वेषण और अनुसन्धान‡ के लिये यथेष्ट क्षेत्र है तथा बुद्धि का प्रभाव दिखाने के लिये बहुत कुछ अवसर है। पर एक सामान्य विद्यार्थी वैसा ही है जिसका ऊपर चित्रण किया गया है। गुरु और विद्यार्थी का सम्बन्ध बहुत कुछ हलका हो चला है, वह श्रद्धा और भक्ति लोप होगये हैं, मित्रवत् भाव आदर्श सम्बन्ध समझा जाने लगा है। विद्यार्थियों में सभी प्रकार के व्यक्ति होते हैं। धनी, निर्धन; कुलीन, निम्नवर्ग के; अवस्था में बड़े, छोटे;

× प्रचार, ÷ Compeletion, + शास्त्रार्थ आदि, * नियम बद्धता, Discipline, † इन्द्रिय सम्बन्धी आनन्द, ‡ खोज।

स्त्री, पुरुष; विवाहित, अविवाहित; प्रतिभाशील, सामान्य; आदि। अन्तर बहुत कुछ बढ़ गया है। शिक्षण-प्रणाली भी पूर्णतः परिवर्तित है, आदर्शों में भी अन्तर हो चला है, कारण संसार का दृष्टिकोण बदला हुआ है।

दोनों प्रकार के आदर्शों पर थोड़ा विचार करना उचित प्रतीत होता है। प्राचीन काल में विद्यार्थी का जो आदर्श था वह उस समय सम्भव था, आज के युग में उसका निर्वाह होना अति कठिन है। आज जीवन अत्यधिक गहन§ बन गया है, सामाजिक स्वरूप नितान्त परिवर्तित हो गया है, उद्देश्य और आदर्शों में अपार अन्तर होगया है, फिर यह किस प्रकार सम्भव होता है कि आज का विद्यार्थी प्राचीन रूप में दिखाई दे। प्राचीन काल में अपेक्षाकृत शिक्षा का इतना प्रचार दिखाई नहीं देता—उस समय वर्ग विशेष$ ही शिक्षित होता था और इसके लिये वर्ग विशेष ही शिक्षण का कार्य करते थे। शिक्षा प्राप्ति के हेतु ब्राह्मण तथा क्षत्रिय बालकों का वर्णन अवश्य मिलता है किन्तु अन्य वर्ण के बालक, ऐसा प्रतीत होता है, बहुत ही कम मात्रा में शिक्षण प्राप्त करते थे। स्त्रियाँ शिक्षित अवश्य होती थीं क्योंकि हमारे सामने अनेक विदुषी महिलाओं के प्रमाण उपस्थित हैं; किन्तु उनका कितना प्रतिशत शिक्षित होता था यह विचारणीय विषय है। अनुमान तो ऐसा होता है कि यह प्रतिशत बहुत थोड़ा था। वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ आश्रमों* का परिपालन भी नियमपूर्वक किया जाता था, अतएव बालकों को इस बात का अवसर था कि एक निश्चित समय गुरुकुल में व्यतीत करने के उपरान्त गृहस्थ में प्रवेश कर सकें। परन्तु जब बाल-विवाह आरम्भ हो गया तो इस परिपाटी में बहुत अन्तर आगया जो स्वाभाविक ही था। जब अपरिपक्व† अवस्था में विवाह किये जाने लगे तो यह कैसे हो सकता था कि कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जा सके। शिक्षा-प्रणाली के साथ-साथ हमारी सामाजिक स्थिति भी इन परिवर्तनों का कारण बनी है। आधुनिक जागृति और शिक्षा-प्रसार के कारण शिक्षा की प्राचीन पद्धति पर्याप्त प्रतीत नहीं हुई। वैज्ञानिक, प्रयोगात्मक$ तथा

---

§ जटिल, $ ब्राह्मण, क्षत्रिय उच्चवर्ग, * चार आश्रम, † छोटी, $ प्रयोगों सम्बन्धी, जिनमें प्रयोगशाला की आवश्यकता है।

व्यावहारिक शिक्षा के विकास ने शिक्षा-पद्धति को पलट दिया। हम यह नहीं कह सकते कि परिवर्तित प्रणाली प्रत्येक प्रकार से उपयुक्त है, परन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि गुरुकुल-प्रणाली अनेक प्रकार से अधूरी रहती। यद्यपि हमारे सामने नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला, उज्जैन और पाटलिपुत्र × के विश्व-विद्यालय उदाहरण स्वरूप विद्यमान हैं, परन्तु उनका यथातथ्य वर्णन पाये बिना उनकी प्रयोगात्मक उपयुक्तता के सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह अवश्य है कि उन विश्व-विद्यालयों में विद्यार्थी का सम्पूर्ण समय अध्ययन और कठोर नियमन में ही जाता था, आज की-सी अवस्था नहीं थी। आज के विद्यार्थी का समय जिस प्रकार व्यतीत होता है वह सभी को विदित है। होस्टल में रहते हुए भी उसका जो कार्यक्रम रहता है, जिस प्रकार वह अपने समय का उपयोग करता है वह एक स्पष्ट पृष्ठ है। सम्भव है प्राचीन विद्यार्थी को वे साधन ही उपलब्ध न हों, पारस्परिक सहयोग और सम्मिलन की उतनी आवश्यकता न हो, मनोविनोद के इतने साधन न हों तथा विद्यार्थी और समाज के शेष व्यक्तियों के साथ इतने सम्पर्क को वाञ्छनीय न समझा जाता हो। किन्तु आज जो स्थिति है वह प्रत्यक्ष है। हम कह नहीं सकते दोनों प्रकार के जीवनों में विद्यार्थी किसे पसन्द करता; किन्तु उपयोगिता और अनुशासन की दृष्टि से हमें प्राचीन आदर्शों से बहुत कुछ ग्रहण करना चाहिये।

शिक्षा की दोनों प्रणालियों पर विचार करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्तमान स्थिति को देखते हुए यदि हम प्राचीन पद्धति का अनुसरण करें तो कुछ समीचीन* होगा। अर्वाचीन विद्यार्थी को प्राचीन काल के ब्रह्मचारी रूप में देखना सम्भव न हो सकेगा। व्यवहार और वास्तविकता की दृष्टि से भी हमें आज की संस्थाओं को ही जीवित रखना होगा। किन्तु उनमें कुछ सुधार होने अत्यन्त आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए विद्योपार्जन में विद्यार्थियों को अधिक सतर्क रहना चाहिए और अपने समय का अधिकांश भाग उसी कार्य में लगाना चाहिये जिसके लिए वे अपना समय, शक्ति और द्रव्य व्यय कर रहे हैं। अनुशासन का

× मध्यकालीन भारत के सुप्रसिद्ध विश्व-विद्यालय, * उचित।

अभाव अनेक अवसरों पर खटकता है, अधिक स्वेच्छाचारिता हितकर नहीं होती, इसमें प्राचीन विद्यार्थी ही हमारा पथ-प्रदर्शक हो सकता है। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध की पवित्रता और उत्कृष्टता हमें उसी काल में दृष्टिगोचर होती है। वह स्थिति तो आ नहीं सकती—क्योंकि न उस प्रकार के गुरु ही हैं और न शिष्य। अध्यापकों की जो मनोवृत्ति होती है उसके अनुसार ही उन्हें विद्यार्थी मिलते हैं; किन्तु यह एक वाञ्छनीय-सा रूप नहीं, इसमें परिवर्तन होना आवश्यक है। विद्यार्थियों के हृदय में उनके अध्यापकों के प्रति अधिक श्रद्धा और सम्मान का भाव हो तथा अध्यापक भी अपने छात्रों से प्रेम एवं सद्भावना रखें। आज-कल का आर्थिक सम्बन्ध ही हमारे पारस्परिक सम्बन्ध की इतिश्री§ न हो जाना चाहिये। विद्यालयों में अधिकाधिक, सुचारु रूप से परिचालित छात्रावासों की आवश्यकता है। जीवन में अधिक सदाचार और कर्तव्य निष्ठा होनी चाहिये। रहन-सहन और पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से प्राचीन विद्यार्थी अनुकरणीय है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यह अभिप्राय नहीं कि आज का विद्यार्थी सभी प्रकार से हेय,+ सदाचार से हीन तथा अपने कर्तव्य से विमुख है। यह कहना तो सत्य का गला घोंटना होगा। अभिप्राय केवल इतना ही है कि जीवन की कृत्रिमता और परिस्थितियों के प्रभाव से विद्यार्थी का जीवन भी कुछ ऐसा बन गया है कि उसमें अनेक दोष सम्मिलित हो गये हैं, उनका परिहार‡ हमें करना चाहिये। ऐसा करने में प्राचीनकाल के विद्यार्थी का जीवन हमें बहुत कुछ सहायता देगा—दोनों के जीवन का विधिवत् संयोग ही देश और समाज के लिए हितकारक सिद्ध होगा।

विस्तृत रूपरेखा

१—विद्याध्ययन की आवश्यकता—i मनुष्य-जीवन के ४ भागों में ब्रह्मचर्य का स्थान। ii आगामी जीवन के लिए शक्ति संचय की आवश्यकता।

---

† केवल आर्थिक सम्बन्ध मात्र, § समाप्ति, + हीनता से भरा, ‡ दूर करना।

iii सभ्यता के इतिहास में अनिवार्य सामग्री। iv प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति का विशेष उल्लेख।

२—प्राचीन विद्यार्थी—i शिक्षक और शिक्षार्थी का पारस्परिक सुरुचि-पूर्ण सम्पर्क। ii ब्रह्मचारी और कठिन नियमों का पालन। iii विद्यार्थियों में समानता का भाव। iv मौखिक पद्धति, शारीरिक विकास, मस्तिष्क का विकास। v प्रतियोगिताएँ, शास्त्रार्थ। vi शिक्षा का उत्कृष्ट वातावरण।

३—अर्वाचीन विद्यार्थी—i अनुशासन का अभाव। ii ब्रह्मचर्य और उसके पालन का वातावरण नहीं के बराबर। iii शिक्षक और विद्यार्थी का सम्पर्क अनुकरणीय नहीं-अनेक कटुताओं से पूर्ण। iv आधुनिक मनोविनोद। v प्रयोगात्मक शिक्षण का अधिक व्यवहार। विज्ञान के अध्ययन के यथेष्ट साधन। vi विद्यार्थियों में असमानता। vii जीवन की कृत्रिमता।

४ दोनों पर विचार—i आज के जीवन में परिस्थितियों का हाथ। ii सामाजिक जीवन के साथ विद्यार्थी-जीवन में परिवर्तन। iii स्त्री-शिक्षा, सर्व वर्गीय शिक्षा, शिक्षा का प्रसार, साधनों में वृद्धि। iv परिवर्तित-प्रणाली में अनेक गुण हैं तथा कुछ कमियाँ भी हैं। v प्राचीनकाल के विश्वविद्यालय--नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला आदि। vi आज का और प्राचीनकाल का छात्रावास-जीवन, उसमें आनेवाली त्रुटियाँ। vii दोनों में उपयोगिता एवं अनुशासन का स्थान।

५—दोनों आदर्शों का सम्मिलन—i व्यवहारात्मक दृष्टि से आज का विद्यार्थी गुरुकुल का ब्रह्मचारी नहीं बन सकेगा। ii कुछ सुधार अवश्य कर लेने चाहियें, जैसे--अनुशासन, जीवन का सारल्य, गुरु-शिष्य का पारस्परिक सम्बन्ध, समय का उपयोग, आदि। iii हमारे संबंध केवल आर्थिक ही न हों, उससे ऊँचे उठे हुए हों। iv सदाचार, कर्तव्य-निष्ठा और छात्रावास में नियमित जीवन की दृष्टि से प्राचीन विद्यार्थी अनुकरणीय।

६—i दोनों आदर्शों का सुरुचिपूर्ण समन्वय वाञ्छनीय है। ii विद्यार्थी-जीवन का आधुनिक स्तर उठाना ही श्रेयस्कर होगा।

५५—स्वतन्त्र भारत के शिक्षक और शिक्षार्थी

सूक्ष्म रूपरेखा

१—भारतीय शिक्षण परम्परा। २—स्वतन्त्र भारत के शिक्षक और शिक्षार्थी का रूप। ३—शिक्षक के कर्तव्य, शिक्षार्थी के कर्तव्य। ४—पारस्परिक सहयोग। ५—देश के निर्माण में उनका हाथ, पारस्परिक सम्बन्ध। ६—उपसंहार—

निबन्ध—भारत की शिक्षण परम्परा अति प्राचीन है, और यहाँ के गुरु तथा शिष्य का पारस्परिक आदर्श सम्बन्ध भारतीय इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। गुरु और शिष्य का वह अत्युच्च चित्रण अन्य देशों में उपलब्ध नहीं होता। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान बहुत ही ऊँचा माना गया है—उसे भगवान् के समकक्ष* बताया गया है और सर्वत्र उसके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की आवश्यकता समझी गई है। यह ठीक है कि गुरु केवल शिक्षक मात्र ही नहीं होता था। वह शिष्य के सम्पूर्ण जीवन का पथ-प्रदर्शक तथा आत्मोद्धारक भी होता था, किन्तु हमारी सभ्यता में शिक्षक और शिक्षार्थी में भी इसी भाव को माना जाता है। शिक्षा के इच्छुक विद्यार्थी अपने कुटुम्ब और परिवार से सम्बन्ध छोड़कर गुरुकुलों में प्रविष्ट होते थे और वहाँ अनेक वर्षों ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए, गुरु को सेवा से प्रसन्न कर अनेक शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करते थे।† अब वह समय तो बदल गया, और आधुनिक गुरुकुल, ऋषिकुल, ब्रह्मचर्याश्रमों आदि में भी प्राचीनता की वे सुन्दर झाँकियाँ नहीं मिलतीं। जीवन की अनेक समस्याओं ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करदी हैं कि प्राचीन गुरुकुलों के स्थान पर आधुनिक शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता

* समान † ब्रह्मचर्याश्रम।

होगई है। और इसी प्रकार की संस्थाओं से सम्बन्धित शिक्षक और शिक्षार्थी पर हमें विचार करना है।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पहले शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ* नहीं था जितना आज। राजनैतिक परिस्थितियाँ तथा शिक्षा के माध्यम इसमें प्रधान कारण हुए। अँग्रेजों के समय में शिक्षक† राज्य कर्मचारी होने के नाते राजभक्त होता था। अर्द्ध सरकारी शिक्षालयों में भी यही अवस्था होती थी। वह शिक्षार्थी के साथ विचारों में साम्य, इच्छा करने पर भी, नहीं रख सकता था। उनमें खिंचाव रहता था, विचार-विनिमय में कृत्रिमता रहती थी और व्यवहार में सहृदयता की कमी। कहीं-कहीं तो शिक्षक सरकार और शिक्षार्थी सरकार विरोधी जनता का रूप समझे जाते थे। शिक्षा का माध्यम दूसरी कठिनाई थी। विद्यार्थी कक्षा में बैठे रहते और शिक्षक अपनी कहानी विदेशी भाषा में कह डालता था। दोनों ओर से सहयोग के लिये इतना स्थान नहीं था, जितना अब। राजनैतिक जागृति का वह आरम्भ काल था और विद्यार्थी अपने शिक्षकों से घुलमिल कर समान स्तर पर बात भी नहीं कर सकते थे। अब ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के दृष्टिविन्दु$ एक ही हो गये हैं। राष्ट्रीय उत्थान दोनों की ही भावनाओं और कार्यों का केन्द्र है। शिक्षा का माध्यम भी हमारी अपनी भाषा होगई है अतएव कक्षा में शिक्षक और शिक्षार्थी का सहयोग अधिक होगया है। कक्षा के बाद दोनों समान भाव से विचारविनिमय करते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इस समानता की भावना ने शिक्षक के प्रति शिक्षार्थियों में सम्मान की भावना में कमी करदी है। और अनेक अवसरों पर यह देखा जाता है कि शिक्षार्थियों में अनुशासन की बहुत कमी है। कभी-कभी यह अनुशासनहीनता और स्वच्छन्दता बड़े अवांछनीय रूप धारण कर लेती हैं और न केवल प्रिंसिपलों को

---

* गहरा, † अँग्रेज शिक्षक (विदेशी) भी सम्मिलित हैं, $ Point of View

स्थानान्तरित* कराती हैं प्रत्युत उनकी हत्याएँ तक हो जाती हैं। स्वतन्त्र भारत के शिक्षक और शिक्षार्थियों के व्यवहार इस प्रकार के होना बड़ी लज्जा की बात है।

किसी भी स्वतन्त्र देश में शिक्षक का कर्तव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है और भारत जैसे देश में जहाँ स्वतन्त्रता अभी-अभी मिली है तथा उसे स्थायी बनाने के प्रयत्न होरहे हैं शिक्षक का कार्य और भी विशेषता लिये हुए है। शिक्षक में अनेक गुणों की आवश्यकता है और उसकी कार्य-प्रणाली भी विशिष्ट‡ होनी चाहिये। भारत के शिक्षक अपनी राष्ट्र भाषा के माध्यम द्वारा न केवल प्रतिपादित विषय को सुग्राह्य बनावें, प्रत्युत अपनी संस्कृति की रक्षा-हेतु भी उद्योगशील हों। साम्प्रदायिकता की भावना भारत के लिये बहुत ही घातक है। शिक्षक इस भावना को न पनपने दें। गांधीजी का उपदेश सत्य और अहिंसा का था और इसी के बल पर भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। वर्तमान स्थिति में भी हमारे देश के लिये सत्य और अहिंसा उपयुक्त आदर्श रहेंगे। कर्मण्यता का पाठ पढ़ाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक समय है। देश की अनेक आवश्यकताएँ हैं, उनकी पूर्ति होना आवश्यक है। विषयों का बोध तो करावें ही परन्तु देश के हित में जो अन्य उपयोगी बातें हैं उनसे भी शिक्षार्थियों को अपरिचित नहीं रखें।

इसी प्रकार शिक्षार्थी का भी कुछ कर्तव्य है। स्वतन्त्रता का यह अभि-प्राय कभी नहीं है कि कोई भी व्यक्ति निरंकुश होकर मनमाना कार्य करे, विद्या-प्राप्ति में प्रमाद अथवा आलस्य करे, गुरुजनों के प्रति धृष्टता दिखावे अथवा किसी भी प्रकार ऐसा आचरण करे जो एक सम्मान्य स्वतन्त्र देश के लिये कलंक की बात हो। देश की सारी आवश्यकताएँ हमारे सामने हैं। भारत को अभी बहुत कुछ करना है, अनेक क्षेत्रों में आगे बढ़ना है। कला, उद्योग, विज्ञान आदि अनेक विषय ऐसे हैं जिनमें शिक्षार्थियों को ध्यान लगाना है और अपने समय का सदुपयोग करना है। स्वतन्त्र देश के शिक्षार्थी का बहुत कुछ उत्तरदायित्व होता है और देश की भावी उन्नति-आर्थिक तथा शैक्षणिक--उसी के द्वारा होनी है। उसे अपनी शक्ति, समय

* स्थान परिवर्तन, ‡ विशेष रूप की।

और अवसर सबसे लाभ उठाना है और देश की समस्याओं को हल करना है।

शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के कर्तव्य को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि कर्तव्य-पालन के लिये पारस्परिक सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि शिक्षक प्रेम, योग्यता और सहानुभूति के साथ कार्य करते हुए अपना शिक्षण-कार्य नहीं करेंगे, अथवा शिक्षार्थी सम्मान, योग्यता और श्रद्धा के साथ गुरु जनों से शिक्षा ग्रहण न करेंगे तो किसी भी प्रकार कार्य नहीं चल सकता। वास्तविक उन्नति कभी नहीं हो सकेगी और दोनों के मार्ग अत्यन्त दुर्गम हो जावेंगे। इस सम्बन्ध में, विशेषतः वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए, अत्यन्त सतर्कता* की आवश्यकता है और जहाँ शिक्षक को प्रेम और सहानुभूति से काम लेना है वहाँ शिक्षार्थी भी गुरु के प्रति उचित भावनाओं से अपना कर्तव्य पालन करें। साम्यवाद की भावना यद्यपि अनेक अंशों में देश के हित में है किन्तु जो इस भावना का क्रियात्मक रूप ग्रहण किया जाता है वह देश का अधिक हित नहीं कर सकता। आजकल इसे इसी अवांछनीय रूप में बहुत से लोग ग्रहण करने लगे हैं और देश में अनेक नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होगई हैं। इन सबसे हमें ऊँचा उठना होगा और शिक्षक तथा शिक्षार्थी में वास्तविक भाव लाने की चेष्टा करनी होगी।

हमारे शिक्षणालय ही हमारे भविष्य के निर्माता हैं, और इनके द्वारा ही उज्ज्वल भविष्य की आशा की जाती है। शिक्षणालय के शिक्षक और शिक्षार्थी दो ही अंग है, अतः देश-निर्माण में इनका महत्त्व स्पष्ट है। यदि हम विज्ञान की ओर अधिक प्रयत्नशील हैं, कल-कारखानों का शिक्षण सैद्धान्तिक† और प्रयोगात्मक$ दोनों रूपों में चलता है, पूँजी और श्रम का विधिवत् अध्ययन है तो देश उद्योग-धन्धों में बढ़कर औद्योगिक बन जावेगा। कृषि की ओर अधिक ध्यान देने से कृषि प्रधान बनेगा, यदि धार्मिक और सामाजिक सुधार की ओर शिक्षण-मन्दिर प्रयत्नशील हैं तो उधर प्रगति होगी। अभिप्राय यह है कि उन्नति और विकास की दृष्टि से शिक्षणालय

* सावधानी, † Theoretical $ Practical.

और राष्ट्र का अत्यन्त दृढ़ सम्पर्क है। जहाँ एक ओर राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा का रूप और प्रणाली परिवर्तित होते हैं वही दूसरी ओर शिक्षणालय का वातावरण देश के भविष्य पर प्रभाव डालता है। यदि शिक्षक अपने विद्यार्थियों में सुन्दर भावनाओं का संचार करेंगे, उन्हें अच्छे मार्ग का उपदेश करेंगे तो शिक्षार्थी अवश्य ही प्रगतिशील हो देश का कल्याण करेंगे। वास्तव में किसी भी देश का भविष्य उसके विद्यालयों पर ही निर्भर होता है, ये ही वे स्थान हैं जहाँ भविष्य के नागरिक और नेता निर्मित होते हैं, जहाँ विचारधारा अपना स्वरूप ग्रहण करती है तथा आगे के लिये मार्ग निर्दिष्ट होता है। आज के युग में शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही अपने कर्तव्य मार्ग पर पूर्ण रूपेण आरूढ़ नहीं हैं। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों पर वर्तमान आर्थिक वातावरण अपना प्रभुत्व जमा चुका है, भौतिकता में सभी लोग बहे जारहे हैं, अपने व्यक्तिगत हितों का विचार अधिक किया जारहा है और सम्बन्ध की वह पवित्रता नष्ट प्रायः होगई है। देश के हित में यह परिवर्तित वातावरण हितकर सिद्ध नहीं हुआ है। स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक नागरिक को, विशेषतः शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों को, स्वार्थ भावना का परित्याग कर दृढ़ता और लगन के साथ, निर्माण-कार्य में अग्रसर होना चाहिये।

शताब्दियों के उपरान्त, बड़ी त्याग और तपस्या के पश्चात् देश के नेताओं द्वारा महान् बलिदान द्वारा हमारा जन्म सिद्ध अधिकार, स्वतन्त्रता हमें प्राप्त हुई है। इसकी रक्षा और इसके स्वरूप की अभिवृद्धि हम सभी का कर्तव्य है। विशेषतः शिक्षक और विद्यार्थी वर्ग का उत्तरदायित्व अत्यधिक है। दासता के वे बंधन अब टूट चुके, विचार स्वातंत्र्य का पूर्ण अवसर है, पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। अब हमें प्रेम और सहानुभूति के साथ अपने मार्ग पर बढ़ना है, देश की आवश्यकताओं को पूरा करना है, राष्ट्र का सम्मान बढ़ाना है, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उपयुक्त स्थान प्राप्त करना है, देश में सुख और समृद्धि की वृद्धि कर 'रामराज्य'$

---

† निश्चय, $ Ideal State।

का पुनरागमन कराना है। और इन सबकी जिम्मेदारी है शिक्षक और शिक्षार्थियों पर।

विस्तृत रूपरेखा

१—शिक्षण परम्परा—i गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रमादि। ii गुरु और शिष्य का आदर्श सम्बन्ध। iii आज की परिवर्तित परिस्थिति।

२—स्वतन्त्र भारत के शिक्षक और शिक्षार्थी का रूप—i सम्बन्ध की अपेक्षाकृत घनिष्ठता (पहले, अँग्रेजी शासन काल में, दोनों दूर-दूर थे)। ii विचार-धारा का साम्य। iii माध्यम की कठिनाई से विमुक्त। iv दोनों के केन्द्र और लक्ष्य एक—भारतोत्थान। v स्वतन्त्रता की लहर स्वच्छन्दता में—अनुशासन-हीनता, कुछ अवांछनीय कृत्य।

३—शिक्षक-शिक्षार्थी के कर्तव्य—शिक्षक—i विशिष्ट कार्य-प्रणाली। ii संस्कृति की रक्षा। iii भारतोन्नति का ध्यान। iv देश की आवश्यकताओं पर विचार।

शिक्षार्थी—i आदर-सम्मान की भावना। ii कला, विज्ञान, उद्योग आदि की ओर अधिक संख्या में। iii उसका उत्तरदायित्व। iv देश की समस्याओं को हल करने में योग।

४—पारस्परिक सहयोग—i प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता। ii शिक्षक एवं शिक्षार्थी अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें। iii वास्तविक भावना की आवश्यकता। iv शैक्षणिक स्तर को ऊँचा उठाना।

५—देश के निर्माण में उनका हाथ—i शिक्षणालय भविष्य के निर्माता। ii देश और शिक्षा का पारस्परिक सम्बन्ध। iii शिक्षणालयों द्वारा देश की आवश्यकताओं की पूर्ति। iv स्वार्थ-भावनाओं को छोड़ निर्माण-कार्य की ओर होने से।

६—उपसंहार—i वर्तमान स्थिति। ii दोनों का उत्तरदायित्व। iii उचित स्वरूप की आवश्यकता।

५६—कथा-साहित्य के आधार-तत्व

संक्षिप्त रूपरेखा

१—उपक्रम: कथा का प्रारम्भ। २—दो भाग: उपन्यास और कहानी: व्याख्या। ३—उपन्यास और कहानी का सम्बन्ध। ४—कथा-सृजन के तत्व। ५—विश्लेषण। ६—उपसंहार।

बहुत प्रारम्भिक सभ्यता के काल में भी मानव में कहानी कहने की प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में पाई जाती है। 'उदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्'* कहकर कालिदास ने यह संकेत किया है कि वृद्ध मनुष्य कहानी के रूप में अपने जीवन के अनुभव युवकों को सुनाते रहते थे। यह प्रणाली प्रत्येक देश में प्रचलित हो गई थी, अपने आप। आज भी जीवन की गाथाएँ सुनाने की प्रवृत्ति का फल ही कथा है। किन्तु मौखिक कथा और साहित्यिक कथा में बहुत बड़ा अन्तर प्रायः सदा ही रहा है। मौखिक कथा का जन्म सम्भवतः मानव की बोलने की शक्ति के साथ ही हो गया होगा। किन्तु साहित्यिक कथा कुछ अधिक संस्कृत और सँभले हुए मस्तिष्क की वस्तु है। इतना निश्चित है कि साहित्यिक कथा का जन्म मौखिक कथा से ही हुआ। दुहराने की वृत्ति का नाम ही कहानी है। आगे चलकर साहित्यिक कथा के कई स्वरूप विकसित हुए, किन्तु इन सभी रूपों में कथा की जिज्ञासा और जीवन का चित्र प्रमुख तत्व रहा। फिर तो कथा-साहित्य के स्पष्टतया दो भेद हो गये, १—उपन्यास। २—कहानी। इन दोनों का आपसी सम्बन्ध क्या है, इस पर हम कुछ क्षणों के पश्चात् ही विचार करेंगे; पहले इन दोनों की अलग-अलग व्याख्यायें देख लेना अधिक सुविधाजनक होगा। कथा-साहित्य के आधार तत्वों पर विचार करने के लिए उपन्यास और कहानी दोनों के ही आधार-तत्वों के विवेचन की आवश्यकता है।

---

* 'उदयन की कथा कहने में पण्डित ग्राम के वृद्धों को'—मेघदूत से उद्धृत।

उपन्यास का अँग्रेजी रूपान्तर Novel है। नॉविल नवीन को भी कहते हैं, मराठी में भी 'कादम्बरी' के साथ-साथ उपन्यास के लिये 'नवल कथा' शब्द भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार उपन्यास का सम्बन्ध कथा के नवीनीकरण से तो अवश्य है। किन्तु वह कोरा इतिहास नहीं होता। इतिहास के आधार की अपेक्षा अवश्य रखता है। जैसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है, "उपन्यास में इतिहास मिल जाने से एक विशेष रस संचारित हो जाता है, उपन्यासकार एक मात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती।"

उपन्यास की व्याख्या डा० श्यामसुन्दरदास के शब्दों में यह है। "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"—साहित्यालोचन। प्रेमचन्द कहते हैं; "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

New English Dictionary में Novel की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है।

"A ficticious prose tale or narrative of Considerable length, in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot."

इसके पश्चात् कहानी को देखिये। कहानी की रचना कुछ अचानक होती है, जैसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

"निमेषे निमेषे होये जाक शेष।
बाई निमेषेर काहिनी ॥"

Mathew Arnold (मैथ्यू आर्नल्ड) ने काव्य की परिभाषा करते हुए उसे जीवन की आलोचना कहा है। कहानी के विषय में उसका कथन सर्वाधिक लागू होता है। एक अँग्रेजी लेखक ने कहानी को जीवन का एक टुकड़ा कहा है।

श्री एडगर एलिनपो× ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार की है:—

"A short Story is a narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impression, Complete and final in itself."

डा० श्यामसुन्दर दास की व्याख्या सुनिये:—

"आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर नाटकीय आख्यान है।"

उपन्यास और कहानी की इस व्याख्या से इन दोनों कथा-विधानों के पारस्परिक सम्बन्धों पर काफी प्रकाश पड़ सकता है। वास्तव में उपन्यास जीवन का सम्पूर्ण चित्र होता है, कहानी जीवन के एक अंश का चित्र। "उपन्यास जिज्ञासा को शान्त कर देता है, आख्यायिका और अधिक उत्तेजित करती है।"—डा० श्यामसुन्दर दास।

कहानी अपने प्राचीन रूप में उपन्यास की अग्रजा है, नवीन रूप में अनुजा। इन दोनों में भेद केवल आकार का ही नहीं आत्मा का भी है। जैसा एक प्रसिद्ध लेखक ने कहा है, यदि "चार पाँव वाला मेंढक छोटा बैल और बैल बड़ा मेंढक नहीं कहा जा सकता है तो कहानी भी छोटा उपन्यास नहीं कही जा सकती।"* वास्तव में इनके शारीरिक आकार में ही नहीं, शारीरिक संस्कार में भी भेद होता है। गठन और व्यवस्था भी दोनों की एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। जैसा ऊपर कहा गया है कहानी जीवन की एक झलक है। यह झलक प्रभावपूर्ण तो है किन्तु है क्षणिक। उपन्यासकार दुर्योधन की भाँति निशाना मारने से पूर्व पूरी चिड़िया को ही नहीं, वृक्ष को भी देखता है, किन्तु कहानीकार केन्द्र द्रष्टा होता है, वह अर्जुन की भाँति चिड़िया के केवल शिर को देखता है, जहाँ उसे निशाना मारना होता है।

× Adger Alinpoe. * बाबू गुलाबराय।

कहानीकार पाठक को एकदम संवेदना के स्थल पर लेजाता है, उसे ऊबड़-खाबड़ मार्गों की सफर नहीं कराता। कहानी की एक तथ्यता ही उसका रस है, यहीं वह उपन्यास से अलग भी है। उपन्यास एक तथ्य हो, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। उपन्यास में घटनाओं का अनिर्दिष्ट क्रम और कथा का स्वच्छन्द विकास हो सकता है, कहानी में घटनाओं के स्वच्छन्द विकास की सुविधा नहीं। उसका क्रम भी सुनिर्दिष्ट होना चाहिये। कहानी और उपन्यास के शिल्प-विधान में भी अन्तर होता है। उपन्यास में प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा के साथ पल्लवित होती रहती हैं, पात्रों की बहुलता भी उसमें क्षम्य है। वातावरण का विस्तार और जीवन की अनेकरूपता उपन्यास में यदि श्लाघ्य नहीं तो कम से कम क्षम्य तो अवश्य ही है। किन्तु कहानी में ये सभी चीजें अग्राह्य हैं। अवान्तर कथा तो कहानी में आ ही नहीं सकती। पात्र-बहुलता और वातावरण एवं जीवन की अनेकरूपता कहानी की एकता को और वातावरण की केन्द्रीयता को भंग कर सकती है अतः वह कहानी के लिए एक अक्षम्य दोष हो जाती है। कहानी में कथानक, वातावरण और चरित्र-चित्रण सभी तत्व रहते हैं, किन्तु इनमें से कोई एक प्रमुख हो जाता है शेष सभी गौण हो जाते हैं। उपन्यास में इन तीनों के समावेश से ही सफलता मिल सकती है। उसमें तीनों ही प्रमुख और चमकते हुए रह सकते हैं।

अब शैली को लीजिये, कहानीकार की शैली अनिवार्यतया व्यंजना-प्रधान$ हो जाती है, क्योंकि उसे अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से अपनी सारी बात प्रकट करनी होती है। उसे गागर में सागर भरने का प्रयत्न करना पड़ता है। उपन्यासकार को संक्षिप्त रूप में बात कहने की कोई विवशता नहीं है, अतः उसकी शैली में व्यंजना बहुत कम आ पाती है, उसकी शैली वर्णन-प्रधान रहती है, जिसमें अभिधा शक्ति ही मुख्य होती है।

अन्तिम बात जो कहानी और उपन्यास के पारस्परिक सम्बन्ध से अधिक जुड़ी हुई है वह है कहानी और उपन्यास दोनों का आत्मीय

$ Suggestive।

सम्बन्ध। दोनों को लिखने के पूर्व लेखक की मनःस्थिति की वृत्तियाँ समान रूप से अवस्थित होती हैं। दोनों एक सी ही प्रेरणा की उत्पत्ति हैं।

लेखक के व्यक्तित्व की दृष्टि से हमें कहना पड़ेगा कि कहानीकार उपन्यासकार की भाँति अपने व्यक्तित्व को छिपाकर नहीं रख सकता। कहानी वास्तव में व्यक्तित्व-प्रधान शैली की कला है।

अब हम प्रत्यक्ष रूप से कथा-साहित्य के तत्वों* पर आवेंगे। कहानी और उपन्यास दोनों की दृष्टि से कथा-साहित्य के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किये गये हैं:—

१—वस्तु (Plot) २—चरित्र-चित्रण (Characterisation) ३—कथोपकथन (Dialogue) ४—वातावरण (Atmosphere) ५—उद्देश्य (Ideal) ६—शैली (Style)। उपन्यास में एक और तत्व रखा गया है रस और भाव।

हम इन सभी पर अलग-अलग विचार करेंगे। सर्व प्रथम वस्तु को लीजिये:—

वस्तुः—उपन्यास की वस्तु के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है।

१—वस्तु का चुनाव जीवन के क्षेत्र से हो, जिससे उपन्यास में उसका चित्र कुछ जीवित चित्र हो सके।

२—वस्तु के विकास में कार्य एवं क्रम-शृंखला का ध्यान रखना आवश्यक है।

३—मौलिकता की दृष्टि से कथा चाहे मौलिक न हो, किन्तु वर्णन अवश्य मौलिक होना चाहिये।

४—वस्तु के निर्वाह में कुशल नाटक जैसा निर्वाह होना चाहिये।

५ - घटनाएँ सम्भव दिखाई पड़ें। "असम्भाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि दृश्यते।" यही सत्य की कसौटी होती है उपन्यास में। चाहे घटना इति-

* Elements of fiction।

हास की दृष्टि से सत्य न हो किन्तु मानव-कल्पना की दृष्टि से सम्भाव्य अवश्य होनी चाहिये।

६—कथानक संगठित हो। 'जेम्स जायस' का 'उलीसस' उपन्यास दो दिन के जीवन को ही पूर्णतया संगठित किये है। बहुत से कथानकों की एकसूत्रता एक पात्र से ही संबन्धित की जाती है। जैसे शेखर-एक जीवनी।

७—कथानक में रोचकता, नवीनता, कौतूहल आदि अवश्य होना चाहिए। Novel का अर्थ ही नवीन होता है।

कहानी की वस्तु के लिए कुछ अन्य तत्वों की आवश्यकता है। संक्षिप्तता और सुश्रृंखला अत्यावश्यक है। फ्रांस में तो नाटकों का 'संकलनत्रय'§ का नियम कहानी पर भी लगाया गया। एक अँग्रेजी लेखक ने कहानी की संक्षिप्तता की आवश्यकता को बड़े सुन्दर शब्दों में यों किया है।

"No admittance except on business must be the short story writer's motto."

कहानी के कथानक का अन्त उपन्यास की भाँति नियति के पश्चात् नहीं, चरम पर होना चाहिये। यह अनिवार्य नियम तो नहीं, किन्तु सुशोभन अवश्य है।

उपन्यास और कहानी दोनों के वस्तु-तत्व की ये आन्तरिक आवश्यकताएँ हमने विविक्त की हैं। इसी क्रम में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उपन्यास और कहानी के रूप भी कई होते हैं:—

(१) एक द्रष्टा द्वारा कही हुई कथा का रूप—वर्णनात्मक शैली—जैसे प्रेमचन्द का 'सेवासदन', प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी आदि।

(२) आत्मकथा के रूप में—जैसे सियारामशरण का 'अन्तिम आकांक्षा' उपन्यास अथवा प्रेमचन्द जी की 'बड़ा भाई' कहानी।

(३) पत्रों के रूप में—जैसे उग्रजी का 'चन्द हसीनों के खतूत' उपन्यास।

§ The three unities.

दूसरा तत्व—चरित्र-चित्रण (Characteris tions)

पात्र प्रायः दो प्रकार के होते हैं। १—वर्ग पात्र (Typical characts) २—व्यक्ति पात्र (Individual characters) वर्गपात्र का उदाहरण, 'गोदान' के राय साहब, जो किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके चरित्र की सारी विशेषताएँ एक वर्ग की विशेषताएँ हैं।

व्यक्ति-पात्र उस पात्र को कहते हैं, जो किसी वर्ग की सीमाओं में बँधा नहीं होता। जिसके चरित्र की सारी दुर्बलताएँ और सबलताएँ उसकी निराली विशेषताएँ होती हैं, जैसे जैनेन्द्र की 'सुनीता', अज्ञेय का 'शेखर'।

किन्तु ये भेद व्यावहारिक मात्र हैं। विशुद्ध वर्ग (Type) या व्यक्ति तो कोई चरित्र हो ही नहीं सकता। प्रत्येक में कुछ न कुछ एक दूसरे की विशेषताओं का सम्मिश्रण हो ही जाता है।

एक अन्य भेद चरित्रों का किया गया है, जो उपन्यास में ही अधिक काम आता है। वह है (१) गतिशील पात्र† जैसे ग़बन का रमानाथ—अर्थात् जिनका चरित्र उपन्यास की घटनाओं के साथ बदलता और विकसित होता जाता है। ऐसे पात्र प्रारम्भ में जिस रूप में दिखते हैं, उपन्यास के अन्त में उससे बिलकुल भिन्न रूप में। (२) स्थिर पात्र‡ जैसे गोदान का होरी—अर्थात् जिनका चरित्र जैसा उपन्यास के प्रारम्भ में प्रारम्भ होता है, उन्हीं विशेषताओं और स्तरों को लेकर अन्त तक चलता है।

यह उपन्यास के चरित्रों की बात हुई। कहानी में चरित्र-चित्रण का कुछ आधिक्य है। आज के युग की कहानी चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त शायद और कुछ नहीं होना चाहती। एक कहानी में किसी चरित्र का पूर्ण विकास बताना तो नितान्त असम्भव है, अतः विकसित चरित्र का एक पहलू ही निदर्शित किया जा सकता है।

---

† Dynamic characters, ‡ Static characters.

चरित्र-चित्रण प्रायः दो प्रकार से होता है:—

(१) प्रत्यक्ष विधि से (Direct or Analytical way)

(२) अप्रत्यक्ष विधि से (Indirect or Dramatic way)

प्रथम में लेखक किसी चरित्र का स्वयं विश्लेषण करता है। दूसरे में पात्रों के वार्तालाप या कार्यकलाप द्वारा चरित्र का निर्देश किया जाता है। इन दोनों प्रकारों में आज सांकेतिक विधि* को अधिक पसन्द किया जारहा है। प्रत्यक्ष का सांकेतिक चित्रण प्रेमचन्द में बहुत मिलता है। 'लांछन' शीर्षक कहानी से एक उदाहरण देखिये:—

"उसका काम था महिलाओं की सेवा टहल, पर महिलाएँ उसकी सूरत से काँपती थीं।'

परोक्ष-चित्रण का भी एक सांकेतिक उदाहरण देखिये:—

"हाँ-हाँ मैं जानता हूँ। तुम मुझे दरिद्र युवक समझ कर मेरे ऊपर कृपा रखते थे, किन्तु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था, इसका मुझे अब अनुभव हुआ। ......न अभी, न फिर कभी। मैं दरिद्रता को भी दिखला दूँगा, कि मैं क्या हूँ। इस पाखण्डी-संसार में रहूँगा, परन्तु किसी के आगे सिर न झुकाऊँगा। हो सकेगा तो संसार को बाध्य करूँगा झुकने के लिए।"

—प्रसाद की 'व्रतभंग' कहानी से।

३—कथोपकथन (Dialogue)

इसके तीन मुख्य अर्थ होते हैं:—

(१) चरित्र-चित्रण।

(२) कथानक का संचालन।

(३) प्रबन्ध-कथन में सजीवता और रोचकता।

कथोपकथन अत्यन्त सप्रयोजन और आवश्यक होने चाहिएँ। उनका पात्रानुकूल होना भी अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात् भाषा चाहे जो हो, किन्तु पात्रों के मानसिक धरातल के अनुकूल होनी चाहिये। किसी मजदूर

* Symbolic way.

के मुख से दार्शनिकता और काव्य की बातें कराना अनुचित कथोपकथन हो जायगा।

कथोपकथन बौद्धिक और तर्कपूर्ण होने चाहिएँ। भाषा की दृष्टि से भिन्न-भिन्न लेखकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। प्रसाद की भाषा एक रंग है। प्रेमचन्द की भाषा पात्रों के अनुकूल बदलती गई है।

४—चौथा तत्व है वातावरण अर्थात् देश-काल

उपन्यास में इसके चित्रण की बहुत गुंजायश रहती है, किन्तु कहानी में बहुत ही कम। यह वैसे दो प्रकार का हो सकता है:—

(१) मानसिक वातावरण।

(२) भौतिक वातावरण।

इन दोनों का मधुर संयोग लेखक की कला में चार चाँद लगा देता है। 'पुरस्कार' कहानी के प्रारम्भिक दृश्य में प्रकृति और जनता की मानसिक स्थिति में कितना सुन्दर साम्य है। प्रसादजी की प्रायः सभी कहानियों में यह विशेषता मिलती है। 'आकाश-दीप' का वातावरण उसका प्राण है।

रस की दृष्टि से वातावरण का चित्रण उद्दीपन कहा जा सकता है।

५—उद्देश्य (Ideal)

कला के उद्देश्य पर देश-विदेश के विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ कला का भौतिक उद्देश्य लेकर चलते हैं, कुछ उसका कोई उद्देश्य नहीं मानते। 'कला कला के लिए'* और 'कला जीवन के लिए'$ इस युग के दो प्रसिद्ध वाक्यांश हैं। हम इस विवाद में यहाँ न जाकर केवल यही कहेंगे कि विचार और उद्देश्य चाहे जो हों, किन्तु वे कभी भी प्रत्यक्ष रूप से वर्णित नहीं होने चाहियें। प्रेमचन्द और यशपाल की भाँति किसी विशेष विचारधारा का माध्यम उपन्यास या कहानी को बनाना कला की दृष्टि से थोड़ा अहितकर हो जाता है। किन्तु साथ ही यह भी देखना

---

* Art for Art's sake, $ Art for life's sake,

है कि वह पागल का प्रलाप भी न हो जाये अथवा फिर प्रसादजी की भाँति इतिहास की थीसिस§ न हो जाये।

एक दूसरा विवाद जो कथा-साहित्य में उद्देश्य को लेकर चला है यह है कि कथा में सामयिक समस्याओं का हल हो अथवा शाश्वत समस्याओं का? यदि सामयिक समस्याओं का हल ही कला का उद्देश्य मान लिया जावे तो सम्भवतः वह कला न रहकर कुछ और हो जायगी। केवल शाश्वत समस्या का हल ही यदि कला का उद्देश्य माना जाय तो कथा-साहित्य की उपयोगिता को बहुत बड़ा धक्का लग सकता है। अतः उचित यही है कि दोनों के सम्मिश्रण का प्रयत्न कथाकार को करना चाहिए। 'गोदान' में प्रेमचन्द जी ने यही प्रयत्न किया है।

उद्देश्य यथार्थवादी हो या आदर्शवादी। जीवन का जो चित्र कथा-साहित्य प्रस्तुत करता है, वह जीवन जैसा है वैसा ही हो अथवा जीवन जैसा होना चाहिये, वैसा हो। यह एक अलग निबन्ध का विषय हो सकता है। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कला का उद्देश्य कम से कम यही है कि वह हृदय का संस्कार करे। चित्रण यथार्थवादी हो अथवा आदर्शवादी, यदि कला अपने इस उद्देश्य को सार्थक नहीं करती तो निश्चित रूप से वह अपने उच्च स्तर से गिरी होती है।

६—शैली

यह कथा-साहित्य का ऐसा तत्व है, जिस पर कला की प्रेषणीयता निर्भर करती है। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से ही नहीं, भावों और विचारों से भी है। इसके कुछ आवश्यक गुण होते हैं। संगीत, तार्किक क्रम आदि विचार क्षेत्रीय गुण हैं। भाषाक्षेत्रीय भी कुछ गुण होने चाहियें। अलंकार और व्यंग्य आवश्यक हैं। ओज, माधुर्य और प्रसाद से शैली सुसज्जित होनी चाहिये। कविता से कुछ कम लक्षणा और व्यञ्जना की आवश्यकता है।

शैली दो प्रकार की होती हैं (१) समास और (२) व्यास।

§ Thesis.

समास शैली वह होती है, जिसमें भाषा अलंकृत हो और वाक्य जटिल और संस्कृत-प्रधान हों। व्यास शैली - जो मिश्रित न हो। जैसे प्रेमचन्द की चित्रण-शैली।

ऊपर हमने कथा-साहित्य के उन तत्वों पर विचार किया है, जो आज विश्व-साहित्य में इसके आधार माने जाते हैं। विश्व के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक टाल्सटाय और चैखोव आदि की कहानियों में इन तत्वों का बहुत ही सुन्दर सामंजस्य मिलता है। रवीन्द्रनाथ की कहानियों में पं० इलाचंद्र जोशी के अनुसार प्रतिदिन के दुःख-सुख के चित्र नहीं, इससे अधिक तो उनकी कविताओं में अधिक सत्तात्मक और व्यक्तिगत भाव पाये जाते हैं। और शरच्चन्द्र की कहानियों में व्यक्ति के जीवन की सत्ता यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हुई है।

विस्तृत रूपरेखा

१ उपक्रम : कथा का प्रारम्भ—i 'उदयनकथाकोविद ग्रामवृद्धान्' की प्रवृत्ति। ii कहानी : जीवन-अनुभव सुनाने की प्रवृत्ति है। iii मौखिक और साहित्यिक कथा।

२—दो भेद—i कहानी। ii उपन्यास। iii उपन्यास की व्याख्या। iv कहानी की व्याख्या।

३—उपन्यास और कहानी का सम्बन्ध—i आकार के साथ-साथ आत्मा में भी भेद। ii शिल्प-विधान में अन्तर। iii लक्ष्य में अन्तर। iv पात्र, वातावरण एवं जीवन की अनेकरूपता। v शैली का अन्तर, अभिव्यंजना और वर्णन। vi जातीय और आत्मीय सम्बन्ध। vii व्यक्तित्व को छिपाये रखने की समस्या।

४—सृजन के तत्व—i वस्तु। ii चरित्र-चित्रण। iii कथोपकथन। iv वातावरण। v उद्देश्य। vi शैली।

५—विश्लेषण—i वस्तु—चुनाव, कार्य, मौलिकता, कुशलता, संभवता, संगठितता, रोचकता, नवीनता आदि। कहानी में संक्षिप्तता और सुश्रृंखला आदि। ii वस्तु के रूप। iii चरित्र-चित्रण—पात्रों के प्रकार, (i) वर्ग और (ii) व्यक्ति। गतिशील और स्थिर।

चरित्र-चित्रण के प्रकार–(i) प्रत्यक्ष विधि से (ii) अप्रत्यक्ष विधि से। iv कथोपकथन (Dialogue) तीन मुख्य कार्य–चरित्र-चित्रण, कथानक का संचालन, प्रबन्ध-कथन में सजीवता और रोचकता। v वातावरण अथवा देशकाल–(i) मानसिक वातावरण (ii) भौतिक वातावरण। vi उद्देश्य--आदर्शवाद और यथार्थवाद, सामयिकता और शाश्वतता के, कला और जीवन। vii शैली--भावक्षेत्रीय गुण, भाषाक्षेत्रीय गुण, दो प्रकार (i) समास और (ii) व्यास viii उपसंहार।

५७–"एको रसः करुण एव"

संक्षिप्त रूपरेखा

१—उक्ति का स्पष्टीकरण। २—अन्य रसों से सम्बन्ध। ३—करुण की विशेषता। ४—भारतीय परम्परा। ५—हिन्दी में करुण--उदाहरण। ६—श्रव्य काव्य के अन्तर्गत। ७—दो विचारणीय प्रश्न—उपसंहार।

निबन्ध—'एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद्भिन्नः

पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्* ॥ आदि

महाकवि भवभूति के इस श्लोक का छायानुवाद करते हुए पं० सत्यनारायण कविरत्न ने लिखा है—

एक करुण ही मुख्य रस, निमित भेद सों होय।

....

पै यथार्थ में सबनि को, होत रूप जल एक॥

श्रीमदानन्द गोवर्धनाचार्य का मत भी इससे मिलता-जुलता है। वे भी करुण रस से अन्य रसों की निष्पत्ति का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार कविता का आरम्भ इसी रस से हुआ और यदि वास्तव में कविता की आत्मा कोई रस हो सकता है तो वह करुण रस ही है। आदि कवि वाल्मीकिजी का आदि श्लोक देखिये—

---

* उत्तर रामचरित।

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम-मोहितम्॥$

करुण रस और विप्रलंभ (वियोग) शृङ्गार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्हीं आचार्यों के अनुसार तो वियोग शृङ्गार की अन्तिम दशा करुण ही है। जहाँ वियोग में संयोग की कोई आशा नहीं रह जाती, वहाँ करुण का उद्रेक हो जाता है। विप्रलंभ शृङ्गार में प्रिय के मिलन की आशा रहती है, नायिका का नायक के भविष्य पर विश्वास और उसका आश्रय रहता है। किन्तु करुण शोक का अथाह और अगम्य समुद्र है जिसके न कोई पार जा सकता है और न थाह पा सकता है। करुण रस में तो केवलमात्र शोक है। शोक के अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं रहता। इस रस का स्थायी भाव शोक है। इसके आलम्बन विभाव शोकजनक पदार्थ या बन्धु नाशादि हैं। उद्दीपन के अन्तर्गत प्रिय की वस्तुओं का दर्शन आ सकता है। संचारी भावों में मोह, व्याधि, ग्लानि, निर्वेद* आदि हैं। अनुभाव—भूमि पतन, दैव-दोष आदि हैं।

अब देखना यह है कि महाकवि भवभूति की यह उक्ति कहाँ तक सत्य है। यह तो पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि संयोग के साथ वियोग होता है, और वियोग की अन्तिम दशा होती है करुण। हास्य भी अन्त में करुण में ही परिवर्तित होता है 'Every laugh is mixed with tears'। स्त्रियाँ भी प्रायः कहा करती हैं—'बच्चे को इतना न हँसाओ—जितना हँसेगा उतना ही रोवेगा'। वीर, बीभत्स, रौद्र और भयानक का करुण से स्पष्ट सम्बन्ध है। वीर और रौद्र से क्या होता है? करुण की सामग्री उत्पन्न होती है। युद्ध में वीरता का प्रदर्शन एवं रौद्र का आरोप अन्त में करुणा ही प्रसारित करता है। बीभत्स और भयानक की ओट दूसरी ओर करुण ही है। अब रह गया अद्भुत। इसके अन्तस्तल‡ में भी यदि खोज की जाय तो 'करुण' का ही पता लगेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि करुण रस का समावेश अन्य सभी रसों में है।

$ व्याध द्वारा क्रौंच जोड़े में से नर का बध किये जाने पर, * शान्त, ‡ गहराई।

करुण रस अविकारी है, इसमें कोई विकार नहीं। करुण रस चित्त-शुद्धि का साधन है। हमारे मस्तिष्क को संसार की अवास्तविकता का सम्यक् बोध कराकर और वस्तुओं का मूल्य निर्धारित कर हमें कर्तव्य की ओर अग्रसर करता है। क्योंकि यदि हम कार्य न करें तो हाथ मलकर पछताना ही रह जायगा। जब कभी श्मशान में जाते हैं और वहाँ किसी शव का दाह देखते हैं तो शीघ्र ही हमारे मस्तिष्क में अनेक विचार उत्पन्न हो जाते हैं, और वास्तविकता का विश्लेषण आप ही आप होने लगता है। एक परम तपस्वी महात्मा† कहा करते हैं। यदि तुम्हें कोई अनुचित कार्य नहीं करना है तो सर्वदा याद रक्खो—"हमें मरना है।" श्मशान में जाने पर उसी भावना की पुष्टि होती है। तीन स्पष्ट भाव आते हैं—

(१) अन्त में हमें भी ऐसे ही स्थान पर आना है।

(२) संसार की भ्रामक वस्तुओं में क्यों पड़ा जाय, क्यों नहीं स्थायी आनन्द की खोज की जाय।

(३) जीवन का अमूल्य समय हम किस बुरी तरह नष्ट कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि जीवन का प्रत्येक क्षण अच्छे कार्य में लगाया जाय।

ये प्रश्न ऐसे हैं कि यदि इन्हें सर्वदा ध्यान में रखा जाय तो मनुष्य देवत्व को प्राप्त कर सकता है और कभी भी विषयों के प्रपंच में नहीं पड़ सकता। किन्तु खेद तो इसी बात का है, कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना न जाने क्या सोचकर की है कि इन विचारों का स्थायित्व अति क्षणिक* होता है, और कुछ घण्टों बाद ही हम पुनः उसी दूषित वातावरण में बहने लगते हैं। किसी ने कहा है कि यदि यही बुद्धि सर्वदा बनी रहे तो स्वर्ग प्राप्ति का तो क्या कहना, यह पृथ्वी ही उस व्यक्ति के लिए स्वर्ग बन जावेगी।

भारतीय परम्परा 'करुण' के कुछ प्रतिकूल ही रही है$, फिर भी स्थान-

---

† तपोनिष्ठ आचार्यानन्दजी महाराज, * बहुत थोड़ी देर का, $ भारत में दुःखान्त नाटक भी नहीं हैं।

स्थान पर कवि एवं लेखकों द्वारा करुण का वर्णन हो ही जाता है। हिन्दी में भी अपेक्षाकृत करुण अधिक नहीं है। वीर-गाथा-काल जैसा नाम से ही स्पष्ट है, वीररस का काल था और इसका प्रयोग शृङ्गार के लिए होता था। भक्तिकाल शान्त और शृङ्गार से सीमित था। तीसरा काल तो शृङ्गार-काल कहलाता ही है। आधुनिक काल किसी रस विशेष को प्रश्रय नहीं देता। योरुप में करुण रस को बहुत प्रधानता मिली है। नाटकों में तो इसका अग्रणीय स्थान है ही, काव्य में भी काफी मिलता है। 'बँगला' में भी करुण का साहित्य अच्छा है। इस पर भी स्थान-स्थान पर करुण के दर्शन हिन्दी काव्य में भी हो जाते हैं। रस सम्राट् तुलसी के 'मानस' में करुण रस के अच्छे उदाहरण हैं और 'गीतावली' में भी कई एक सुन्दर स्थल हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने के समय, सुमन्त्र के अयोध्या लौटने पर, बालि-बध, रावण-वध आदि उपयुक्त स्थल हैं। एक स्थल देखिए;—

अर्ध राति गई कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
मम हित लागि तजेउ पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई॥
उतरु काह देहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजीव बिलोचन॥

अथवा गीतावली में—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपत बँटावन बंधु बाहु बिन करौं भरोसो काको॥
सुन सुग्रीव साँचेहु मोपर फेर्यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यौ लखन सो भ्राता॥
गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज संघाती।
ह्वै है कवन बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती॥

---

† स्थान, ‡ लक्ष्मण को शक्ति लगना।

इस प्रसंग में सूर के भ्रमरगीत का भी नाम उल्लेखनीय है। कृष्ण चले गये, मिलने की कोई सम्भावना नहीं सर्वदा रोना ही रोना है—

और सकल अंगन तें ऊधो अँखिया अधिक दुखारी।
अतिहि पिराति सिराति न कबहूँ बहुत जतन करि हारी॥

श्याम का पत्र भी नहीं पढ़ सकती क्योंकि—

लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।

हरिऔधजी के प्रिय प्रवास में भी अनेक स्थल हैं—

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख जलनिधि-डूबी का सहारा कहाँ है ?
प्रतिदिन जिसको मैं अङ्क में नाथ लेके।
निज सकल कुअङ्कों की क्रिया कीलती थी॥
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला।
वह नव नलिनी-सी कांति बाला कहाँ है ?

गुप्तजी ने* भी करुण रस के उदाहरण उपस्थित किये हैं—

"भैया, कहो मेरे दृगों का आज तारा है कहाँ ?
मुझ दुःखिनी हतभागिनी का सौख्य सारा है कहाँ ?
भैया ! तुम्हें क्या विश्व में मुझको दिखाना था यही ?
हा ! जल गया यह हत हृदय, दृगज्योति सब जाती रही।
तब काल-गति के मार्ग में अभिमन्यु ही था क्या अहो ?
करुणानिधे करुणा तुम्हारी हाय ! यह कैसी कहो ?"

प्रसादजी का 'आँसू' भी इसी से सम्बन्धित रचना है—

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में 'आँसू' बनकर वह आज बरसने आई॥
नीचे विपुला धरणी है दुख-भार वहन जो करती।
अपने खारे आँसू से करुणा-सागर को भरती॥

पन्त और महादेवी की रचनाएँ भी करुण के उदाहरण उपस्थित करती हैं। महादेवी में तो करुण रस की बहुत अधिकता है—

---

* जयद्रथ वध में।

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला अवसान॥

अथवा—

मोम-सा तन घुल चुका है।
अब दीप-सा मन जल चुका है॥

कौशलेन्द्रजी तो करुणा की मूर्ति हैं, उनकी 'मरणोन्मुखी' करुणा के सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती है—

'कौशलेन्द्र' हमें बस शोक इतना है, जब,
प्यारे मृग खोज में हमारी यहाँ आएँगे;
सूनी विपिनस्थली विलोकि दूनी होगी व्यथा,
उर भर आएँगे, नयन झर लाएँगे॥

गद्य में भी भारतेन्दुजी का एक उदाहरण देखें—

"हाय! जिन मीठी-मीठी थपकियों से रोज सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज इस धधकती चिता पर कैसे रखूँगी। जिसके मुख में छाले पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध नहीं पिलाया था उसे हाय!......(रोती है)"*

श्रव्य काव्य के साथ यदि दृश्य काव्य को भी लिया जाय, तब भी इसी बात की पुष्टि होती है। बीस वर्ष पूर्व प्रयाग विश्वविद्यालय में देखा गया 'उस पार' अब तक याद है। मानवी कठिनाइयों का, उसकी सीमित अवस्थाओं का और अन्तिम परिणाम का वह करुणामय दृश्य अभी तक हृदय-पटल पर खचित है। आधुनिक चित्रपटों में भी उच्च रुचि वाले करुणा-पूर्ण चित्रों से ही अधिक प्रभावित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दुःखान्त नाटकों का प्रभाव हमारे हृदय पर बहुत स्थायी होता है। यह प्रभाव न केवल हमें हमारे कर्तव्य की ओर ही अग्रसर करता है, वरन् हमारी कठिनाइयों में पथ-प्रदर्शन का काम भी करता है। संसार की असारता बतला कर वृत्तियों को उच्च विषयों की ओर प्रेरित करता है। उच्च रुचि वाले$ व्यक्ति दुःखान्त नाटकों को ही पसन्द करते हैं। बँगला

---

* सत्य हरिश्चन्द्र नाटक, $ With higher taste,

नाटकों में करुण रस का ही आधिक्य है। योरुप में भी करुण नाटकों की यथेष्ट संख्या है। जितना गम्भीर प्रभाव अँग्रेजी के नाटक Othello का पड़ता है उतना As you like it का नहीं। Hemlet में जिस मनोविज्ञान का विश्लेषण वह Tempest में नहीं। शैली ने ठीक ही कहा है—

"Our sweetest songs are there,
that feel of saddest thought."†

करुण रसपूर्ण कविता ही श्रेष्ठ कविता है। इस प्रकार काव्य का प्रधान रस 'करुण' ही ठहरता है। हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् तो उसे 'रस राज' का स्थान देते हैं।

इस सम्बन्ध में दो बातों पर विचार और करना चाहिये—

(१) करुण रस से उस आनन्द की प्राप्ति नहीं होती जिसे बहुत से खोजते हैं और जो प्रायः शृङ्गार आदि में मिलता है।

(२) कला का उद्देश्य मन में आनन्द का उद्रेक करना है, उसका उद्देश्य किसी प्रकार की शिक्षा देना नहीं।

कुछ लोगों का विचार है कि हम किसी कला का सेवन इसलिए करते हैं कि उसके द्वारा आनन्द की प्राप्ति हो। यदि हमारे सामने रंगमंच पर कोई दुःखान्त प्रसंग उपस्थित किया जाता है तो उससे हमारे शोक-विदग्ध हृदय को रुलाने के अतिरिक्त क्या मिलेगा। चित्रपट पर 'देवदास' अथवा 'अनार कली' की मृत्यु देखकर घर पर रोते हुए लौटने के अतिरिक्त और क्या मिलेगा। ऐसे लोगों को समझना चाहिये कि वे आनन्द की परिभाषा जानते ही नहीं। वास्तविक आनन्द मन की शुद्धि है*, हृदय को विकार रहित बनाना है। यदि हमें अश्रुपात भी करना पड़े तो उस करुणा-जल से हमारे हृदय का मल धुलकर हृदय स्वच्छ हो जायगा। अधिक से अधिक कठिनाई के समय भी हम करुण से ही आनन्द, उत्साह और संतोष की आशा कर सकते हैं। 'करुण' रस स्थायी आनन्द की उत्पत्ति करता

† Shelley. * Catharsis theory.

क्षणिक आनन्द की नहीं जो अधिकाधिक शोक की ओर लिए जाता है।

अब रही दूसरी बात। कला द्वारा किसी भौतिक† आनन्द को प्राप्त करना उसके रूप को विकृत करना होगा। जो कला हमारी इन्द्रियों को तुष्ट करती है वह निम्न कोटि की कला है। जो कला हमारी हृदय की शुद्धि की ओर, वास्तविक स्थायी आनन्द की ओर जाती है वही सच्ची कला है। अतएव 'करुण' को ललित-कलाओं में सर्वोपरि स्थान मिलना चाहिये। शिक्षित और सुरुचिपूर्ण समुदाय के लिए तो यह नितान्त सत्य है—'एको रसः करुण एव'।

विस्तृत रूपरेखा

१—उक्ति का स्पष्टीकरण—i भवभूति–उत्तर रामचरित। ii करुण का स्रोत अति प्राचीन–वाल्मीकि-कथन। iii वियोग और करुण के अन्तर का स्पष्टीकरण।

२—अन्य रसों से सम्बन्ध—i शृङ्गार–वियोग करुण ही है। संयोग का अन्त भी वियोग में होता है। ii प्रत्येक हास्य में रोदन छिपा हुआ है। iii वीर, रौद्र, करुण की सामग्री उपस्थित करते हैं। iv बीभत्स, भयानक–के उस पार करुण छुपा हुआ है। v अद्भुत और शान्त को खोजने पर करुण का स्वरूप ही प्राप्त होगा।

३—करुण रस की विशेषता—i यह रस अविकारी तथा स्थायी होता है। ii इसका प्रभाव बड़ा गहरा होता है। iii श्मशान का उदाहरण। iv करुण रस से प्रभावित सुन्दर बुद्धि।

४—भारतीय परम्परा—i करुण के प्रतिकूल–दुःखान्त नाटकों का अभाव। ii हिन्दी के चार काल, वीर–करुण रहित; भक्ति–तुलसी, सूर आदि से सुन्दर स्थल। iii शृङ्गार–करुण का ह्रास। iv आधुनिक दार्शनिक कवि और दुःखवाद के कवि, जैसे–महादेवी।

---

† सांसारिक।

५—उदाहरण--तुलसी (लक्ष्मण शक्ति), सूर (भ्रमर गीत), हरिऔध (प्रियप्रवास), गुप्त (जयद्रथ वध), प्रसाद (आँसू), महादेवी (गीत, कौशलेन्द्र (मरणोन्मुखी), भारतेन्दु (सत्य हरिश्चन्द्र),

६—श्रव्य काव्य में करुण का स्थान—i यूनानी नाटक । ii अँग्रेजी नाटक । iii बँगला नाटक । iv स्थायी प्रभाव--जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन ।

७—दो प्रश्न—i करुण रस से आनन्द प्राप्ति—स्थायी आनन्द, हृदय-शुद्धि और विकारहीनता के रूप में प्राप्त होता है । ii कला से सम्बन्धित--अन्य कलाएँ भौतिकवाद की ओर झुकी हैं । 'करुण' आध्यात्मिकता की ओर, वास्तविक आनन्द की ओर ।

५८—साहित्य, संगीत और कला के बिना सभ्यता क्षण भर नहीं ठहरेगी

संक्षिप्त रूपरेखा

१—भर्तृहरि का श्लोक : दो अर्थ । २—सभ्यता के तत्त्व । ३—साहित्य की सीमा और सभ्यता । ४—संगीत की सीमा और सभ्यता । ५—कला की सीमा और सभ्यता । ६—जीवन-यापन के साधन और सभ्यता । ७—निष्कर्ष ।

"साहित्य-संगीत-कला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः"

—भर्तृहरिशतक*

भर्तृहरि के इन शब्दों में मानव-सभ्यता का विकास झलक रहा है । सभ्यता के अतिरिक्त मानव और पशु में कोई भेद नहीं । असभ्य मानव भी पशुवत् ही होता है । शारीरिक रचना में उस समय भी यह भेद रहता है कि वह पूँछ और सींगों से रहित पशु होता है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है

---

* संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भर्तृहरि का काव्य ।

कि जब सभ्यता विकसित नहीं हुई थी तब मानव पशु था। इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि उस समय मानव के पास न ज्ञान था, न संस्कृति। पशुओं के साथ वह भी वनों, गुफाओं और कोटरों का निवासी था। उन सब पशुओं में से निकल कर मानव ही क्यों इतना सभ्य हो सका यह तो प्रकृति-शास्त्रियों† की शोध का विषय है। हमें तो केवल यही देखना है कि वे कौन-सी साज-सज्जाएँ थीं, कौन से गुण थे और कौन-सी विशेषताएँ थीं, जिनसे मानव ने अपनी सभ्यता का निर्माण किया? सभ्यता के वे तत्त्व किन विषयों में आते हैं?

इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये आपको एक सभ्य और एक असभ्य मनुष्य की तुलना करनी पड़ेगी। वे कौन से अन्तर हैं जो एक ही जाति के दो जीवों में से एक को सभ्य बनाते हैं। साधारण-सी बात है किसी सभ्य मानव-जाति को ले लीजिये। उसके पास साहित्य का अगाध भाण्डार होगा, संगीत तथा अन्य कलाओं में उसकी गंभीर और प्रशंसनीय गति होगी, ज्ञान-विज्ञान का चरम उत्कर्ष होगा, प्रकृति पर अधिकार करने के शत-शत साधन विद्यमान होंगे। किसी असभ्य मानव-समाज को देख लीजिये। साहित्य और कला के नाम पर शून्य होगा। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में संभवतः अग्नि जलाना भी नहीं जानता होगा, और प्रकृति उसके लिये अद्भुत रहस्यों, अपारशक्ति और भूत-प्रेतों की खान होगी।

इस तुलना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य, विज्ञान, कला और जीवन-यापन के साधन सभ्यता के प्रमुख तत्त्व हैं। इनके विना सभ्य समाज का अस्तित्व नहीं रह सकता। जहाँ ये नहीं वहाँ मानव असभ्य है। हमारे निबन्ध के शीर्षक का वाक्य है कि साहित्य संगीत और कला के विना सभ्यता क्षण भर नहीं ठहर सकती। इस वाक्य की सार्थकता का विश्लेषण करने के पश्चात् ही हम इसकी अपूर्णता अथवा सम्पूर्णता पर दृष्टि डालेंगे।

हमने ऊपर बताया है कि साहित्य भी सभ्यता के अनेक तत्त्वों में से एक है। 'कला' शब्द की अनेक व्याख्याएँ की जाती हैं। कुछ लोग, 'जो

† Naturalists।

कुछ विज्ञान नहीं है वह कला है,'* ऐसा मानते हैं। कुछ के अनुसार कला अनुकरण है,† जीवन का प्रतिबिम्ब है आदि-आदि। तो इन व्याख्याओं में साहित्य भी एक कला ही माना गया है, उसी प्रकार जैसे संगीत, शिल्प कला आदि। ये सभी मत पश्चिमी अथवा पश्चिम से प्रभावित हैं। प्राचीन भारतीय चिन्तन कला को साहित्य से अलग अर्थ में प्रयुक्त करता था। भर्तृहरि के उपर्युक्त श्लोक में ही देख लीजिये यदि कला शब्द में साहित्य भी आजाता तो इसे अलग से उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं थी। भर्तृहरि की इस पंक्ति के दो अर्थ हो सकते हैं—१ वही जो हमारे शीर्षक में लिया गया है कि "साहित्य, संगीत और कला के बिना मानव पूँछ सींग-रहित पशु मात्र है।" इसमें साहित्य, संगीत और कला तीनों शब्दों को अलग-अलग अर्थों में लिया गया है। २ दूसरा अर्थ हो सकता है कि "साहित्य और संगीत-कला के बिना मानव सींग-पूँछ-हीन पशु है।"

इन दोनों अर्थों की सार्थकता और भेद-विभेद 'कला' शब्द के अर्थ के विस्तार पर निर्भर करते हैं। हम उसकी गहराई में न जाकर यही देखना चाहेंगे कि क्या साहित्य, संगीत और कला इन शब्दों में वे सभी तत्व समा जाते हैं, जिनके बिना मानव-सभ्यता ठहर नहीं सकेगी।

सर्व प्रथम साहित्य को लीजिये—'साहित्य' शब्द बड़ा व्यापक है। इसकी सैकड़ों परिभाषाएँ और सीमाएँ देश-विदेश के विद्वानों ने प्रस्तुत की हैं। उन सभी का अध्ययन एक समान निष्कर्ष यह देता है, कि 'मानव-मस्तिष्क का शब्द-लिखित भांडार ही साहित्य है।' इस व्यापक परिभाषा में ज्ञान-विज्ञान (ज्योतिष, वैद्यक आदि) सभी के ग्रन्थों का समावेश हो जाता है। यद्यपि आज अधिकांशतः जिस अर्थ में साहित्य शब्द का प्रयोग होता है वह यह है कि 'शब्द लिखित कला ही साहित्य है।'$ अथवा 'जब कोई कथनीय बात योग्य ढंग से कहदी जाती है, तो वह साहित्य की वस्तु

---

* What is not Science is art, † Art is immitation -Aristotle । $ Literature is written art।

हो जाती है ।'+ ये दो प्रयोग सीमा में बिल्कुल एक दूसरे से भिन्न हैं । पहले में साहित्य को एक कला माना गया है, दूसरे में साहित्य कला से भिन्न और बहुत बड़ी वस्तु है । अस्तु; यदि हम साहित्य को एक कला-मात्र मान कर अपने वण्र्य विषय पर विचार करेंगे तो हमें भर्तृहरि का उक्त कथन भावुकता-पूर्ण अतः कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण दिखाई पड़ेगा । क्योंकि मानव-जीवन में कला न भी हो, केवल ज्ञान और जीवन-यापन के साधन प्रचुर और उन्नत हों तो भी एक सीमा तक उसे सभ्य कहना ही पड़ेगा । किन्तु यदि साहित्य का दूसरा अर्थ लिया जाय तो अवश्य हमें इस कथन में सार्थकता दिखाई पड़ेगी । क्योंकि यदि लिखित ज्ञान, और सभ्यता की कलाओं का जीवन में अभाव है, तो वह जीवन केवल जीवन ही है, सभ्य जीवन नहीं । अफ्रीका के हबशी भी तो जीवन-यापन करते ही हैं, किन्तु उन्हें इसीलिये असभ्य कहा जाता है कि उनके पास ज्ञान-भांडार, लिखित संस्कृति और कलाएँ नहीं हैं ।

साहित्य के पश्चात् संगीत दूसरा शब्द है । भारतीय मनीषियों ने प्राचीन काल में ६४ कलाओं का अस्तित्व माना था । संगीत उनमें से एक कला थी । साहित्य की भाँति संगीत की परिभाषा और विस्तार भी विवादास्पद नहीं है । जो गाया जाता है वह गीत है, जो सम्यक् गाया जा सकता है, वह संगीत । अर्थात् उपकरण-सज्जित गीत संगीत है । और मानव प्रकृति-पुत्र है । प्रकृति में एक चिरन्तन लय और संगीत का अस्तित्व है । अनहद नाद$ को सभी प्रकार के दार्शनिकों और महामानवों ने अनुभव किया है । स्वाभाविक है कि मानव पर प्रकृति की इस संगीतात्मकता का उचित प्रभाव पड़े । और हम देखते हैं कि मानव आदिकाल से ही संगीत प्रिय रहा है । अत्यन्त अविकसित सभ्यता वाली जातियों में भी संगीत किसी न किसी रूप में मिलता है । कुछ प्रकृति-शास्त्रियों का तो मत है कि मानव का प्रथम उच्चारण ही गीत के रूप में हुआ । अस्तु, संगीत

+ When Something Worthy of Saying is worthily said, it becomes Literature-Amar nath jha, $ एक चिरन्तन संगीत का नाद, जो योगियों के मतानुसार ब्रह्माण्ड में गूँजता रहता है ।

का मानव-प्रकृति पर यह अधिकार सभ्यता के साथ-साथ उन्नत भी होता गया। अनेक नवीन उपकरणों के आविष्कार होते रहे, और लोक गीतों से लेकर राज-सभा तक मानव-जीवन संगीतमय होगया। आज भी रेडियो, सिनेमा आदि में संगीत का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मानव-सभ्यता के विकास में संगीत युगपद* रहा है। लिखित कविता-साहित्य की बात जाने दीजिये, लोक-गीतों में और विभिन्न राग-रागिनियों में मानव-हृदय के अनेक कोमल स्थल बँधे पड़े हैं। तानसेन के दीपक-राग से लौ उठने की बात प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार हम देखते हैं आज संगीत ने मानव के कला-जीवन के बहुत बड़े भाग को आच्छादित कर रखा है। यदि संगीत को एकाएक मानव-जगत् से उठा लिया जाय, तो कल्पना नहीं की जा सकती हमारे हृदय के संस्कृत भावों को कितनी बड़ी चोट पहुँचेगी।

अन्तिम शब्द है कला। वैसे संगीत 'कला' में सम्मिलित है, किन्तु यदि कला के अन्य उपाङ्गों पर भी विचार करें, तो हमें विदित होगा कि कला मानव-सभ्यता के मूल आधारों में से है। आप जो वस्त्र पहने हुए हैं, वे एक कलाकार की उत्पत्ति हैं, जिस कुर्सी पर बैठ कर आप पढ़ रहे हैं, वह एक कलाकार का निर्माण है। यों तो जीवन स्वयं एक कला है, किन्तु पारिभाषिक अर्थ में कला दो प्रकार की होती है। (१) ललित कला और (२) उपयोगी कला।

पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार साहित्य, संगीत, नाट्य, आदि कलाएँ ललित कला में आती हैं, शेष सभी निर्माणात्मक कलाएँ, जैसे शिल्प मूर्ति आदि उपयोगी कला में आती हैं। किन्तु उपयोगी हो अथवा ललित, प्रत्येक कला कला है। इस कला के अभाव में विज्ञान कुछ 'सत्यों का ढेर'§ मात्र रह जायगा। ढेर को सुन्दर स्वरूप देना कला का कार्य है। फिर आपके संसार की मोटर चमचमाती हुई सुन्दर वस्तु न रहकर केवल लोहे की भारी भरकम गाड़ी रह जायेगी। कला-हीनता बाह्य वस्तुओं तक ही सीमित न रहकर आन्तरिक संसार पर भी प्रभाव डालेगी। मनुष्य के

* साथ-साथ चलने वाला, § A heap of facts।

विचार और कार्य तभी सुन्दर और सभ्य कहे जाते हैं, जब उनमें एक कला का मिश्रण हो। कला हृदय को संस्कृत बनाती है। कला के अभाव में मानव-हृदय की अनुभूतियाँ ऊबड़-खाबड़ और अभिव्यंजनाएं* खुरदरी हो जायेंगी। यदि हृदय संस्कृत नहीं है, तो उसके विचार निश्चित रूप से सभ्यता-हीन होंगे। मानव की कोमल वृत्तियों को सजग और उत्तेजित रखने वाली आन्तरिक शक्ति कला में ही है। बुद्ध की मूर्ति को देखकर जो अद्भुत परिशान्ति, ताजमहल को देखकर जो अपार आनन्द और किसी कवि की करुण कविता को पढ़कर जो करुणा हृदय में जाग्रत होती है वह कला का ही वरदान है। बिना कोमल वृत्तियों के मानव हृदय पशु-हृदय से अधिक नहीं। कला इन वृत्तियों के उभारने का मूल साधन है। इस प्रकार कला मनुष्य को मनुष्य बनाती है। हृदय का संस्कृत हो सकना और मनुष्य बन जाना ही तो सभ्यता है। ज्ञान-विज्ञान मानव को शक्तिमान अवश्य बनाता है, किन्तु सौंदर्य-प्रेमी और संस्कृत रुचि वाले मानव का निर्माण कला ही करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कला मानव-सभ्यता के बहुत बड़े अंश पर छाई हुई है, और उसका लोप मानव-सभ्यता के बहुत बड़े अंश का लोप है।

हमने देखा कि साहित्य, संगीत और कला का यदि आज मानव-सभ्यता से लोप कर दिया जाय तो उसके समाप्त होते देर नहीं लगेगी। सभ्यता का एक और तत्व इन तीन वस्तुओं से कुछ बाहर रह जाता है, वह है जीवन-यापन के साधन। किन्तु हमें यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिये, कि जीवन-यापन के साधन प्रकृति के प्रत्येक जीव के पास उसकी शक्ति और सुविधा के अनुसार होते हैं। फिर यदि वे मानव के पास भी उसकी शक्ति और सुविधा के अनुसार हुए, तो वह कोई सभ्यता नहीं कही जा सकती। वह तो जीवन है, सभ्य जीवन नहीं। और फिर मानव के तो जीवन-यापन के अनेक साधन भी ऐसे हैं, जिनका विज्ञान और कला के बिना कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। विज्ञान-हीनता और कला-हीनता मानव-जीवन के यापन के अनेक साधनों को छीन सकती है। अतः हम यह कह

---

* Expressions।

सकते हैं कि हमारे निबन्ध के शीर्षक में जो बात कही गई है, वह सार्थक है, किन्तु तभी, जब कि हम साहित्य का अर्थ बहुत व्यापक रूप में लें; जिसमें कि ज्ञान-विज्ञान सभी आ जावें। अन्यथा फिर यह कहना पड़ेगा कि यदि विज्ञान और ज्ञान मानव के पास रहता है, तो भले ही उसके जीवन का सौन्दर्य नष्ट हो जाये, आनन्द में बाधा आ जाये और कुछ सीमा तक उसकी सभ्यता भी लुप्त हो जाये, किन्तु वह दशा अवश्य नहीं आ सकती, कि "सभ्यता क्षण भर नहीं ठहरे।"

विस्तृत रूपरेखा

१—भर्तृहरि का श्लोक—i मानव और पशु में भेद। ii दो अर्थ।

२—सभ्यता के तत्व—i साहित्य, कला, विज्ञान, जीवन-यापन के साधन। ii सभी की आवश्यकता।

३—साहित्य—i व्याख्या। ii विस्तार। iii पूर्वीय और पाश्चात्य मत। iv दो अर्थ।

४—संगीत—i कला से सम्बन्ध। ii संगीत का प्रभाव। iii मानव जीवन प्रकृति की ही भाँति संगीतमय है।

५—कला—i दो भेद। ii कला के अभाव में विज्ञान सत्यों का ढेर। iii कला कोमल वृत्तियों को सजग करती है। iv हृदय का संस्कार। v संस्कृत रुचि का निर्माण।

६—जीवन-यापन के साधन और सभ्यता—i विज्ञान-हीनता और कला-हीनता से अनेक साधन नष्ट हो जावेंगे।

७—निष्कर्ष—i साहित्य का संकुचित अर्थ लेने से तो नहीं किन्तु व्यापक अर्थ लेने पर उक्त कथन सत्य।

५६—मानस

विस्तृत रूपरेखा

१—मानस की महत्ता—i महाकाव्यों में अग्रगण्य—रघुवंश, पैरेडाइज़ लौस्ट, मेघनाद बध, ईलियड महाकाव्यों के समकक्ष। ii प्रचार की

दृष्टि से (a) सम्पूर्ण भारत में प्रचारित, (b) प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है—अकेले गीताप्रेस द्वारा लाखों प्रतियाँ, (c) अन्य भाषाओं में अनुवाद, (d) पाठक, श्रोताओं की संख्या में आशातीत वृद्धि। iii सार्वभौमिक, सार्वकालिक ग्रन्थ। iv कला एवं उपादेयता दोनों दृष्टि से महान्। v साहित्य और दर्शन दोनों का उत्तम समन्वय। vi जनसाधारण का वेद, शास्त्र, सर्वस्व।

२—काव्य की दृष्टि से i सम्पूर्ण विशेषताओं सहित उत्कृष्ट कोटि का प्रबन्ध काव्य (महाकाव्य)। (a) भाषा और भाव का संयोग, (b) जनसाधारण की भाषा--सहजगम्य, (c) जीवन के सब अंगों के चित्रण, (d) सुन्दर वर्णन, (e) प्रबन्ध निर्वाह। ii रस, अलंकार, छन्द, शब्द-शक्ति आदि की दृष्टि से अनुपम--सभी रस, अलंकार आदि सुन्दर रूप में प्राप्त। iii भाषा की सरलता, सुबोधता, गति, स्वच्छता, भाव-प्रकाशन, उपयुक्त शब्दों का प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि का प्रयोग। iv बाह्य प्रकृति, मानवी प्रकृति आदि के सुन्दर चित्रण, (मनुष्य की सभी अवस्थाएँ तथा अनेक प्राकृतिक स्थलों का वर्णन)। v मार्मिक स्थल, आध्यात्मिक प्रसंग, गम्भीर व्यंजनाएँ, सजीवता।

३—धार्मिक महत्त्व—i भक्तिकालीन कविता का सर्वोत्कृष्ट आदर्श। ii आर्य धर्म का सुन्दर, वास्तविक चित्रण। iii भक्तों का सर्वस्व--अब भी श्रद्धा और पाठ की सर्व प्रचलित पुस्तक। iv दार्शनिक तत्वों का विवेचन--'नानापुराण निगमागम' का निचोड़। v ज्ञान, भक्ति एवं कर्म सिद्धान्तों का वर्णन। vi शैव तथा वैष्णव धर्मों की कटुता का निराकरण।

'कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे'--राम
'राम नाम शिव सुमरन लागे'—शिव

४—सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्श---i सामाजिक उच्छृंखलता के विरुद्ध। ii मर्यादावादी-सर्वत्र मर्यादा का परिपालन, उच्च से उच्च चरित्र द्वारा मर्यादा का पालन। iii शूद्रों के प्रति सद्भावना--केवट,

शबरी आदि के प्रकरण। iv स्त्रियों के प्रति–सतीत्व की भावना–सीता, सती, मंदोदरी जैसे चरित्र। v 'ढोल गँवार'–वाली उक्ति–विवादास्पद विषय (इस उक्ति के अनेक अर्थ, गोस्वामीजी साधारण अर्थ में इसे कभी न लिखते)। vi राजा तथा प्रजा के आदर्श–रामराज्य–आदर्श राज्य की कल्पना।

'जो पाँचहिं मत लागै नीका'
'जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी' आदि।

vii राजा, प्रजा, मंत्री, सेनापति, सैनिक, दूत आदि के आदर्श।

५—पारिवारिक वातावरण – i प्रत्येक के प्रति कर्तव्य। ii आदर्श संबंधों का चित्रण–पितापुत्र, स्त्रीपुरुष, माता, पुत्र, सपत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र आदि। iii हमारे दैनिक जीवन के लिये आदर्श। iv गृह-कलह से सर्वदा बचाव। v सभी स्थितियों का पारिवारिक धर्म। vi जीवन को सुखमय, शान्तिपूर्ण तथा सम्पन्न बनाने के साधन।

६—प्रचार—i राजा से रंक तक, झोंपड़ियों से महलों तक, बड़े नगरों से छोटे ग्रामों तक। ii पारायण–मासिक, नवाह्न, अखंड, अष्टोत्तरशत (१०८) iii नित्यप्रति के पाठ की पुस्तक–गीता तथा मानस दोही ऐसी पुस्तकें हैं–'मानस'–स्त्री, बच्चे, बड़े सबों के द्वारा। iv उक्तियाँ सर्वत्र प्रचलित और अनेक स्थलों पर निश्चयात्मक। v प्रचार के उद्योग–(a) विद्वानों द्वारा खोज, अन्वेषण, लेख, (b) पत्रकारों द्वारा–मानस सम्बन्धी पत्र प्रकाशन–'मानस मणि' 'मानसहंस' 'मानस' आदि। (c) कम मूल्य पर–गीता प्रेस, गोरखपुर आदि। (d) सेना, विद्यार्थीगण आदि में। (e) स्थान-स्थान पर पाठ, प्रवचन, कथा। (f) रामलीला, नाटक आदि।

७—काव्य माला का सुमेरु, भक्तों का प्राण, जीवन का आदर्श, दार्शनिक तथा व्यावहारिक तत्वों का उद्‌घाटन।

६०—हिन्दी का रंगमंच

विस्तृत रूपरेखा

१—नाटक और रंगमंच—i नाटक दृश्य काव्य है अतएव रंगमंच की आवश्यकता। ii दोनों ही प्रकार के नाटक--पठनीय, दर्शनीय। iii अभिनय होने में नाटक की पूर्ण सार्थकता। iv प्राचीन काल से अबतक इस ओर ध्यान कि नाटक रंगमंच के उपयुक्त हों।

२—रंगमंच की परम्परा—i संस्कृत नाटक अभिनय योग्य होते थे। ii कुछ नाटक क्लिष्ट होते थे किन्तु प्रस्तावना यही सूचित करती थी कि वे खेले जाने वाले थे। iii भरतमुनि का नाट्य शास्त्र--प्रेक्षागृहों का वर्णन। (a) तीन प्रकार की नाट्यशालायें। १—चतुरस्र--लम्बाई चौड़ाई बराबर। २—विकृष्ट--लम्बाई दुगनी। ३--त्र्यस्र--त्रिकोणाकार। (b) इन शालाओं में नेपथ्यगृह, रंगशीर्ष, रंगपीठ, प्रेक्षागृह आदि होते थे। पर्दे भी रहते थे।

३—हिन्दी का रंगमंच—i प्राचीन रंगमंचीय सिद्धान्तों का विस्मरण। ii पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा पुनः आरम्भ। (a) उर्दू का प्रयोग। (b) व्यावसायिक दृष्टिकोण। (c) ऊपरी तड़क-भड़क, पोशाक। (d) भाषा, नृत्य, गायन निम्नकोटि के। iii भारतेन्दु द्वारा रंगमंच-स्थापन का उद्योग, नाटकों में साहित्यिकता, रंगमंच उसी प्रकार। iv भारतेन्दु के पश्चात्--(a) अन्य उद्योग जैसे बनारस थियेटर्स। (b) प्रधानतः पारसी कम्पनियों का हाथ। (c) राधेश्याम, बेताब और आगा हश्र के नाटक--व्यवसायी कम्पनियों द्वारा। (d) भारत नाटक मंडली।

४—आधुनिक रूप—i कुछ निम्नकोटि की व्यावसायिक कम्पनियाँ जो इधर-उधर भ्रमण करती हैं। स्वाभाविकता की कमी, साहित्यिकता का अभाव, हिन्दी के प्रति कर्तव्यहीनता। ii वैयक्तिक संस्थाएँ--राजा, रईसों के मनोविनोद के लिए। iii साहित्यिक संस्थाओं द्वारा--स्कूल कालेज के छात्रों द्वारा, साहित्य-सम्मेलन आदि हिन्दी

संस्थाओं द्वारा। ये रंगमंच समय विशेष पर रहते हैं और इनकी उन्नति में कुछ प्रयत्न नहीं किया जाता। iv अव्यावसायिक क्लब कम्पनियाँ--जहाँ थोड़ा बहुत नियमित कार्य चलता है। v एकांकियों का प्रचलन--कम साज-सामान की आवश्यकता, कालेजों द्वारा अभिनय।

५—रंगमंच के विकास का अभाव—i उद्योग की कमी। ii अभिनय के योग्य नाटकों का अभाव, प्रसाद के नाटकों की अनभिनेयता--भाषा, विस्तार, दार्शनिकता, स्त्री पात्रों का अभाव, योग्य अभिनेताओं की कमी। iii स्त्रियों का सहयोग नहीं मिल सका। iv संगीत शास्त्र से अनभिज्ञ। v हिन्दी रङ्गमंच का विकास न हो सका।

६—सिनेमा और रंगमंच—i सिनेमा की सुविधाएँ। ii दृश्यों का प्रदर्शन। iii स्टेज के आडम्बर का अभाव। iv किन्तु सिनेमा छाया है, सजीवता की कमी। v सिनेमा के साथ ही नाटक का विकास हो सकता है।

७—क्या हो ? i हिन्दी प्रेमी उद्योगशील हों। ii अभिनेय नाटक लिखे जाएँ। iii नियमित संस्थायें हों। iv स्वाभाविकता का ध्यान रहे--आदि।

६१—हिन्दी का कालविभाजन

विस्तृत रूपरेखा

१—हिन्दी का विकासकाल लगभग १००० वर्षों का है—i राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित। ii रुचि विशेष का सूचक। iii विभाजन के अनेक रूप।

२—मान्य विभाजन—चार काल—i आदिकाल--वीरगाथाकाल सं० १०५०-१३७५। ii पूर्व मध्यकाल--भक्तिकाल सं० १३७५-१७००। iii उत्तर मध्यकाल--रीतिकाल सं० १७००-१९०० (शृङ्गारकाल)। iv आधुनिक काल--गद्यकाल सं० १९००।

३—वीरगाथा काल—i कवि और योद्धा का सामञ्जस्य। ii राजाश्रित कवियों द्वारा राजाओं के शौर्य, पराक्रम प्रताप का वर्णन। iii वीर-रस और शृङ्गार रस का सुन्दर सम्मिश्रण। iv केवल वीरगाथाएँ--(युद्ध और प्रेम दोनों से युक्त)। v इस काल के 'रासो' चन्द--पृथ्वीराज रासो, नरपति नाल्ह--बीसलदेव रासो, दलपति विजय--खुमान रासो। vi अन्य--खुसरो--पहेलियाँ, मुकरियाँ, विद्यापति--'मैथिल कोकिल' कृष्ण काव्य।

४—भक्तिकाल—i कर्म, ज्ञान और भक्ति की ओर प्रवाह। ii अत्याचार के कारण भगवान् के आश्रित। iii सगुण-निर्गुण दोनों रूप। iv दो प्रधान धाराएँ। (a) निर्गुण--१ ज्ञानाश्रयी--कबीर, रैदास, नानक, दादू, सुन्दरदास, मलूकदास आदि सन्त कवि। २ प्रेममार्गी--मुसलमान सूफी कवि--जायसी, कुतबन, उसमान। प्रेमाख्यानों की परम्परा। (b) सगुण—१--रामभक्ति--तुलसी, नाभाजी, अग्रदास, प्राणचन्द, २--कृष्णभक्ति--सूर, नन्ददास आदि अष्टछाप के कवि, स्त्री कवि--मीरा, शेख, ताज, अन्य--रसखान, घनानन्द, गंग, रहीम।

५—रीतिकाल—i रीति ग्रन्थों की परम्परा। ii शृंगारिक रचनाओं का आधिक्य। iii काव्य के अंगों का विवेचन। iv आचार्यत्व की परिपाटी--अनेक लक्षण ग्रन्थ। v भाषाओं की गड़बड़ी--ब्रज, अवधी के विकृत रूप। vi प्रिय छन्द--कवित्त, सवैया, रस--शृंगार, भाषा--ब्रज। vii कुछ कवि--केशवदास, सेनापति, चिन्तामणि, त्रिपाठी, बेनी, महाराज जसवन्त सिंह, बिहारी, देव, मतिराम, भूषण, नेवाज, तोष, पद्माकर, दूलह, आलम, आदि-आदि। viii कवियों की अत्यधिक संख्या।

६—आधुनिक काल—गद्य काल—i गद्य का विकास--(a) खड़ी बोली, (b) लल्लूलाल, सदल, इंशाअल्ला, सदासुख, (c) भारतेन्दु, (d) आधुनिक--गद्य के अनेक रूप। ii नाटक--प्रसाद, गोविंददास। iii कहानी--प्रेमचन्द, सुदर्शन आदि। iv आलोचना--शुक्ल, श्याम-

सुन्दरदास । v उपन्यास--प्रेमचंद, नवीनधारा । vi एकांकी--वर्मा, गोविन्ददास । vii आधुनिक काव्य की अनेक प्रवृत्तियां तथा रूप-मैथिलीशरण, अयोध्यासिंह, सियाराम, प्रसाद, पन्त, महादेवी, नरेन्द्र, दिनकर ।

६२—हिन्दी में पत्र-पत्रिकाएँ

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रस्तावना—i मुद्रण की सुविधा । ii शिक्षा, विचार-विनिमय तथा जागृति । iii समाचार-पत्रों का प्रचलन ।

२—पत्रों का प्रारम्भिक काल—i १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में 'उदन्त मार्तण्ड' युगल किशोर शुक्ल द्वारा । ii शताब्दी के मध्य में राजा शिवप्रसाद द्वारा 'बनारस अखबार' साथ ही तारामोहन मैत्र का 'सुधाकर' । iii भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा 'कवि वचन सुधा' (साहित्यिक) 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७२ में) ।

३—राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का काल—i राजनीतिक--हिन्दीपंच, हिन्दोस्थान आदि । ii धार्मिक--मित्रविलास, आर्यसिद्धान्त, धर्म प्रचारक । iii सामाजिक--क्षत्रिय पत्रिका, अग्रवालोपकारक । कुछ साहित्यिक पत्र भी थे, जैसे—हिन्दी प्रदीप, आनन्द कादम्बिनी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती आदि ।

४—आधुनिक काल—i मासिक--(a) सरस्वती, विशाल भारत, सुधा, माधुरी, हंस, विश्वमित्र, कल्पना, कल्याण, आदि, (b) सभी विषयों से सम्बन्धित, (c) हिन्दी के अनेक अंगों की पूर्ति । ii साप्ताहिक--(a) प्रताप, मिलाप, अर्जुन, नवयुग, हिन्दुस्तान, कर्मवीर, जनयुग, विश्वमित्र, संसार आदि, (b) आकर्षण संयुक्त, (c) विविध स्तंभ, (d) प्रचार की ओर । iii दैनिक—(a) हिन्दुस्तान, नवयुग-टाइम्स, अर्जुन, लोकवाणी, आज, सैनिक, अमृतबाजार पत्रिका,

आदि अनेक, (b) सम्प्रदायों के पत्र--निश्चित-रीतियुक्त, (c) स्तर धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

५—पत्र-पत्रिकाओं की अनेकरूपता—i साहित्यिक--हंस, साहित्य-संदेश, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, कल्पना, सरस्वती, विशालभारत आदि। ii धार्मिक--कल्याण, मानस मणि, नाम माहात्म्य, धर्म, मानस, ज्ञानोदय, सन्मार्ग, वेंकटेश्वरसमाचार। iii राजनीतिक--संस्था विशेष के पत्र-त्यागभूमि, साथी, हिन्दू, लोकवाणी। iv कथा-कहानी--माया, मनोहर कहानियाँ, चिंगारी, नई कहानियाँ, साजन, सरिता। v सिनेमा--रंगभूमि, चित्रपट, चिंगारी, रसभरी, सिनेमा। vi विज्ञान, (विज्ञान) वैद्यक, (धन्वन्तरि) कानून, (न्यायबोध) शिक्षा, (नई तालीम) व्यापार, (उद्यम) सरकारी, (गजट) आदि विभिन्न विषयों के पत्र।

६—पत्र-पत्रिकाओं की प्रगति—i पत्र-संख्या में यथेष्ट अभिवृद्धि हुई है। ii पत्रों के पढ़ने वालों की संख्या--बढ़ती हुई होने पर भी अभी बहुत कम है। iii संचालन एवं सम्पादन में बहुत उन्नति की आवश्यकता। व्यापार-बुद्धि को छोड़कर पत्र की नीति उद्देश्य का परिपालन हो। iv सामग्री का चयन उच्चकोटि का नहीं होता। v शिक्षा की कमी के कारण वाञ्छनीय विकास नहीं हो पाया है। vi सरकार द्वारा भी इस ओर काम होने लगा है और प्रकाशन विभाग के पत्र (आज कल, विश्वदर्शन आदि) कार्य कर रहे हैं। vii पत्रकार कला में उन्नति की आवश्यकता।

उपसंहार—i सम्भावित एवं वाञ्छनीय भविष्य। ii पत्रकार-संघ आदि का उत्तरदायित्व। iii उज्ज्वल भविष्य की आशा।

६३—तुलसी की सार्वभौमिकता

विस्तृत रूपरेखा

१—जिस समय अवतरित हुए—i हिन्दू समाज निराश्रित था। ii मुसलमानों का अत्याचार आश्रयहीन बना चुका था। iii हिन्दी काव्य का रूप अविकसित था। iv अवधी अपेक्षाकृत ग्रामीण थी। v धार्मिक साम्प्रदायिकता दृष्टिगत होती थी विशेषतः वैष्णव और शैव। vi समाज में अनेक दुर्गुण थे, पारिवारिक जीवन में कमियाँ आगई थीं। vii हिन्दू मुस्लिम धर्मों को मिलाने की असफल चेष्टायें चल रही थीं।

२—काव्य के क्षेत्र में—i ब्रज, अवधी दोनों भाषाओं का उत्थान। ii प्रचलित सभी शैलियों का सफल उपयोग, (a) दोहा, चौपाई, प्रबन्ध-शैली--मानस, (b) कवित्त, सवैया, फुटकर शैली--कवितावली, (c) दोहा--उपदेशात्मक शैली--दोहावली, (d) पद--गीत शैली--गीतावली, विनय, (e) छप्पय आदि--वीर-गाथा-शैली--स्थान-स्थान पर, iii सुन्दर प्रबन्ध की रचना। iv अलंकार, रस, ध्वनि आदि सभी प्रकार से सुन्दर काव्य की सृष्टि। v कला की दृष्टि से—भाव पक्ष तथा कलापक्ष दोनों में सुन्दर रचनाएँ। vi हिन्दी में उत्कृष्ट काव्य की रचना।

३—धार्मिक क्षेत्र में—i शैव वैष्णवों का झगड़ा शान्त--तुलसी के राम, शिव के उपासक हैं; और शिव का उपास्यदेव 'राम' हैं। ii धार्मिक कट्टरता को तिलाञ्जलि। iii अनेक पन्थों के विरुद्ध, दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप अरुचिकर। iv भक्तिकाल के सुमेरु--ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों का प्रतिपादन करते हुए भक्ति की महत्ता।

४—सामाजिक क्षेत्र में--i स्त्रियों के प्रति—उक्तियों का वास्तविक अर्थ लगाना चाहिये। ii शूद्रों के प्रति--केवट और राम, शबरी और राम iii सामाजिक व्यवस्था। iv राजा और प्रजा के सम्बन्ध, (a) प्रजा मत का ध्यान--'जो पाँचहि मत लागै नीका', (b) प्रजा की

राजा के प्रति भक्ति, (c) प्रजा का विचार-स्वातंत्र्य । v समाज में मर्यादा, व्यवस्था, सुरुचि ।

५—पारिवारिक क्षेत्र में—i प्रत्येक का कर्तव्य । ii मर्यादा का सर्वदा ध्यान । iii गृह-कलह से दूर--गृह में सुख शान्ति । iv सभी के लिये वेद वाक्य सदृश सुन्दर उपदेश । v उनकी उक्तियाँ प्रमाण के रूप में प्रचलित ।

६—प्रस्तुत वातावरण i तुलसी सर्वदा मर्यादावादी थे--इसका अतिक्रमण नहीं हुआ । ii सुख-सन्तोष और शान्ति का सभी क्षेत्रों में मान किया iii राम-भक्ति, रामनाम, रामकथा ऐसे सुन्दर साधन दिये जो लौकिक पारलौकिक सभी प्रकार से लाभकारी और उपयुक्त हैं । iv सुन्दर चित्र--कलियुग का चित्रण, असन्तों के लक्षण, वास्तव में सन्त, कुटिल व्यक्ति, विनयशीलता, सामाजिक आचरण, व्यवहार-कुशलता--मानस आदि ग्रन्थों में सर्वत्र उपलब्ध । v व्यावहारिकता--इसी कारण से इनके ग्रन्थ आज भी प्रमाण हैं और हमारे काम में आ रहे हैं ।

७—उपसंहार—i तुलसी की प्रत्येक रूप में महत्ता । ii इनकी ख्याति दिनों दिन बढ़ रही है । iii साहित्य में सुन्दरतम खोज । iv भक्त, साहित्यिक, व्यवहारशील, आदि सभी को सुन्दर साधन ।

६४—आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ

विस्तृत रूपरेखा

१—पृष्ठभूमि—i हिन्दी कविता के अनेक महत्त्वपूर्ण युग--वीर, भक्ति, शृंगार आदि । ii रीति कालीन कविता, ऐहिक सुख और भोग-विलास की ओर । iii कविता का कृत्रिम रूप, स्वरूप का पतन । iv अँग्रेजी राज्य और विचार-परिवर्तन । v राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों एवं दृष्टिकोण में अनेक परिवर्तन ।

२—हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल कहे जाने वाले समय

का विभाजन - i भारतेन्दुकाल, (a) रीति कालीन प्रवृत्तियों का ह्रास, (b) नवीन भावनाएँ, चेतनाएँ, (c) राजनैतिक जागृति--धार्मिक आन्दोलन, (d) देश और समाज की अनेक समस्याएँ, (e) भाषा परिवर्तन--गद्य की ओर, (f) प्राचीन तथा नवीन परम्पराओं का सम्मिश्रण। ii द्विवेदीयुग--(a) देशभक्ति और सामाजिक कविता का व्यापक क्षेत्र, (b) जनता की ओर--किसान, विधवा, अछूत, (c) वर्णनात्मक तथा आख्यात्मक कविताएँ, (d) भाषा में परिवर्तन--परिमार्जित खड़ी बोली, (e) नवीन विचार, नवीन क्षेत्र, (f) प्राचीन तथा नवीन युग के बीच की कड़ी। iii वर्तमान युग--गीतात्मक, रहस्यात्मक, लाक्षणिकत्व।

१—वर्तमान युग की विशेषताएँ—i कलापक्ष-मुक्तक गीतों का युग--पन्त, निराला, प्रसाद और महादेवी के गीत, (b) छन्द विधान में स्वतन्त्रता एवं विविधता की ओर प्रवृत्ति--नवीन वृत्त, वृत्तहीनता आदि, (c) भाव तथा लय में सामञ्जस्य करने की चेष्टा, (d) भाषा की संगीतात्मकता की ओर लक्ष्य, (e) प्रतीकों का प्रयोग--अपने तथा विदेशी शूलों का दंशन भी हो, कलियों का चुम्बन भी हो। सूखे पल्लव फिरते हों, कहने जब करुण कहानी। (महादेवी) (f) भाषा का लाक्षणिक प्रयोग--अरी करुणा की शान्त कछार तपस्वी के विराग की प्यार, (प्रसाद) (g) अँग्रेजी शैली का प्रभाव--सुन्दरता का गर्व न करना ओ स्वरूप की रानी। समय-रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी (दिनकर) (h) शब्द शोधन और शैली की स्वतन्त्रता--संस्कृत शब्दों का बाहुल्य, नवीन शब्द-रचना, (i) खड़ी बोली का माधुर्य और सौन्दर्य--नैपाली, भक्त, बच्चन। ii भावपक्ष--(a) रहस्यवाद, छायावाद-रहस्यवाद के स्थान में छायावाद आ गया (सच्ची अनुभूति की कमी, नवीन प्रक्रिया का आधिक्य, आदि से) (b) इनके पश्चात् प्रगतिवाद--किसान, मजदूर, रूस और लालसेना, 'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक चिल्लाते हैं' (दिनकर) 'इन खलिहानों में गूँज रही, किन अपमानों की लाचारी

(अञ्चल) 'अमीरों की सोने की लंका जलाती चली जा रही है बढ़ी लालसेना (सुमन) (c) देश भक्ति की कविता--भारतीय आत्मा, चौहान, नैपाली, गुप्त, (d) प्रेम की कविता--नवीन दृष्टिकोण--प्रेम की पवित्रता आदि 'तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान। तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान ॥ (पन्त) 'तुम्हें याद है क्या उस दिन की नए कोट के बटन-होल में हँस कर प्रिये लगा दी थी जब वह गुलाब की लाल कली ॥ नरेन्द्र (e) प्रकृति-चित्रण--शोभा का वर्णन--संध्या, नौका विहार, वृक्ष, जंगल, रात्रि, प्रभात, पक्षी, पर्वत, क्षितिज--गुँजन, लहर--इस सोते संसार बीच जगकर सजकर रजनी वाले। कहाँ वेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले ॥ रामकुमार (f) अन्यवाद--पलायनवाद, हाला-वाद (बच्चन) (g) शृंगार, वीर के नये रूप, शास्त्र का अभाव, सभी रसों के गीत, (h) धार्मिक भावना--गुप्त, हरिऔध आदि के प्रबन्ध, (i] गीतात्मक एवं प्रबन्धात्मक दोनों प्रवृत्तियाँ--गीतात्मक गीत--प्रकृति सम्बन्धी, जीवन मीमांसा, राष्ट्रीय, प्रेम, आध्यात्मिक मिलन आदि प्रबन्ध--महाकाव्य, खंडकाव्य दोनों।

४—प्रवृत्तियों का परिणाम—i साहित्य अभिवृद्धि। ii अनेक समस्याओं का स्पष्टीकरण। iii देश की भावनाओं का वास्तविक ज्ञान। iv आदर्श से यथार्थ की ओर प्रवृत्ति का परिणाम संभवतः कला का ह्रास। v भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं विचार-धारा का प्रकाशन। vi विदेशी भावनाओं का प्रकाशन--अनुचित अनुकरण।

५—उपसंहार—i काव्य का विस्तृत क्षेत्र--समस्त भाषा तथा भावों का द्वार उन्मुक्त। ii अनेक दोष और उनका निराकरण (संक्रान्ति काल) iii स्वतन्त्र भारत का काव्य।

६५—हिन्दी की कवियित्रियाँ

विस्तृत रूपरेखा

१—साहित्य-निर्माण-कार्य में देवियों का महत्वपूर्ण सहयोग।

२—हिन्दी के विभिन्न कालों में—i वीर-गाथा काल--लेखिकाओं का अभाव, रचनायें अप्राप्य हैं। ii भक्तिकाल--(a) मनोवृत्ति के अनुकूल काल, (b) धार्मिक काव्य की परम्परा, (c) कृष्ण काव्य की ओर झुकाव, (d) गीति काव्य का प्राधान्य, (e) माधुर्य तथा वात्सल्य भावों का सृजन, (f) प्रतिनिधि कवियित्रियाँ -(१) मीरा--कवियित्रियों की सिरमौर, उसका गीतिकाव्य, काव्य प्रतिभा, उच्चातिउच्च कवियों के समकक्ष, (२) सहजोबाई--साधु-सन्तों में विख्यात, उच्चकोटि की भक्ति, गुरु उपासना, (३) दयाबाई--प्रेम और भक्ति-वैराग्यपूर्ण कविता, (४) प्रतापकुँवरि--रामभक्ति की कविता, आध्यात्मिकता से प्रभावित अनेक पुस्तकें। iii रीतिकाल--(a) कृष्ण भक्ति पर आधारित कविताएँ, (b) राधाकृष्ण, गोपीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन, (c) समस्यापूर्ति पर, (d) व्यावहारिकता और उपयोगिता भी, (e) प्रतिनिधि कवियित्रियाँ- (१) प्रवीण राय--'कविप्रिया' में वर्णित, (२) ताज- वैष्णव मतावलम्बी मुसलमान स्त्री, भावों से युक्त कविता, कृष्णभक्त, (३) शेख--'आलम', शेख, प्रणय, शृङ्गाररस की उत्तम कविताएँ, (४) साईं--गिरधर कविराय की सभी कुण्डलियाँ, व्यावहारिकता तथा उपयोगिता। iv आधुनिक काल--उत्तर काल--(a) कृष्ण-भक्ति, समस्याएँ, धार्मिक अभिरुचि, राष्ट्र भावना का आरम्भ, (b) कृष्ण काव्य--चन्द्रकला (समस्याएँ) जुगल प्रिया (भक्ति कविता), (c) रामकाव्य--रामप्रिया (रघुराज कुँवरि), (d) नवीन धारा--(१) सरस्वती देवी--सुधार की भावना, ओज माधुर्ययुक्त कविता, (२) राजरानी (डा० रामकुमार की माँ) समाज और राष्ट्र की प्रेम वन्दना, हरिश्चन्द्र के समकक्ष नवीन उत्थान की अग्रदूत, (३) बुन्देला बाला

('दीन'जी की पत्नी) जागरण सन्देश, मौलिकता। v नवीनयुग--(a) बच्चों की कविता--गोपालदेवी, (c) राष्ट्र के प्रति, रहस्य-वाद, नवीन चिन्तन, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, (c) तोरन देवी 'लली'--नवयुग का सन्देश, साहस, करुणा प्रेम का मिश्रण, (d) सुभद्रा कुमारी--राष्ट्रीय भावना कृतियाँ (मुकुल, झाँसी की रानी), (e) महादेवी वर्मा--आधुनिक मीरा, हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट कवयित्री, रहस्यवाद की स्रष्टा, युग परिवर्तनकार दार्शनिकता, (f) अनेक अन्य--तारा पांडे, रामेश्वरी देवी 'चकोरी', 'नलिनी', रामेश्वरी गोयल, सावित्री दुलारेलाल, शकुन्तला खरे, विद्यावती कोकिल आदि।

३—कवियित्रियों की विशेषता—i शृङ्गार एवं करुणा के क्षेत्र में प्रतिभा। ii कृष्ण काव्य में रुचि। iii राष्ट्र-चेतना तथा वीरता की ओर भी झुकाव। iv प्राचीन काल में संख्या में कमी, इस काल में प्रचुरता। v अनेक क्षेत्रों में गीतात्मक प्रवृत्ति।

४—हिन्दी को देन—i मीरा आदि से गीति काव्य, भक्ति काव्य। ii आज के रहस्यवाद में योग। iii माधुर्य और करुणा। iv अपेक्षा-कृत न्यूनता।

५—आधुनिक प्रवृत्ति—i हिन्दी की ओर विशेष रुचि। ii कविता की ओर। iii नवीन प्रणाली से प्रभावित। iv पुरुषों के समकक्ष।

६६—हिन्दी में एकांकी नाटक

विस्तृत रूपरेखा

१—एकांकी नाटक की विशेषताएँ—i नाटकीय तत्व--वस्तु, पात्र, कथोप-कथन, वातावरण, उद्देश्य आदि। ii केवल एक अङ्क--बड़े नाटकों में ३ से १० अङ्क तक हो सकते हैं। iii जीवन की कोई एक घटना, किसी एक बात का दिग्दर्शन, कोई एक सिद्धान्त। iv सभी तत्वों को संगठित कर उद्देश्य की ओर एक रूपता। v समय की कमी, रंगमंच

की कठिनाई आदि का विचार कर प्रकाश में लाए गए। vi प्रभाव बहुत स्थायी हो सकता है। vii कहानी और एकांकी के स्वतन्त्र अस्तित्व।

२—हिन्दी में एकांकी नाटकों का आरम्भ—i बहुत प्राचीन काल से प्रचलित जैसे, व्यायोग, अङ्क, वीथी, गोष्ठी। ii आधुनिक एकांकी पश्चिमीय कला का अनुकरण (मंचीय संकेत आदि)। iii रंगमंचीय बनाने की दृष्टि से इधर ध्यान (स्कूल, कालेजों के सफल अभिनय)। iv लेखन एवं अभिनय दोनों ओर प्रगति।

३—हिन्दी के एकांकी लेखक i प्रायः कालेज स्कूलों से सम्बन्धित व्यक्ति; पश्चिमीय साहित्य से परिचित। ii कुछेक नाम--रामकुमार वर्मा--रेशमी टाई, चारुमित्रा, भगवतीचरण वर्मा--सबसे बड़ा आदमी, उपेन्द्रनाथ अश्क--लक्ष्मी का स्वागत, उदयशंकर भट्ट--दस हजार, सुदर्शन--राजपूत की हार, सेठ गोविन्ददास- स्पर्द्धा।

४—हिन्दी के एकांकियों की विशेषता—i स्कूल-कालेजों में अभिनय के हेतु -श्री रामकुमार वर्मा के सभी एकाङ्की इस हेतु। ii अभिनय स्थान प्रायः शिक्षा संस्थाएँ। iii कथात्मकता की ओर अधिक ध्यान, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कमी--कोई कहानी-सी निकल आती है। iv हिन्दी की एकाङ्की परम्परा अति प्राचीन है। v बढ़ती हुई प्रवृत्ति--बड़े नाटकों की ओर कम ध्यान।

५—प्रदर्शन के स्थान—i शिक्षा-संस्थाओं के अस्थायी मंच। ii चित्रपट पर विश्रान्ति काल में। iii विज्ञापन के हेतु रंगमंच शाला में। iv पढ़कर आनन्द प्राप्त करने के हेतु।

६—हिन्दी में एकाङ्की की स्थिति तथा भविष्य—i अभिनय की दृष्टि से बड़े नाटक एक दम कम होते जारहे हैं--एकांकियों का प्रचार बढ़ रहा है। ii लेखक भी इस ओर प्रयत्नशील हैं और अनेक संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं। iii विषय और क्षेत्र की दृष्टि से यथेष्ठ विविधता है। iv मनोविज्ञान की ओर भी ध्यान दिया जारहा है। v कालेज स्कूलों में बहुत प्रिय सिद्ध हुए हैं। iv भविष्य अत्यन्त आशाप्रद है।

६७--हिन्दी में प्रकृति-वर्णन

विस्तृत रूपरेखा

१—प्रकृति-वर्णन के प्रकार—i प्रकृति मात्र का वर्णन--सामान्य रूप का चित्रण। ii अलंकारों के उपमान रूप में। iii उद्दीपन के रूप में--जैसे शृङ्गार में रम्य प्रकृति। iv नीति, सिद्धान्त आदि का प्रतिपादन करने के हेतु उदाहरण रूप में (तुलसी में)। v वातावरण का चित्र उपस्थित करने के हेतु (भूमिका के रूप में)। vi वस्तु-नामावली (जैसे हरिऔध प्रियप्रवास)। vii हमारे मनोभावों को प्रकट करती हुई (रोती, गाती प्रकृति)।

२—प्रकृति-चित्रण में सावधानी—i प्रकृति के निरीक्षण की आवश्यकता। ii देश-काल का विचार। iii उपमानों का औचित्य। iv रस अथवा भाव के अनुरूप वर्णन। v वर्णन की सजीवता, बारीकी।

३—प्रकृति-वर्णन की परम्परा—i भारत सुन्दर प्रकृति का देश--कवियों का स्वाभाविक आकर्षण ii भारत की उपयुक्त ऋतुएँ--कालिदास द्वारा छह ऋतुओं का वर्णन। iii संस्कृत-साहित्य में उपमा-उत्प्रेक्षा के रूप में।

४—हिन्दी के कुछ कवि—i प्रारम्भिक भक्त कवि--प्रकृति के वर्णन आध्यात्मिक तत्वों का स्पष्टीकरण करने के लिए। कबीर के फाग, बसन्त आदि। ii जायसी--अतिशयोक्तिपूर्ण, (a) विरहाग्नि से कोयल काली होगई, (b) 'दरार के मिस' पृथ्वी का हृदय जब भी फटता है। iii भक्त कवि--(a) सूरदास -उपसना के रूप में (प्रिय-प्रवृत्ति) मानव प्रकृति तथा बाल-प्रकृति के वर्णन, विरह-वर्णन में, (b) तुलसी--प्रकृति वर्णन के अनेक प्रकार, उपदेश के रूप में (बर्षहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं खल विद्या पाये॥) उपमान के रूप में--उत्प्रेक्षा के रूप में (गीतावली) सीता के वियोग समय, (c) कृष्ण-साहित्य--शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में, प्रकृति और नायिका अभिसार। iii रीतिकाल--शृङ्गार की प्रधानता, षट्ऋतु वर्णन (सेनापति),

लक्षण ग्रन्थ (देव, बिहारी आदि), उद्दीपन के लिए प्रयुक्त प्रकृति। iv आधुनिक काल--प्रकृति वर्णन की ओर ध्यान--(a) श्रीधर पाठक काश्मीर सुषमा, ऊजड़ ग्राम, उपाध्याय--प्रियप्रवास, नामावली, केशवदास का अनुकरण, मैथिलीशरण--सुन्दर चित्रण, ध्वनियुक्त 'ओ निर्भर करके नीर भरा भर-भर तू', शुक्ल--प्रकृति वर्णन--आमन्त्रण करती हुई, (b) छायावादी कवियों द्वारा--पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि प्रकृति के रहस्य का उद्घाटन, वर्णन की गम्भीरता, (c) स्पष्ट प्रकृतिवादी--दिनकर, गुरुभक्त, नैपाली।

५—प्रकृति की ओर मानव प्रकृति—i प्रकृति और मनुष्य की घनिष्ठता। ii प्रकृति में मनुष्य से भावों की छाया। iii प्रकृति के अन्तर्गत--बाह्य एवं मानवी प्रकृति दोनों का योग। iv आधुनिक कवि प्रकृति-वर्णन की ओर अधिक झुका हुआ है और उसके अनेक क्षेत्रों में पदार्पण कर चुका है।

६८—हिन्दी में 'वाद'

विस्तृत रूपरेखा

१—वाद i चिन्तन धारा के परिचायक। ii प्रत्येक क्षेत्र में वाद--धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक। iii उद्गम--भारतीय दर्शन और चिन्तन प्रणाली।

२—साहित्यिक वाद—i काल और देश विशेष की विचारधारा से सम्बन्धित। ii अँग्रेजी और बँगला में बाहुल्य। iii हिन्दी के वाद विदेशी प्रभाव से प्रभावित।

३—हिन्दी का आधुनिक प्रमुख वाद—i रहस्यवाद। ii छायावाद। iii प्रगतिवाद। iv यथार्थ वाद।

४—संक्षिप्त विवरण—i रहस्यवाद--१ भारतीय चिन्तन की पुरानी वस्तु, धार्मिक पृष्ठभूमि, २--रहस्यवाद के दो रूप, (a)--प्रेमाश्रित (भागवत में) जायसी, कुतबन, (b) ज्ञानाश्रित (उपनिषदों में) कबीर,

सन्तकवि। ३--आधुनिक रहस्यवाद (a) कल्पना प्रधान, धार्मिक अनुभूति गौण, (b) काव्य कला का एक प्रकार, (c) विदेशीपन (अँग्रेजी, बँगला से प्रभावित)। ii छायावाद--(a) रहस्यवाद की अपेक्षा संकुचित, (b) रहस्यवाद का ही दूसरा नाम--चिंतन की कमी, कला का आधिक्य--आधुनिक रहस्यवाद, (c) नवीन दृष्टि-कोण, (d) विशेषताएँ--आत्माभिव्यक्ति, वैचित्र्य तथा सौंदर्य, माधुर्य, स्वच्छन्दता, प्रकृति-चित्रण, लाक्षणिक प्रयोग, (e) आदि-स्रोत--प्रसाद और पन्त में। iii प्रगतिवाद (a) विषय--आत्मा, परमात्मा से बदल कर साधारण कोटि का, सड़क पर काम करता मजदूर, हल चलाता किसान, (b) मानवीय, साधारण प्रवृत्तियों का सन्निवेश, (c) साम्यवाद से प्रभावित, (d) शुद्ध प्रगतिवाद में शान्ति, प्रेम, उन्नति, निर्माण और आशा के संकेत, (e) पन्त, नरेन्द्र द्वारा प्रसारित। iv यथार्थवाद--(a) प्रगतिवाद का ही दूसरा रूप, (b) यथार्थ (नग्न) चित्रण, (c) आशाहीनता--भविष्य अन्धकारमय, (d) विध्वंस, खण्डन, विनाश में विश्वास, (e) विषय--साधारण व्यक्ति, सामान्य समस्याएँ, (f) देश और समाज के प्रति कर्तव्य भाव से उदासीन, (g) दिनकर, भगवती-चरण वर्मा आदि द्वारा प्रसारित।

५—वादों पर आधुनिक प्रभाव—i विशेषतः राजनैतिक तथा आर्थिक। ii कविता के काव्यात्मक रूप से दूर हो अन्य भावनाओं की ओर। iii पश्चिमीयता से प्रभावित तथा आधुनिक मनोवृत्ति के परिचायक। iv शाब्दिक छटा, चमत्कार, बाह्यरूप का विशेष ध्यान।

६—उपसंहार—i आधुनिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होरहे हैं। ii वास्तविक रूप को [illegible] रहा है। iii हृदय प्रधानता में कमी है। iv [illegible] नी चाहिए।